माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

बिजय आनन्द गुप्ता एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 560 of 2010. Decided on 11th July, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 498A/34 सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3/4—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—क्रूरता–नगद और मोटरसाईकिल की मांग–तलाक प्राप्त किए बिना प्रथम पति के जीवनकाल में दूसरा विवाह शून्य विवाह है–सूचक यह स्थापित करने में विफल रहा कि वह उस व्यक्ति की विधिवत ब्याहता पत्नी है जिसके याचीगण निकट संबंधी हैं–याचीगण की दांडिक कार्यवाही संपोषित नहीं की जा सकती है–संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित। (पैराएँ 4, 6 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. Purnendu Kumar Jha, For the Petitioners; A.P.P., For the State; Mr. P.K. Chaudhary, For the O.P. No.2.

आदेश

याचीगण ने गोड्डा (टाउन) पी॰ एस॰ केस सं॰ 295 वर्ष 2009, टी॰ आर॰ सं॰ 1469 वर्ष 2009 के तत्सम से उद्भूत होने वाले जी॰ आर॰ सं॰ 1002 वर्ष 2009 में प्रभारी सी॰ जे॰ एम॰, गोड्डा द्वारा पारित दिनांक 7.12.2009 के उस आदेश, जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 498A/34 के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन भी अपराध का संज्ञान लिया गया था, के अभिखंडन के लिए और संपूर्ण प्राथमिकी के अभिखंडन के लिए भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का अवलंब लिया है।

2. परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 संगीता देवी द्वारा गोड्डा पुलिस के समक्ष यह स्वीकार करते हुए लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत किया गया था कि वह अक्टूबर, 2008 में अपने प्रेमी बुल्लु उर्फ आदित्य गुप्ता के साथ भाग गयी थी और उस कृत्य से व्यथित होकर, उसके पिता नन्द किशोर साह ने बुल्लु उर्फ आदित्य गुप्ता और उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध पुलिस मामला संस्थापित किया था। सूचक ने आगे स्वीकार किया कि पहले उसका विवाह सरवा गाँव में किसी पंकज मंडल के साथ हुआ था और पंकज मंडल के साथ उसके विवाह से एक पुत्री का जन्म हुआ था किंतु पंकज मंडल द्वारा दी गयी यातना के कारण उसने उसके साथ सामाजिक रूप से संबंध विच्छेद कर लिया था और लोहिया नगर गोड्डा में अपने माता-पिता के साथ रहने लगी थी। पैतृक गृह में उसके रहने के दौरान, अभिकथित किया गया है कि अभियुक्त बुल्लु उर्फ आदित्य गुप्ता ने प्रेमवश उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखा और आगे लालच दिया कि उसे उसकी पुत्री के साथ स्वीकार किया जाएगा, जिस प्रस्ताव को उसने अप्रत्यक्ष रूप से अपने माता-पिता को संसूचित किया किंतु उन्होंने अपनी सहमति अभिव्यक्त नहीं की और कोई रास्ता नहीं पाने के कारण वह बुल्लु उर्फ आदित्य गुप्ता के साथ भाग गयी और पुरोहित की उपस्थिति में हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार ''बासुकीनाथ'' मंदिर में अपना विवाह संपन्न किया और कि उसने उसे ब्याहता पत्नी के रूप में स्वीकार किया था। पिछले कुछ दिनों में, उसने अभिकथित किया कि बुल्लु उर्फ आदित्य गुप्ता ने अपने माता-पिता के साँठ-गाँठ से दहेज के रूप में 50,000/- रुपया नगद और मोटर साइकिल मांगने लगा

क्योंकि विवाह दहेज के बिना संपन्न किया गया था और इस संबंध में वे उसे अनेक प्रकार की यातनाएँ देने लगे और अंत में दिनांक 29.9.2008 को उसे उसकी पुत्री के साथ अभियुक्तगण द्वारा यह धमकी देते हुए घर से निकाल दिया गया था कि उसे तब तक स्वीकार नहीं किया जाएगा जब तक वह नगद में और अन्य वस्तु दहेज नहीं देगा।

3. नोटिस तामील किए जाने पर, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने वकालतनामा निष्पादित करके उपस्थिति दर्ज की है किंतु कोई प्रति शपथ पत्र दाखिल नहीं किया गया है।

4. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री पूर्णेंदू कुमार झा ने आरंभ में निवेदन किया कि परिवादी ने निष्पक्षत: स्वीकार किया है कि उसका विवाह सरवा गाँव में पंकज मंडल के साथ हुआ था और हिंदू विवाह अधिनियम के अधीन तलाक प्राप्त किए बिना वह बुल्लु उर्फ आदित्य गुप्ता के साथ भाग गयी थी और मंदिर में विवाह संपन्न किया था जिसे वैध विवाह नहीं कहा जा सकता है। तलाक की डिक्री प्राप्त किए बिना प्रथम पति के जीवन काल में दूसरा विवाह शून्य विवाह है जो विधि में मान्य विवाह नहीं है, अत:, न तो बुल्लु उर्फ आदित्य गुप्ता को उसका पति समझा जाएगा और न ही उसके निकट संबंधियों को परिवादी का ससुराल वाला समझा जाएगा और इसलिए, इन याचीगण, जो और कोई नहीं बल्कि बुल्लु उर्फ आदित्य गुप्ता के निकट संबंधी थे, के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A आकृष्ट नहीं होता है।

5. भारतीय दंड संहिता की धारा 498A विनिर्दिष्ट है, जो करती है:–

> *''जो कोई, किसी स्त्री का पति या पति का नातेदार होते हुए, ऐसी स्त्री के प्रति क्रूरता करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।''*

6. स्पष्टीकरण में क्रूरता को परिभाषित किया गया है किंतु चूँकि अभियोजन सूचक और बुल्लु उर्फ आदित्य गुप्ता के बीच पति-पत्नी का संबंध स्थापित करने में विफल रहा, बुल्लु उर्फ आदित्य गुप्ता के निकट संबंधियों को सूचक के पति का संबंधी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार याचीगण का समस्त दांडिक अभियोजन विधि के अधीन संपोषित नहीं किया जा सकता है।

7. सूचक-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता इस न्यायालय को संतुष्ट कराने में विफल रहे कि सूचक और बुल्लु उर्फ आदित्य गुप्ता के बीच वैध विवाह था और मंदिर में उनका अभिकथित विवाह शून्य विवाह नहीं था।

8. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, मैं याचीगण की ओर से उपस्थित अधिवक्ता के तर्क में सार पाता हूँ कि सूचक वि॰ प॰ सं॰ 2 यह स्थापित करने में विफल रही कि वह बुल्लु उर्फ आदित्य गुप्ता की विधिवत ब्याहता पत्नी थी ताकि यह स्थापित कर सके कि याचीगण बुल्लु उर्फ आदित्य गुप्ता के निकट संबंधी होने के नाते वर्तमान मामले में दांडिक रूप से अभियोजित किए जाने के दायी थे।

9. उक्त कथित कारणों से, मैं पाता हूँ कि याचीगण के दांडिक कार्यवाही को विधि के अधीन संपोषित नहीं किया जा सकता है और इसलिए गोड्डा (टाऊन) पी॰ एस॰ केस सं॰ 295 वर्ष 2009, टी॰ आर॰ सं॰ 1469 वर्ष 2009 के तत्सम से उद्भूत होने वाली जी॰ आर॰ सं॰ 1002 वर्ष 2009 में उनकी संपूर्ण दांडिक कार्यवाही को दिनांक 9.10.2009 के आदेश जिसके द्वारा उनके और अन्य के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया गया था, सहित अभिखंडित किया जाता है।

10. तद्नुसार, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया एवं पी॰ पी॰ भट्ट, न्यायमूर्तिगण

घुसा उराँव एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (DB) No. 473 of 2003. Decided on 11th August, 2011.

S.T. सं॰ 84 वर्ष 2000 में अपर सत्र न्यायाधीश, FTC-III, गुमला द्वारा पारित दिनांक 29.1.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय तथा दिनांक 30.1.2003 के दंड के आदेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302/149—हत्या—आजीवन कारावास—घातक हथियारों द्वारा जानलेवा हमला किया गया—अभियोजन मामला चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा पूर्णतः समर्थित—पक्षकारों के बीच भूमि विवाद—कुछ दिनों पहले, मृतक के परिवार को गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी गयी थी—दं॰प्र॰सं॰ की धारा 313 के अधीन अपीलार्थीगण की परीक्षा के अनुक्रम में यथोचित प्रश्न रखे गये थे और उस आधार पर, अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि अपास्त नहीं की जा सकती—आक्षेपित निर्णय सम्पुष्ट—अपील खारिज। (पैराएँ 7 एवं 8)

निर्णयज विधि.—(2008)8 SCC 395—Distinguished.

अधिवक्तागण.—M/s A.K. Chaturvedi, K.K. Mishra, For the Appellant; APP, For the State.

निर्णय

न्यायालय द्वारा.-पक्षकारों को सुना।

2. यह अपील S.T. सं॰ 84 वर्ष 2000 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, FTC-III, गुमला द्वारा पारित दिनांक 29.1.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय तथा 30.1.2003 के दंड के आदेश से उद्भूत हुई है जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि की गयी थी तथा सश्रम आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था।

3. अभियोजन मामला, संक्षेप में यह है कि सुकरा उराँव-सूचनादाता- अ॰सा॰ 7 ने 10.11.2009 को एक फर्दबयान (प्रदर्श 2) दिया था कि 9/10.11.99 की बीच की रात में लगभग 8 बजे अपराह्न में काटचू उराँव (मृतक), सूचनादाता एवं उसके परिवार के सदस्य अपने घर में सो रहे थे। दरवाजा खटखटाने की आवाज सुनकर, सूचनादाता जाग गया और सुना कि उसका सह-ग्रामीण घुसा उराँव (अपीलार्थी सं॰ 1) यह कह रहा था कि ''कान्दा'' (स्वीट पतादो) लेने के लिए वाहन आया हुआ है जो खेत में पड़ा था। यह सुनने पर, सूचनादाता का भाई काटचू उराँव ने दरवाजा खोला और वह घुसा उराँव के पीछे गया। सूचनादाता भी उसके पीछे गया। जब घुसा उराँव एवं काटचू उराँव चारू उराँव के घर के निकट पहुंचे, अचानक ही डोमना उराँव (अपीलार्थी सं॰ 2) एवं चार पांच अज्ञात व्यक्ति वहां आ गए तथा टांगी एवं बलुआ के द्वारा काटचू उराँव पर प्रहार किया जिसके कारण, मृतक जमीन पर नीचे गिर गया इसके बीच घुसा उराँव ने काटचू उराँव ने गर्दन के पीछे उस पर दो-तीन बार प्रहार किया तथा डोमना उराँव ने मृतक के सिर पर टांगी से प्रहार किया। तब सूचनादाता डर गया। वह अपने घर वापस लौट गया तथा अपने परिवार के सदस्यों को इसके बारे में सूचित किया। शोर सुनने पर, गांव वाले आ गये और उस समय रात्रि के डेढ़ बज रहे थे। यह अभिकथित किया गया था कि जमीन के संबंध में सूचनादाता

एवं घुसा उराँव, डोमना उराँव एवं अन्य अभियुक्त व्यक्तियों (दोषमुक्त) के बीच विवाद था और कुछ ही दिनों पहले, उन्होंने धमकी दी थी कि वे उसके परिवार के किसी सदस्य की हत्या कर देंगे। मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श 3) एवं रक्त रंजित मिट्टी की अभिग्रहण सूची (प्रदर्श 4) तैयार की गयी थी तथा अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध भा०दं०सं० की धाराओं 302/149 एवं 147 के अधीन आरोप विरचित किये गये थे। उन्होंने दोषी न होने का अभिवाक् किया है और विचारण का सामना किया है। विचारण न्यायालय ने छः अन्य अभियुक्त व्यक्तियों को संदेह का लाभ देते हुए बरी कर दिया था तथा यथापूर्वोक्त रूप से वर्तमान अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि की गयी थी।

4. अभियोजन ने आठ गवाहों को परीक्षित किया है। विचारण न्यायालय ने पाया कि अ०सा० 7, सुकरा उराँव-सूचनादाता चश्मदीद गवाह है जिसने अभियोजन के मामले का पूर्ण रूप से समर्थन किया है। अ०सा० 2 वह डॉक्टर है, जिसने मृतक का पोस्टमार्टम किया था। अ०सा० 8 इस मामले का अन्वेषण पदाधिकारी है।

5. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने विभिन्न आधारों पर आक्षेपित निर्णय की आलोचना की।

6. दूसरी ओर, विद्वान APP ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

7. अ०सा० 2, डॉक्टर, जिसने पोस्टमार्टम किया था, ने मृतक के शरीर पर निम्नांकित उपहतियां पायी थी:-

> *''(1) एस एवं गर्दन के दायें भाग पर लगभग 8"x3"x4" का एक विदीर्ण घाव गर्दन के पार्श्व से दायीं कक्षा तक पीछे की ओर विस्तारित होता हुआ इसके अंतर्गत त्वचा, उत्तक, मांसपेशियां, सभी grant नलिकाएं, तंत्रिकाएँ एवं मैंडीबुल का दायां हिस्सा तथा C-1 के स्तर पर सर्वाईकल कशेरूक कटा हुआ था तथा मेरू रज्जू विदीर्ण थी।*
>
> *(2) खोपड़ी के दायें टेम्पोरल ऑक्सीपीटल क्षेत्र पर लगभग 5"x2"x3" का एक विदीर्ण घाव जिसमें हड्डी पूरी मोटाई तक कटी हुई थी तथा मस्तिष्क पदार्थ एवं मेनिन्जेज विदीर्ण थे।''*

डॉक्टर ने राय दी कि दोनों उपहतियां गंभीर थी तथा मृत्यु पूर्व प्रकृति की थीं एवं टांगी एवं बलुआ जैसे तीक्ष्ण धारदार हथियार द्वारा कारित की गयी थी। उनके अनुसार उपहति सं० 1 या तो अकेले या अन्य उपहति के साथ संयुक्त रूप से मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी एवं मृत्यु का कारण सदमा एवं रक्त स्राव था। उन्होंने यह भी राय दी थी कि उपहतियां संभवतः खड़ी हुई स्थिति में कारित की गयी होंगी। अन्य अभियोजन साक्षियों ने भी अभियोजन के मामले का समर्थन किया था। उन्होंने स्पष्टतः कथित किया है कि अपीलार्थीगण एवं अन्य अभियुक्त व्यक्तियों (दोषमुक्त) तथा मृतक के परिवार के बीच एक भूमि विवाद था तथा कुछ दिनों पहले, मृतक के परिवार को गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी गयी थी। अ०सा० 7 ने विनिर्दिष्टतः कथित किया कि अपीलार्थी घुसा उराँव ने टांगी के माध्यम से गर्दन के पीछे दो-तीन उपहतियां कारित की थीं। डॉक्टर द्वारा गर्दन के पीछे उपहति पाई गयी थी। सूचनादाता ने यह भी अभिकथित किया था कि अपीलार्थी डोमना उराँव ने मृतक के सर पर टांगी से प्रहार किया था और यह उपहति भी डॉक्टर द्वारा पायी गयी थी। डॉक्टर ने राय दी थी कि दोनों उपहतियां गंभीर थी तथा टांगी एवं बलुआ जैसे तीक्ष्ण धारदार हथियार द्वारा कारित की गयी थी। इस प्रकार, चिकित्सीय साक्ष्य पूर्ण रूप से अभियोजन मामले का समर्थन करता है। अ०सा० 7 प्रति परीक्षा में खरा उतरा है। अभियोजन का मामला इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि गर्दन पर दो-तीन उपहतियां नहीं पायी गयी थीं जैसा कि अ०सा० 7 द्वारा अभिकथित किया गया था। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि दं०प्र०सं० की धारा 313 के अधीन बयान दर्ज करते समय उपयुक्त प्रश्न नहीं रखे गये थे। उन्होंने

लाटू महतो एवं एक अन्य बनाम बिहार राज्य के मामले, जो **(2008) 8 SCC 395** में रिपोर्ट किया गया था, पर भरोसा किया। यह मामला अपीलार्थीगण के किसी काम का नहीं है। उसमें यह सम्परीक्षित किया गया है कि ''अभियोजन का मामला यह नहीं था कि अपीलार्थीगण ने बुद्धू महतो की हत्या कारित की थी'' और ''अ०सा० 4, 5 एवं 6 ने उनमें से किसी पर भी अपीलार्थीगण द्वारा हमला किये जाने के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा था, जहां तक भा०दं०सं० की धारा 326 के अधीन आरोप का सवाल है।'' इस परिस्थिति में, यह सम्परीक्षित किया गया था कि दं०प्र०सं० की धारा 313 के अधीन परीक्षा के अनुक्रम के दौरान यथोचित प्रश्न नहीं रखे गये थे। हमें समाधान है कि वर्तमान मामले में, दं०प्र०सं० की धारा 313 के अधीन अपीलार्थीगण की परीक्षा के दौरान यथोचित प्रश्न रखे गये थे और उस आधार पर, अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि अपास्त नहीं की जा सकती है।

8. परिणामत:, आक्षेपित निर्णय सम्पुष्ट किया जाता है। तदनुसार, यह अपील खारिज की जाती है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

माहेश्वरी प्रसाद

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 98 of 2011. Decided on 27th June, 2011.

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988—धाराएँ 7, 13 (2) एवं 19—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—पुलिस के सब इंसपेक्टर द्वारा रिश्वत की मांग—अभिखंडन के लिए आवेदन—वर्तमान विविध याचिका इस कारण से पोषणीय है कि पूर्व याचिका में उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश का अनुपालन समय सीमा के भीतर नहीं किया जा सका था—याची के विरूद्ध धारा 19 के अधीन मंजूरी इप्सित करते हुए अन्वेषण अधिकारी के अनुरोध पर समुचित आदेशों को पारित करने का निर्देश सक्षम प्राधिकारी को दिया गया। (पैरा 8)

अधिवक्तागण.—Mr. Rajesh Kumar, For the Petitioners; A.P.P., For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.—याची ने अपने विरूद्ध अभिकथित प्राथमिकी के और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराओं 7 और 13 (2) के अधीन अभिकथित अपराध के लिए दिनांक 31.3.2000 को दर्ज लालपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 122 वर्ष 2000, विशेष केस सं॰ 10 वर्ष 2000 के तत्सम, से उद्भूत होने वाले उक्त मामले में दिनांक 31.10.2000 को दाखिल आरोप-पत्र के भी अभिखंडन के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. याची ने पहले दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 1041 वर्ष 2009 में लालपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 122 वर्ष 2000 की प्राथमिकी के अभिखंडन के लिए आवेदन दिया था, जिसे दिनांक 28.1.2010 को यह संप्रेक्षित करते हुए निपटाया गया था:—

> *''मैं परिवाद में किए गए अभिकथन को देखकर आश्चर्यचकित हूँ कि दिनांक 30.10.2000 को सूचक प्रदीप राम अपना ट्रक चला रहा था और एक स्थान पर कुछ वर्दीधारी व्यक्तियों ने उसे रूकने को कहा। उक्त व्यक्तियों ने ट्रक से संबंधित कागजात मांगा और इसके परिशीलन के बाद 10,000/- रुपया मांगा। इनकार किए जाने पर उनमें से एक ने सूचक को अप्सरा होटल आकर कागजात वापस लेने को कहा। सूचक*

अभिकथित रूप से अप्सरा होटल गया और एक हजार रुपया देने का प्रस्ताव किया और अपना कागजात वापस मांगा जिस पर अधिकारी क्रोधित हो गया और सूचक को 10,000/- रुपया लाने को कहा। अन्वेषण के क्रम में ट्रैप पार्टी ने अप्सरा होटल में छापा मारा और याची को गिरफ्तार किया जिसे सब-इंस्पेक्टर बताया जाता है।

मुझे चिंता है कि ऐसे गंभीर मामलों में जहाँ अपराध किए जाने में पुलिस अधिकारी अंतर्ग्रस्त हैं, प्राथमिकी दं० प्र० सं० की धारा 482 के अधीन शक्ति के प्रयोग में अभिखंडित करनी होगी।

याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री राजेश कुमार ने निवेदन किया कि अन्वेषण अधिकारी ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के अधीन मंजूरी प्राप्त किए बिना आरोप-पत्र दाखिल किया और इसलिए मामला विगत नौ वर्षों से लंबित है।

याची के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन पर विचार करते हुए, मैं सक्षम प्राधिकारी को शीघ्रातिशीघ्र और प्राथमिकतः इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर उक्त अधिनियम की धारा 19 के अधीन मंजूरी, यदि आवश्यक हो, प्रदान करने का निर्देश देता हूँ।''

3. याची ने अपील के लिए विशेष अनुमति (दांडिक) सं॰ 3714 वर्ष 2010 सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दाखिल किया किंतु इसे दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 1042 वर्ष 2009 में दर्ज इस न्यायालय के आदेश को मान्य ठहराते हुए खारिज कर दिया गया था।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री राजेश कुमार ने अपना तर्क आगे बढ़ाते हुए निवेदन किया कि दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 1041 वर्ष 2009 में दिनांक 28.1.2010 को इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश, जिसके द्वारा पी॰ सी॰ एक्ट, 1988 की धारा 19 के अधीन मंजूरी आदेश की संसूचना की प्राप्ति के चार सप्ताह की अवधि के भीतर दिए जाने का निर्देश दिया गया था, का अनुपालन जानबूझकर नहीं किया गया था और इसलिए याची इस तथ्य की दृष्टि में कि मामला वर्ष 2000 में संस्थापित किया गया था और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के अधीन अभियोजन के लिए मंजूरी अभिनिश्चित किए बिना 7 वर्षों बाद आरोप पत्र दाखिल किया गया था और कि विद्वान विशेष न्यायाधीश ने न तो पी॰ सी॰ एक्ट की प्रासंगिक धारा के अधीन अपराध का संज्ञान लिया था और न ही मंजूरी की कमी के कारण याची को उन्मोचित किया था, प्राथमिकी और उसके विरूद्ध दाखिल आरोप-पत्र के अभिखंडन के लिए नए वाद हेतुक के साथ इस न्यायालय की शरण में पुनः आया था।

5. पूरक शपथ पत्र दाखिल करके, याची ने प्रकट किया कि वह समरूप प्रार्थना के साथ इस न्यायालय के समक्ष दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 8494 वर्ष 2000 में इससे पहले आया था जिसे व्यतिक्रम के कारण खारिज कर दिया गया और तत्पश्चात उसने एक अन्य दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 1041 वर्ष 2009 दाखिल किया था जिसे दिनांक 28.1.2010 के आदेश द्वारा निपटाया गया था और वर्तमान मामला इसी और समरूप अनुतोष के लिए दाखिल की गयी तीसरी याचिका थी।

6. दाखिल किए गए प्रति शपथ पत्र में, राज्य विपक्षी पक्षकार ने अभिवचन किया दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 1041 वर्ष 2009 में इस न्यायालय की पीठ द्वारा पारित दिनांक 28.1.2010 के आदेश को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट किया गया था और मान्य ठहराया गया था और इसलिए, इसी और समरूप अनुतोष के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लेते हुए दाखिल पश्चातवर्ती याचिका पोषणीय नहीं थी। अन्वेषण अधिकारी ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराओं 7 और 13(2) के अधीन अपराध के लिए प्रथम दृष्टया मामला पाकर अन्वेषण समाप्त करके याची के विरूद्ध आरोप पत्र दाखिल किया था और अन्वेषण अधिकारी पहले ही अभिकथित आरोप के लिए याची के विरूद्ध पी॰ सी॰ एक्ट की धारा 19 के अधीन मंजूरी का अनुरोध करते हुए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष गया है।

आगे कथित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के आज्ञापक प्रावधान के अधीन आरंभिक चरण पर याची को जमानत दे दी गयी थी।

7. राज्य के विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री जे॰ महतो ने निवेदन किया कि स्वीकृत रूप से याची की प्रार्थना को अस्वीकार करके दिनांक 28.1.2010 को दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 1041 वर्ष 2009 निपटाते हुए इस न्यायालय ने सक्षम प्राधिकारी को इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर शीघ्रातिशीघ्र मंजूरी प्रदान करने का निर्देश दिया था जिसे इस कारण नहीं दिया जा सका था कि अन्वेषण अधिकारी का अनुरोध पर विचार किया जा रहा है और कुछ सप्ताह में मंजूरी दिए जाने की संभावना है।

8. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं पाता हूँ कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन वर्तमान विविध याचिका इस कारण से पोषणीय है क्योंकि यहाँ उपर निर्दिष्ट सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट दिनांक 28.1.2010 को दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 1041 वर्ष 2009 में दिए गए इस न्यायालय के निर्देश का अनुपालन समय सीमा के भीतर या इसके परे भी नहीं किया जा सका था। इन तथ्यों और परिस्थितियों में, इस आदेश के छह सप्ताह के भीतर पी॰ सी॰ एक्ट की धाराओं 7 और 13 (2) के अधीन लालपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 122 वर्ष 2000 से उद्भूत होने वाले मामले में याची महेश्वरी प्रसाद के विरूद्ध अग्रसर होने के लिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 के अधीन मंजूरी इप्सित करते हुए अन्वेषण अधिकारी के अनुरोध पर समुचित आदेश पारित करने का निर्देश सक्षम प्राधिकारी को दिया जाता है और यह अंतिम अवसर है जिसमें विफल रहने पर यह समझा जाएगा कि कोई मंजूरी नहीं दी गयी है एवं विशेष न्यायाधीश (निगरानी) विधि के अनुरूप कार्रवाई करेंगें। आदेश की प्रति तुरन्त ए॰ पी॰ पी॰ श्री जे॰ महतो को दी जाय।

माननीय प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति

पंचानंद पंडित

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr.M.P. No. 1374 of 2007. Decided on 12th August, 2011.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 311—अपहरण का मामला—पीड़िता की आयु सिद्ध करने के लिए विद्यालय की प्रवेश पंजी पेश करने का अभियोजन का आग्रह अस्वीकृत—जिस परिशिष्ट के आधार पर याची ने धारा 311 के अधीन आवेदन दाखिल किया था वह पीड़िता की आयु सिद्ध करने के लिए सुसंगत नहीं है—आक्षेपित आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं। (पैराएँ 5 से 8)

निर्णयज विधि.—2007 (4) East. Cr.C. 51; 2007(1) JLJR 10—Distinguished.

अधिवक्तागण.—Mr. K.P. Deo, For the Petitioner; Mr. Arbind Kumar Choudhary, For the Opposite Parties.

आदेश

SC केस सं॰ 48 वर्ष 2006 में अपर सत्र न्यायाधीश, FTC-IV, देवघर द्वारा पारित दिनांक 22. 8.2007 के आदेश के विरुद्ध यह आवेदन निर्दिष्ट है जिसके द्वारा प्राथमिक विद्यालय, पेलवा, पुलिस थाना-चंदन, जिला-बांका से वर्ष 1995 की प्रवेश पंजी मंगाने के लिए याची का आवेदन अस्वीकार कर दिया गया है।

2. यह प्रतीत होता है कि सूचनादाता/याची ने एक प्राथमिकी दर्ज कराया था उसमें यह अभिकथित करते हुए कि विपक्षी सं० 2 से 6 ने उसकी बॉबी देवी नामक पत्नी का विवाह कराने के लिए अपहरण कर लिया था। यह भी प्रतीत होता है कि अन्वेषण के उपरांत, पुलिस ने भा०दं०सं० की धारा 366 एवं 120-B/34 के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया था। इसके बाद आरोप विरचित करने के उपरांत दोनों पक्षों ने साक्ष्य प्रस्तुत किये थे। बचाव पक्ष की ओर से, पूर्वोक्त बॉबी देवी की ब०सा० 1 के तौर पर परीक्षा की गयी थी तथा न्यायालय में उसने अपनी आयु 20 वर्ष से अधिक बताई थी। बचाव पक्ष के मामले के समापन के उपरांत, प्राथमिक विद्यालय, पेलवा, पुलिस थाना–चंदन, जिला–बांका की प्रवेश पंजी मंगाने के लिए दं०प्र०सं० की धारा 311 के अधीन अवर न्यायालय में आवेदन दाखिल किया गया था जिसमें यह कथित किया गया है कि पूर्वोक्त बॉबी देवी ने वर्ष 1995 में प्रवेश लिया था तथा अध्ययन किया था। यह कथित किया गया है कि अन्वेषण के दौरान, अन्वेषण पदाधिकारी ने विद्यालय से एक स्थानांतरण प्रमाण पत्र प्राप्त किया था और उसके अनुसार घटना के समय पीड़िता की आयु 15 वर्ष थी। तदनुसार, अभियोजन ने आग्रह किया कि इस विद्यालय की प्रवेश पंजी पीड़िता की आयु सिद्ध करने के लिए मंगायी जाए जो मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक है। याची द्वारा दाखिल पूर्वोक्त आवेदन दिनांक 22.8.2007 के आदेश द्वारा विद्वान अवर न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया यह कहते हुए कि मामले के उचित निर्णय के लिए उक्त पंजी सुसंगत नहीं है।

3. याची की ओर से उपस्थित होने वाले अधिवक्ता श्री के०पी० देव निवेदन करते हैं कि पूर्वोक्त विद्यालय की प्रवेश–पंजी मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक है। यह निवेदन किया गया है कि अन्वेषण के दौरान अन्वेषण पदाधिकारी ने सम्बद्ध विद्यालय द्वारा निर्गत प्रमाण पत्र के आधार पर पीड़िता की आयु 15 वर्ष अभिनिश्चित की थी। तथापि, इस मामले में बचाव साक्षी सं० 1 के तौर पर बॉबी देवी नामक पीड़िता को परीक्षित किया गया था और अपने अभिसाक्ष्य में उसने कथित किया कि घटना के समय उसकी आयु 20 वर्ष से अधिक थी। यह निवेदन किया गया है कि अभियुक्त व्यक्ति को बचाने के लिए उसने जानबूझकर पूर्वोक्त बयान दिया था। इस प्रकार, पूर्वोक्त कथन को अकृत करने के लिए, अन्य अकाट्य एवं विश्वसनीय साक्ष्य, अर्थात्, प्राथमिक विद्यालय, पेलवा, जिला–बांका के वर्ष 1995 की प्रवेश पंजी, जहां पीड़िता ने अध्ययन किया था, द्वारा उसकी आयु सिद्ध करने के लिए न्याय के हित में यह आवश्यक है। यह भी निवेदन किया गया है कि मामले के उचित निर्णय के लिए घटना के समय पीड़िता की आयु जानना आवश्यक है, अत: **2007(4)East Cr.C. 51** एवं 2007(1)JLJR 10 में रिपोर्ट किये गये माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की दृष्टि में उक्त प्रवेश पंजी मंगाना विद्वान अवर न्यायालय के लिए आज्ञापक है।

4. दूसरी ओर, विपक्षियों के लिए उपस्थित होने वाले श्री ए०के० चौधरी निवेदन करते हैं कि याची अभियोजन मामले की कमी को भरना चाहता है। यह निवेदन किया गया है कि अन्वेषण पदाधिकारी को इस मामले में अ०सा० 7 के तौर पर परीक्षित किया गया था। प्रति परीक्षा के दौरान, उसने स्पष्ट रूप से कथित किया कि उसने प्रमाण पत्र का सत्यापन करने के लिए विद्यालय का दौरा नहीं किया था और न ही विद्यालय के शिक्षक का बयान दर्ज किया था। यह निवेदन किया गया है कि याची ने अपने आवेदन में कथित किया था कि पीड़िता ने प्राथमिक विद्यालय, पेलवा, जिला–बांका में अध्ययन किया था, परन्तु उसने जिला शिक्षा अधीक्षक, भागलपुर द्वारा निर्गत एक प्रमाण–पत्र दाखिल किया था जो दर्शाता है कि दं०प्र०सं० की धारा 311 के अधीन आवेदन में याची के बयान झूठे एवं गलत हैं। तदनुसार, यह निवेदन किया गया है कि उक्त प्रमाण पत्र, जिसका अन्वेषण पदाधिकारी द्वारा सत्यापन नहीं किया गया है, की पीड़िता महिला/लड़की की आयु अभिनिश्चित करने के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं है। इस प्रकार, अवर न्यायालय ने याची द्वारा दाखिल आवेदन को उचित रूप से खारिज कर दिया था।

5. इस निवेदन को सुनकर, मैंने मामले के अभिलेख का अवलोकन किया है। परिशिष्ट-1 के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि उक्त प्रमाण पत्र दुमका जिला के पहरीडीह गांव के निवासी जयकृष्णा पंडित की पुत्री किसी गुड्डी कुमारी के नाम निर्गत किया गया था। परिशिष्ट-4/1 के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि याची प्राथमिक विद्यालय, पेलवा, पुलिस थाना चंदन, जिला-बांका की प्रवेश पंजी मंगाना चाहता है। जैसा कि उपर नोटिस किया गया है, याची द्वारा दाखिल परिशिष्ट-1 प्राथमिक विद्यालय, पोराया द्वारा निर्गत किया गया था। परिशिष्ट-1 दर्शाता है कि उक्त स्थानांतरण प्रमाण-पत्र जिला शिक्षा अधीक्षक, भागलपुर के कार्यालय से निर्गत किया गया था। यह भी प्रतीत होता है कि उक्त प्रमाण-पत्र प्राथमिक विद्यालय, पोराया से संबंधित है। इस प्रकार, याची/अभियोजन का यह दावा कि पीड़िता ने प्राथमिक विद्यालय, पेलवा, पुलिस थाना-चंदन, जिला-बांका में अध्ययन किया था, परिशिष्ट-1 से समर्थन प्राप्त नहीं करता है। इस प्रकार परिशिष्ट-1, जिसके आधार पर याची ने दं०प्र०सं० की धारा 311 के अधीन पूर्वोक्त आवेदन दाखिल किया था, पीड़िता की आयु सिद्ध करने के लिए प्रासांगिक नहीं है।

6. पूर्वोक्त परिस्थिति के अधीन, याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किये गये दोनों निर्णयों की इस मामले में कोई प्रयोज्यता नहीं है।

7. अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों पर विचार करने के उपरांत, विद्वान अवर न्यायालय उचित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि मामले के उचित निर्णय के लिए उक्त दस्तावेज सुसंगत नहीं है। इस प्रकार, मैं उक्त आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं पाता हूँ।

8. तदनुसार, यह दांडिक विविध आवेदन खारिज किया जाता है।

माननीय डी० के० सिन्हा, न्यायमूर्ति

विनायक उर्फ विनायक सिन्हा

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 767 of 2010. Decided on 27th June, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 420—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल—संज्ञान—मेडिकल एजेंसी देने के झूठे वादे पर धन लिया गया—ड्राफ्टों को दो भिन्न फर्मों के नामों पर, एवं न कि याची के नाम पर तैयार किया गया था—परिवादी यह सिद्ध करने में विफल रहा कि याची दोनों ड्राफ्टों का अंतिम रूप से लाभार्थी था—परिवादी संतुष्ट नहीं कर सका था कि उसने विक्रय कर संख्या और औषधि अनुज्ञप्ति को दर्शाकर दवाओं की एजेंसी प्राप्त करने के लिए समस्त अपेक्षाओं को परिपूर्ण किया था—दांडिक अभियोजन अभिखंडित।

(पैराएँ 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.—Mr. Nawal Kishore Prasad, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. S. Thakur, For the O.P. No.2.

डी० के० सिन्हा, न्यायमूर्ति.—याची ने दिनांक 20.1.2009 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन याची के विरुद्ध एस० डी० जे० एम०, देवघर द्वारा अपराध का संज्ञान लिया गया था, सहित पी० सी० आर० केस सं० 509 वर्ष 2007, टी० आर० सं० 146 वर्ष 2010 के तत्सम से उद्भूत होने वाले अपने संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. परिवादी का मामला संक्षेप में यह है कि परिवादी-वि० प० सं० 2 याची का मित्र था और कि पहले से ही उनके बीच मित्रतापूर्ण संबंध था। याची दवाओं की आपूर्ति और एजेंसी का व्यवसाय कर रहा

था और यह अभिकथित किया गया था कि उसने उसके लिए मेडिकल एजेंसी दिलाने में सहायता प्रदान करने का आश्वासन देते हुए परिवादी को मेडिकल एजेंसी शुरू करने का सुझाव दिया था जो मात्र 50,000/- रुपया के निवेश पर अच्छा लाभ देगा। आगे अभिकथित किया गया था कि परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने याची के आश्वासन पर विश्वास करते हुए विप्सन फार्मास्यूटिकल्स प्रा० लि०, नयी दिल्ली के पक्ष में भारतीय स्टेट बैंक, जसीडीह का डिमांड ड्राफ्ट सं० 3822697 और इसी शाखा द्वारा बाबा बासुकीनाथ इंटरप्राइजेज, राँची के पक्ष में एक अन्य बैंक डिमांड ड्राफ्ट सं० 382259 तैयार करवाया था और 50,000/- रुपयों के मूल्य वाले इन दोनों डिमांड ड्राफ्टों को प्रत्येक ड्राफ्ट की छाया प्रतिलिपि पर पावती की प्राप्ति के तौर पर गवाहों की उपस्थिति में उसका हस्ताक्षर प्राप्त करके याची-अभियुक्त को दिया गया था किंतु समय बीतने के बाद जब बार-बार अनुरोध और स्मरण दिलाए जाने के बावजूद न तो एजेंसी दी गयी थी और न ही धन लौटाया गया था, तो परिवादी वि० प० सं० 2 ने दिनांक 6.3.2007 को याची को अंततः कानूनी नोटिस भेजा। याची-अभियुक्त ने राशि जो उसे एजेंसी दिलाने के लिए दी गयी थी, के पुनर्भुगतान के लिए दिनांक 27 जून, 2007 तक कुछ और समय उसे देने का अनुरोध परिवादी से किया किंतु चूँकि बाद के चरण पर याची ने ऐसी राशि पाने से इनकार किया, परिवादी ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 419/420 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए परिवाद दाखिल किया। परिवाद की जाँच करने के बाद, एस० डी० जे० एम० ने भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए याची के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला पाया और तद्नुसार याची-अभियुक्त के विरुद्ध समन जारी करने का निर्देश दिया गया था जो वर्तमान याचिका में चुनौती का विषय वस्तु है।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री प्रसाद ने निवेदन किया कि याची ने सत्र न्यायाधीश, देवघर के समक्ष अग्रिम जमानत के लिए आवेदन दिया था जिस पर इस आधार कि ड्राफ्टों को याची के पक्ष में जारी नहीं किया गया था ताकि उसका सदोष अभिलाभ आकृष्ट हो सके, अधिमूल्यन करते हुए विचार किया गया था। दिनांक 17.7.2003 को बाबा बासुकीनाथ इंटरप्राइजेज, राँची के पक्ष में 25,000/- रुपयों का पहला बैंक ड्राफ्ट जारी किया गया था और इसी मूल्य का दूसरा डिमांड ड्राफ्ट मेसर्स विप्सन फार्मास्यूटिकल्स प्रा० लि०, नयी दिल्ली के पक्ष में जारी किया गया था। बाबा बासुकीनाथ इंटरप्राइजेज के पक्ष में अभिकथित प्रथम बैंक ड्राफ्ट का उपरवाल बैंक की स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, राँची शाखा थी जबकि दूसरा डिमांड ड्राफ्ट नयी दिल्ली स्थित शाखा को जारी किया गया था। ऐसे बचाव के अधिमूल्यन पर, याची को अग्रिम जमानत दी गयी थी। याची का आगे बचाव यह था कि डिमांड ड्राफ्टों में से कोई भी याची के पक्ष में जारी नहीं किया गया था ताकि उसका दांडिक दायित्व आकृष्ट हो सके। परिवादी के पास ड्रग लाइसेंस नहीं था, जो मेडिसीन की एजेंसी दिए जाने के लिए पुरोभाव्य शर्त है जिसके बिना दवा का कारोबार करने के इच्छुक किसी व्यक्ति को एजेंसी नहीं दी जा सकती थी। इस संबंध में परिवादी द्वारा राज्य बिक्री कर अथवा केंद्रीय बिक्री कर की कोई रजिस्ट्रेशन संख्या भी प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। वस्तुतः, उपरवाल बाबा बासुकीनाथ इंटरप्राइजेज, राँची को जारी 25,000/- रुपयों का दिनांक 17.9.2003 का डिमांड ड्राफ्ट इसके कार्यालय में ''माँ तारा फार्मास्यूटिकल्स एम० चटर्जी लेन, देवघर के स्वत्वधारी द्वारा प्रस्तुत किया गया था और इसके बदले में उक्त ड्राफ्ट के विरुद्ध ''माँ तारा फार्मास्यूटिकल्स'' को औषधियों की आपूर्ति की गयी थी।

4. इसी प्रकार, ''माँ तारा फार्मास्यूटिकल्स'', एम० चटर्जी लेन, देवघर के स्वत्वधारी ने विप्सन फार्मास्यूटिकल्स प्रा० लि० द्वारा उसको आपूर्ति की गयी दवाइयों के आंशिक भुगतान के तौर पर 25,000/- रुपयों

का डिमांड ड्राफ्ट सं० 382260 प्रस्तुत किया और इसे रसीद सं० 501 के विरुद्ध प्राप्त किया गया था और इसलिए परिवादी द्वारा बनाए जाने का दावा किए गए दोनों डिमांड ड्राफ्टों (बैंक ड्राफ्टों) को दो भिन्न फर्मों को जारी किया गया था और इन्हें उन फर्मों द्वारा प्राप्त किया गया था और तद्नुसार, औषधियों की लेखीवाल ''माँ तारा फार्मास्यूटिकल्स, एम० चटर्जी लेन, देवघर को आपूर्ति की गयी थी और इसलिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए याची का अभियोजन संपोषणीय नहीं था और इसलिए यह न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आएगा।

5. अगला बिंदु उठाते हुए श्री प्रसाद ने निवेदन किया कि परिवाद घटना की अभिकथित तिथि अर्थात् दिनांक 17.9.2003 को चार वर्ष बीत जाने के बाद दाखिल किया गया था और ऐसे अत्यधिक विलंब के लिए कोई तर्कसंगत स्पष्टीकरण भी प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। परिवादी ने झूठा बयान देकर विलंब को स्पष्ट करने का प्रयास किया कि याची ने दिनांक 27.6.2007 तक पुनर्भुगतान करने का आश्वासन दिया था जिसके प्रति याची ने ऐसा कोई आश्वासन कभी देने से इनकार किया। याची ने कानूनी नोटिस के प्रति अपने उत्तर में स्पष्ट रूप से अभिकथनों से इनकार किया था। विद्वान अधिवक्ता ने प्राख्यान किया कि जाँच के क्रम के दौरान दर्ज गवाहों के बयान के सादे पठन से भी याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन प्रथम दृष्टया अपराध आकृष्ट नहीं किया जा सका था और विद्वान एस० डी० जे० एम० आक्षेपित आदेश में यह स्पष्ट करने में विफल रहे कि कैसे याची ने परिवादी के साथ छल किया जब डिमांड ड्राफ्ट द्वारा धन याची के पक्ष में अंतरित नहीं किया गया था बल्कि इसे दो भिन्न फार्मास्यूटिकल्स फर्मों के पक्ष में किया गया था और वह भी किसी अमलेंदु चटर्जी द्वारा।

6. परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने अपना प्रतिशपथ पत्र दाखिल करके कथन किया कि अभियुक्त याची का दांडिक आशय आरंभ से ही उसके साथ छल करना था और उसके कहने पर ही इस आश्वासन पर कि उसकी प्रेरणा पर दवाइयों की एजेंसी उसे दी जाएँगी, मेसर्स बाबा बासुकीनाथ इंटरप्राइजेज, राँची और मेसर्स विप्सन फार्मास्यूटिकल्स प्रा० लि०, नयी दिल्ली के पक्ष में 25,000/- रुपया काप्रत्येक दो डिमांड ड्राफ्ट तैयार किया गया था। दोनों डिमांड ड्राफ्टों को याची-अभियुक्त द्वारा प्राप्त किया गया था जिसने प्राप्ति के तौर पर डिमांड ड्राफ्टों (परिशिष्ट-A और A/1) की छाया प्रतिलिपियों पर अपना हस्ताक्षर किया था। याची अभियुक्त ने परिवादी-विपक्षी पक्षकार से डिमांड ड्राफ्टों को प्राप्त करने के बाद इनका हुंडी के रूप में उपयोग किया और इन्हें मेसर्स माँ तारा फार्मास्यूटिकल्स, एम० चटर्जी लेन, देवघर को दिया, जिसने आगे मेसर्स बाबा बासुकीनाथ इंटरप्राइजेज और मेसर्स विप्सन फार्मास्यूटिकल्स प्रा० लि०, नयी दिल्ली के साथ अपना हिसाब-किताब निपटाकर लाभ के लिए दोनों डिमांड ड्राफ्टों का उपयोग किया और इस तरीके से याची-अभियुक्त ने परिवादी के साथ छल किया जिसने भारतीय दंड संहिता की धारा 420 को आकृष्ट किया। एक कानूनी नोटिस भेजा गया था जिसमें उसने टालमटोल वाला जवाब दिया। यह स्वीकार किया गया था कि 25,000/- रुपयों के उक्त दोनों ड्राफ्टों को श्री अमलेंदु चटर्जी, स्वत्वधारी माँ तारा फार्मास्यूटिकल्स प्रा० लि०, देवघर द्वारा उन व्यक्तियों को सौंपा गया था जिनके नामों में ड्राफ्टों को तैयार किया गया था।

7. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को और पक्षों की ओर से दिए गए तर्कों को और दांडिक दायित्व का लांछन लगाते हुए परिवादी वि० प० सं० 2 के दावे और याची अभियुक्त द्वारा ऐसे लांछन से इनकार को ध्यान में रखने पर मैं पाता हूँ कि परिवादी याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन छल के अभिकथित अपराध के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनाने में विफल रहा। ड्राफ्टों को दो भिन्न फर्मास्यूटिकल फर्मों के नामों से तैयार किया गया था और न कि याची के नाम पर और परिवादी

प्रथम दृष्टया सिद्ध करने में विफल रहा कि याची ही उन दोनों ड्राफ्टों का अंतिम रूप से लाभार्थी था जिन्हें माँ तारा फार्मास्यूटिकल्स देवघर के स्वत्वधारी श्री अमलेंदु चटर्जी की प्रेरणा पर तैयार किया गया था और विप्सन फार्मास्यूटिकल्स प्रा॰ लि॰, नयी दिल्ली और बाबा बासुकीनाथ इंटरप्राइजेज द्वारा उसको औषधियों की आपूर्ति की गयी थी। मैं इस तर्क में सार पाता हूँ कि औषधि अनुज्ञप्ति के बिना कोई व्यक्ति दवाइयों का कारोबार नहीं कर सकता है और इस प्रकार, दवा की एजेंसी नहीं दी जा सकती है। परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता यह संतुष्ट करने में विफल रहे कि परिवादी ने झारखंड बिक्री कर संख्या और केंद्रीय बिक्री कर संख्या और औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के अधीन अपेक्षित अनुज्ञप्ति को भी दर्शाते हुए दवाइयों की एजेंसी प्राप्त करने के लिए समस्त अपेक्षाओं को परिपूर्ण किया था।

8. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, मैं पाता हूँ कि याची का दांडिक अभियोजन घोर अन्याय की कोटि में आएगा, तद्नुसार दिनांक 20.1.2009 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन प्रथम दृष्टया अपराध पाया गया था और उसके विरुद्ध समनों को जारी करने का निर्देश दिया गया था, सहित एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ के समक्ष लंबित पी॰ सी॰ आर॰ सं॰ 509 वर्ष 2007 से उद्भूत होने वाली याची की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही को अभिखंडित किया जाता है।

9. इस याचिका को अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति

दवारिका प्रसाद सिंह उर्फ द्वारिका सिंह

बनाम

उमा शंकर लाल एवं अन्य

W.P. (C) No. 1435 of 2011. Decided on 19th July, 2011.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश I, नियम 10(2)—प्रतिवादी के तौर पर पक्षकार बनाया जाना—आवेदन का अस्वीकरण—अगर किसी व्यक्ति को विवादित सम्पत्ति पर तात्विक अधिकार प्राप्त है, तब उसे वाद में अभियोजित किया जा सकता है—अगर किसी व्यक्ति को वाद भूमि में सीमांत हित प्राप्त है, तब वह एक आवश्यक पक्षकार नहीं है और वह वाद में पक्षकार बनाये जाने का हकदार नहीं है—याची के पास जमीन पर कोई तात्विक अधिकार नहीं है—उसे सीमांत अधिकार था—वह वाद में अभियोजित किये जाने का हकदार नहीं है—रिट आवेदन खारिज। (पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.—Mr. Mahesh Kumar Sinha, For the Petitioner; M/s Milan Kumar Dey, Milan Kumar, For the Respondent Nos. 1 & 2; M/s M.S. Akhtar, Arvind Kr. Mehta, For the Respondent No. 3.

आदेश

दिनांक 3.2.2011 का आदेश निरस्त करने हेतु यह रिट आवेदन दाखिल किया गया है, जिसके द्वारा सि॰प्र॰सं॰ के आदेश 1, नियम 10(2) के अधीन याची का आवेदन विद्वान अवर न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि प्रश्नाधीन जमीन का याची एवं स्थानीय क्षेत्र के अन्य व्यक्तियों द्वारा सामान्य उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। स्थानीय क्षेत्र के बच्चे जमीन का अपने खेल के मैदान के तौर पर इस्तेमाल करते रहे हैं तथा विभिन्न त्योहारों को मनाने के उद्देश्य के लिए भी उक्त जमीन का इस्तेमाल किया गया है। इस प्रकार, याची के पास वाद सम्पत्ति में केन्द्रीभूत हित है। यह निवेदन किया गया है कि याची एक आवश्यक पक्षकार है। तदनुसार, यह निवेदन किया गया है कि याची को प्रतिवादी के तौर पर पूर्वोक्त वाद में पक्षकार बनाया जाना चाहिए।

3. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं॰ 1 एवं 2 की ओर से उपस्थित होने वाले श्री मिलन कुमार डे निवेदन करते हैं कि याची को प्रश्नाधीन जमीन पर कोई अधिकार, अभिधान एवं हित प्राप्त नहीं है और न ही मामले के प्रभावी अधिनिर्णयन हेतु उक्त वाद में उसकी उपस्थिति की आवश्यकता है। तदनुसार, यह निवेदन किया गया है कि आक्षेपित आदेश के साथ किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

4. प्रत्यर्थी सं॰ 3, झारखंड राज्य उपस्थित हुआ था तथा प्रति शपथ पत्र दाखिल किया था। उक्त प्रति शपथ पत्र में, झारखंड राज्य ने भी वाद भूमि पर याची के अधिकार, अभिधान एवं हित को स्वीकार नहीं किया था।

5. निवेदनों को सुनकर, मैंने मामले के अभिलेख का अवलोकन किया है। स्वीकार्यत:, याची ने इस रिट आवेदन में कोई दस्तावेज संलग्न नहीं किया था यह दर्शाने के लिए कि उसका वाद भूमि पर कोई अधिकार, अभिधान एवं हित है। यह सुस्थापित है कि अगर किसी व्यक्ति को विवादित सम्पत्ति के ऊपर तात्विक अधिकार प्राप्त है, तब उस मामले के प्रभावी अधिनिर्णयन हेतु वाद में पक्षकार बनाया जा सकता है ताकि वाद की बहुलता से बचा जा सके। यह भी समान रूप से सुस्थापित है कि अगर किसी व्यक्ति को वाद भूमि में एक सीमांत अधिकार प्राप्त है, तब वह एक आवश्यक पक्षकार नहीं है तथा वाद में पक्षकार बनाये जाने का वह हकदार नहीं है।

6. रिट आवेदन में किए गए प्रकथनों से, मैं पाता हूँ कि याची को प्रश्नाधीन जमीन पर कोई तात्विक अधिकार प्राप्त नहीं है, बल्कि यह प्रतीत होता है कि उसे सीमांत अधिकार था, अत: वह वर्तमान वाद में अभियोजित किये जाने का हकदार नहीं है।

7. उक्त परिस्थिति के अधीन, मैं आक्षेपित आदेश के साथ हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाता हूँ। अतएव, यह रिट आवेदन खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

विभोर सिंघानिया

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 277 of 2011. Decided on 28th June, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 376/313/504/420—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—बलात्संग—मित्रता के क्रम में यौन संबंध—गर्भपात—याची ने मंदिर में विवाह करने का अभिवचन किया—मामले का अन्वेषण प्रगति में है—अभिकथन की प्रकृति गंभीर है जिसकी पूरी जाँच करने की आवश्यकता है—अन्वेषण, जो आरंभिक चरण पर है, में हस्तक्षेप करना समुचित नहीं होगा—प्राथमिकी में कोई हस्तक्षेप नहीं—याचिका खारिज। (पैराएँ 5 से 8)

अधिवक्तागण.—Mr. Nilesh Kumar, For the Petitioner; Mr. Krishna Murari, For the O.P. No. 2; Mr. S.K. Srivastava, For the State.

आदेश

याची ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 376/313/504/420 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, राँची के समक्ष लंबित महिला पी॰ एस॰ केस सं॰ 22 वर्ष 2010, जी॰ आर॰ केस सं॰ 5500/2010 के तत्सम से उद्भूत प्राथमिकी सहित अपने संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. याची ने पहले इस न्यायालय के समक्ष ए० बी० ए० सं० 568 वर्ष 2011 में अपनी अग्रिम जमानत के लिए आवेदन दिया था जिसे अस्वीकार कर दिया गया था।

3. सूचक नीलम जैन की लिखित रिपोर्ट पर दांडिक विधि को गति में लाया गया था जिसमें उसने कथन किया कि वह राँची की निवासी है। वह उसके पिता कैलाश सिंघानिया, जिसका कार्यालय उसके घर के बगल में अवस्थित था और इस प्रकार वे एक-दूसरे को जानते थे, की प्रेरणा पर याची विभोर सिंघानिया के संपर्क में आया। कैलाश सिंघानिया ने प्रकट किया था कि उसका पुत्र विभोर सिंघानिया उसी की कक्षा में अध्ययन कर रहा था और यदि वह उसकी सहायता लेना चाहती थी, तब वह उसके कार्यालय में आ सकती है और इस तरीके से उसे याची के साथ उसके पिता के कार्यालय में संपर्क करने की अनुमति दी गयी थी। उसने आगे कथन किया कि याची के साथ उसका संपर्क गहरी मित्रता में परिवर्तित हो गया और दोनों कैलाश सिंघानिया के कार्यालय में संयुक्त अध्ययन करने लगे। दिनांक 9.11.2005 की रात्रि में विभोर सिंघानिया ने उसे अपने पिता के कार्यालय में बुलाया जहाँ उस समय कोई नहीं था और तब उसने जबरन उसका यौन शोषण किया जिसका उसने मजबूती से विरोध किया किंतु कोई लाभ नहीं हुआ और ऐसा कृत्य किए जाने के बाद उसे मामला किसी अन्य को नहीं बताने की धमकी याची द्वारा दी गयी थी और आश्वासन दिया गया था कि वह उससे विवाह करेगा। यह अभिकथित किया गया था कि उसे उसके द्वारा ''फिरायालाल'' के बगल में अवस्थित दुर्गाबारी ले जाया गया था जहाँ उसने उसकी ''मांग'' में सिंदूर भरा था और ''ओम'' लिखा काले धागे में बंधा लोलक ''मंगलसूत्र'' के रूप में उसके गर्दन में डाला था और उसे यह आभास दिया कि अब वह उसकी पत्नी थी और वह समाज में उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करेगा और तत्पश्चात उसे यह छवि देते हुए कि वह उसकी विधिवत ब्याहता है, लंबे समय तक उसका यौन शोषण करना जारी रखा, जिसके परिणामस्वरूप, वह गर्भवती हो गयी। उसे याची द्वारा एच० बी० रोड पर अवस्थित डॉ० पूनम के क्लिनिक ले जाया गया था जहाँ डॉक्टर ने उसका गर्भपात करने से इनकार कर दिया क्योंकि यह उसके लिए घातक हो सकता था और अंतत:, बरियातू अवस्थित डॉ० कुमकुम के क्लिनिक में उसका गर्भपात करवाया गया था और डी० एन० सी० भी किया गया था जिसके परिणामस्वरूप वह मानसिक वेदना और शारीरिक दर्द से पीड़ित हुई थी। उसने तब याची को सतर्क किया कि वह घटना के बारे में अपने परिवार के सदस्यों को सूचित करेगी किंतु उसे पुन: समझाया-बुझाया गया था कि वह अपने परिवार से परामर्श करके उसे स्वयं अपने घर ले जाएगा किंतु कुछ समय बाद उसने उससे बातचीत करना और मिलना-जुलना छोड़ दिया। तब वह याची के पिता के पास गयी और उसको संपूर्ण घटना के बारे में बताया जिससे वह क्रोधित हो गया और उसे घटना के बारे में किसी को नहीं बताने की धमकी दी वर्ना उसे इसका परिणाम भुगतना होगा। अंत में, उसने अभिकथित किया कि याची और उसका पिता उसकी हत्या करने की धमकी दे रहे थे और इस प्रकार उपर कथित तरीके से याची द्वारा उसकी जिंदगी बर्बाद कर दी गयी थी।

4. पुलिस मामला संस्थापित किया गया था और अन्वेषण आरंभ किया गया था।

5. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री निलेश कुमार ने निवेदन किया कि याची के विरूद्ध संपूर्ण अभिकथन झूठा और मनगढंग था और समाज में याची और उसके पिता की प्रतिष्ठा और सम्मान को बदनाम करने के आशय के साथ मामला लाया गया था। महिला आयोग की अध्यक्षा के समक्ष सूचक द्वारा परिवाद किया गया था जिसमें एक भिन्न कहानी दी गयी थी कि याची ने मंदिर में उसके साथ विवाह किया था और तब यौन संबंध स्थापित किया जिसके परिणामस्वरूप वह गर्भवती हो गयी और उसका गर्भपात करवाया गया था। वह यह आश्वासन देते हुए कि वह उसके साथ विवाह करेगा, उसके साथ संभोग करता रहा और अब उसने उसके साथ बात करना भी बंद कर दिया था।

6. श्री निलेश कुमार ने आगे निवेदन किया कि लिखित रिपोर्ट और महिला आयोग के समक्ष सूचक द्वारा किए गए परिवाद दोनों के सादे पठन से प्रतीत होगा कि याची के विरूद्ध कोई अपराध, धारा 376/313 के अधीन अथवा भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन कोई अन्य अपराध की तो बात ही दूर, नहीं आकृष्ट होता था। सूचक नीलम जैन ने 26 वर्षीय वयस्क होने का दावा किया, जो विधि के अधीन अपना निर्णय लेने के लिए सक्षम थी और किसी भी स्थिति में याची के विरूद्ध बलात्कार का अपराध नहीं बनता है क्योंकि यह सहमति से यौन संभोग प्रतीत होता था जो गर्भपात के बाद भी लंबे समय तक जारी रहा। युवती दुष्टचरित की थी जिसने झूठा आरोप लगाकर समाज में याची की छवि और प्रतिष्ठा के भंजन का प्रयास किया और इसलिए, दांडिक अभियोजन में निर्दोष व्यक्ति को खींचकर याची के दांडिक अभियोजन का परिणाम घोर अन्याय में होगा।

7. वि॰ प॰ सं॰ 2 के लिए और उसकी ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री कृष्ण मुरारी को सुना गया जिन्होंने प्रतिवाद का जोरदार विरोध किया और निवेदन किया कि याची के विरूद्ध अभिकथित अपराध का अन्वेषण आरंभिक चरण पर था और प्राथमिकी अभिखंडित करके अन्वेषण के क्रम में हस्तक्षेप करना समुचित नहीं होगा क्योंकि याची के विरूद्ध अन्य अपराध के अतिरिक्त भारतीय दंड संहिता की धाराओं 376/313 के अधीन अभिकथित गंभीर प्रकृति के प्रथम दृष्टया अभिकथन थे।

8. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखने पर, मैं पाता हूँ कि मामले का अन्वेषण प्रगति में है। याची के विरूद्ध लगाए गए अभिकथन की प्रकृति गंभीर है जिसकी पूरी जाँच की आवश्यकता है। मैं आगे सार पाता हूँ कि अन्वेषण, जो आरंभिक चरण पर है, के क्रम में हस्तक्षेप करना समुचित नहीं होगा। इन तथ्यों और परिस्थितियों में, मैं याची के विरूद्ध दर्ज प्राथमिकी में हस्तक्षेप करने का सुयोग्य मामला नहीं पाता हूँ। याचिका गुणागुण रहित है और यद्यपि भविष्य में प्रतितोष के लिए याची को स्वतंत्रता के साथ इसे खारिज किया जाता है।

माननीय पी॰पी॰ भट्ट, न्यायमूर्ति

बाचसपति मिश्रा

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 4551 of 2006. Decided on 12th August, 2011.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

सेवा विधि—सेवानिवृत्ति लाभ—पेंशन नियमावली के अधीन कोई कार्यवाही प्रारंभ किये बिना उपदान, आंशिक पेंशन एवं अन्य लाभों का रोके रखा जाना—विभागीय या दांडिक कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान उपदान एवं पेंशन को रोक रखने की सरकार के पास कोई शक्ति नहीं है—याची द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले अभ्यावेदन पर निर्णय लेने का राज्य प्राधिकारों को निर्देश दिया गया—निर्देशों के साथ याचिका निस्तारित। (पैराएँ 5 से 7)

निर्णयज विधि.—2007(4) JCR 1 (Jhr) (FB)—Followed.

अधिवक्तागण.—Mr. A.K. Sahani, For the Petitioner; J.C. to S.C. (Mines), For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.–याची के विद्वान अधिवक्ता को सुना तथा कागजात का परिशीलन किया।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन निम्नांकित अनुतोषों के लिए याची द्वारा वर्तमान याचिका दाखिल की गयी है:–

> *''यह कि इस वर्तमान रिट आवेदन में याची निलम्बन के अधीन सेवा अवधि तथा इसकी वार्षिक वेतन वृद्धियों का परिकलन करते हुए उपदान, अवकाश वेतन एवं पेंशन के शेष 10 प्रतिशत के शीर्षक के अधीन तथा पेंशन के शीर्षक के अधीन राशि के अंतर की एक राशि का भुगतान करने एवं निर्गत करने तथा सांविधिक ब्याज के ऊपर 10 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से 10.1.1996 से लेकर 21.8.1996 तक निर्वाह भत्ते का भी एक विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर भुगतान करने एवं निर्गत करने का प्रत्यर्थीगण को निर्देश देने वाले एक आदेश या परमादेश की प्रकृति के एक यथोचित रिट स्वीकार करने और किसी ऐसे रिट, आदेश या निर्देश के लिए आग्रह करता है जिसे यह माननीय न्यायालय उपयुक्त एवं उचित समझे।''*

3. जो संक्षिप्त प्रश्न इस मामले में उठता है वह यह है कि क्या बिहार पेंशन नियमावली के अधीन कोई कार्यवाही प्रारंभ किये बिना LPA सं॰ 714 वर्ष 2004 में पारित दिनांक 28.8.2007 के निर्णय की दृष्टि में, प्रत्यर्थीगण उपदान की राशि तथा 10 प्रतिशत पेंशन एवं अन्य लाभों को भी रोक रखने में औचित्य पर हैं। एक अन्य प्रश्न, जो विचारण के लिए उद्‌भूत होता है वह यह है कि क्या किसी कार्यवाही की अनुपस्थिति में प्रत्यर्थीगण के पास उपदान या पेंशन के किसी भाग को रोक रखने की कोई शक्ति होगी।

4. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आज तक कोई प्रति शपथ पत्र दाखिल नहीं किया गया है। तथापि, उन्होंने कुछ समय प्रदान करने के लिए आग्रह किया ताकि वह अनुदेश लेने में तथा प्रति शपथ पत्र प्रस्तुत करने में सक्षम हो सकें।

5. इसके विरुद्ध, याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि **[2007(4) JCR 1 (Jharkhand) (FB)]** में रिपोर्ट किए गए **डॉ॰ दूध नाथ पांडेय बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य** के मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रदत्त निर्णय को ध्यान में रखते हुए, एक नियत समय के भीतर याची के अभ्यावेदन का निर्णय करने के लिए राज्य सरकार को निर्देश देते हुए उन्हें यथोचित निर्देश निर्गत किया जाय।

6. पूर्वोक्त प्रतिद्वदी निवेदनों पर विचार करके तथा कागजात के परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि याची **डॉ॰ दूध नाथ पांडेय (ऊपर)** के मामले में दिये गए निर्णय के अधीन लाभ का दावा कर रहा है, जिसमें, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दांडिक कार्यवाही या विभागीय कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान सरकार के पास उपदान एवं पेंशन को रोक रखने की कोई शक्ति नहीं है। यह न तो कार्यवाही के पहले और न ही कार्यवाही के समापन पर किसी भी चरण में अवकाश के नकदीकरण को रोक रखने की कोई शक्ति प्रदान नहीं करती।

7. वर्तमान मामले के उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों के आलोक में तथा **डॉ. दूध नाथ पांडेय (ऊपर)** के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय की दृष्टि में भी, प्रत्यर्थीगण–राज्य प्राधिकारों के लिए उस अभ्यावेदन पर निर्णय लेना आवश्यक है जो याची द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। तदनुसार, याची को इस आदेश की तिथि से दो सप्ताहों के भीतर अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाता है और उक्त अभ्यावेदन प्राप्त करने पर, प्रत्यर्थीगण–राज्य प्राधिकारी इस पर विचार करेंगे तथा दो महीनों के भीतर **डॉ॰ दूध नाथ पांडेय (ऊपर)** के मामले में अधिकथित निर्णयाधार के आलोक में इसका निर्णय करेंगे। अगर याची के अभ्यावेदन का प्रत्यर्थीगण–प्राधिकारों द्वारा याची के पक्ष में निर्णय किया जाता

है, तब यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उसके पारिणामिक लाभ सुसंगत नियमावली के अनुसार बिना और अधिक विलम्ब के प्रत्यर्थीगण–राज्य प्राधिकारों द्वारा उस तक पहुंचाये जाएंगे। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि अगर याची का अभ्यावेदन स्वीकार किया जाता है, तब उस दशा में, याची के लिए इस न्यायालय के समक्ष उक्त निर्णय को चुनौती देने का विकल्प खुला होगा।

8. यह रिट याचिका तदनुसार निस्तारित की जाती है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

किशोर लाल

बनाम

श्री परिमल नाथवानी एवं अन्य

Election Petition No. 01 of 2008. Decided on 27th July, 2011.

(क) जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951—धारा 81(1)—सामान्य खंड अधिनियम, 1897—धाराएँ 9 एवं 10—चुनाव याचिका–परिसीमा–चुनाव याचिका 45 दिनों की परिसीमा अवधि के भीतर नहीं बल्कि 3 दिन के विलंब के बाद दाखिल की गयी–चुनाव याचिका दाखिल करने में विलंब की माफी के लिए सांविधिक प्रावधान नहीं है–चुनाव याचिका पोषणीय नहीं है। (पैरा 26)

(ख) झारखंड उच्च न्यायालय नियमावली, 2001—नियम 325—चुनाव याचिका स्वयं चुनाव याची द्वारा नहीं बल्कि उसके अधिवक्ता द्वारा दाखिल की गयी–स्टाम्प रिपोर्टर अथवा संयुक्त रजिस्ट्रार अथवा रजिस्ट्रार जनरल का ऐसा पृष्ठांकन नहीं है कि चुनाव याचिका स्वयं याची द्वारा प्रस्तुत की गयी थी–याची ने जन प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 81(1) का उल्लंघन किया है। (पैराएँ 28 से 32)

निर्णयज विधि.–(2007)1 SCC 770; AIR 2001 SC 36; 2010(1) JLJR 10 (SC)—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Shashak Shekhar Prasad, For the Petitioner; Mr. Anil Kumar Sinha, For the Respondent No.1; None, For the Respondent No.2; Mr. V.P. Singh, For the Respondent No.3.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–याची किशोर लाल ने मार्च, 2008 में कराये गए द्विवार्षिक चुनाव में झारखंड विधान सभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचित राज्य सभा में प्रत्यर्थी सं॰ 1 श्री परिमल नाथवानी के चुनाव को चुनौती देते हुए जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81 के अधीन चुनाव याचिका दाखिल किया है।

2. प्रत्यर्थी सं॰ 1 श्री परिमल नाथवानी और प्रत्यर्थी सं॰ 3 श्री जय प्रकाश नारायण सिंह वकालतनामा निष्पादित करके चुनाव याचिका में उपस्थित हुए किंतु प्रत्यर्थी सं॰ 2 श्री आर॰ के॰ आनंद को उपस्थित होने के लिए कहते हुए भेजी गयी नोटिस और तत्पश्चात दैनिक समाचार पत्र ''दी टाइम्स ऑफ इंडिया'' दिल्ली संस्करण में नोटिस के प्रकाशन के बावजूद प्रत्यर्थी सं॰ 2 श्री आर॰ के॰ आनन्द उपस्थित नहीं हुए थे, अत: पक्षों को विवाद्यकों को सुझाने के लिए बुलाया गया था, तद्नुसार उन्होंने विवाद्यकों को प्रस्तावित किया था जिन्हें सुधारकर तय किया गया था। इस बीच, वर्तमान याची द्वारा लायी गयी इस चुनाव याचिका की पोषणीयता को चुनौती देते हुए प्रत्यर्थी सं॰ 1 श्री परिमल नाथवानी की ओर से दो अंतर्वर्ती आवेदनों को दाखिल किया गया था।

आई॰ ए॰ सं॰ 1170 वर्ष 2010

3. याची किशोर लाल द्वारा दाखिल चुनाव याचिका की पोषणीयता के प्रति आरंभिक विवाद्यक को उठाते हुए प्रत्यर्थी सं॰ 1 द्वारा अंतर्वर्ती आवेदन दाखिल किया गया है। प्रत्यर्थी ने विरोध किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XIV, नियम 2 के अधीन आरंभिक विवाद्यक विनिश्चित करने के पहले गुणागुण पर वर्तमान चुनाव याचिका को नहीं सुना जा सकता है। विवाद्यक यह है कि अपने वर्तमान प्रारूप में चुनाव याचिका परिसीमा द्वारा वर्जित है। जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81 प्रावधानित करती है कि किसी चुनाव की वैधता को चुनौती देने वाली चुनाव याचिका निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव की तिथि से 45 दिनों के भीतर दाखिल करनी होगी। वर्तमान मामले में दिनांक 26.3.2008 को रिटर्निंग ऑफिसर द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 1 निर्वाचित उम्मीदवार घोषित किया गया था और यह चुनाव याचिका दिनांक 12.5.2008 को अर्थात् निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव के परिणाम की घोषणा के 48वें दिन याची द्वारा दाखिल की गयी थी और इस प्रकार चुनाव याचिका दाखिल करने में 3 दिन का विलंब था। चुनाव याचिका के मामले में विलंब को माफ करने के लिए जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अधीन कोई प्रावधान नहीं है और इसलिए परिसीमा द्वारा वर्जित यह याचिका आरंभ में ही खारिज किए जाने के लिए दायी है।

4. अंतर्वर्ती आवेदन ने आगे प्रतिवाद किया कि वर्तमान चुनाव याचिका जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धाराओं 83 (i), 86 (A) और धारा 132 के आज्ञापक प्रकृति के प्रावधान के अननुपालन के लिए भी अस्वीकार किए जाने के लिए दायी है और कि चुनाव याचिका आदेश VII, नियम 11 के अननुपालन के लिए भी अस्वीकार किए जाने के लिए दायी है।

5. उक्त अंतर्वर्ती याचिका के जवाब में, याची ने अपने दिनांक 30.3.2010 के प्रत्युत्तर में स्पष्ट किया कि उसके द्वारा चुनाव याचिका दिनांक 27.3.2008, जो निर्वाचित उम्मीदवार की घोषणा की अगली तिथि से 45 दिनों के भीतर दाखिल की गयी थी। परिणाम दिनांक 26.3.2008 को घोषित किया गया था और इस प्रकार परिसीमा अवधि की गणना के लिए तिथि 26.3.2008 को अपवर्जित करना था। 45 दिनों का प्रावधान किया गया है जिसके भीतर चुनाव याचिका दाखिल कर दिया जाना है और यदि परिसीमा को दिनांक 27.3.2008 से गिना जाता है, 45वाँ दिन 10 मई, 2008 था जब द्वितीय शनिवार होने के नाते उस दिन उच्च न्यायालय बंद था और दिनांक 11 मई, 2008 रविवार था, अत: चुनाव याचिका अगले दिन अर्थात् दिनांक 12.5.2008 को दाखिल की गयी थी और इस प्रकार, याची द्वारा चुनाव याचिका 45 दिनों की परिसीमा अवधि के भीतर दाखिल की गयी थी।

6. चुनाव याची ने आगे स्पष्ट किया कि उसने चुनाव याचिका दाखिल करने के लिए अपेक्षित प्रत्येक प्रावधान का संपूर्ण अनुपालन किया था और कि इसके अनुपालन का विवाद्यक उठाना निरर्थक होगा। अधिनियम की धारा 132 प्रासंगिक नहीं है क्योंकि यह मतदान स्थल पर अवचार के लिए दंड प्रावधानित करती है।

7. चुनाव याची ने आगे स्पष्ट किया कि चुनाव याचिका में किए गए प्रकथन अनुतोष के लिए दावा करने में उसको सक्षम बनाते हुए विनिर्दिष्ट वाद हेतुक प्रकट करते थे। प्रत्यर्थी सं॰ 1 अंतर्वर्ती आवेदन में विनिर्दिष्ट नहीं था कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VII नियम 11 के किस प्रावधान का चुनाव याची द्वारा अनुपालन नहीं किया गया था जो चुनाव याचिका को अस्वीकार किए जाने का दायी बनाता है।

8. प्रत्यर्थी सं॰ 1 ने उत्तर दिया कि चुनाव याचिका की पोषणीयता के प्रति आरंभिक आपत्ति इस आधार पर उठायी गयी थी कि निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव की तिथि से 45 दिनों की सांविधिक परिसीमा के भीतर चुनाव याचिका प्रस्तुत करने के लिए जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81 का

अनुपालन नहीं किया गया था। दिनांक 26.3.2008 को निर्वाचित उम्मीदवार के रूप में प्रत्यर्थी सं॰ 1 की घोषणा करते हुए राज्य सभा के चुनाव के परिणाम के विरुद्ध दिनांक 12.5.2008 को चुनाव याचिका दाखिल की गयी थी और इसलिए, चुनाव याचिका दिनांक 9 मई, 2008 तक दाखिल की जानी चाहिए थी। याची द्वारा की गयी संगणना गलत थी क्योंकि चुनाव परिणाम की घोषणा की तिथि अर्थात दिनांक 26.3.2008 से 45 दिनों की गणना करने पर दिनांक 9 मई, 2008 शुक्रवार होने के नाते चुनाव याचिका दाखिल करने का अंतिम दिन था जबकि चुनाव याचिका 3 दिनों के विलंब के बाद दिनांक 12.5.2008 को दाखिल की गयी थी, अत: यह परिसीमा द्वारा वर्जित है और संविधि विलंब माफ करने की अनुमति नहीं देती है, इसलिए, जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81 के अनुपालन के लिए चुनाव याचिका खारिज किए जाने की दायी थी।

आई॰ ए॰ सं॰ 3246 वर्ष 2010

9. प्रत्यर्थी सं॰ 1 ने आरंभिक विवाद्यक के रूप में विनिश्चित किए जाने के लिए नया विवाद्यक उठाते हुए कि दिनांक 12.5.2008 को चुनाव याचिका याची के अधिवक्ता द्वारा और न कि स्वयं याची किशोर लाल द्वारा प्रस्तुत की गयी थी, एक अन्य अंतर्वर्ती आवेदन दाखिल किया। जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81 की उपधारा (1) की आज्ञापकता अपेक्षा करती है कि चुनाव याचिका व्यक्तिगत रूप से चुनाव से संबंधित उम्मीदवार अथवा निर्वाचक द्वारा उच्च न्यायालय के प्राधिकृत अधिकारी को प्रस्तुत की जानी चाहिए और ऐसे क्रम को अपनाने में विफलता अधिनियम के आज्ञापक प्रावधान के विपरीत होगी और वैसी स्थिति में अनुचित प्रस्तुतीकरण के आधार पर चुनाव याचिका खारिज किए जाने के लिए दायी थी। चुनाव याची व्यक्तिगत रूप से चुनाव याचिका प्रस्तुत करने के लिए उपस्थित नहीं हुआ था बल्कि इसे उसके अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया था जो जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81 की उपधारा (1) के पूर्ण उल्लंघन में था और इसलिए, चुनाव याचिका खारिज किए जाने की दायी थी।

10. अंतर्वर्ती आवेदन सं॰ 3246 के जवाब में चुनाव याची ने स्पष्ट किया कि यह तथ्य नहीं है कि चुनाव याचिका उसके अधिवक्ता द्वारा और न कि स्वयं उसके द्वारा दाखिल की गयी थी। चुनाव याचिका दाखिल करते समय उसका अधिवक्ता उसके साथ था और स्वयं याची ने इस न्यायालय के प्राधिकृत अधिकारी को याचिका प्रस्तुत किया था। चुनाव याची ने चुनाव याचिका के विषय वस्तु के समर्थन में झारखंड उच्च न्यायालय, राँची के शपथ कमिश्नर के समक्ष दिनांक 12.5.2008 को शपथ पत्र पर शपथ लिया था जो उपदर्शित करेगा कि चुनाव याची उच्च न्यायालय में उपस्थित था और उसने रजिस्ट्री के प्राधिकृत अधिकारी के समक्ष दिनांक 12.5.2008 को चुनाव याचिका प्रस्तुत किया था। चुनाव याचिका दाखिल किए जाने के बाद, स्टाम्प रिपोर्टर ने इसकी संवीक्षण किया और इसे वैध पाकर इसे झारखंड उच्च न्यायालय नियमावली के नियम 325 के अधीन उच्च न्यायालय की रजिस्ट्री को अग्रसारित किया और स्टाम्प रिपोर्टर का रिपोर्ट पाने पर संयुक्त रजिस्ट्रार ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:

"12.5.2008 दाखिल किया गया। ग्रहण के लिए रखा गया।

Sd/-

संयुक्त रजिस्ट्रार

(लिस्ट एंड कंप्यूटर)

11. न्यायालय ने तब चुनाव याचिका ग्रहण किया और प्रत्यर्थीगण को नोटिस जारी करने के लिए निर्देश दिया। ये सारे तथ्य जो अभिलेख पर हैं, इस अपरिहार्य निष्कर्ष को उपदर्शित करेंगे कि चुनाव याचिका जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81 (1) के प्रावधानों के विपरीत नहीं थे।

12. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री शशांक शेखर प्रसाद, प्रत्यर्थी सं॰ 1 के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री अनिल कुमार सिन्हा और प्रत्यर्थी सं॰ 3 के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री वी॰ पी॰ सिंह को सुना गया। प्रत्यर्थी सं॰ 2 श्री आर॰ के॰ आनंद के लिए कोई उपस्थित नहीं हुआ।

13. विद्वान अधिवक्ता श्री शशांक शेखर प्रसाद ने चुनाव याची की ओर से निवेदन किया कि चुनाव याचिका की पोषणीयता को इन आधारों पर चुनौती दी गयी है कि यह परिसीमा द्वारा वर्जित है, इसे सक्षम अधिकारी के समक्ष स्वयं याची द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया था और कि चुनाव याचिका में पर्याप्त वाद हेतुक स्पष्ट नहीं किया जा सका था।

14. विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट किया कि परिणाम की घोषणा की तिथि को परिसीमा की गणना के लिए अपवर्जित कर दिया जाएगा और इसलिए, परिसीमा दिनांक 27.3.2008 से आरंभ हुआ और कि 45वाँ दिन दिनांक 10.5.2008 को पड़ा जिसके द्वितीय शनिवार होने और दिनांक 11 मई, 2008 रविवार होने के चलते चुनाव याचिका दिनांक 12.5.2008 को दाखिल की जा सकी थी। उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं था कि कैसे चुनाव याचिका अवकाश के दिन दाखिल की जाएगी, अत: सामान्य खंड अधिनियम की धारा 9 और 10 के प्रावधान का अनुसरण करते हुए दोनों अवकाश के दिनों अर्थात् शनिवार और रविवार को अपवर्जित कर दिया गया था और याचिका न्यायालय खुलने पर दिनांक 12.5.2008 (सोमवार) को दाखिल की गयी थी।

15. जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, (संक्षेप में अधिनियम) की धारा 67A के मुताबिक वह तिथि जिस पर कोई उम्मीदवार संसद के किसी सदन अथवा राज्य के विधान मंडल के लिए धारा 53 अथवा धारा 66 के प्रावधानों के अधीन रिटर्निंग अधिकारी द्वारा निर्वाचित घोषित किया जाता है, उस उम्मीदवार के निर्वाचन की तिथि होगी। वर्तमान मामले में चूँकि चुनाव का परिणाम दिनांक 26.3.2008 को दोपहर लगभग 3 बजे घोषित किया गया था, अत: इस दिन को दिनांक 27.3.2008 से आरंभ होने वाली परिसीमा की संगणना के लिए अपवर्जित कर दिया गया था।

16. तरुण प्रसाद चटर्जी बनाम दीनानाथ शर्मा, AIR 2001 SC 36 में, सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया:–

> *''किंतु, इस मामले में अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आग्रह किया गया तर्क यह है कि यद्यपि यह अभिनिर्धारित किया गया है आर॰ पी॰ ऐक्ट, 1951 की धारा 81(1) के अधीन दाखिल याचिका पर धारा 9 प्रयोज्य है, इसे केवल समुचित मामलों में लागू किया जा सकता था और इसे सार्वभौम रूप से लागू नहीं करना होगा। अपीलार्थी का तर्क यह है कि आर॰ पी॰ ऐक्ट, 1951 की धारा 81(1) में प्रयुक्त विनिर्दिष्ट भाषा की दृष्टि में, उसमें प्रयुक्त शब्द ''अंतर्गत/भीतर'' और ''से'' उपदर्शित करेंगे कि धारा 9 प्रयोज्य नहीं है। यह आग्रह भी किया गया था कि विधान मंडल की आज्ञा यह है कि चुनाव याचिका निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव की तिथि से 45 दिनों के भीतर दाखिल की जानी चाहिए और न कि उक्त तिथि के पहले अथवा उक्त तिथि के 45 दिनों बाद। इन आधारों पर, यह आग्रह किया गया था कि वर्तमान मामले में धारा 9 प्रयोज्य नहीं है।''*

उक्त निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आगे संप्रेक्षित किया गया था,

> *''पक्षों की सुविधा के लिए प्रथम दिन को परिसीमा की अवधि के लिए अपवर्जित करना आवश्यक है और यदि परिणाम की घोषणा में विलंब किया जाता है अथवा इसे देर रात में घोषित किया जाता है, उम्मीदवार अथवा निर्वाचक चुनाव याचिका के प्रस्तुतीकरण के लिए शायद ही समय पाएगा। चुनाव याचिका दाखिल करने के लिए पूरे पैंतालीस दिनों की अवधि देने के लिए विधि ऐसे पक्षों के बचाव में आती है। इसके बावजूद, निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव की तिथि पर प्रस्तुत कोई याचिका निश्चय ही*

परिसीमा की अवधि के भीतर होगी क्योंकि यह निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव की तिथि पर दिया गया प्रस्तुतीकरण है।''

17. अपना तर्क आगे बढ़ाते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि चुनाव याचिका की पोषणीयता को अधिनियम की धाराओं 83 (1), 8(A) एवं 132 के प्रावधान और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VII, नियम 11 के अननुपालन के आधार पर चुनौती दी गयी थी। जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 86 (A) के रूप में अंतर्वर्ती आवेदन के पैराग्राफ सं॰ 7 में किसी प्रावधान को निर्दिष्ट नहीं किया गया था। वर्तमान अंतर्वर्ती आवेदन जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81,धारा 82 और धारा 117 के प्रावधानों का अनुपालन करते हुए दाखिल किया गया था और इसलिए याचिका आरंभ में ही खारिज किए जाने के लिए दायी नहीं थी। अधिनियम की धारा 132 की कोई प्रासंगिकता नहीं है क्योंकि यह मतदान केन्द्र पर अवचार के लिए दंड पर विचार करती थी। विद्वान अधिवक्ता ने आगे स्पष्ट किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VII, नियम 11 के खंड (a) से (d) तक के अधीन परिकल्पित अवयवों में से कोई भी चुनाव याचिका में आकृष्ट नहीं हो सकता था जो इसे खारिज करने की अपेक्षा करे। प्रत्यर्थी चुनाव याचिका में अभिकथनों यदि सत्य हो, के मुख्य बिन्दू के परिभाषित करने में विफल रहा जो विस्तृत वाद हेतुक पर आधारित अनुतोष का दावा करने के लिए याची को हकदार नहीं बनाता था जैसा याचिका में कहा गया है।

18. द्वितीय विवाद्यक का उत्तर देते हुए विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट किया कि चुनाव याची ने शपथ कमिश्नर, झारखंड उच्च न्यायालय, राँची के समक्ष चुनाव याचिका में किए गए प्रकथन के समर्थन में दिनांक 12.5.2008 को अपने शपथ पत्र में शपथ लिया था और उसने स्वयं प्राधिकृत अधिकारी के समक्ष चुनाव याचिका प्रस्तुत किया था जैसा झारखंड उच्च न्यायालय नियमावली, 2001 के नियम 325 के अधीन परिकल्पित किया गया है। अभिकथन जैसा प्रत्यर्थी सं॰ 1 द्वारा अंतर्वर्ती आवेदन में किया गया है जिसे प्रत्यर्थी सं॰ 1 जिसके उच्च न्यायालय परिसर में उपस्थित होने और व्यक्तिगत रूप से चुनाव याची की गतिविधियों पर नजर रखने की उम्मीद नहीं की जाती थी, की जानकारी पर आधारित होने का दावा किया गया है, अत: झूठा शपथ पत्र दाखिल करने के लिए वह अभियोजित किए जाने का दायी है। चुनाव याचिका के अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं था जिसके आधार पर प्रत्यर्थी सं॰ 1 दावा करेगा कि चुनाव याचिका स्वयं चुनाव याची द्वारा नहीं बल्कि उसके अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत की गयी थी और दोनों अंतर्वर्ती याचिकाएँ खारिज किए जाने की दायी है।

19. प्रत्यर्थी सं॰ 1 की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री अनिल कुमार सिन्हा ने निवेदन किया कि अधिनियम की धारा 81(1) के मुताबिक परिसीमा निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव की तिथि से आरंभ होगी और न कि पश्चातवर्ती दिन से। याची का मामला यह नहीं है कि राज्य सभा के द्विवार्षिक चुनाव का परिणाम दिनांक 26.3.2008 को देर रात घोषित किया गया था ताकि परिणाम की तिथि को 45 दिनों की परिसीमा की संगणना में अपवर्जित किया जा सके।

20. युवराज राय एवं अन्य बनाम चंदर बहादुर करकी, 2007 (1) SCC 770, में सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया,

''विद्वान अधिवक्ता ने अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों जैसा वे मूल रूप में 1951 में थे और जन प्रतिनिधित्व (द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1956 (1956 का अधिनियम 27) और जन प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1961 (1961 का अधिनियम 14) के बाद संशोधित प्रावधानों को निर्दिष्ट किया। अधिनियम की धारा 81 जैसा यह संशोधन अधिनियम, 1956 के पहले मूलतः थी, ने चुनाव याचिका दाखिल करने के लिए अभिव्यक्त रूप से परिसीमा की अवधि प्रावधानित नहीं किया था। किंतु इसने प्रावधानित

किया था कि किसी चुनाव को चुनौती देने वाली चुनाव याचिका ''ऐसे फॉर्म में और ऐसे समय के भीतर जैसा विहित किया जा सकता है'' प्रस्तुत की जा सकती थी। शब्द ''विहित'' को ''अधिनियम के अधीन बनाये गए नियमों द्वारा विहित'' के रूप में परिभाषित किया गया था। किंतु, संसद ने परिसीमा की अवधि को विहित करना समुचित समझा। अतः संशोधन अधिनियम, 1956 द्वारा इसने अभिव्यक्त रूप से ''निर्वाचित उम्मीदवार'' के चुनाव की तिथि से पैंतालीस दिनों की परिसीमा अवधि प्रावधानित करते हुए धारा 81 को संशोधित किया। किसी संदेह से बचने के लिए और स्थिति को पूर्णतः स्पष्ट करने के लिए कि वह तिथि क्या होनी चाहिए जिस पर किसी उम्मीदवार को निर्वाचित घोषित किया जा सकता है, उस उम्मीदवार के चुनाव की तिथि होगी, धारा 67A अंतः स्थापित किया।''

21. विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निरन्तर रूप से तर्क किया कि चुनाव याचिका उच्च न्यायालय के रजिस्ट्री अधिकारी, जो झारखंड उच्च न्यायालय नियमावली, 2001 के नियम 325 के अधीन चुनाव याचिका स्वीकार करने के लिए प्राधिकृत नहीं था, के समक्ष स्वयं याची द्वारा नहीं बल्कि उसके अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत की गयी थी। झारखंड उच्च न्यायालय नियमावली, 2001 का नियम 325 चुनाव याचिका के प्रस्तुतीकरण पर विचार करता है जो निम्नलिखित कहता है:–

नियम 325 (1) प्रत्येक चुनाव याचिका न्यायालय की रजिस्ट्री में उसी तरीके से प्रस्तुत की जाएगी जैसा इस नियमावली के अधीन अन्य मामलों के प्रस्तुतीकरण के प्रति प्रयोज्य है। चुनाव याचिका इस प्रकार प्रस्तुत किए जाने पर, न्यायालय का स्टाम्प रिपोर्टर उस पर अपना रिपोर्ट पृष्ठांकित करेगा और यह पाते हुए कि यह विधि की समस्त अपेक्षाओं के अनुरूप है, समय पर दी गयी है, न्यायालय शुल्क आदि के प्रयोजन से समुचित रूप से स्टाम्पित की गयी है और भुगतान योग्य अपेक्षित शुल्क के साथ है, इसे न्यायाधीश जिसे मुख्य न्यायाधीश द्वारा इस प्रयोजन के लिए समनुदेशित किया गया है, के समक्ष सूचीबद्ध किए जाने के लिए रजिस्ट्रार जेनरल को भेजेगा।''

22. किंतु वर्तमान मामले में याची द्वारा स्वीकार किया गया था कि चुनाव याचिका संयुक्त रजिस्ट्रार (लिस्ट एवं कंप्यूटर) के समक्ष प्रस्तुत की गयी थी और न कि उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जेनरल के समक्ष, जो जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81(1) के प्रावधानों के अनुकूल नियम के अधीन चुनाव याचिका प्राप्त करने के लिए प्राधिकृत अधिकारी है। **जी॰ वी॰ श्रीरामारेड्डी एवं एक अन्य बनाम रिटर्निंग ऑफिसर एवं अन्य,** 2010 (1) JLJR (SC) पृष्ठ 11, में सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया,

''दिनांक 7.7.2008 को रजिस्ट्रार (ज्यूडिशियल) द्वारा पृष्ठांकन की दृष्टि में कि चुनाव याचिका केवल अधिवक्ता द्वारा और न कि चुनाव याचीगण द्वारा प्रस्तुत की गयी थी, हम चुनाव याचिका खारिज करने में उच्च न्यायालय के तर्कों को स्वीकार करते हैं। हम आगे अभिनिर्धारित करते हैं कि धारा 81 की उपधारा (1) के मुताबिक, चुनाव याचिका चुनाव से संबंधित किसी उम्मीदवार अथवा निर्वाचक द्वारा व्यक्तिगत रूप से उच्च न्यायालय के प्राधिकृत अधिकारी को प्रस्तुत करनी होगी और इसका पालन करने में विफलता उक्त प्रावधान के विपरीत होगी और वैसी स्थिति में अनुचित प्रस्तुतीकरण के आधार पर चुनाव याचिका खारिज किए जाने के लिए दायी होगी। चूँकि, उच्च न्यायालय ने सही प्रकार से चुनाव याचिका खारिज कर दिया है, सिविल अपील विफल होता है और इसे व्यय के आदेश के बिना खारिज किया जाता है।''

23. प्रत्यर्थी सं॰ 3 की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री वी॰ पी॰ सिंह ने निवेदन किया कि उन्हें प्रत्यर्थी सं॰ 1 की ओर से दिए गए तर्क को अपनाने की अनुमति दी जा सकती है जिसे अनुज्ञात किया गया है।

24. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर याची की ओर से और प्रत्यर्थी सं॰ 1 के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों और प्रत्यर्थी सं॰ 1 द्वारा उठाए गए और याची द्वारा उत्तर दिए गए आरंभिक विवाद्यकों को ध्यान में रखने पर, मैं पाता हूँ कि मुख्य बिन्दु जिन पर आरंभिक विवाद्यक होने के नाते विचार करने की आवश्यकता है, ये हैं कि क्या याची श्री किशोर लाल द्वारा लायी गयी चुनाव याचिका समय वर्जित है क्योंकि इसे परिसीमा के 45 दिनों के भीतर दाखिल नहीं किया जा सका था और कि चुनाव याचिका दिनांक 12.5.2008 को उसके द्वारा नहीं बल्कि उसके अधिवक्ता शेशांक शेखर प्रसाद द्वारा प्रस्तुत की गयी थी।

25. तरुण प्रसाद चटर्जी बनाम दीनानाथ शर्मा, AIR 2001 SC 36 में, सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि पक्षों की सुविधा के लिए परिसीमा की अवधि का प्रथम दिन अपवर्जित करने की आवश्यकता थी और यदि परिणाम की घोषणा में विलंब हुआ था अथवा इसे देर रात घोषित किया गया था, चुनाव याचिका प्रस्तुत करने के लिए उम्मीदवार अथवा निर्वाचक के पास शायद ही समय होगा।

26. वर्तमान मामले में याची का प्रकथन था कि राज्य सभा के द्विवार्षिक चुनाव का परिणाम दिनांक 26.3.2008 को दोपहर लगभग 3 बजे और न कि देर रात्रि में घोषित किया गया था ताकि दिनांक 27.3.2008 से आरंभ हाने वाली परिसीमा की संगणना के लिए एक दिन का लाभ लिया जा सके। **युवराज राय एवं अन्य बनाम चंदर बहादुर करकी, (2007)1 SCC 770** में, जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81(1) के प्रावधान की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने विपरीत दृष्टिकोण दिया था जिसमें अभिनिर्धारित किया गया था कि निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव की तिथि से 45 दिनों की परिसीमा की अवधि को अभिव्यक्त रूप से प्रावधानित करते हुए संशोधन अधिनियम, 1956 ने धारा 81 को संशोधित किया और किसी संदेह से बचने के लिए और स्थिति को पूरी तरह स्पष्ट करने के लिए कि वह तिथि क्या होनी चाहिए जिस पर किसी उम्मीदवार को निर्वाचित घोषित किया कहा जा सकता था, यह स्पष्ट करते हुए कि तिथि जिस पर रिटर्निंग आफिसर द्वारा उम्मीदवार को निर्वाचित घोषित किया जाता है, उस उम्मीदवार के निर्वाचन की तिथि होगी, धारा 67A अंत:स्थापित किया था और कि परिणाम के विलंबित घोषणा, देर रात में भी, की दृष्टि में भी किसी दिन के लिए कोई रियायत नहीं दी गयी थी। अत:, मैं पाता हूँ और संप्रेक्षित करता हूँ कि यदि दिनांक 26.3.2008 को द्विवार्षिक चुनाव के परिणाम की तिथि से परिसीमा संगणित की जाती है, 45वाँ दिन दिनांक 9 मई 2008 हुआ जो शुक्रवार था और याची ने 45 दिनों की परिसीमा अवधि के भीतर चुनाव याचिका दाखिल नहीं किया था बल्कि इसे 3 दिनों के विलंब के बाद दिनांक 12.5.2008 को दाखिल किया गया था। चूँकि चुनाव याचिका दाखिल करने में विलंब, चाहे जो भी कारण हो, की माफी के लिए कोई सांविधिक प्रावधान नहीं था, जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81(1) के अधीन चुनाव याचिका पोषणीय नहीं थी। यह विवाद्यक प्रत्यर्थी सं॰ 1 के पक्ष में और याची के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है।

27. अगला बिंदु जिसे प्रत्यर्थी सं॰ 1 द्वारा उठाया गया है, यह है कि चुनाव याचिका स्वयं चुनाव याची द्वारा दाखिल नहीं की गयी थी जैसा की चुनाव याचिका के 'कॉज टाइटल' के प्रथम पृष्ठ से स्पष्ट है जिसमें विद्वान अधिवक्ता द्वारा पृष्ठांकन किया गया था,

''शशांक शेखर प्रसाद,

अधिवक्ता

के माध्यम से

'कॉज 12.5.2008" ।

28. जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81 की उपधारा (1) की आज्ञा अपेक्षा करती है कि चुनाव के संबंध में चुनाव याचिका उम्मीदवार अथवा निर्वाचक द्वारा व्यक्तिगत रूप से माननीय उच्च न्यायालय के प्राधिकृत अधिकारी को प्रस्तुत की जानी होगी और ऐसा क्रम अपनाने में विफलता उक्त प्रावधानों के विपरीत होगी और वैसी स्थिति में अनुचित प्रस्तुतीकरण के आधार पर चुनाव याचिका खारिज किए जाने की दायी है।

29. झारखंड उच्च न्यायालय नियमावली, 2001 का नियम 325 उपदर्शित करता है कि इसे न्यायालय की रजिस्ट्री में प्रस्तुत करना होगा और न्यायाधीश जिसे मुख्य न्यायाधीश द्वारा इस प्रयोजन के लिए समनुदेशित किया गया है, के समक्ष इसको सूचीबद्ध करने के लिए स्टाम्प रिपोर्टर के पृष्ठांकन के साथ रजिस्ट्रार जेनरल को भेजना होगा। इस मामले में मैं पाता हूँ कि चुनाव याचिका दिनांक 12.5.2008 को उसमें किए गए किसी पृष्ठांकन कि इसे स्वयं चुनाव याची द्वारा दाखिल किया गया था, के बिना संयुक्त रजिस्ट्रार (लिस्ट एवं कंप्यूटर) के समक्ष प्रस्तुत की गयी थी। दिनांक 13.6.2008 के अगले आदेश ने उपदर्शित किया कि इस न्यायालय के निर्वाचन न्यायाधीश ने इंगित किए गए त्रुटि सं॰ 1 के संबंध में रजिस्ट्रार जेनरल के माध्यम से ऑफिस नोट के साथ चुनाव याचिका उसके समक्ष रखने का निर्देश दिया और उस तरीके से चुनाव याचिका रजिस्ट्रार जेनरल के समक्ष पहुँची जो न्यायिक आदेश द्वारा चुनाव याचिका प्राप्त करने का रजिस्ट्री का प्राधिकृत अधिकारी था और न कि चुनाव याचिका की प्रस्तुती पर।

30. जी॰ वी॰ श्रीराम रेड्डी एवं एक अन्य बनाम रिटर्निंग ऑफिसर एवं अन्य, 2010 (1) JLJR पृष्ठ 10 (SC) में, सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 11.8.2009 को विनिश्चित सिविल अपील सं॰ 6269 वर्ष 2008 में संप्रेक्षित किया,

> *''कोई भी इसका कारण परख सकता है कि क्यों याची द्वारा व्यक्तिगत रूप से याचिका प्रस्तुत करना आवश्यक है। चुनाव याचिका अनेक परिणामों वाला गंभीर मामला है। चूँकि ऐसी याचिका जनतांत्रिक प्रक्रिया को दूषित करने की ओर ले जा सकती है, निर्वाचन संविधि द्वारा प्रावधानित किसी प्रक्रिया का कठोरतापूर्वक पठन करना होगा। अतः, विधानमंडल ने प्रावधानित किया है कि याचिका स्वयं याची ''द्वारा'' प्रस्तुत की जानी होगी ताकि प्रस्तुतिकरण के समय पर उच्च न्यायालय आरंभिक सत्यापन कर सके जो सुनिश्चित करे कि याचिका न तो तुच्छ है और न ही परेशान करने वाली।''*

31. याची की ओर से दाखिल संपूर्ण ऑर्डर-शीट और चुनाव याविका के परिशीलन से, मैं कहीं भी स्टाम्प रिपोर्टर का अथवा संयुक्त रजिस्ट्रार का अथवा इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जेनरल का पृष्ठांकन नहीं पाता हूँ कि आरंभिक सत्यापन कि चुनाव याचिका न तो तुच्छ है और न ही तंग करने वाली, के लिए चुनाव याचिका स्वयं याची द्वारा प्रस्तुत की गयी थी। मैं आगे चुनाव याचिका के विषय वस्तु का समर्थन करने वाले शपथ पर याची के शपथ पत्र से पाता हूँ कि उसने स्वयं शपथ कमिश्नर के समक्ष अथवा रजिस्ट्री के प्राधिकृत अधिकारी के समक्ष झारखंड उच्च न्यायालय नियमावली, 2001 के नियम 325 के अधीन याचिका प्रस्तुत किया था।

32. उक्त कथित कारणों से, मैं पाता हूँ कि याची ने इस तरीके से जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81(1) के सांविधिक और आज्ञापक प्रावधानों का उल्लंघन किया।

33. उक्त चर्चा की दृष्टि में, मैं पाता हूँ और संप्रेक्षित करता हूँ कि यह चुनाव याचिका न तो निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव के परिणाम की घोषणा के 45 दिनों की परिसीमा अवधि के भीतर दाखिल की गयी है और न ही इसे स्वयं याची किशोर लाल द्वारा प्रस्तुत किया गया था जो जन प्रतिनिधित्व

अधिनियम, 1951 की धारा 81(1) के आज्ञापक प्रावधानों के उल्लंघन की कोटि में आता है और इसलिए, दोनों विवाद्यकों को प्रत्यर्थी सं॰ 1 के पक्ष में और याची के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है; तद्नुसार, परिसीमा द्वारा वर्जित होने और अनुचित प्रस्तुतीकरण के कारण चुनाव याचिका खारिज की जाती है।

34. तद्नुसार, आई॰ ए॰ सं॰ 1170 वर्ष 2010 और आई॰ ए॰ सं॰ 3246 वर्ष 2010 प्रत्यर्थी सं॰ 1 के पक्ष में अनुज्ञात किए जाते हैं और निपटाए जाते हैं।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

डॉ॰ शिव नारायण मंडल

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P.(S) No. 899 of 2011. Decided on 8th August, 2011.

झारखंड पेंशन नियमावली, 2000—नियम 43(a)—निलम्बन—निर्वाह भत्ता—निलम्बन सेवानिवृत्ति तक जारी रहा—सेवा से याची की बर्खास्तगी का कोई विनिर्दिष्ट आदेश नहीं—न तो विभागीय जांच समाप्त हुई और न ही बर्खास्तगी के आदेश द्वारा निलम्बन को समाप्त किया गया—किसी औचित्यपूर्ण कारण के बिना निर्वाह भत्ते का भुगतान रोक दिया गया—राज्य को याची को निर्वाह भत्ते का भुगतान करने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 3 एवं 4)

अधिवक्तागण.—M/s Sujit Narayan Prasad, Abhishek, For the Petitioner; Mr. D.K. Dubey, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका प्रधानत: इस कारण दाखिल की गयी है कि याची को निलम्बन की अवधि के लिए निर्वाह भत्तों का भुगतान नहीं किया गया है। याची को 11 जुलाई, 1996 को निलम्बित कर दिया गया था। दांडिक मामले में दिनांक 12 जून, 2008 के आदेश द्वारा याची की दोषसिद्धि की गयी थी। याची को अक्टूबर, 2008 तक निर्वाह भत्ते का भुगतान किया गया था और इसके उपरांत, न तो प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई जांच संचालित की गयी थी और न ही प्रत्यर्थीगण द्वारा बर्खास्तगी का कोई आदेश पारित किया गया था तथा याची की सेवानिवृत्ति तक, अर्थात्, 31 मार्च, 2011 तक निलम्बन जारी रखा गया था। न तो विभागीय जांच संचालित की गयी थी और न ही याची को सेवाओं से बर्खास्त किया गया था। याची के लिए कोई विनिर्दिष्ट आदेश पारित नहीं किया गया है और अतएव, याची निलम्बन अवधि के दौरान निर्वाह भत्तों का हकदार है। याची 31 मार्च, 2011 को अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करके पहले से ही सेवानिवृत्त हो चुका है और अतएव, नवम्बर, 2008 से 31 मार्च, 2011 तक निर्वाह भत्ता प्राप्त करने के लिए वर्तमान याचिका दाखिल की गयी है।

2. प्रत्यर्थी- राज्य के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि चूंकि एक दोषसिद्धि हुई है, याची को सेवाओं से बर्खास्त किया गया है। अन्य उम्मीदवारों के लिए भी ऐसा ही आदेश पारित किया गया है। प्रत्यर्थी-राज्य के अधिवक्ता प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल प्रति शपथ पत्र के परिशिष्ट A पर भी भरोसा कर रहे हैं तथा झारखंड पेंशन नियमावली, 2000 के नियम 43(a) पर भी भरोसा किया है और निवेदन किया है कि दांडिक मामले में एक बार एक दोषसिद्धि हो जाने पर, याची निर्वाह भत्तों का हकदार नहीं है और अतएव, वर्तमान रिट याचिका खारिज किये जाने की अधिकारी है।

3. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनकर तथा मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों का अवलोकन करके, यह प्रतीत होता है कि:–

(i) याची को विभागीय जांच लम्बित रहने के दौरान दिनांक 11 जुलाई, 1996 के आदेश द्वारा निलंबित कर दिया गया था, परन्तु, यह तथ्य शेष रह जाता है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा कभी भी कोई ऐसी विभागीय जांच संचालित नहीं की गयी थी।

(ii) दिनांक 12 जून, 2008 के आदेश द्वारा दांडिक मामले में याची की दोषसिद्धि की गयी थी।

(iii) निलम्बन की अवधि के दौरान अक्टूबर, 2008 तक याची को निर्वाह भत्ते का भुगतान किया गया था।

(iv) प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल प्रति शपथ पत्र के परिशिष्ट A से यह प्रतीत होता है कि याची के समान स्थिति वाले कुछ अन्य उम्मीदवारों को निर्वाह भत्तों का भुगतान नहीं किया गया है। इस याची के लिए कोई विनिर्दिष्ट आदेश पारित नहीं किया गया है। राज्य द्वारा संभवतः अन्य उम्मीदवार बर्खास्त किये गये हों, परन्तु, सेवाओं से याची की बर्खास्तगी का भी कोई विनिर्दिष्ट आदेश नहीं है। ऐसा कथित करने वाला कोई प्रति शपथ नहीं है कि बर्खास्तगी के आदेश द्वारा याची की सेवाएं समाप्त कर दी गयी हो।

(v) झारखंड पेंशन नियमावली, 2000 का नियम 43(a), जिस पर राज्य के अधिवक्ता द्वारा निर्वाह भत्ते के असंदाय के लिए भरोसा किया गया है, वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है। पूर्वोक्त नियमावली का नियम 43(a) निम्नवत् पठित है:

43(a) भावी सदाचार पेंशन की प्रत्येक स्वीकृति के लिए एक विवक्षित शर्त है। प्रांतीय सरकार अपने पास पेंशन या इसके किसी भाग को रोक रखने या वापस लेने का अधिकार सुरक्षित रखती है, अगर याची को गंभीर अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है या गंभीर कदाचार का वह दोषी होता है। समूची पेंशन या पेंशन के किसी भाग को रोक रखने या वापस लेने के किसी प्रश्न पर इस नियम के अधीन प्रांतीय सरकार का निर्णय अंतिम एवं निश्चायी होगी।''

पूर्वोक्त नियम कभी भी प्रत्यर्थी–राज्य को निर्वाह भत्ते का भुगतान न करने की अनुमति नहीं देता। याची 11 जुलाई, 1996 से निलम्बन के अधीन है तथा अक्टूबर, 2008 तक उसे पहले ही निर्वाह भत्ते का भुगतान किया जा चुका है और किसी औचित्यपूर्ण कारण के बिना इसे रोक दिया गया है। याची अब 31 मार्च, 2011 को सेवानिवृत्त हो चुका है।

(vi) इस प्रकार, न तो विभागीय जांच पूरी की गयी है और न ही याची की बर्खास्तगी के आदेश द्वारा निलम्बन को समाप्त किया गया है। अधिवर्षिता की आयु तक याची के पहुंचने तक निलम्बन बना रहा था। प्रति शपथ पत्र में ऐसा कुछ भी नहीं कहा गया है कि याची की सेवाओं को उसकी दोषसिद्धि पर समाप्त कर दिया गया है।

4. इन तथ्यों एवं कारणों की दृष्टि में, याची निर्वाह भत्तों का हकदार है और अतएव, मैं एतद द्वारा प्रत्यर्थी–राज्य को इस न्यायालय के इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति की तिथि से चार सप्ताह की एक अवधि के भीतर नवम्बर, 2008 से 31 मार्च, 2011 तक की अवधि के लिए याची को निर्वाह भत्ते का भुगतान करने का निर्देश देता हूँ।

5. पूर्वोक्त निर्देशों की दृष्टि में यह रिट याचिका निस्तारित की जाती है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

पुतुल रानी डे एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1151 of 2007. Decided on 25th July, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 306 एवं 120B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण–संज्ञान–मृतक ने अभिकथित रूप से विवाह के पूर्व किसी अन्य व्यक्ति के साथ अपनी पत्नी के प्रेमप्रसंग के कारण आत्महत्या किया–आरोप-पत्र में नामित 15 गवाहों में से 7 को पहले ही अभियोजन द्वारा प्रस्तुत और परीक्षित किया जा चुका है–इस चरण पर अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग में याचीगण के विचारण के क्रम में हस्तक्षेप करना समुचित नहीं होगा–याचिका खारिज। (पैराएँ 6 से 9)

निर्णयज विधि.–2007 (2) East. Cr. C 30 (SC)—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s P.P.N. Roy, Jyoti Prasad Sinha, For the Petitioners; M/s M.K. Dey, A.K. Das, For the O.P. No.2; Mr. M.D. Hatim, For the State.

आदेश

याचीगण ने दिनांक 30.11.2006 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, हजारीबाग द्वारा याचीगण और दो अन्य के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 306/120(B) के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था, के अभिखंडन के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है। याचीगण ने अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ VIII, हजारीबाग के समक्ष लंबित मांडू (पश्चिम बोकारो) पी॰ एस॰ केस॰ सं॰ 269 वर्ष 2005, जी॰ आर॰ सं॰ 1864 वर्ष 2005 के तत्सम से उद्भूत होने वाले एस॰ टी॰ केस सं॰ 112 वर्ष 2007 में उनके संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए आगे अनुरोध किया है।

2. परिवादी–वि॰ प॰ सं॰ 2 द्वारा दाखिल परिवाद याचिका के मुताबिक अभियोजन मामला यह है कि दिनांक 12.3.2005 को उसके पुत्र दीपक बोस का विवाह संध्या डे के साथ हुआ था। अपने विवाह के दौरान दीपक बोस टिस्को, पश्चिम बोकारो कोलियरी, गहतो टांड का कर्मचारी था और इसके विद्युत विभाग में फिटर–सह–ऑपरेटर के रूप में कार्यरत था। उनके विवाह के लगभग दो माह बाद संदेहास्पद स्थिति में अचानक दीपक बोस की मृत्यु हो गयी, इसलिए अस्वाभाविक मृत्यु का मामला दर्ज किया गया था और दिनांक 8.5.2005 को उसका शव परीक्षण संचालित किया गया था किंतु उसकी मृत्यु का कारण अभिनिश्चित नहीं किया जा सका था। आगे अन्वेषण के लिए मृत शरीर का विसेरा न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला में भेजा गया था। आगे अभिकथित किया गया था कि उसकी मृत्यु के दो दिन बाद, याचीगण परिवादी अर्थात् मृतक की माता के घर आए और धन, गहना तथा अन्य प्रासंगिक कागजातों को मांगने लगे और धमकी भी दी जिस पर उसके एक अन्य पुत्र पी॰ के॰ बोस ने आशीष डे की उपस्थिति में पुतुल रानी डे को गहना दिया जिसके लिए उनके द्वारा पी॰ के॰ बोस को एक रसीद भी दी गयी थी जो परिवाद याचिका का हिस्सा था। परिवादी ने आगे अभिकथित किया कि संध्या के साथ दीपक के विवाह के बाद संध्या रानी बोस की हस्तलिखित डायरी पायी गयी थी जिसके परिशीलन के बाद उसका पुत्र दीपक जान सका था कि अपने विवाह के पूर्व संध्या का किसी अन्य व्यक्ति के साथ प्रेम प्रसंग था जो पति–पत्नी

के बीच झगड़े की ओर ले गया और परिणामस्वरुप दीपक बोस अशांत और अवसादग्रस्त हो गया और आत्महत्या करने के बारे में बात करने लगा। यद्यपि किसी पल्लव बोस ने पक्षों के बीच सुलह कराने का प्रयास किया किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। तब दीपक को अभिकथित डायरी लौटाने के लिए धमकाया गया था किंतु जब उसने इसे वापस नहीं दिया, अभियुक्तगण द्वारा उसका अपमान किया गया था। परिवादी ने संदेह किया कि केवल अभियुक्तगण द्वारा उस पर मानसिक दबाव बनाए जाने के कारण उसके पुत्र दीपक बोस ने आत्महत्या कर लिया। उसकी मृत्यु के बाद, एल॰ आई॰ सी॰ पॉलिसी जो दीपक बोस के नाम पर थी, की राशि प्राप्त करने के लिए और नियोक्ता पश्चिम बोकारो कोलियरी से अन्य लाभों को प्राप्त करने के लिए परिवादी पर दबाव डाला गया और धमकाया गया। परिवादी ने आगे अभिकथित किया कि इस संबंध में पुलिस को सूचना दिए जाने के बावजूद अभियुक्तगण के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की जा सकी थी, अत: परिवाद दाखिल किया गया था। मामले के संस्थापन और अन्वेषण के लिए परिवाद दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 156(3) के अधीन मांडू पुलिस थाना भेजा गया था। अन्वेषण अधिकारी ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 306/120(B) के अधीन अभियुक्तगण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया और तद्नुसार अभिकथित अपराध के लिए अपराध का संज्ञान लिया गया था।

3. वस्तुत:, अपना तर्क प्रस्तुत करते हुए विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ पी॰ एन॰ रॉय ने निवेदन किया कि जब याचीगण को काँके, राँची में टेलीफोन पर सूचना मिली कि दीपक बोस की दशा गंभीर थी, वे तुरन्त संध्या डे के साथ घाटोटांड पश्चिम बोकरो कोलियरी गए और दिनांक 7.5.2005 को 4 बजे वहाँ पहुँचे और देखा कि टिस्को अस्पताल में दीपक का उपचार किया जा रहा था। उपचार के क्रम के दौरान उसकी मृत्यु हो गयी और संध्या डे को इसकी सूचना दी गयी जो अपने पति की अचानक मृत्यु सुनकर अचेत हो गयी और दिनांक 8.5.2005 की सुबह उसे उक्त टिस्को अस्पताल घाटोटांड में भर्ती किया गया था जहाँ दिनांक 11.5.2005 तक उसका इलाज किया गया और तब उसकी छुट्टी कर दी गयी थी। दीपक के शव के दाह-संस्कार के बाद दोनों पक्षों के परिवार के सदस्य संध्या डे के भविष्य के जीवन पर चर्चा करने के लिए बैठे। संध्या डे की माता ने कहा कि संध्या डे के गहनों को उसे लौटा दिया जाय और तद्नुसार संध्या डे॰ के भविष्य की दृष्टि में इन्हें लौटा दिया गया था। इस बीच संध्या डे॰ ने दिनांक 19.5.2005 को दीपक बोस के नाम में संख्या में कुल चार एल॰ आई॰ सी॰ पॉलिसियों की पॉलिसी राशि के भुगतान के लिए आवेदन के साथ क्षतिपूर्ति बंध पत्र को भरा और हस्ताक्षर किया, किंतु दिनांक 19.5.2005 को संध्या डे द्वारा भरे गए क्षतिपूर्ति बंध पत्र और आगे कि संध्या देयों के भुगतान के लिए टिस्को प्राधिकारीगण के पास गयी थी, के बारे में जानकारी मिलने पर परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने दिनांक 24.5.2005 को शांति भंग होने की आशंका जताते हुए याचीगण और संध्या डे के विरुद्ध एस॰ डी॰ एम॰, रामगढ़ के न्यायालय में मामला दाखिल किया। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 107 के अधीन कार्यवाही आरंभ करने के लिए दाखिल याचिका में परिवादी विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने उन अभिकथनों के समरुप, जो उसने याचीगण के विरुद्ध परिवाद याचिका में अभिकथित किया था, किसी अभिकथन को नहीं किया था और इसलिए, परिवाद याचिका में याचीगण के विरुद्ध किए गए अभिकथन बाद में सोचे गए थे और केवल उसके पति दीपक बोस की संपत्ति पर उसके सही दावे से विधवा संध्या बोस को वंचित करने के लिए उसके परिवार के सदस्यों की सोची समझी योजना का परिणाम था।

4. अपना तर्क आगे बढ़ाते हुए विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ पी॰ एन॰ रॉय ने निवेदन किया अभियुक्त-याचीगण में से किसी के विरुद्ध कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं किया गया था। संध्या डे वीमेंस कॉलेज, राँची की छात्रा थी जहाँ से उसने राजनीति शास्त्र में स्नातक किया था और अपने विवाह के पहले अथवा बाद में उसका किसी अन्य व्यक्ति के साथ कोई प्रेम प्रसंग नहीं था और प्रश्नगत डायरी के साथ उसको संबंधित करना उसको वंचित करने का घृणित षडयंत्र था और डायरी को परिवाद याचिका के साथ

अथवा मामले के अन्वेषण के दौरान अन्वेषण अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था। डायरी की कहानी उसकी मृत्यु पर टिस्को से उसके पति के देयों को प्राप्त करने से उसे रोकने के आशय के साथ संध्या डे के वास्तविक दावे को विफल करने के लिए सुनायी गयी थी। विद्वान वरीय अधिवक्ता ने आगे स्पष्ट किया कि कहीं नहीं अभिकथित किया गया था कि संध्या डे सहित अभियुक्तगण में से किसी ने दीपक बोस को आत्महत्या करने के लिए दुष्प्रेरित किया था अथवा ऐसी स्थिति को सृजित किया था जो उसे आत्महत्या करने की ओर ले जाए और इस प्रकार, विद्वान सी॰ जे॰ एम॰ ने अपनी अधिकारिता के यंत्रवत प्रयोग में और न्यायिक विवेक का इस्तेमाल किए बिना याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 306/120B के अधीन अपराध का संज्ञान लिया। मामला यह नहीं था कि किसी गवाह ने आत्महत्या करने के दांडिक षडयंत्र को अग्रसर करने में उसको दुष्प्रेरित करते हुए अभियुक्त याचीगण को देखने का दावा किया था और इसलिए भारतीय दंड संहिता की धाराओं 306/120B के अधीन अपराध का संज्ञान विधि के अधीन संपोषित नहीं किया जा सकता है। वस्तुतः, संध्या डे और उसके परिवार के सदस्य दीपक बोस की मृत्यु पर व्यथित थे क्योंकि अपने विवाह के दो माह के भीतर संध्या डे विधवा हो गयी थी जिसने आरंभिक चरण पर ही उसका भविष्य बर्बाद कर दिया था। अपने पति की संपत्तियों पर उसका अधिकारपूर्ण दावा था किंतु परिवादी और उसके परिवार के समस्त सदस्यों को आलिप्त करते हुए भारतीय दंड संहिता की धाराओं 306/120B के अधीन वर्तमान झूठा मामला लाया था।

5. हरिश्चंद्र प्रसाद मणि बनाम झारखंड राज्य एवं एक अन्य, 2007(2) East Cr. Cases 30 (SC) में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:–

> *''वर्तमान मामले में, अभियुक्तगण का दोष उपदर्शित करते हुए थोड़ी भी सामग्री नहीं है। यह सत्य है कि संज्ञान लेने के चरण पर साक्ष्य की पर्याप्तता न्यायालय द्वारा नहीं देखी जाएगी, किंतु अभियुक्तगण को आलिप्त करने वाली कम से कम कुछ सामग्री होनी ही चाहिए और केवल संदेह मात्र के आधार पर संज्ञान नहीं लिया जा सकता है जैसा वर्तमान मामले में किया गया प्रतीत होता है। विपरीत दृष्टिकोण अपनाना केवल लोगों को परेशान करने की ओर ले जाएगा।*
>
> *निःसंदेह, परिवाद में अभिकथित किया गया है कि मृतक की पत्नी का अभियुक्त सं० 2 के साथ प्रेम प्रसंग था किंतु यह स्वयं केवल संदेह है और दोषसिद्धि का आधार नहीं हो सकता है। इसी प्रकार से, यह तथ्य की मृतक के ससुराल वालों ने उसके दाह संस्कार में भाग नहीं लिया था, उनके दोष को दर्शाता हुआ साक्ष्य नहीं है।*
>
> *हमारे मत में, चूँकि ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर संज्ञान लिया गया था, हम अपराध का संज्ञान लेने वाले दिनांक 12.4.2005 के आदेश को अभिखंडित करते हैं। परिणामस्वरुप, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया जाता है और अपील अनुज्ञात किया जाता है।''*

6. यह सुनिश्चित है कि पति/पत्नी के नैतिक चरित्र के संबंध में मात्र संदेह, यदि यह आत्महत्या के अपराध को करने की ओर ले जाता है, पर यह कहना है कि दूसरा दुष्प्रेरण के दोषी हैं, इसका दूरगामी परिणाम होगा। विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री रॉय ने निवेदन किया कि याचीगण निर्दोष थे और विधवा संध्या डे की परिवादी–सास द्वारा रचे गये दांडिक षडयंत्र का शिकार बन गए हैं जिसने उसके पति की संपत्तियों से उसे वंचित करना चाहा और संध्या डे के परिवार के समस्त सदस्यों को आलिप्त करते हुए झूठा मामला संस्थापित किया जिसे **भजन लाल के मामले (ऊपर)** में अधिकथित विधि की प्रतिपादना की दृष्टि में यह न्यायालय अपनी अंतर्निहित अधिकारिता के प्रयोग में याचीगण के दांडिक अभियोजन को अभिखंडित कर सकता है।

7. वि॰ प॰ सं॰ 2 की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री एम॰ के॰ डे ने प्रतिवाद का जोरदार विरोध किया और निवेदन किया कि याचीगण ने संध्या डे के साथ दांडिक षडयंत्र रचकर ऐसी स्थिति सृजित किया जो दीपक बोस को आत्महत्या करने की ओर ले गया और इसलिए, याचीगण को उनके दांडिक दायित्व से विमुक्त नहीं किया जा सकता है। श्री डे ने आगे निवेदन किया कि यह उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा कि आरोप पत्र में नामित 15 गवाहों में से 7 गवाहों को अभियोजन की ओर से पहले ही प्रस्तुत और परीक्षित किया जा चुका है और इसलिए, इस चरण पर याचीगण के संपूर्ण दांडिक अभियोजन को अभिखंडित करके विचारण में हस्तक्षेप करना समुचित नहीं होगा।

8. तथ्यों और परिस्थितियों, और पक्षों द्वारा दिए गए तर्कों को ध्यान में रखते हुए मैं पाता हूँ कि अपर सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग के न्यायालय में लंबित एस॰ टी॰ सं॰ 112 वर्ष 2007 का विचारण काफी आगे बढ़ चुका है जैसा स्पष्ट किया गया है कि आरोप-पत्र में नामित 15 गवाहों में से 7 गवाहों को पहले ही अभियोजन की ओर से प्रस्तुत और परीक्षित किया जा चुका है। अत:, इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता के प्रयोग में इस चरण पर अभियुक्त-याचीगण के विचारण के क्रम में हस्तक्षेप करना समुचित नहीं होगा, तद्नुसार यह याचिका खारिज की जाती है, फिर भी, मैं विचारण न्यायालय को याचीगण के इन तर्कों के प्रति जागरुक होने का निर्देश देता हूँ कि यह मत निर्मित करने के लिए कोई भी साक्ष्य नहीं है कि अभियुक्तगण/याचीगण ने दांडिक षडयंत्र के अनुसरण में ऐसी स्थिति को सृजित किया था जो दीपक बोस को आत्महत्या करने की ओर ले गया और कि दीपक बोस की आत्महत्या के अभिकथित कारण के रूप में कोई डायरी निष्पक्ष निर्णय के लिए विचारण के दौरान विचारण न्यायालय के समक्ष आने वाले साक्ष्य पर प्रतिकूलता कारित किए बिना अभिलेख पर अभी तक नहीं लायी गयी है।

9. विचारण को जल्द पूरा किया जाय ताकि यथासंभव शीघ्र अधिमानत: इस आदेश के छह माह के भीतर सत्र न्यायाधीश द्वारा इसे निष्कर्षित किया जा सके। एल॰ सी॰ आर॰ को तुरन्त संबंधित न्यायालय को वापस भेजा जाय।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

दुखन पासवान

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal No. 579 of 2009. Decided on 12th July, 2011.

एस॰ टी॰ सं॰ 124 वर्ष 2004 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 25.6.2009 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 324 एवं 307/34 सह-पठित आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 27—आग्नेयास्त्र से हत्या का प्रयास–दोषसिद्धि–सूचक जो पीड़ित है के सिवाय अभिकथित घटना का कोई भी चश्मदीद गवाह नहीं है–अभियोजन साक्षीगण अनुश्रुत साक्षी हैं–ऐसे गवाह जो विश्वसनीय गवाह नहीं हैं के साक्ष्य पर दोषसिद्धि आधारित नहीं की जा सकती है–अभियोजन द्वारा आई॰ ओ॰ और सर्जन का परीक्षण नहीं किया गया–बचाव गवाहों ने सुलह की कथा का समर्थन किया है–अभियोजन मामले में अनेक दुर्बलताएँ हैं–अपीलार्थी संदेह के लाभ का हकदार है–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 10 से 12)

अधिवक्तागण.–M/s V.P. Singh, Brij Bihari Sinha, For the Appellant; Mr. V.S. Jha, For the State; M/s Manish Kumar, Someshwar Raj, For the Informant.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–अपीलार्थी ने यह अपील बी॰ एस॰ सिटी पी॰ एस॰ केस सं॰ 163 वर्ष 1994, जी॰ आर॰ केस सं॰ 748 वर्ष 1994 के तत्सम, से उद्भूत होने वाले एस॰ टी॰ सं॰ 124 वर्ष 2002 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 25.6.2009 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त करने के लिए दाखिल की गयी है, जिसके द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 324, 307/34 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307/34 के अधीन अपराध के लिए दस वर्षों का कठोर कारावास भुगतने और 20,000/- रुपए के जुर्माने का भुगतान करने और जुर्माने के भुगतान के व्यतिक्रम में दो वर्षों की अतिरिक्त अवधि का सामान्य कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया और आगे आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए पाँच वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया। समस्त दंडादेश साथ-साथ चलेंगे और विचाराधीन कैदी द्वारा पहले ही भुगत ली गयी अवधि उसके दंडादेश के विरुद्ध मुजरा कर दी जाएगी।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक मदन मोहन साह, पुत्र लक्ष्मी साह, स्थायी निवासी राघोपुर ग्राम, पी॰ एस॰ जुरावनपुर, जिला वैशाली (बिहार) और वर्तमान निवास स्थान मुहल्ला जोशी कॉलोनी लकराकलंद (खालसा विद्यालय के निकट) झोपड़ी, पी॰ एस॰ बी॰ एस॰ सिटी, जिला बोकारो का फर्दबयान यह है कि दिनांक 10.7.94 को जब वह अपने निवास स्थान से साइकिल से डूंडीबाग बाजार सौदा खरीदने जा रहा था और ओवर ब्रिज और सी॰ ई॰ जेड॰ गोलंबर के बीच दुगलगेट के पास दोपहर लगभग 3.10 बजे पहुँचा तो उसने गौर किया कि एक मोटर साइकिल धीमी गति से उसके पीछे आ रही थी, वह मुड़ा और देखा कि उक्त मोटर साइकिल पर तीन व्यक्ति सवार थे जिसमें से दुखन पासवान, अभियुक्त अपीलार्थी, जो बी॰ एस॰ एल॰ के ऑपरेशन गैरेज में उसके विभाग में खलासी के रूप में काम किया करता था, बीच में अपने हाथ में रिवाल्वर लिए बैठा था जिससे उसने उसके ऊपर गोली चलाई जो उसके हाथ के बाएँ हिस्से पर लगी और गोली उसके पेट के बाएँ हिस्से से निकल गयी और तब वह अपनी साइकिल से उतरा और पीछा किया। दुखन पासवान ने फिर उस पर गोली चलायी किंतु यह उसे नहीं लगी। आगे अभिकथित किया गया है कि दोषी काले रंग की राजदूत मोटरसाइकिल पर सवार थे जिसकी अंतिम संख्या 37 थे। उन्होंने मोटरसाइकिल को दायीं ओर मोड़ लिया और पूर्वी सी॰ ई॰ जेड॰ गेट की ओर भाग गए। सूचक का आगे मामला यह है कि वह दुखन पासवान (अपीलार्थी) को अच्छी तरह से जानता था क्योंकि वह उसके विभाग में कार्यरत था और कुरता-पायजामा पहना करता था और छोटी दाढ़ी रखता था। अन्य दो व्यक्ति 25-26 वर्ष के थे। उनका कद 5' 5" था और वे साधारण वस्त्र पहने हुए थे। गोली दागने के पीछे कारण, जैसा सूचक द्वारा अभिकथित किया गया है, यह कि दुखन पासवान (अपीलार्थी/अभियुक्त) भूमि की खरीद-बिक्री की दलाली का काम करता था। दुखन पासवान ने उससे वर्ष 1991 में चास स्थित भूमि का टुकड़ा बेचने के लिए उससे 40,000/- (चालीस हजार) रुपया लिया था। उसने आगे अभिकथित किया कि जब सूचक को दुखन पासवान की गलत गतिविधि के बारे में पता चला, तब उसने अपना अग्रिम धन वापस मांगा जिस पर दुखन पासवान ने उसे आश्वासन दिया कि भूमि की बिक्री के बाद वह उसका पूर्वोक्त धन लौटा देगा किंतु लंबा अरसा बीत गया था और तब दुखन पासवान ने सूचक पर झूठा आरोप लगाया जिसके परिणामस्वरुप सूचक को दिनांक 9.9.93 को निर्लंबित कर दिया गया था। जाँच कमिटि द्वारा संपूर्ण मामले की जाँच की गयी थी, तत्पश्चात दिनांक 24.5.94 को सूचक का निलंबन प्रतिसंहृत कर दिया गया था, परिणामस्वरुप सूचक ने दिनांक 27.5.94 को अपनी सेवा पुनः ग्रहण कर लिया था। तत्पश्चात, सूचक ने पुनः अग्रिम धन वापस मांगा जिस पर दुखन राम ने इसे दिनांक 20.7.94 को वापस लौटाने का आश्वासन दिया किंतु उक्त तिथि के पहले दुखन राम ने अपने दो सहयोगियों के साथ सूचक की 40,000/- (चालीस हजार) रुपए की उक्त राशि को हथियाने के आशय से रिवाल्वर से गोली दागकर उसकी हत्या करने का प्रयास किया।

3. पूर्वोक्त फर्दबयान के आधार पर, औपचारिक प्राथमिकी दर्ज की गयी थी और अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध वर्तमान मामला दर्ज किया गया है। अन्वेषण के उपरांत, आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है एवं संज्ञान लेने के उपरांत, मामला विचारण के लिए सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया था।

4. अभियुक्त ने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोप से इनकार किया और उसका अभिवचन घटना से पूरी तरह इनकार का प्रतीत होता है और उसने स्वयं की निर्दोषिता का दावा किया कि उसने कोई अपराध नहीं किया है बल्कि दुश्मनी के कारण उसे इस मामले में झूठा आलिप्त किया गया है।

5. अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध करने के लिए सात गवाहों का परीक्षण किया है। उनमें से एक अ॰ सा॰ 1 दुर्गा दत्त है और चूँकि उसने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है, अत: उसे पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है। अ॰ सा॰ 2 राजकुमार साह को अनुश्रुत गवाह के और अभिग्रहण सूची गवाह के रूप में परीक्षित किया गया है। अ॰ सा॰ 3 रंजीत कुमार, सूचक का पुत्र, भी अनुश्रुत गवाह है। अ॰ सा॰ 4 नसीरुद्दीन खान भी एक अनुश्रुत गवाह और अभिग्रहण सूची गवाह और सूचक के फर्दबयान का गवाह है। अ॰ सा॰ 5 ज्ञानी देवी, सूचक की पत्नी, भी घटना की अनुश्रुत गवाह है। अ॰ सा॰ 6 मदन मोहन साह सूचक और मामले का पीड़ित है। अ॰ सा॰ 7 डॉक्टर पंकज शर्मा चिकित्सा अधिकारी है जिसने उपहति रिपोर्ट जारी किया है। स्वीकृत रूप से, मामले के आई॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया है। बचाव में दो गवाहों अर्थात् इस्माईल अंसारी और मासूम खान का परीक्षण किया है।

6. बचाव पक्ष ने अपना मामला सिद्ध करने के लिए अनेक दस्तावेजी साक्ष्य को लाया है। इनमें से प्रदर्श A से A-4 संयुक्त सुलह याचिका और वर्तमान मामले में सुलह के लिए अनुमति याचिका, पर किए गए सूचक के हस्ताक्षर हैं। उपहति रिपोर्ट की शिनाख्त के लिए चिन्हित X; प्रदर्श B सुलह याचिका प्रदर्श C जी॰ आर॰ केस सं॰ 1020/03 मरफरी पी॰ एस॰ केस सं॰ 70/03 के तत्सम, में दुखन पासवान का फर्दबयान; प्रदर्श-D से D/4 तक जी॰ आर॰ केस सं॰ 1020/03 में दर्ज अभियोजन गवाहों के मूल अभिसाक्ष्य; प्रदर्श-E दिनांक 9.9.93 के निलंबन आदेश पर किया गया अजीत कुमार श्रीवास्तव का हस्ताक्षर; प्रदर्श-F से F/1 तक जी॰ आर॰ केस॰ सं॰ 1020/93 में दाखिल दिनांक 19.7.97 का दुखन पासवान और सूचक के हस्ताक्षर; प्रदर्श G से G/1 तक सुलह याचिका और जी॰ आर॰ केस सं॰ 1020/93 में दाखिल सुलह की अनुमति के लिए याचिका और प्रदर्श-H एस॰ टी॰ सं॰ 124/02 (वर्तमान मामला) में दाखिल सुलह के लिए अनुमति याचिका है। अभियुक्त/अपीलार्थी ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपने बयान में अपने विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों से पूर्णत: इनकार किया है। उसने स्वीकार किया है कि उसने अग्रिम धन के रूप में केवल 11,000/- (ग्यारह हजार) रुपया लिया था किंतु इसे सूचक को लौटा दिया गया था। अंत में, उसने कथन किया है कि इस मामले में पूर्व दुश्मनी के कारण उसे झूठा आलिप्त किया गया है।

7. अपीलार्थी के विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री वी॰ पी॰ सिंह निवेदन करते हैं कि इस मामले में घटना के पीड़ित अ॰ सा॰ 6 के सिवाय कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। अ॰ सा॰ 1 को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है क्योंकि उसने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया था। अ॰ सा॰ 2 राजकुमार साह सूचक का पड़ोसी है। उसने कथन किया है कि वह घटना स्थल पर पहुँचा और तत्पश्चात अस्पताल गया किंतु उसने प्रकट नहीं किया है कि उसे घटना स्थल के बारे में जानकारी कैसे मिली और किससे उसे पता चला कि सूचक अस्पताल गया था। अ॰ सा॰ 3 रंजीत कुमार सूचक का पुत्र है किंतु वह भी अनुश्रुत गवाह है क्योंकि उसने अपने साक्ष्य में प्रकट नहीं किया है कि घटना के बारे में उसे किसने बताया था और कैसे उसे घटना के बारे में पता चला था। उसने विनिर्दिष्टत: रूप से कथन किया था कि घटना स्थल पर

लोग मौजूद थे किंतु अभियोजन द्वारा किसी का परीक्षण नहीं किया गया है। इसी प्रकार से, अ॰ सा॰ 4 नसीरुद्दीन खान, पड़ोसी अनुश्रुत गवाह है किंतु उसने अपने साक्ष्य में प्रकट नहीं किया है कि कैसे उसे मालूम हुआ कि मदन मोहन साह अस्पताल में था। उसने स्वीकार किया है कि उसने न्यायालय में पहली बार बयान दिया है। अ॰ सा॰ 5 ज्ञानी देवी, सूचक की पत्नी, भी अनुश्रुत गवाह है। अ॰ सा॰ 7 डॉक्टर ने दृढ़तापूर्वक कथन किया है कि उसने सूचक का उपचार कभी नहीं किया था और उसने सर्जन, जिसने सूचक का उपचार किया था, की रिपोर्ट के आधार पर रिपोर्ट जारी किया था। सर्जन, जिसे सूचक का उपचार करने वाला बताया जाता है, का परीक्षण अभियोजन द्वारा नहीं किया गया है और अभियोजन ने उसका परीक्षण नहीं करने के लिए कोई स्पष्टीकरण भी नहीं दिया है। अ॰ सा॰ 2 और अ॰ सा॰ 3 को वस्त्रों के अभिग्रहण का गवाह बताया जाता है किंतु स्वीकृत रूप से विचारण न्यायालय के समक्ष कोई वस्त्र प्रस्तुत नहीं किया गया है। केवल यही नहीं, विचारण के दौरान अभिग्रहण सूची को भी कानूनन सिद्ध नहीं किया गया है। इस मामले में आई॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया है और उसका परीक्षण नहीं किए जाने का अपीलार्थी पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है क्योंकि उसका परीक्षण घटना स्थल के बारे में और घटना के तरीके के बारे में भी प्रकट कर सकता था और आगे कि क्या अभिकथित घटनास्थल पर अथवा इसके निकट रक्त था और किसने उसे घटना के बारे में बताया और घटना के बारे में उसे कैसे पता चला। इसके अतिरिक्त, जब अ॰ सा॰ 3 ने विनिर्दिष्टत: कथन किया था कि घटना स्थल पर लोग मौजूद थे किंतु अभियोजन द्वारा किसी का भी परीक्षण नहीं किया गया है। दूसरी ओर, बचावपक्ष ने दो गवाहों का परीक्षण किया जिन्होंने सुलह की कथा का समर्थन किया था।

8. श्री सिंह ने प्रतिवाद किया है कि इस मामले का एकमात्र चश्मदीद गवाह स्वयं पीड़ित अर्थात् सूचक है। अत: सूचक (अ॰ सा॰ 6) का साक्ष्य किसी व्यक्ति को दोषसिद्ध करने के लिए विश्वसनीय होना चाहिए। श्री सिंह ने निम्नलिखित चीजों को इंगित किया जिसके लिए सूचक पर विश्वास नहीं किया जा सकता है:–

(i) उसे कागज के एक टुकड़े के आधार पर अभिसाक्ष्य देते पाया गया था;

(ii) उसने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि वह साईकिल पर जा रहा था और जब उसने पीछे देखा, उसने तीन व्यक्तियों को मोटरसाईकिल पर आते देखा जिसमें से उसने केवल अपीलार्थी को पहचाना जो बीच में बैठा था। उसके अनुसार अपीलार्थी ने उस पर गोली चलायी जो उसके पीठ के बाएँ हिस्से पर लगी और पेट के बाएँ हिस्से से बाहर निकल गई। तत्पश्चात उसने अभियुक्तगण का पीछा किया किंतु दूसरी बार गोली चलायी गयी थी जो उसे नहीं लगी। वह एक टेम्पो, फिर दूसरे टेम्पो पर अस्पताल जाने के लिए सवार हुआ। यह कहानी स्पष्टत: दर्शाती है कि उसने कोई गंभीर उपहति प्राप्त नहीं किया था और यदि उसने गंभीर उपहति पाया भी था, वह अपीलार्थी का पीछा नहीं कर सकता था।

(iii) सूचक ने दावा किया है कि जब उसने अपनी साईकिल से पीछे मुड़ कर देखा, उसने मोटरसाईकिल के बीच में बैठे अपीलार्थी को पहचाना;

(iv) सूचक ने बाएँ हिस्से पर उपहति प्राप्त किया है जो तब तक संभव नहीं हो सकता है जब तक मोटर साईकिल उसके बाएँ ओर नहीं आयी हो किंतु यह अभियोजन का मामला नहीं है। इसके अतिरिक्त, सूचक ने पीछे से उपहति प्राप्त किया है जो दर्शाता है कि वह संभवत: अपीलार्थी को नहीं देख सका था।

(v) सूचक ने न्यायालय के समक्ष झूठा बयान दिया है क्योंकि उसने आरंभ में मामले में सुलह से इनकार किया किंतु बाद में उसने संयुक्त सुलह याचिका अर्थात् प्रदर्श A से A/4 तक के वकालतनामा पर अपना हस्ताक्षर स्वीकार किया।

(vi) सूचक ने यह झूठा बयान भी दिया है कि मधु ने पुलिस के समक्ष घटना का समर्थन किया था किंतु उसकी मृत्यु हो गयी है और केस डायरी दर्शाती है कि आई० ओ० द्वारा मधु नामक व्यक्ति का परीक्षण कभी नहीं किया गया था।

(vii) सूचक द्वारा बतायी गयी अपीलार्थी को दी गयी कर्ज अथवा अग्रिम की कहानी भी इस तथ्य की दृष्टि में स्वीकार्य नहीं है कि उसने विनिर्दिष्टतः पैराग्राफ 8 में कहा है कि उसकी अपीलार्थी से मित्रता नहीं बल्कि दुश्मनी थी।

अत: अ॰ सा॰ 6, जो एकमात्र चश्मदीद गवाह और पीड़ित है, पर बिल्कुल विश्वास नहीं किया जा सकता है।

9. श्री सिंह ने आगे निवेदन किया है कि बचाव पक्ष ने दो गवाहों का परीक्षण किया है जिन्होंने बचाव विवरण का पूर्णत: समर्थन किया है और सुलह की कथा का भी समर्थन किया है। यह निवेदन किया गया है कि मामले का समर्थन करने के लिए घटना स्थल पर उपस्थित किसी व्यक्ति को अथवा टेम्पो चालकों में से किसी का परीक्षण नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, आई॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया है जो भली-भाँति स्पष्ट कर सकता है कि क्या उसने घटना स्थल पर रक्त अथवा गोली दागे जाने का कोई चिन्ह पाया था। यह भी आया है कि गवाहों ने अपीलार्थी द्वारा सूचक के विरुद्ध दांडिक मामला दर्ज किया जाना स्वीकार किया था जिसमें अपीलार्थी के साथ की गयी सुलह के आधार पर सूचक को दोषमुक्त कर दिया गया था।

10. सूचक के विद्वान अधिवक्ता, श्री मनीष कुमार झा ने निवेदन किया है कि सूचक, जिसका परीक्षण अ॰ सा॰ 6 के रूप में किया गया था और जो पीड़ित भी है, ने अभियोजन मामले का पूर्ण समर्थन किया है और वह बिल्कुल सत्यवादी और विश्वसनीय गवाह है क्योंकि उसने अपने और अभियुक्त अपीलार्थी के बीच पुरानी दुश्मनी के संबंध में किसी चीज से इनकार करने का प्रयास कभी नहीं किया था। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि अ॰ सा॰ 2 से 5 ने अ॰ सा॰ 6 के साक्ष्य को पूर्णत: संपुष्ट किया है क्योंकि उन्होंने कथन किया है कि जब वे अस्पताल पहुँचे और सूचक से पूछा कि किसने उसके ऊपर प्रहार किया था, सूचक ने उन्हें बताया कि अभियुक्त/अपीलार्थी ने उस पर गोली चलायी थी। उनके अनुसार, बचाव पक्ष तात्विक प्रदर्शों के अ-प्रस्तुतीकरण का लाभ नहीं ले सकता है क्योंकि चश्मदीद गवाहों का मौखिक साक्ष्य है जिन्होंने कथन किया है कि घायल द्वारा पहने गए वस्त्र रक्तरंजित थे। इसके अतिरिक्त, चिकित्सीय साक्ष्य ने अभियोजन मामले का पूर्ण समर्थन किया है।

11. आगे निवेदन किया गया है कि यह दावा करने के लिए बचाव के रूप में उपहति की प्रकृति को नहीं लिया जा सकता है कि चूँकि उपहति सरल प्रकृति की थी, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है। निवेदन किया गया है कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन अपराध गठित करने के लिए प्रभावशाली आशय का देखा जाना होगा। वर्तमान मामले में, आग्नेयास्त्र द्वारा प्रहार किया गया था और दो गोलियाँ दागी गयी थी, जिसमें से एक सूचक के शरीर के महत्वपूर्ण अंग पर लगी, जिस प्रहार को अभियुक्त के लिए लाभदायी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है।

12. मामला विनिश्चित करने के लिए एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या अभियोजन ने युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध किया है। नि:संदेह, सूचक, जो पीड़ित भी है के सिवाय अभिकथित घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। अ॰ सा॰ 3, 4 और 5 अनुश्रुत गवाह हैं किंतु वे स्पष्ट नहीं कर सके थे कि उन्हें कैसे पता चला कि सूचक को अस्पताल में भर्ती किया गया है और वे अस्पताल पहुँचे। अत: एकमात्र चश्मदीद गवाह, जो सूचक और पीड़ित दोनों है, के साक्ष्य का संवीक्षण आवश्यक है। अ॰ सा॰ 6 के साक्ष्य का परिशीलन करने के बाद, मैं पाता हूँ श्री सिंह ने सही प्रकार से इंगित किया है कि ऐसे

गवाह, जिसे विश्वसनीय गवाह बिल्कुल नहीं कहा जा सकता है, के साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि आधारित नहीं की जा सकती है। सर्जन, जिसने सूचक का उपचार किया था, का भी अभियोजन द्वारा परीक्षण नहीं किया गया है और उसका परीक्षण नहीं करने का स्पष्टीकरण भी नहीं है। अभियोजन द्वारा आई॰ ओ॰ का भी परीक्षण नहीं किया गया है केवल जो स्पष्ट कर सकता था कि क्या घटनास्थल पर अथवा इसके निकट रक्त अथवा घटनास्थल पर गोली चलाए जाने का चिन्ह था। दूसरी ओर, बचाव गवाहों ने सुलह की कथा का समर्थन किया है। इस प्रकार, अभियोजन के मामले में अनेक दुर्बलताएँ है और अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा है। ऊपर चर्चा किए गए इन सभी कारणों से, मेरे मत में, अपीलार्थी संदेह के लाभ का हकदार है। अत: मैं अपीलार्थी पर पारित दोषसिद्धि और दंडादेशों को अपास्त करता हूँ। अत: अपील अनुज्ञात किया जाता है और अपीलार्थी को उसके जमानत बंध के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

शोभा देवी उर्फ किरण उर्फ एम॰ एस॰ किरण (1075 में)

नूतन कुमारी (1035 में)

डॉ॰ कुमार नीरज प्रकाश उर्फ के॰ एन॰ प्रकाश एवं एक अन्य (1112 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य (सभी में)

Cr. Rev. Nos. 1075, 1035 with 1112 of 2010. Decided on 13th June, 2011.

(क) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 227—उन्मोचन–जब कभी उन्मोचन के लिए धारा 227 के अधीन याचिका दाखिल की जाती है, विचारण न्यायालय से अपने आदेश में अभियुक्तगण में से प्रत्येक के विरुद्ध प्रथम दृष्टया सामग्री प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती है। (पैरा 10)

(ख) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 498A एवं 304B—दहेज अपराध–अन्य ससुराल वालों जो सूचक के विवाहित या अविवाहित ननदें हैं, को धारा 304B के अधीन अथवा धारा 498A के अधीन अभिकथित अपराध के लिए उनके दांडिक दायित्व से विमुक्त करने का कोई सर्वमान्य सन्नियम नहीं हो सकता हैं–किंतु, कुछ मामलों में दहेज की मांग के संबंध में यातना देने में उनकी निश्चित भूमिका पाया गया है और उन मामलों में सतर्कता का नियम अभिभावी होगा। (पैरा 12)

निर्णयज विधि.–AIR 2000 SC 2324—Relied on; AIR 1987 Kerala 184—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s Ramesh Kumar Singh (in 1075), M/s A.K. Sahni, Neelanjan Chatterjee (in 1035), For the Petitioners; Mr. Mukesh Kumar, (in 1075), Mr. S.N. Rajgarhia (in 1035), Mr. A.B. Mahto (in 1112), For the State; M/s Ajit Kumar, Amrita Banerjee (in 1075 & 1112), For the Informant; Mr. Vikas Pandey (in 1035), For the O.P. Nos. 2 to 8.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–इस आदेश के कॉज टाइटल में यहाँ पहले निर्दिष्ट समस्त तीनों दांडिक पुनरीक्षणों को सत्र विचारण सं॰ 291 वर्ष 2010 में अपर न्यायिक कमिश्नर, एफ॰ टी॰ सी॰ II, राँची द्वारा दर्ज दिनांक 28.10.2010 के एक ही आदेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा भारतीय दंड

संहिता की धाराओं 341/323/313/316/498A/506 के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन भी अभिकथित अपराध से उनके उन्मोचन के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन पूर्वोक्त याचीगण की ओर से दाखिल याचिका प्रस्तावित आरोप में परिवर्तन के साथ खारिज कर दी गयी थी। दिनांक 28.10.2010 के आक्षेपित आदेश द्वारा अभिनिर्धारित किया गया था कि केवल याची पति डॉ॰ कुमार नीरज प्रकाश और सास के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 313 आकृष्ट होती थी। आगे अभिनिर्धारित किया गया था कि अभियुक्त याचीगण में से किसी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 316 के अधीन कोई अपराध नहीं बनाया जा सकता था किंतु न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498A/323/34/506 और 379 के अधीन समस्त तीनों दांडिक पुनरीक्षणों के याचीगण, जो नीरज प्रकाश, देविका लाल, शैलेश प्रकाश, शोभा देवी उर्फ किरण, विभा किरण और निभा किरण हैं के विरुद्ध अग्रसर होने के लिए पर्याप्त सामग्री पाया था। इसके अतिरिक्त समस्त छह नामित अभियुक्तगण के विरुद्ध दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन प्रथम दृष्टया अपराध पाया गया था किंतु साथ ही आक्षेपित आदेश द्वारा मुख्य अभियुक्त के पिता डॉ॰ परमेश्वर लाल को समस्त आरोपों से उन्मोचित कर दिया गया था।

2. वर्तमान सूचक–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 का मामला यह था कि दिनांक 5.12.2007 को उसका विवाह याची डॉ॰ कुमार नीरज प्रकाश के साथ हुआ था और उसके विवाह के अवसर पर गहनों सहित अनेक वस्तुएँ उपहार में दी गयी थी। यह कथन किया गया था कि याची डॉ॰ कुमार नीरज प्रकाश के साथ सगाई के समय पर भी उनकी मांग के अनुसार नगद दिया गया था किंतु उनके विवाह के कुछ दिनों बाद उसकी सास और ननद ने उसको परेशान किया और उसके द्वारा विरोध किए जाने पर उनके द्वारा उसे पीटा गया था और भोजन भी नहीं दिया गया था। उसके परिवाद किए जाने पर, याची पति ने अपनी माता और बहन का पक्ष लिया और तब अपने पैतृक गृह से 10,00,000/- रुपया (दस लाख रुपया) लाने की मांग को रखा। इसी बीच, वह गर्भवती हो गयी जिसने पति को अवसादग्रस्त कर दिया। जब उसकी सास को उसके गर्भवती होने के बारे में पता चला, वह उसे गाली देने और उस पर शारीरिक प्रहार करने लगी। उसकी सास चाहती थी कि उसका गर्भपात करा दिया जाए क्योंकि वह 10,00,000/- (दस लाख) रुपया लाने में सक्षम नहीं हुई थी। उसने आगे कथन किया कि दो माह की गर्भावस्था के बाद उसे अपच और गैस हो गया जिसके बारे में उसने अपने पति को शिकायत किया जिसने उसे दो गोलियाँ दी किंतु ऐसी गोली खाने के दो घंटे बाद हल्के रक्तस्राव के साथ उसके पेट में दर्द होने लगा। अगली सुबह उसके पति याची सं॰ 1 और उसकी सास अन्य अभियुक्तगण के साथ उसे कैपिटल अस्पताल और शोध केंद्र, राँची ले गए जहाँ उसका गर्भपात करवा दिया गया और वहाँ उसे डॉक्टर से पता चल सका था कि उसका गर्भपात होना घर में ही शुरू हो गया था। उसके भाई को अस्पताल में बुलाया गया था जिससे 10,00,000/- (दस लाख) रुपयों की मांग की गयी थी अन्यथा उसे चेतावनी दी गयी थी कि उसकी बहन अर्थात् सूचक को उसके दांपत्य गृह में स्वीकार नहीं किया जाएगा क्योंकि याची–पति को ऐसी राशि से अपनी बहन बिभा कुमारी का विवाह करना था। वे सूचक नूतन कुमारी को उसके भाई के साथ छोड़कर चले गए। दिनांक 5.7.2009 को सूचक अपने भाई और कुछ सम्मानित व्यक्तियों के साथ अपने पति के आवास तिपुदना गयी किंतु उसने उसको अपने साथ रखने से इनकार कर दिया, किंतु, दिनांक 6.9.2009 को उसे उनके कोकर स्थित घर पर बुलाया गया था जहाँ 10,00,000/- (दस लाख) रुपयों की मांग को दोहराया गया था किंतु जब उसने अपने भाई और माता द्वारा ऐसी मांग पूरी करने की अक्षमता अभिव्यक्त किया, उसे कमरे में पीटा गया था और उसके सारे गहनों को उनके द्वारा जब्त कर लिया गया था। उसके भाई को अपमानित किया गया था और अंततः उसे इस चेतावनी के साथ घर से निकाल दिया गया था केवल 10,00,000/- (दस लाख) रुपया और उनके लिए बड़ी गाड़ी लाने पर ही उसे स्वीकार किया जाएगा।

तत्पश्चात, वह विगत तीन माह से अपने दांपत्य गृह में रह रही थी, किंतु दिनांक 5 जुलाई, 2009 को उसका पति उसके पास आया किंतु यह पूछे जाने पर कि वह कब उसे उसके दांपत्य गृह ले जाएगा, वह क्रोधित हो गया और वापस चला गया। उसने अपने लिखित रिपोर्ट के साथ दिनांक 3.7.2008 का चिकित्सा प्रमाण पत्र संलग्न किया जिसने अभिकथित अपराध के लिए दिनांक 15.9.2009 को बरियातू पी॰ एस॰ केस सं॰ 226 वर्ष 2009 उद्‌भूत किया।

3. सूचक-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के पति-याची और सास की ओर से निवेदन किया गया था कि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498A/323/34/506/379 और 313 के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन भी आरोप आकृष्ट करने के लिए दोनों में से किसी के विरुद्ध कोई विनिर्दिष्ट कृत्य आकृष्ट नहीं होता था। न तो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अथवा न ही धारा 164 के अधीन दर्ज अपने बयान में सूचक ने दहेज की अभिकथित मांग अथवा उसको दी गयी शारीरिक और मानसिक यातना के संबंध में कुछ भी विनिर्दिष्ट कथित किया था। पति और सास की प्रेरणा पर सूचक का अभिकथित गर्भपात किसी अन्य स्वतंत्र गवाह द्वारा समर्थित नहीं किया गया है। सास देविका लाल के विरुद्ध ऐसा कोई अभिकथन नहीं था कि उसने समय के किसी बिंदु पर सूचक को गोलियाँ दी थी, जिनको खाने के बाद उसका गर्भपात कारित हुआ। यह अभिकथन केवल पति के विरुद्ध निर्देशित था, और इस प्रकार, भारतीय दंड संहिता की धारा 313 के अधीन प्रस्तावित आरोप सास के विरुद्ध आकृष्ट नहीं किया जा सकता था। डॉक्टर, जिसने अस्पताल में सूचक का उपचार किया था, द्वारा गर्भपात का कारण नहीं दिया जा सका था और इसलिए, गर्भपात का अभिकथन सिद्ध नहीं किया जा सका था। मामला गर्भपात की अभिकथित घटना के 14 माह बाद सूचक द्वारा दर्ज किया था और ऐसे अत्यधिक विलंब के लिए उसके द्वारा कोई तर्कसंगत स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सका था। उसके पति और सास के विरुद्ध अभिकथन द्वेषपूर्ण और तुच्छ थे और यह स्वीकार किया गया था कि सूचक का भाई अस्पताल में उपस्थित था और प्रासंगिक समय पर गर्भपात के समस्त क्रियाकलापों का प्रबंध किया था। उसने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन दर्ज अपने बयान में अभिकथित नहीं किया था कि कोई भी गोली अथवा गोलियाँ उसकी बहन को दी गयी थी और तद्‌द्वारा जबरन गर्भपात करवाया गया था। सास का बयान केस डायरी के पैराग्राफ 28 में दर्ज किया गया था जिसमें वह सूचक के गर्भपात के कारण के बारे में मौन थी। वस्तुतः, सूचक ने विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 डॉ॰ कुमार नीरज प्रकाश के साथ अपना विवाह संपन्न होने के बाद उसे उसके शारीरिक रूप-रंग आर्थिक दशा और पारिवारिक वातावरण के कारण अपने पति के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया था और वह उसे नापसंद करती थी। हिंदू विवाह अधिनियम, 1956 की धारा 13[1(ia)] के अधीन तलाक की डिक्री इप्सित करते हुए पति डॉ॰ कुमार नीरज प्रकाश द्वारा दाखिल वैवाहिक टाइटल वाद सं॰ 221 वर्ष 2010 में याची-पति का विनिर्दिष्ट मामला यह था कि विवाहोत्तर संभोग कभी नहीं हुआ था और उसने उसे पूरी तरह अभित्यक्त कर दिया था और उसका एक अन्य व्यक्ति के साथ विवाहेतर संबंध था जिसके साथ उसके विवाह के काफी पहले से उसका प्रेम प्रसंग चल रहा था। याची-पति ने क्रूरता, अभित्यजन और उसके विवाहेतर संबंध के आधार पर तलाक का डिक्री इप्सित किया था।

4. अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित आक्षेपित आदेश का विरोध करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने प्राख्यान किया कि याचीगण के विरुद्ध प्रथम दृष्टया सामग्री, यदि उन्हें पाया भी गया था, पर चर्चा किए बिना भारतीय दंड संहिता की धाराओं 323/34/313/498A/379/506 के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन भी आरोप प्रस्तावित किए गए थे।

5. पति और सास (दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 1112 वर्ष 2010) की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री रमेश कुमार सिंह ने विधि के बिंदु पर निवेदन किया कि दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में भारतीय दंड संहिता की धारा 313 के अधीन उनके विरुद्ध कोई अपराध आकृष्ट नहीं हो सकता था। **AIR 1987 Kerala 184** में प्रकाशित मामले में दिए गए निर्णय पर विश्वास किया गया है। केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने भारतीय दंड संहिता की धारा 313 के प्रावधानों की व्याख्या की और अभिनिर्धारित किया,

''भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 313 उसकी सहमति के बिना शिशु के साथ किसी महिला का गर्भपात स्वेच्छापूर्वक कारित करने के लिए दंड देती है जबकि सहमति के साथ गर्भपात पर धारा 312 के अधीन विचार किया गया है। धारा 313 के अधीन गर्भपात कराने वाला व्यक्ति ही केवल दंड का दायी है जबकि धारा 312 के अधीन महिला भी दंड की दायी है। उस पक्ष पर परिवाद में एकमात्र अभिकथन यह है कि यह सुनने पर कि वह गर्भवती है, याची उसे डॉक्टर के पास ले गया जिसने गर्भपात कारित किया। मामला यह नहीं है कि यह उसकी सहमति के बिना था। दूसरी ओर, प्रकथन दर्शाता है कि उसने स्वयं को स्वेच्छापूर्वक गर्भपात के लिए प्रस्तुत किया और उसके बाद भी उसने याची के साथ यौन संभोग किया था। यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि गर्भपात उसकी प्रेरणा पर हुआ था। क्या वह केवल महिला के अनुरोध पर उसके साथ गया था और क्या उसने गर्भपात के लिए डॉक्टर से अनुरोध भी किया था, ये अभिकथनों से स्पष्ट नहीं है। डॉक्टर जिसने गर्भपात किया था को अभियुक्त नहीं बनाया गया है जिसका अर्थ है उसे उसके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है। यह स्पष्ट है कि धारा 313 के अधीन अभिकथनों से कोई अपराध नहीं बनता है।''

6. अपना तर्क समाप्त करते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि **AIR 2000 SC 2324** में प्रकाशित **कंस राज बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य** के मामले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने दहेज मृत्यु से संबंधित मामले पर विचार करते हुए अभियोजन की वर्तमान प्रवृत्ति पर दु:ख अभिव्यक्त किया और संप्रेक्षित किया,

''दहेज मृत्युओं के मामलों में मृतक पत्नी के समस्त ससुराली संबंधियों को फँसाने की प्रवृत्ति विकसित हुई है जिसे यदि हतोत्साहित नहीं किया जाता है, इसके वास्तविक दोषियों के विरुद्ध भी अभियोजन के मामले को प्रभावित करने की संभावना है। अधिकतम व्यक्तियों की दोषसिद्धि इप्सित करने के अपने उत्साह और चिंता में मृतक के माता-पिता को अन्य संबंधियों को अंतर्ग्रस्त करने का प्रयास करते हुए पाया गया है जो अंततः वास्तविक अभियुक्तगण के विरुद्ध भी अभियोजन का मामला कमजोर बनाता है।''

7. दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 1075 वर्ष 2010 के अन्य याचीगण-अभियुक्तगण अभिकथित अपराध और प्रस्तावित आरोप से बिल्कुल संबंधित नहीं थे। याची सं॰ 1 शोभा देवी उर्फ किरण उर्फ एम॰ एस॰ किरण विवाहित ननद है, याची सं॰ 2 निभा किरण आनंद उर्फ निभा किरण भी विवाहित ननद है, याची सं॰ 3 विभा किरण अविवाहित ननद है और याची सं॰ 4 शैलेश प्रकाश उर्फ शैलेज प्रकाश सूचक के पति का छोटा भाई है और वह भी अविवाहित था।

8. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अथवा इसके किसी अन्य धाराओं के अधीन आरोप के लिए इन याचीगण के विरुद्ध अग्रसर होने के लिए कोई प्रथम दृष्टया सामग्री नहीं थी और कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन उनके उन्मोचन के लिए याचिका यंत्रवत रूप से प्रत्येक के विरुद्ध अभिकथन और मामले के अन्वेषण के क्रम में संग्रहित सामग्री पर चर्चा किए बिना खारिज कर दी गयी थी।

9. अपना तर्क आगे बढ़ाते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची शोभा देवी उर्फ किरण उर्फ एम॰ एस॰ किरण अपने पति अरविंद कुमार सिंह के साथ टेल्को कॉलोनी, जमशेदपुर में रह रही थी जबकि याची सं॰ 2 निभा किरण आनन्द उर्फ निभा किरण अपने पति देवानंद के साथ धनबाद में रह रही थी। याची विभा किरण पति की छोटी बहन होने के नाते और याची सं॰ 5 श्री शैलेश प्रकाश पति का छोटा भाई होने के नाते उनका सूचक नूतन कुमारी के पति के पारिवारिक मामले के साथ कुछ भी लेना-देना नहीं था और अपने पति तथा परिवार के समस्त सदस्यों से प्रतिशोध लेने के लिए इन चारों याचीगण को उसके द्वारा आलिप्त किया गया था और इस तरीके से उनमें से किसी के विरुद्ध आरोप किसी भी विनिर्दिष्ट प्रत्यक्ष कृत्य के बिना इन चारों याचीगण को द्वेषपूर्वक अभियोजित किया गया है, जो निर्दोष थे और द्वेषपूर्ण अभियोजन के शिकार बन गए हैं और इसलिए, उनकी दांडिक कार्यवाही न्याय की हानि की कोटि में आएगी। विद्वान न्यायालय ने विनिर्दिष्ट कथनों पर चर्चा किए बिना इन याचीगण के विरुद्ध इस संप्रेक्षण के साथ आरोप प्रस्तावित किया,

> *''मैं इस पर विस्तारपूर्वक चर्चा करना नहीं चाहता हूँ और अभिकथनों को उनकी संपूर्णता में स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित करता हूँ कि शेष छह अभियुक्तगण अर्थात् डॉ० कुमार नीरज प्रकाश, श्रीमती देविका लाल, श्री शैलेश प्रकाश, शोभा देवी उर्फ किरण उर्फ एम० एस० किरण, विभा किरण और निभा किरण आनंद उर्फ निभा किरण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498A/323/34/506 और 379 के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन उनमें से प्रत्येक के विरुद्ध आरोप विरचित करने के लिए यह पर्याप्त है।''*

10. पति और सास के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 313/34 के अधीन पृथक आरोप प्रस्तावित किया गया था। यह सुनिश्चित है कि जब कभी उन्मोचन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन याचिका दाखिल की जाती है, विचारण न्यायालय से अपने आदेश में अभियुक्तगण में से प्रत्येक के विरूद्ध कुछ प्रथम दृष्टया समाग्रियां लाया गया परन्तु वर्तमान मामले में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन याचिका इन चारों याचीगण के विरुद्ध विनिर्दिष्ट अभिकथन सुभिन्न किए बिना एक ही आदेश द्वारा खारिज कर दी गयी थी। इन चारों याचीगण के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 379 के अधीन अपराध आकृष्ट नहीं होता है। अपवादों के साथ यह सुस्वीकृत है कि दहेज की अभिकथित मांग में अविवाहित ननदों की कोई भूमिका नहीं थी। यह उल्लिखित करना प्रासंगिक है कि सत्र विचारण सं॰ 291 वर्ष 2010 में ए॰ जे॰ सी॰, एफ॰ टी॰ सी॰ II द्वारा पारित दिनांक 28.10.2010 के आक्षेपित आदेश जिसके द्वारा समस्त अभियुक्तगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 316 के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 के अधीन भी अपराध से उन्मोचित कर दिया गया था, को चुनौती देते हुए सूचक नूतन कुमारी ने दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 1035 वर्ष 2010 दाखिल किया था और आगे कथित किया गया था कि श्वसुर श्री परमेश्वर लाल के विरुद्ध मजबूत प्रथम दृष्टया मामला बनता था किंतु अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों का अधिमूल्यन किए बिना गलत अनुचिंतन पर गैर कानूनी रूप से उसे उन्मोचित कर दिया गया था और उस तरीके से याची-सूचक पर प्रतिकूलता कारित की गयी थी चूँकि विचारण के क्रम में सामग्री को अभी भी संग्रहित किया जाना था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि यह सुझाने के लिए पर्याप्त सामग्री थी कि समस्त अभियुक्तगण के कहने पर पति ने गोलियाँ दी थी जिसका परिणाम सूचक के गर्भपात में हुआ और दिनांक 28.10.2010 के आक्षेपित आदेश को अपास्त करने के लिए अनुरोध किया गया था जहाँ तक यह भारतीय दंड संहिता की धारा 313 के अधीन अपराध के लिए विपक्षी पक्षकार सं॰ 4 श्री परमेश्वर लाल के उन्मोचन और अन्य अभियुक्तगण श्री शैलेश प्रकाश, निभा आनंद, बिभा किरण और शोभा देवी के उन्मोचन से संबंधित था।

11. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, और पक्षों की ओर से किए गए परस्पर विरोधी प्रतिवादों को अधिमूल्यन करते हुए, मैं आक्षेपित आदेश सहित संपूर्ण सामग्रियों से प्रथम दृष्टया पाता हूँ कि दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन प्रस्तावित आरोप के अतिरिक्त भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498A/323/34/506 और 379 के अधीन और भारतीय दंड संहिता की धारा 313 के अधीन भी प्रस्तावित आरोप के लिए उनके विरुद्ध अग्रसर होने के लिए पति और याची के विरुद्ध प्रथम दृष्टया अभिकथन था। जहाँ तक अन्य याचीगण श्री शैलेश प्रकाश, शोभा देवी उर्फ किरण उर्फ एम॰ एस॰ किरण, विभा किरण और निभा किरण आनंद उर्फ निभा किरण की सह-अपराधिता का संबंध था, उनके विरुद्ध कोई विनिर्दिष्ट प्रत्यक्ष कृत्य आरोपणीय नहीं था सिवाय इसके कि वे अनेक प्रकार की क्रूरता करने में अपनी माता अर्थात् सूचक की सास का पक्ष लिया करते थे और उस तरीके से उनके विरुद्ध बहुप्रयोजनीय अभिकथनों को किया गया है। अभिकथित अपराध से सूचक के श्वसुर श्री परमेश्वर लाल को उन्मोचित करने में मैं कोई अवैधता अथवा अनियमितता नहीं पाता हूँ और विद्वान अपर न्यायिक कमिश्नर ने उन्मोचन के आधारों पर विस्तारपूर्वक विचार किया था जिसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। मैं आगे अधिमूल्यन करता हूँ कि इन तथ्यों और परिस्थितियों में याचीगण में से किसी के विरुद्ध धारा 316 के अधीन अपराध आकृष्ट नहीं होता है। जहाँ तक पति और सास के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 313 के अधीन प्रस्तावित आरोप का संबंध है, यह पूर्णत: उनके विचारण के क्रम में अभिलेख पर प्रस्तुत किए जाने वाले सामग्रियों पर आधारित है चूँकि इसमें तथ्य का प्रश्न अंतर्ग्रस्त था कि क्या गोली दिए जाने पर, जो उसके गर्भपात का कारण हो सकता था, सूचक का गर्भपात उसकी सहमति से अथवा उसकी सहमति के बिना करवाया गया था।

12. मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में और **AIR 2000 SC 2324** में प्रकाशित **कंस राज बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य (ऊपर)** के मामले में दिए गए निर्णय पर विश्वास करते हुए मैं इस दृष्टिकोण से सहमत हूँ कि ''दहेज मृत्युओं के मामलों में मृतक पत्नी के समस्त ससुराली संबंधियों को आलिप्त करने की प्रवृत्ति विकसित हुई है'' बल्कि एक कदम आगे ऐसे झूठे अभिकथन बारम्बार भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन अभिकथित किए जाते हैं जिन्हें यदि हतोत्साहित नहीं किया जाता है, नागरिक समाज में इनके द्वारा खतरा सृजित करने की संभावना है। भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन अथवा धारा 498A के अधीन अभिकथित अपराध के लिए उनके दांडिक दायित्व से सूचक की विवाहित अथवा अविवाहित ननद होने के नाते अन्य ससुराल वालों को विमुक्त करने के लिए कोई कठोर फॉर्मूला नहीं हो सकता है किंतु कुछ मामलों में दहेज की मांग के संबंध में यातना देने में उनकी परिभाषित भूमिका को केंद्रीय पाया गया है और वैसे मामले में सतर्कता का नियम लागू होगा। किंतु वर्तमान मामले में मैं पाता हूँ कि चार याचीगण, जो सूचक के विवाहित और अविवाहित ननद हैं और सूचक के पति के छोटे भाई को दहेज की मांग करने अथवा सूचक को यातना देने में किसी विनिर्दिष्ट आरोपण के बिना अपनी माता का पक्ष लेने के अभिकथन से आरोपित किया गया है जिसे प्रस्तावित आरोप के आधार पर उनके विरुद्ध अग्रसर होने के लिए प्रथम दृष्टया मामला नहीं कहा जा सकता है। ऊपर चर्चा किए गए कारणों से मैं दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 1075 वर्ष 2010 में गुणागुण पाता हूँ और संप्रेषित करता हूँ कि दिनांक 28.10.2010 के आक्षेपित आदेश में निर्दिष्ट प्रस्तावित आरोप के लिए उनके विरुद्ध अग्रसर होने के लिए उनमें से किसी के विरुद्ध प्रथम दृष्टया सामग्री नहीं पायी जा सकी थी, तद्नुसार, याचीगण शोभा देवी उर्फ किरण उर्फ एम॰ एस॰ किरण, निभा किरण आनंद उर्फ निभा किरण, विभा किरण और शैलेश प्रकाश उर्फ शैलेज प्रकाश का उन्मोचन दर्ज करके दिनांक 28.10.2010 का आक्षेपित आदेश परिवर्तित किया जाता है। तद्नुसार दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 1075 वर्ष 2010 अनुज्ञात किया जाता है। जहाँ

तक पति और सास के उन्मोचन की प्रार्थना का संबंध है, मैं विद्वान अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से सहमत हूँ कि प्रस्तावित आरोप के लिए उनके विरुद्ध अग्रसर होने हेतु प्रथम दृष्टया सामग्री थी और इसलिए दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 1112 वर्ष 2010 खारिज किया जाता है।

13. जहाँ तक सूचक नूतन कुमारी की ओर से दाखिल दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 1035 वर्ष 2010 का संबंध है, मैं इसमें कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ जो दांडिक पुनरीक्षण याचिका के प्रतिवाद और उसकी ओर से किए गए निवेदनों की दृष्टि में विद्वान अपर न्यायिक कमिश्नर, एफ॰ टी॰ सी॰-II, राँची द्वारा पारित दिनांक 28.10.2010 के आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने की अपेक्षा करता हो।

14. तद्नुसार, दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 1035 वर्ष 2010 खारिज किया जाता है और ऊपर उपदर्शित तरीके से इसे एक ही आदेश द्वारा समस्त तीनों पुनरीक्षणों को निपटाया जाता है।

माननीय जया रॉय, न्यायमूर्ति

कमला कांत मिश्रा एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य, निगरानी के माध्यम से

W.P. (Cr) No. 309 of 2010. Decided on 19th July, 2011.

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988—धाराएँ 13(1)(d) एवं 13(2)—छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908—धारा 49—आदिवासी की भूमि की गैर-कानूनी खरीद—संज्ञान—याचीगण सहकारी समिति के सदस्य हैं–सोसाइटी के सदस्यों को आदिवासी की भूमि का आवंटन और अंतरण धारा 49 के उल्लंघन में किया गया था—यदि गैर-लोक सेवक ने उन अपराधों में से किसी को दुष्प्रेरित किया है जो लोक सेवक करता है, ऐसा गैर-लोक सेवक भी लोकसेवक के साथ विचारण किए जाने का दायी है—याचीगण लोक सेवक द्वारा किए गए अपराधों के लाभार्थी/दुष्प्रेरक हैं— रिट आवेदन खारिज। (पैराएँ 4, 5, 7 एवं 8)

निर्णयज विधि.–(1999) 6 SCC 559—Followed.

अधिवक्तागण.–M/s P.P.N. Roy, Jyoti Prasad Sinha, For the Petitioners; Mr. Nilesh Kumar, For the Vigilance.

आदेश

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और निगरानी के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचीगण ने इस दांडिक रिट आवेदन को निगरानी पी॰ एस॰ केस॰ सं॰ 29 वर्ष 2000 के तहत दर्ज प्राथमिकी के अभिखंडन के लिए और दिनांक 19.11.2009 के संज्ञान लेने वाले आदेश के अभिखंडन के लिए और भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420/467/468/471/477(A)/109/120(B) और 201 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(d) सह-पठित धारा 13(2) के अधीन निगरानी पी॰ एस॰ केस सं॰ 29 वर्ष 2000 (विशेष केस सं॰ 16 वर्ष 2000 के तत्सम) में याचीगण के विरूद्ध संपूर्ण कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए भी समुचित रिट/आदेश अथवा निर्देश जारी करने के लिए दाखिल किया है।

3. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि भूमि घोटाले के अन्वेषण के क्रम में यह पाया गया है कि रैयत मंगल टिग्गा, फिलमन टिग्गा और सिलोफिन टिग्गा ने खाता सं॰ 102, मौजा हिनू के 0.71 एकड़ कुल क्षेत्रफल वाले भूमि के तीन भूखंडों के अंतरण के लिए ''महावीर सहकारी गृह निर्माण समिति'' (इसमें इसके बाद ''समिति'' के रूप में निर्दिष्ट) के नाम से ज्ञात रजिस्ट्रेशन सं॰ 2/1987 वाले रजिस्टर्ड आवासीय सहकारी सोसाइटी के पक्ष में अनुमति देने के लिए छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम (इसमें इसके बाद ''सी॰ एन॰ टी॰'' अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 49 के अधीन आवेदन दाखिल किया था, जिसे विविध केस सं॰ 9/87-88 के रूप में उप कमिश्नर, राँची के कार्यालय में दर्ज किया गया था। इसी प्रकार, हरदगन मुंडा और 10 अन्य आदिवासियों ने भी मौजा हिनू के चार भूखंडों की भूमि का अंतरण के लिए उक्त समिति के पक्ष में अनुमति प्रदान करने के लिए आवेदन दाखिल किया था जिसे उपकमिश्नर, राँची के कार्यालय में विविध केस सं॰ 10/87-88 के रूप में दर्ज किया गया था। दिनांक 5.6.87 को सम्यक जांच के बाद कि 'समिति' बंजर भूमि पर गृह निर्माण के प्रयोजन से भूमि खरीदने की इच्छुक है, उप कलक्टर, विधि शाखा, राँची के रिपोर्ट पाकर उप कमिश्नर, राँची ने मूल्यांकित किया कि भूमि का बाजार मूल्य 4000/- रुपया प्रति डिसमिल होगा और उन्होंने छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 49 के अधीन अनुमति देने की अनुशंसा की। तत्कालीन उप कमिश्नर, राँची ने रिपोर्ट और विधि के प्रावधान का विश्लेषण करने के बाद दोनों मामलों में अनुमति देने से इनकार कर दिया। रैयतों ने कमिश्नर, दक्षिणी छोटानागपुर डिविजन, राँची के समक्ष अपील दाखिल किया जिसे अपील सं॰ 307 वर्ष 1987 के रूप में संख्यांकित किया गया था किंतु उन्होंने आदेश अपास्त कर दिया और मामला उप कमिश्नर, राँची को वापस भेज दिया। मामला वापस भेजे जाने के बाद, उप कमिश्नर, राँची ने दिनांक 14.12.1987 से दिनांक 30.11.90 के बीच कोई आदेश पारित नहीं किया था। तत्कालीन उप कमिशनर, राँची श्री सुधीर प्रसाद ने दिनांक 8.9.1992 के आदेश द्वारा आदिवासी रैयतों को 5000/- रुपया प्रति डिसमिल का भुगतान किए जाने पर अनुमति प्रदान किया। उप कमिश्नर, राँची से अनुमति प्राप्त करने के बाद, ''समिति'' के सचिव श्री के॰ के॰ मिश्रा ने ''समिति'' के पक्ष में रजिस्टर्ड विलेखों के माध्यम से भूमि अंतरित करवाया और तत्पश्चात उक्त भूमि के संबंध में उक्त ''समिति'' का नाम अंतरित किया गया था। यह पाया गया था कि दोनों भूमि आस-पास थी और चारदीवार से घिरी हुई थी। सहायक रजिस्ट्रार, सहकारी सोसाइटी, राँची ने सूचित किया कि ''महावीर सहकारी गृह निर्माण समिति'' रजिस्टर्ड सोसाइटी है और इसकी रजिस्ट्रेशन सं॰ 2 वर्ष 1987 है और इसके 22 सदस्य हैं। श्री कमलाकांत मिश्रा उक्त ''समिति'' के आयोजक और प्रथम सचिव थे। ब्लू प्रिंट की प्रमाणित प्रति भी प्रस्तुत की गयी थी। अब इसके 28 सदस्य हैं और ''समिति'' ने उनको भूमि आवंटित किया है। आवंटन के बाद भूमि 28 सदस्यों को अंतरित की गयी थी और वर्ष 1994-95 में उनके नामों को नामांतरित किया गया था। आगे, अभिकथित किया गया था कि सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 49 का उल्लंघन हुआ था क्योंकि पूर्वोक्त भूमि पूर्त, धार्मिक, शिक्षण अथवा सिंचाई प्रयोजन से नहीं दी गयी थी। इसे आवासीय प्रयोजन से दिया गया था। इस तरीके से, तत्कालीन उप कमिश्नर, राँची ने अन्य सरकारी पदधारियों के साथ आधिकारिक शक्ति का दुरूपयोग किया और कूट रचना तथा षडयंत्र किया और ''समिति'' के सदस्यों को भूमि अंतरित करके भोले आदिवासी रैयतों के साथ छल किया और इसलिए प्रथम दृष्टया मामला निर्मित हुआ है। अत: वर्तमान मामला रजिस्टर्ड किया गया है।

4. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ पी॰ एन॰ रॉय निवेदन करते हैं कि याचीगण सहकारी सोसाइटी के सदस्य और खरीदार होने के नाते ''लोक सेवक'' की परिभाषा के अधीन नहीं आते हैं, अत: उन्हें भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 13(1)(d) सह-पठित 13(2) के अधीन अभियोजित नहीं किया जा सकता है। धारा 13 केवल लोक सेवक के दांडिक अवचार से संबंधित

है। यह प्रतिवाद भी किया गया है कि याचीगण सहकारी सोसाइटी के सदस्य हैं और उन्होंने सोसाइटी अर्थात ''महावीर सहकारी गृह निर्माण समिति'' के माध्यम से प्रश्नगत भूमि खरीदा है। वे न तो वे व्यक्ति हैं जिन्होंने अनुमति के लिए आवेदन दिया था और न ही सरकारी पदधारीगण हैं जिन्होंने अनुमति प्रदान किया है। चूँकि प्राथमिकी में किसी अपराध किए जाने के संबंध में कोई अभिकथन नहीं है, अत: भारतीय दंड संहिता के किसी प्रावधान के अधीन अथवा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन कोई अपराध निर्मित नहीं हुआ था और इसलिए, प्राथमिकी और संपूर्ण दांडिक कार्यवाही तथा दिनांक 19.11.2009 के संज्ञान के आदेश को अभिखंडित किए जाने की आवश्यकता है।

5. निगरानी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री निलेश कुमार ने निवेदन किया है कि याचीगण सहकारी सोसाइटी अर्थात ''महावीर सहकारी गृह निर्माण समिति'' धुर्वा, राँची के सदस्य हैं। इस सोसाइटी ने पूरी तरह जानते हुए कि समस्त भूस्वामी भी आदिवासी हैं और उक्त भूमि की खरीद का प्रयोजन पूर्त, धार्मिक, शैक्षणिक अथवा किसी औद्योगिक प्रयोजन के लिए अथवा ऐसे प्रयोजन के लिए नहीं था, जो लोक प्रयोजन घोषित किए जाने के लिए सरकार के अथवा सक्षम प्राधिकारी के सामान्य अथवा विशेष आदेश द्वारा आच्छादित है। सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 49 के मुताबिक गृह निर्माण के प्रयोजन से भूमि खरीदा था। अन्वेषण में आया है कि सरकारी पदधारियों की सांठगांठ से याचीगण 0.71 एकड़ कुल माप वाले खाता सं॰ 102, सर्वे भूखंड संख्या 636, 637 और 638 की भूमि के लिए भूमि घोटाला में संलिप्त थे। इसी प्रकार, मौजा हिनू के कुल 1.67 एकड़ कुल क्षेत्र वाले खाता सं॰ 174 और 57, भूखंड संख्या 635, 647, 648, 649 और 650 की आदिवासी भूमि को सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम, 1908 की धारा 49 के प्रावधानों के उल्लंघन में ''समिति'' के पक्ष में व्यवस्थापित किया गया था और तद्द्वारा अपने सदोष लाभ के लिए उन्होंने अपराध को दुष्प्रेरित किया और अपनी पदीय हैसियत का दुरूपयोग करने के लिए सरकारी पदधारियों को आधार प्रस्तुत किया। अत:, यह स्पष्ट है कि ''समिति'' के सदस्यों को आदिवासी भूमि का आवंटन और अंतरण सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम, 1908 की धारा 49 के प्रावधान के उल्लंघन में किया गया था।

6. श्री निलेश कुमार आगे निवेदन करते हैं कि आरंभ से ही सहकारी सोसाइटी की विरचना करके आदिवासी भूमि पर दखल करने का आशय ''समिति'' के सदस्यों का था जो अंतत: सफल हुआ और इसके 28 सदस्यों को गृह निर्माण के लिए भूमि मिल गयी।

7. यह प्रतिवाद भी किया गया है कि याचीगण प्रथम लाभार्थी हैं। श्री निलेश कुमार ने यह प्रतिवाद भी किया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पी॰ नल्लाम्मल एवं एक अन्य बनाम राज्य, पुलिस इंस्पेक्टर के प्रतिनिधित्व में, (1999)6 SCC 559** में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

> *''10.....यदि पी० सी० अधिनियम के अधीन किसी अपराध को लोक सेवक द्वारा करने के लिए गैर-लोक सेवक भी दांडिक षडयंत्र का सदस्य है अथवा यदि ऐसे गैर-लोक सेवक ने अपराधों में से किसी को दुष्प्रेरित किया है जो लोक सेवक करता है, तो ऐसा गैर लोक सेवक भी मामले में अधिकारिता रखने वाले विशेष न्यायाधीश के न्यायालय के समक्ष लोक सेवक के साथ विचारण किए जाने का दायी होगा।''*

8. उक्त तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में, जैसा उपर उल्लिखित किया गया है, याचीगण लाभार्थी होने के नाते और कम से कम अपराधों, जिन्हें लोकसेवकों द्वारा किया गया है, दुष्प्ररेक होने के नाते, मैं इस आवेदन में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, इस दांडिक रिट आवेदन को खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

मनोज कुमार झा उर्फ मनोज झा एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. M.P. No. 554 of 2011. Decided on 27th June, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/201/34—दहेज के लिए ससुराल वालों द्वारा महिला की हत्या—याचीगण को प्राथमिकी में नामित नहीं किया गया है और सूचक उनकी सह-अपराधिता के बारे में मौन है—किंतु याचीगण, यदि वे अपनी गिरफ्तारी से बच रहे हैं, के विरूद्ध आदेशिका जारी करने में कोई अवैधता नहीं है—अभियुक्तगण, जिन्हें प्राथमिकी में नामित नहीं किया गया है, के विरूद्ध आदेशिका जारी की जा सकती है परन्तु यह कि उनके विरूद्ध सामग्री संग्रहित की गयी हो—याचीगण को अवर न्यायालय में आत्मसमर्पण करने और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 के अधीन याचिका प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया।

(पैराएँ 7 से 9)

अधिवक्तागण.—M/s Jai Prakash Jha, Shree Prakash Jha, Aishwarya Prakash, For the Petitioners; Mr. Md. Hatim, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.—याचीगण ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब उस आदेश के अभिखंडन के लिए लिया है जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 302/201/34 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए पथरगामा पी॰ एस॰ केस सं॰ 51 वर्ष 2010 से उद्भूत जी॰ आर॰ केस सं॰ 407 वर्ष 2010 में क्रमशः दिनांक 22.1.2011, 7.2.2011 और 22.3.2011 को दंड प्रक्रिया संहिता की धाराएँ 82/83 के अधीन गिरफ्तारी वारन्ट और बाद में आदेशिकाएँ जारी की गयी थी।

2. याचीगण का मुख्य प्रतिवाद यह है कि समन का तामीला किए बिना उनके विरूद्ध गिरफ्तारी वारन्ट जारी किया गया था और बाद में उनकी गिरफ्तारी वारन्ट की निष्पादन रिपोर्ट की प्रतीक्षा किए बिना आदेशिकाएँ जारी की गयी थी और तत्पश्चात लगभग एक माह बाद अभिलेख पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अधीन आदेशिका का निष्पादन रिपोर्ट हुए बिना दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 83 के अधीन सी॰ जे॰ एम॰, गोड्डा द्वारा कुर्की आदेश जारी किया गया था और विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री जय प्रकाश झा के अनुसार, यह न्यायालय की प्रक्रिया के दुरूपयोग की कोटि में आता है।

3. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि पीड़ित बालिका के सूचक-पिता ने पथरगामा पुलिस के सामने लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कथन किया कि उसने दिनांक 1.3.2002 को अपनी पुत्री मोनी देवी का विवाह शंकर झा से किया था। शंकर झा चार भाई थे जो दहेज के लिए उसकी पुत्री को यातना दे रहे थे जिसके बारे में उसे समय-समय पर सूचित किया गया था किंतु उसने मामला शांत कराने का प्रयास किया था। चूँकि उसका दामाद शंकर झा मानसिक रूप से अंशतः विक्षिप्त था, समस्त नामित अभियुक्तगण ने उसके दामाद का आवास गृह ढाह कर एक नए पक्के भवन का निर्माण किया जिसका विरोध उसकी पुत्री मोनी देवी द्वारा किया गया था और जवाबी कार्रवाई में, यह अभिकथित किया गया है, छोटू झा जो उसके दामाद के बड़े भाई का पुत्र था, ने जबरदस्ती उसका बलात्कार किया। जब वह अभिकथित घटना के लिए मामला दर्ज कराना चाहती थी, समस्त अभियुक्तगण द्वारा उसे ऐसा नहीं करने के लिए दवाब डाला गया। इस बीच, षडयन्त्र रचा गया था और सह-अपराधी धर्मेन्द्र झा की प्रेरणा पर उसका दामाद अपने ग्राम निवास से कहलगाँव चला गया। दिनांक 26.3.2003 की रात्रि को सूचक को

उसके सेलफोन पर सूचित किया गया था कि उसकी पुत्री मोनी ने आत्महत्या कर लिया है। वह अगले दिन प्रात: लगभग 11 बजे महेशपुर गया और अपनी पुत्री को मृत पाया जिसका शरीर, अंशत: बाल एवं साड़ी सहित जला हुआ था और उसके मृत शरीर से किरासन तेल की गंध आ रही थी। उसकी दो संतानों को सूचक से मिलने नहीं दिया गया और लिखित रिपोर्ट के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302/201/34 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए नामित अभियुक्तगण के विरूद्ध पथरगामा पी॰एस॰ केस सं॰ 51 वर्ष 2010 दर्ज किया गया था।

4. विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री झा ने निवेदन किया कि याचीगण को प्राथमिकी में नामित नहीं किया गया था और वे नामित अभियुक्तगण से दूर या पास से भी संबंधित नहीं थे और साक्ष्य के किसी मेमो के बिना अन्वेषण अधिकारी द्वारा तलब किया गया था।

5. श्री झा ने आगे निवेदन किया कि मामला भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302/201/34 के अधीन दर्ज किया गया था और सूचक ने अपने रिपोर्ट में कहीं भी याचीगण की सह-अपराधिता अभिकथित नहीं किया था, किंतु सी॰ जे॰ एम॰, गोड्डा ने अपने न्यायिक विवेक का इस्तेमाल किए बिना और याचीगण के विरूद्ध साक्ष्य का मेमो मांगे बिना केवल इस आधार पर कि अन्वेषण के दौरान याचीगण की सह-अपराधिता प्रतीत हुई थी, पूर्वोक्तानुसार आदेशिकाओं को जारी किया। प्रासंगिक आदेशों की प्रमाणित प्रतियों, जिनके द्वारा समस्त तीन आदेशिकाओं को जारी किया गया था, को अभिलेख पर लाया गया है और आर्डर शीट्स में से किसी में यह कहीं भी उल्लिखित नहीं किया गया है कि सी॰ जे॰ एम॰ ने याचीगण के विरूद्ध उनके सम्मुख रखी गयी सामग्रियों से प्रथम दृष्टया संतुष्ट होकर आदेशिकाओं को जारी रखने के लिए आदेशों को जारी किया था।

6. अंत में, श्री झा ने निवेदन किया कि याचीगण ने इस न्यायालय के समक्ष ए॰ बी॰ ए॰ सं॰ 1073 वर्ष 2011 में अग्रिम जमानत के लिए याचिका दाखिल किया था जिसे अस्वीकार कर दिया गया है।

7. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं पाता हूँ कि सी॰ जे॰ एम॰, गोड्डा ने न्यायिक विवेक के इस्तेमाल पर अपनी व्यक्तिपरक संतुष्टि प्रकट किए बिना याचीगण के विरूद्ध पूर्वोक्त आदेशिकाओं को जारी किया। आदेशिकाओं को जारी करने के लिए आवेदनों के समर्थन में सी॰ जे॰ एम॰ के समक्ष इस बारे में चर्चा तक नहीं है कि याचीगण की सह-अपराधिता प्रकट करते हुए साक्ष्य का कोई मेमो प्रस्तुत किया गया था।

8. मैं पाता हूँ कि याचीगण को प्राथमिकी में नामित नहीं किया गया था और सूचक उनकी सह-अपराधिता के बारे में मौन है किंतु मैं याचीगण, यदि वे अपनी गिरफ्तारी से सचमुच बच रहे हैं, के विरूद्ध आदेशिकाओं को जारी करने में कोई अवैधता नहीं पाता हूँ। मैं पाता हूँ कि अग्रिम जमानत याचिका जिसे खारिज कर दिया गया था, दाखिल करके याचीगण इस न्यायालय के समक्ष आए थे। अभियुक्तगण, जिन्हें प्राथमिकी में नामित नहीं किया गया है, के विरूद्ध आदेशिकाओं को जारी किया जा सकता है परन्तु यह कि अन्वेषण के दौरान उनके विरूद्ध सामग्रियाँ संग्रहित की गयी हों और इस न्यायालय के समक्ष लायी गयी हो।

9. इन परिस्थितियों में, मैं याचीगण (1) मनोज कुमार झा उर्फ मनोज झा, (2) शशिकर झा उर्फ पिंकी झा को इस आदेश के 15 दिनों के भीतर अवर न्यायालय में आत्मसमर्पण करने का निर्देश देता हूँ और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 के अधीन उनके द्वारा या याचिका की प्रस्तुति पर इस आदेश से प्रतिकूलता प्राप्त किए बिना स्वयं इसके गुणागुण पर विचार किया जा सकता है।

10. इन संप्रेक्षणों के साथ यह याचिका खारिज की जाती है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

मेसर्स सी॰ एम॰ राजगढ़िया (प्राइवेट) लिमिटेड, गिरिडीह

बनाम

झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड, राँची एवं एक अन्य

W.P. (C) No. 3120 of 2002. Decided on 11th July, 2011.

विद्युत विधि–ऊर्जा प्रभारों की माफी/वापसी–हाई टेंशन करार का खंड 13—यदि बोर्ड कुछ अवधि के लिए विद्युत ऊर्जा की आपूर्ति करने में अक्षम रहता है, मांग प्रभार और गारंटी प्रदत्त ऊर्जा प्रभार उस अवधि के लिए अनुपाततः घटा दिया जाना चाहिए–खंड 13 के अधीन प्रदत्त दर्ज करने में याची की ओर से विलंब नहीं हुआ है–बोर्ड अपने पदाधिकारियों द्वारा की गयी गलती का लाभ नहीं ले सकता है–जब कभी वापसी का दावा करने के लिए सांविधिक प्रोफॉर्मा होता है, बोर्ड को विहित प्रोफॉर्मा के ऐसे प्रकार की तुरन्त आपूर्ति करना चाहिए–खंड 13 के अधीन याची के दावे पर स्वयं इसके गुणागुणों पर विचार किया जाय क्योंकि याची द्वारा दावा दर्ज करने में कोई विलंब नहीं हुआ है–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 5 एवं 6)

निर्णयज विधि.–1994 BBCJ 369—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Mrinal Kanti Roy, For the Petitioner; Mr. Rajesh Shankar, For the Respondents.

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.–याची के विद्वान अधिवक्ता अपनी प्रार्थना केवल इस सीमा तक सीमित रखते हैं कि वर्ष 1993-94 के लिए परिशिष्ट-6 पर आक्षेपित आदेश में दर्शायी गयी संगणना माफी/छूट की कम राशि देती है और वस्तुतः हाई टेंशन करार (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-5) के खंड 13 सह-पठित माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए अनेक निर्णय के मुताबिक 30 मिनट की अवधि से कम के लिए भी अनुसूची में उपवर्णित मांग प्रभारों और गारंटीप्रदत्त ऊर्जा प्रभारों को उस अवधि के लिए अनुपातत: घटा दिया जाना चाहिए, और, इसलिए, वर्ष 1993-94 के लिए 761 घंटों की संगणना के बजाय, इसे 1462 घंटे होना चाहिए था, और, इसलिए, याचिका के मेमो के परिशिष्ट-6 पर आक्षेपित आदेश में दर्शायी गयी संगणना वर्ष 1993-94 के लिए 761 घंटों पर आधारित संगणना के बजाय 1462 घंटों के आधार पर होनी चाहिए।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रतिवाद किया गया है कि वर्ष 1997-98 के लिए प्रत्यर्थी-झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड द्वारा प्रस्तुत ऊर्जा प्रभारों के लिए बिल (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-3) भुगतान की अंतिम तिथि 30 मई, 1998 के रूप में आच्छादित करता है, और, इसलिए, हाई टेंशन करार (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-5) के खंड 13 के मुताबिक, दिनांक 28 मई, 1998 का पत्र (याची द्वारा दाखिल प्रत्युत्तर शपथ पत्र का परिशिष्ट-7) लिखा था और याची ने विरोधाधीन बिल की राशि के 50% भुगतान का भी प्रस्ताव दिया जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-3 पर है और हाई टेंशन करार (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-5) के खंड 13 के अधीन वापसी/छूट के दावा के लिए प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा नियत प्रोफॉर्मा भी मांगा है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि याचिका के मेमो के परिशिष्ट-3 पर बिल की 50% राशि पहले ही प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा स्वीकार कर ली गयी है। आगे निवेदन किया गया है कि वापसी का दावा करने के लिए हाई टेंशन करार के खंड 13 के अधीन कोई सांविधिक प्रोफॉर्मा नियत नहीं है। वस्तुतः, उपलब्ध डाटा के आधार पर, सरल संगणना की आवश्यकता है, किंतु,

फिर भी, दिनांक 28 मई, 1998 का पूर्वोक्त पत्र लिखा गया था, ताकि याची का दावा प्रत्यर्थीगण द्वारा इस आधार पर अस्वीकार नहीं कर दिया जाय कि याची ने प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा प्रकाशित प्रोफॉर्मा में आवेदन नहीं दिया है।

3.याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा दाखिल प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट-A पर प्रत्यर्थीगण द्वारा जारी अधिसूचना के खंड 4(b) के मुताबिक केवल बोर्ड द्वारा विहित प्रोफॉर्मा में हाई टेंशन करार के खंड 13 के अधीन याची द्वारा दावा किया जा सकता है और वह भी बिल की देय तिथि के बाद नब्बे दिनों के भीतर। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे प्रतिवाद किया गया है कि चूँकि प्रत्यर्थी-बोर्ड के प्राधिकारीगण ने समय के भीतर बोर्ड के विहित प्रोफॉर्मा की आपूर्ति नहीं किया है, वापसी का दावा करने में कुछ विलंब हुआ है और, इसलिए, विलंब, यदि हो, प्रत्यर्थी-बोर्ड की ओर से किया गया है और इसलिए याचिका के मेमो के परिशिष्ट-6 पर आक्षेपित आदेश के मुताबिक, प्रत्यर्थीगण द्वारा याची का दावा दरकिनार नहीं किया जा सकता है। वस्तुत:, बोर्ड स्वयं अपनी गलतियों का लाभ नहीं ले सकता है। बोर्ड का विहित प्रोफॉर्मा खुले बाजार में उपलब्ध नहीं है और यह केवल प्रत्यर्थी-बोर्ड के कुछ खास अधिकारियों के पास उपलब्ध है और, इसलिए, हाई टेंशन करार के खंड 13 के मुताबिक वापसी का दावा करने के लिए हर समय आज्ञा मानने के लिए याची को उन अधिकारियों के पास जाना पड़ता है। अत:, याचिका के मेमो के परिशिष्ट-6 पर, आक्षेपित आदेश, जहाँ तक यह वर्ष 1997-98 से संबंधित है, प्रत्यर्थीगण द्वारा गलत रूप से जारी किया गया है और, इसलिए, विलंबित आवेदन से संबंधित तथ्य पर विचार किए बिना वापसी/छूट की राशि संगणित करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को देते हुए वर्ष 1993-94 के लिए (क्योंकि प्रत्यर्थीगण द्वारा ''761 घंटों'' के रूप में गलत संगणना की गयी है और वस्तुत: इसे "1462 घंटा'' होना चाहिए था) और वर्ष 1997-98 के लिए भी नए निर्णय के लिए मामला संबंधित प्रत्यर्थी प्राधिकारी के पास वापस भेज दिया जाय।

4. मैंने प्रत्यर्थी-बोर्ड के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना है, जिन्होंने निष्पक्षत: निवेदन किया है कि जहाँ तक 30 मिनट से कम अवधि के लिए विद्युत ऊर्जा की अनापूर्ति के लिए वापसी/छूट और इस प्रकार मांग प्रभारों और गारंटीप्रदत्त प्रभारों की छूट/माफी का संबंध है, **महाप्रबंधक-सह-मुख्य अभियन्ता, राँची क्षेत्र विद्युत बोर्ड एवं अन्य आदि बनाम मेसर्स रॉल वेल इंटरप्राइजेज, राँची, आदि (एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 430 वर्ष 2001** और अन्य सदृश मामलों) के मामले में दिनांक 10 मार्च, 2003 के आक्षेपित आदेश के तहत यह पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि यदि प्रत्यर्थी-बोर्ड ने 30 मिनट से कम के लिए विद्युत ऊर्जा की आपूर्ति नहीं किया है, तब मांग प्रभारों और गारंटीप्रदत्त ऊर्जा प्रभारों के लिए छूट/वापसी देने के लिए यह अवधि संगणित की जाएगी क्योंकि हाई टेंशन करार के खंड 13 में 30 मिनट की लॉकिंग अवधि उल्लिखित नहीं की गयी है। अत:, प्रत्यर्थी-बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता इससे अधिक कुछ और निवेदन नहीं कर रहे हैं जहाँ तक वर्ष 1993-94 के लिए संगणना का संबंध है। जहाँ तक वर्ष 1997-98 के लिए वापसी के संबंध में याची के दावे का संबंध है, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट-A पर प्रत्यर्थीगण द्वारा जारी परिपत्र के खंड 4(b) के मुताबिक ऐसा आवेदन बिल की देय तिथि के बाद नब्बे दिनों के भीतर याची द्वारा दाखिल किया जाना चाहिए था। वर्तमान मामले के तथ्यों में, याची ने 20 दिनों के विलंब के बाद आवेदन दिया है और, इसलिए, इस विलंब के कारण वित्तीय वर्ष 1997-98 के लिए याची का दावा याचिका के मेमो के परिशिष्ट 6 पर आपेक्षित आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है। इसलिए, वर्ष

1993-94 के लिए, एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 430 वर्ष 2001 और अन्य सदृश मामलों में दिए गए दिनांक 10 मार्च, 2003 के पूर्वोक्त निर्णय के प्रकाश में पुन: संगणना करने के लिए मामला संबंधित प्रत्यर्थी प्राधिकारी के पास भेजे जाने की जरूरत है।

5. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि

(i) याची वर्ष 1993-94 के लिए और वर्ष 1997-98 के लिए भी महाप्रबंधक-सह-मुख्य अभियन्ता द्वारा पारित दिनांक 29 अप्रिल, 2002 के आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-6) को चुनौती दे रहा है।

(ii) प्रतिवाद याची और प्रत्यर्थी-बोर्ड के बीच हुई हाई टेंशन करार के खंड 13 के कारण उद्‌भूत हुआ है। हाई टेंशन करार के खंड 13 का पठन निम्नलिखित है:-

''13 यदि हड़ताल, दंगा, आग, बाढ़, विस्फोट, ईश्वरीय कृत्य अथवा युक्तियुक्त रूप से नियंत्रण के परे किसी अन्य कारण से पूर्णतः अथवा अंशतः इस करार के अधीन आपूर्ति की जाने वाली विद्युत ऊर्जा प्राप्त करने अथवा उपयोग करने से उपभोक्ता को किसी समय रोका जाता है अथवा यदि ऊपर उल्लिखित कारणों में से किसी अथवा समस्त के कारण ऐसी विद्युत ऊर्जा की आपूर्ति करने से बोर्ड को रोका जाता है अथवा बोर्ड आपूर्ति करने में अक्षम है, तब अनुसूची में उपवर्णित मांग प्रभार और गारंटीप्रदत्त ऊर्जा प्रभार उपभोक्ता की क्षमतानुसार अनुपात में घटा दिया जाएगा और मुख्य अभियन्ता, बिहार राज्य विद्युत बोर्ड का निर्णय इस संबंध में अंतिम होगा।

***नोट.**-शब्द मुख्य अभियंता संबंधित क्षेत्र के अपर मुख्य अभियंता को सम्मिलित करती है।* *(जोर दिया गया)*

हाई टेंशन करार के पूर्वोक्त खंड 13 की दृष्टि में, यह प्रतीत होता है कि यदि बोर्ड कुछ अवधि के लिए विद्युत ऊर्जा की आपूर्ति करने में अक्षम है, अनुसूची में उपवर्णित मांग प्रभारों और गारंटीप्रदत्त ऊर्जा प्रभारों को उस अवधि के लिए अनुपातत: घटा देना चाहिए।

(iii) प्रत्यर्थी बोर्ड ने दिनांक दिनांक 8 मई, 1998 का बिल जारी किया है, जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-3 पर है। याची पूर्वोक्त हाई टेंशन करार के खंड 13 के मुताबिक वापसी/छूट चाहता है। हाई टेंशन करार के खंड 13 के अधीन वापसी का दावा करने के लिए, प्रत्यर्थी-बोर्ड द्वारा दिनांक 29 अप्रिल, 1994 का एक और परिपत्र (प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल प्रतिशपथ पत्र का परिशिष्ट-A) जारी किया गया है जिसके खंड 4(b) का पठन निम्नलिखित है:-

"4 (b) ए० एम० जी० प्रभारों में कमी की पूर्ण राशि के लिए दिया गया बिल एक खंड अंतर्विष्ट करेगा कि ''यदि उपभोक्ता की गयी मांग को चुनौती देता है, वह बोर्ड के विहित प्रोफॉर्मा में बिल की देय तिथि के बाद तीन माह (नब्बे दिन) की अवधि के भीतर करार के समुचित खंड के अधीन विवरणों, जिनके आधार पर अनुतोष का दावा किया गया है, के साथ दावा प्रस्तुत कर सकता है।'' *(जोर दिया गया)*

पूर्वोक्त खंड की दृष्टि में, हाई टेंशन करार के खंड 13 के अधीन वापसी के लिए आवेदन दाखिल करने के लिए दो शर्तें हैं जो निम्नलिखित है:-

(a) ऐसा आवेदन बिल की देय तिथि के बाद नब्बे दिनों के भीतर दाखिल किया जाना चाहिए (वर्तमान मामले के तथ्यों में परिशिष्ट-3 पर बिल की देय तिथि 30 मई 1998 है); और

(b) हाई टेंशन करार के खंड 13 के अधीन ऐसा आवेदन दावेदार द्वारा बोर्ड के विहित प्रोफॉर्मा में दिया जाना चाहिए था।

(iv) इस प्रकार, दिनांक 29 जुलाई, 1994 को प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा जारी पूर्वोक्त परिपत्र के अनुसरण में याची द्वारा दिनांक 28 मई, 1998 को पत्र लिखा गया था, जो याची द्वारा दाखिल प्रत्युत्तर शपथ पत्र के परिशिष्ट-7 पर है, जिसमें, उल्लिखित किया गया है कि याची हाई टेंशन करार के खंड 13 के अधीन वापसी का दावा कर रहा है और राशि का 50% देने का प्रस्ताव विरोध के अधीन किया गया था और याची ने दावा दर्ज करने के लिए उसको सक्षम बनाने के लिए फॉर्म की आपूर्ति का भी अनुरोध किया है और वर्ष 1997-98 के लिए वार्षिक न्यूनतम गारंटीप्रदत्त प्रभारों का 50% स्वीकार करने के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा इस आवेदन पर पृष्ठांकन भी किया गया है, किंतु, चूँकि बोर्ड के विहित प्रोफॉर्मा की आपूर्ति करने में कुछ विलंब हुआ था, अत: याची 20 दिनों के विलंब (प्रत्यर्थीगण के अनुसार) अथवा दो दिनों के विलंब (याची के मुताबिक) से विहित प्रोफॉर्मा में अपना दावा कर सकता था और इस विलंब के कारण, आक्षेपित आदेश को देखते हुए, वर्ष 1997-98 के लिए याची का संपूर्ण दावा खारिज कर दिया गया है।

वर्ष 1997-98 के लिए याची का दावा अस्वीकार करने का प्रत्यर्थीगण का निर्णय अवैध था। वस्तुत:, प्रत्यर्थीगण स्वयं अपनी गलती का लाभ नहीं ले सकते हैं। यदि वे वापसी का दावा करने के लिए प्रोफॉर्मा विहित कर रहे हैं, इसे आसानी से याची को उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इस प्रकार बोर्ड का विहित प्रोफॉर्मा खुले बाजार में उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त, बिल के भुगतान की देय तिथि के पूर्व अर्थात् परिसीमा के भीतर हाई टेंशन करार के खंड 13 के अधीन वापसी के लिए याची द्वारा पहले ही दावा दर्ज किया गया था, किंतु, यदि बोर्ड दावा के सटीक विवरणों की अपेक्षा करता है, तब विहित प्रोफॉर्मा की आवश्यकता है जिसका आपूर्ति बोर्ड के प्राधिकारीगण ने देर से की है और, इसलिए, प्रत्यर्थीगण के मुताबिक बीस दिनों और याची के अनुसार दो दिनों का महत्तम विलंब हुआ है।

(v) इसके अतिरिक्त, दिनांक 29 जुलाई, 1994 के परिपत्र के खंड 4(b) को देखते हुए प्रतीत होता है कि बिल, जिसे वार्षिक न्यूनतम गारंटीप्रदत्त प्रभारों में कमी के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा जारी किया गया था, को इन्वर्टेड कौमा में दिए गए विवरणों को अंतर्विष्ट करना चाहिए। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि याचिका के मेमो के परिशिष्ट-3 पर मुख्य बिल में ऐसा कोई खंड कभी नहीं दर्शाया गया था जो प्रत्यर्थी-बोर्ड द्वारा जारी दिनांक 29 जुलाई, 1994 के परिपत्र के खंड 4(b) में दिए गए निर्देश के बारे में मौन है। इसके अतिरिक्त, जब कभी वापसी का दावा करने के लिए कोई सांविधिक प्रोफॉर्मा बनाया जाता है, प्रत्यर्थी-बोर्ड को इस प्रकार के विहित प्रोफॉर्मा की आपूर्ति करनी चाहिए थी और यदि प्रत्यर्थी-बोर्ड के प्राधिकारीगण ने किसी विलंबित चरण पर इसकी आपूर्ति की है, वापसी का दावा करने में याची की ओर से कोई गलती नहीं है क्योंकि याची द्वारा दाखिल प्रत्युत्तर शपथ पत्र के परिशिष्ट-7 के मुताबिक दिनांक 28 मई, 1998 को पहले ही दावा किया जा चुका था। इस प्रकार, प्रत्यर्थी-बोर्ड अपने पदधारियों द्वारा की गयी गलती का लाभ नहीं ले सकता था। हाई टेंशन करार के खंड 13 के अधीन दावा दर्ज करने में याची की ओर से विलंब नहीं हुआ है। इस प्रकार का बोर्ड का विहित प्रोफॉर्मा खुले बाजार में उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार के प्राफॉर्मा प्रत्यर्थी-बोर्ड के विनिर्दिष्ट अधिकारियों के पास होते हैं। याची द्वारा प्रत्युत्तर में शपथ पत्र में किए गए प्रकथनों के प्रति प्रत्यर्थी-बोर्ड द्वारा कोई अतिरिक्त शपथ दाखिल नहीं किया गया है। इस प्रकार, प्रत्युत्तर में शपथ-पत्र का परिशिष्ट-7 प्रत्यर्थी

बोर्ड द्वारा स्वीकार किया गया है। इस प्रकार, हाईटेंशन करार के खंड 13 के अधीन याची द्वारा किया गया दावा परिशिष्ट 7 के मुताबिक समय सीमा के भीतर था। प्रत्यर्थी-बोर्ड के महाप्रबंधक-सह-मुख्य अभियंता द्वारा दिनांक 29 अप्रिल, 2002 का आक्षेपित आदेश पारित करते हुए मामले के इस पहलू का अधिमूल्यन समुचित रूप से नहीं किया गया था।

अत: मैं, याचिका के मेमो के परिशिष्ट-6 पर दिनांक 29 अप्रिल, 2002 के आक्षेपित आदेश, जहाँ तक यह वर्ष 1997-98 से संबंधित है, को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ। हाई टेंशन करार के खंड 13 के अधीन याची के दावे पर स्वयं इसके गुणागुण पर विचार किया जाएगा क्योंकि याची द्वारा दावा दर्ज करने में कोई विलंब नहीं हुआ है।

जहाँ तक वर्ष 1993-94 का संबंध है, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 430 वर्ष 2001 और सदृश मामलों में दिनांक 10 मार्च, 2003 के निर्णय और आदेश के तहत पैराग्राफ 8 से 10 तक में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

"8. विद्वान एकल न्यायाधीश ने संप्रेक्षित किया कि बोर्ड अपने हितों की सुरक्षा के लिए ऐसी शर्तें निरुपित करने के लिए और दावों के निपटारे का ढंग प्रावधानित करने के लिए भी सशक्त था और अभिनिर्धारित किया कि बोर्ड द्वारा जारी दिनांक 29.7.1994 की अधिसूचना एवं दिनांक 13.7.1996 का इसका स्पष्टीकरण पत्र पूर्णतः वैध, कानूनी, और उपभोक्ताओं पर बाध्यकारी था। एच० टी० करार के खंड 13 के अधीन दावा दाखिल करने के लिए बोर्ड द्वारा नियत समय सीमा न्यायोचित और विधि के अनुरुप थी। ए० एम० जी० प्रभारों के भुगतान में छूट प्रदान करने के प्रयोजन से विद्युत की आपूर्ति में 30 मिनट से अधिक की अवधि का व्यवधान विहित करना पूर्णत: अन्यायोचित था और सुप्रभात स्टील लिमिटेड बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड (1994 (1) BBCJ 369) में अधिकथित विधि के विरुद्ध था। ए० एम० जी० प्रभारों के भुगतान में आनुपातिक छूट के लिए खंड 13 के अधीन दावा करने के लिए उपभोक्ता को दावा के साथ देयों का 50% जमा करना होगा।

9. अत:, विद्युत बोर्ड ने आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा केवल 30 मिनट की अवधि से अधिक के लिए व्यवधान पर छूट के प्रयोजन से विचार किया जाना अन्यायोचित अभिनिर्धारित किया गया था, के विरुद्ध अपीलों को दाखिल किया और उपभोक्ताओं ने विद्वान एकल न्यायाधीश के संप्रेक्षणों/निष्कर्षों के विरुद्ध अपील दाखिल किया कि विद्युत (आपूर्ति) अधिनियम की धारा 79 के अधीन बोर्ड द्वारा जारी प्रश्नगत विनियमन वैध था और खंड 13 के अधीन दावा दाखिल करने के लिए विहित सीमा और खंड 13 के अधीन आपत्ति पर विचार करने के लिए शर्त के रूप में बिल की 50% राशि जमा करने के लिए कहा जाना भी वैध और न्यायोचित था।

10. पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने पर और सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के अनेक उद्घोषणाओं पर विचार करने पर हम जमशेदपुर रॉलर फ्लोर मिल्स (प्रा०) लि० बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड (2000 (1) All. PLR 231) में दिए गए निर्णय के साथ सहमत हैं और पाते हैं कि वर्तमान मामले उक्त निर्णय द्वारा आच्छादित होते हैं और इस प्रकार विद्वान एकल न्यायाधीश ने इन अपीलों में सही प्रकार से आक्षेपित आदेश द्वारा रिट आवेदन विनिश्चित किया और जमशेदपुर फ्लोर मिल्स (प्रा०) लि० (ऊपर) में निर्दिष्ट पूर्वोक्त उद्घोषणाओं के प्रकाश में ए० एम० जी० प्रभारों के भुगतान में आनुपातिक छूट के प्रश्न पर निर्णय एवं महाप्रबंधक-सह-मुख्य अभियंता द्वारा पुनर्विचार करने के लिए मामला वापस भेज दिया।" *(जोर दिया गया)*

(vi) इस प्रकार, पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में, प्रत्यर्थी बोर्ड वर्ष 1993-94 के लिए याची का दावा इस कारण से अस्वीकार नहीं कर सकता है कि यदि तीस मिनट से कम अवधि के लिए विद्युत ऊर्जा की अनापूर्ति हुई है, हाई टेंशन करार के खंड 13 के अधीन छूट/वापसी के दावे पर विचार नहीं किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, हाई टेंशन करार के खंड 13 में ऐसा कुछ भी नहीं है जो तीस मिनट के लिए विद्युत ऊर्जा की आपूर्ति नहीं करने और गारंटीप्रदत्त ऊर्जा प्रभारों को प्रभारित करने की अनुमति बोर्ड को देता है।

पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए ''प्रत्यर्थी-बोर्ड द्वारा लागू किया गया 30 मिनट की ''लॉकिंग अवधि'' मनमानी कार्रवाई है।

(vii) दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे इंगित किया गया है कि आरंभ में यह 59 मिनट था अर्थात् यदि 59 मिनटों के लिए प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा विद्युत ऊर्जा की आपूर्ति नहीं की गयी है, तब भी बोर्ड गारंटीप्रदत्त ऊर्जा प्रभारों को प्रभारित करने का हकदार था। इस खंड को चुनौती दी गयी थी और 59 मिनटों से संबंधित उक्त खंड को **सुप्रभात स्टील लिमिटेड बनाम बी॰ एस॰ ई॰ बी॰, 1994 BBCJ 369,** मामले में अभिखंडित और अपास्त कर दिया गया था।

पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में, बोर्ड ने दिनांक 29 जुलाई, 1994 के पूर्वोक्त परिपत्र द्वारा लॉकिंग पीरियड, जो पहले 59 मिनट था, को 30 मिनट तक घटा दिया है। इस नए खंड को भी पूर्वोक्त लेटर्स पेटेन्ट अपीलों में चुनौती दी गयी थी और इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि हाई टेंशन करार के खंड 13 को देखते हुए, हाई टेंशन करार के उक्त खंड सं॰ 13 में 30 मिनटों के ऐसे ''लॉकिंग अवधि'' को उल्लिखित नहीं किया गया है और, इसलिए, 30 मिनटों से कम किसी अंतराल के लिए भी यदि प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा विद्युत ऊर्जा की अनापूर्ति होती है, तब भी उद्योग गारंटीप्रदत्त ऊर्जा प्रभारों को अनुपातत: घटाए जाने का हकदार, जैसा अनुसूची में उपवर्णित किया गया है।

मामले के इस पहलू का भी प्रत्यर्थी बोर्ड के महाप्रबंधक-सह-मुख्य अभियंता द्वारा वर्ष 1993-94 के लिए दिनांक 29 अप्रिल, 2002 का आक्षेपित आदेश पारित करते हुए समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया गया है।

6. पूर्वोक्त तथ्यों, कारणों और न्यायिक उद्घोषणाओं के समेकित प्रभाव के तौर पर वर्ष 1993-94 के लिए आक्षेपित आदेश में की गई संगणना को एतद् द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है और हाई टेंशन करार के खंड 13 के अधीन प्रभारों की छूट/वापसी की संगणना के लिए, जहाँ तक यह वर्ष 1993-94 और वर्ष 1997-98 से संबंधित है, मामला संबंधित प्रत्यर्थी प्राधिकारी को वापस भेजा जाता है। संबंधित प्रत्यर्थी प्राधिकारी एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 430 वर्ष 2001 और अन्य सदृश मामलों में दिए गए पूर्वोक्त निर्णय और इस आदेश में किए गए संप्रेक्षणों पर विचार करेंगे। यह काम इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से सोलह सप्ताह की अवधि के भीतर संबंधित प्रत्यर्थी प्राधिकारी द्वारा पूरा किया जाएगा।

याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि संबंधित प्रत्यर्थी को आवश्यक डाटा की आपूर्ति करने में याची सहयोग करेगा।

तद्नुसार, इस रिट याचिका को पूर्वोक्त सीमा तक अनुज्ञात किया जाता है और निपटाया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

रूपम अखौरी एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 489 of 2011. Decided on 25th July, 2011.

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989—धारा 3(i) (x)—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—जाति नाम द्वारा अपमान–विचारण के लिए मामले की सुपुर्दगी–धारा 3(i)(x) के अधीन अपराध का सार यह है कि ऐसा अपमान अथवा अभित्रास किसी भी स्थान पर सार्वजनिक रूप से किया गया होना चाहिए–सूचक मौन था कि क्या संपूर्ण घटना सार्वजनिक रूप से हुई थी या नहीं ताकि विशेष अधिनियम के अधीन अपराध आकृष्ट हो सके–पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा विधि का प्रावधान पूर्णतः गलत समझा गया था–धारा 3(i)(x) के अधीन याचीगण के विरुद्ध कोई प्रथम दृष्टया अपराध नहीं निर्मित हुआ–आक्षेपित आदेश अपास्त। (पैराएँ 5 से 10)

निर्णयज विधि.–(2008)12 SCC 531; AIR 2011 SC 1016—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Sameer Saurabh, For the Petitioners; A.P.P., For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–याचीगण ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 60 वर्ष 2010 में पारित प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, बोकारो द्वारा दर्ज दिनांक 23.2.2011 के उस आदेश के अभिखंडन के लिए किया गया है जिसके द्वारा जी॰ आर॰ सं॰ 262 वर्ष 2004 में दिनांक 18.2.2010 को श्री एस॰ डी॰ त्रिपाठी, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, बोकारो द्वारा दर्ज आदेश अपास्त कर दिया गया था और पुनरीक्षण अनुज्ञात करते हुए अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(i)(x) के अधीन अभिकथित अपराध के लिए याचीगण के विरुद्ध अग्रसर होने के लिए पर्याप्त सामग्री थी और कि याचीगण के विरुद्ध विचारण के लिए अपराध विशेष न्यायाधीश, बोकारो के न्यायालय को सुपुर्द किए जाने योग्य था।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक वि॰ प॰ सं॰ 2 ने बोकारो स्टील सिटी पुलिस थाना के समक्ष लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत करके कथन किया कि दिनांक 17.3.2004 को प्रातः लगभग 6 बजे जब वह अपने क्वार्टर सं॰ 352-III/B के निकट पहुँचा, उसने पाया कि क्वार्टर सं॰ 355-III/B का उसका पड़ोसी याची अखौरी बसंत तेश्वरी प्रसाद अपनी पत्नी के साथ उसको 'हरिजन चमार' कहते हुए उसके जाति नाम से उसको बुलाते हुए उसके विरुद्ध अचानक गाली गलौज करने लगा जिस पर उसने उनको ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करने को कहा जिस पर दोनों पति-पत्नी ने उसको कॉलर से पकड़ लिया और उसे थप्पड़ मारा। जब उसके शोर करने पर उसकी पत्नी उसको बचाने आयी, उनके द्वारा उस पर भी प्रहार किया गया था और इसी क्रम में अभियुक्त ने उसकी गर्दन से 8000/- रुपए मूल्य वाला सोने का चेन छीन लिया था। उत्पति को प्रकट करते हुए, सूचक ने कथन किया कि याचीगण उसके घर के अहाते में कूड़ा फेंकते थे जिसका वह विरोध करता था किंतु उसे अभियुक्त अखौरी बसन्त तेश्वरी प्रसाद द्वारा धमकाया गया था कि वह बी॰ जे॰ पी॰ का नेता था और वह उसके पुत्र पुत्री का अपहरण करवा देगा। सूचक ने अभिकथित किया कि अभियुक्तगण उसे इसलिए यातना दे रहे थे कि वह हरिजन था। उसके लिखित परिवाद पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 323/341/379/34 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए दिनांक 17.3.2004 को बोकारो इस्पात नगर पी॰ एस॰ केस सं॰ 66 वर्ष 2004 दर्ज किया गया था।

3. विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आई० ओ० ने अन्वेषण के बाद याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 341/323/504/34 के अधीन और न कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के किसी प्रावधान के अधीन, आरोप-पत्र दाखिल किया था। आरोप-पत्र दाखिल करने के बाद सूचक विपक्षी पक्षकार सं० 2 की ओर से श्रीमती कविता दास, तत्कालीन न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, बोकारो के समक्ष, जिनके फाइल में केस रिकॉर्ड लंबित था, याचिका दाखिल की गयी थी जिसमें कथन किया गया था कि मामले के तथ्यों से परिलक्षित होगा कि मामला अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के अधीन अपराध के लिए भी दर्ज किया जाना चाहिए था और आगे अभिकथित किया कि उक्त अपराध के लिए अन्वेषण अधिकारी ने आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया था। याचिका ने आगे अंतर्विष्ट किया कि सूचक और उसके गवाह के पास न्यायालय के समक्ष अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(i)(x) के अधीन अपराध जोड़ने के लिए निवेदन करने का अवसर नहीं था। आरोप-पत्र दिनांक 30.10.2004 को दाखिल किया गया था किंतु सूचक द्वारा यह याचिका न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय के समक्ष दिनांक 10.3.2005 को दाखिल की गयी थी। विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी श्री त्रिपाठी ने दिनांक 18.2.2010 के आदेश द्वारा संप्रेक्षित किया कि याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 341/323/504/34 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए अपराध का संज्ञान दिनांक 3.11.2004 को सी० जे० एम०, बोकारो द्वारा लिया गया था और प्रत्यक्षत: अभियुक्तगण में से किसी के विरुद्ध अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(i)(x) के अधीन अपराध के लिए कोई संज्ञान नहीं लिया गया था। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सूचक ने अपनी शिकायत दूर करवाने के लिए गलत फोरम चुना था क्योंकि उसे इसके उपचार के लिए पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष जाना चाहिए था, और, इसलिए दिनांक 10.3.2005 को उसके द्वारा दाखिल याचिका अस्वीकार कर दी गयी थी। तब याची ने जी० आर० सं० 262 वर्ष 2004 में पारित दिनांक 18.2.2010 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा श्री एस० डी० त्रिपाठी, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, बोकारो ने अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(i)(x) के अधीन अपराध की प्रासंगिक धाराओं को जोड़ने के लिए सूचक की ओर से दाखिल याचिका अस्वीकार कर दिया था, के विरुद्ध दांडिक पुनरीक्षण सं० 60 वर्ष 2010 दाखिल किया।

4. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने दांडिक पुनरीक्षण में दर्ज आदेश का विरोध किया जिसमें विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, बोकारो ने संप्रेक्षित किया था,

> *''आक्षेपित आदेश के परिशीलन से मैं सचमुच पाता हूँ कि विद्वान जे० एम० ने अंतिम पैराग्राफ में स्पष्टतः उल्लिखित किया है कि ''यह प्रतीत होता है कि इस मामले में कुल मिलाकर छह गवाहों का परीक्षण किया गया है। इस मामले में आई० ओ० का परीक्षण नहीं किया गया है। घटनास्थल सूचक का घर है, यह सार्वजनिक स्थान नहीं है और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धाराओं 3 और 4 के अधीन अभियुक्तगण द्वारा कोई अपराध नहीं किया गया है।'' अतः मैं बिल्कुल पाता हूँ कि विद्वान जे० एम० ने अभियोजन गवाहों के साक्ष्य पर समुचित रूप से विचार नहीं किया है, जिसमें, उन्होंने विनिर्दिष्टतः कथन किया है कि इस मामले की घटना सूचक के घर के बाहर के स्थान अर्थात् मोड़ पर आम सड़क पर हुई है। विद्वान जे० एम० ने यह उल्लिखित करके गंभीर गलती की है कि घटना स्थल सूचक का घर है। अतः, मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि विद्वान जे० एम० ने समुचित परिप्रेक्ष्य में अभियोजन गवाहों के साक्ष्य पर समुचित रूप से विचार नहीं किया है और गलत निष्कर्ष पर आए हैं जो अपास्त किए जाने का दायी है।''*

5. प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, बोकारो द्वारा दर्ज उक्त संप्रेक्षण के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(i)(x) में

अंतर्विष्ट विधि के प्रावधान का अधिमूल्यन किए बिना विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि चूँकि घटना घर के बाहर सार्वजनिक स्थान जो आम सड़क पर का मोड़ था, पर हुई थी, यह समझा जाएगा कि घटना सार्वजनिक स्थान पर हुई थी और इसलिए, धारा 3(i)(x) के अधीन अपराध आकृष्ट होगा। मैं पाता हूँ कि विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा विधि का प्रावधान पूर्णत गलत समझा गया है।

6. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(i)(x) कहती है:–

''कोई भी व्यक्ति, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है, जनता के दृष्टिगोचर किसी स्थान में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य का अपमान करने के आशय से साशय उसको अपमानित या अभित्रस्त करेगा, कि उससे ऐसा होना संभाव्य है वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से, दण्डनीय है।''

7. अपराध का सार यह है कि ऐसा अपमान अथवा अभित्रास किसी स्थान पर सार्वजनिक रूप से घर के भीतर अथवा बाहर किया गया हो किंतु सूचक मौन है कि क्या संपूर्ण घटना सार्वजनिक रूप से हुई थी ताकि उसका अपमान अथवा अभित्रास आकृष्ट हो जो विशेष अधिनियम के अधीन अपराध है।

8. गोरिगे पेंट्टया बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2008)12 SCC 531 में, सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया:–

''अधिनियम की धारा 3(i)(x) के मूल अवयवों के अनुसार, परिवादी को अभिकथित करना चाहिए था कि अपीलार्थी अभियुक्त अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं था और सार्वजनिक दृष्टि के भीतर किसी स्थान पर अपमान करने के आशय के साथ अभियुक्त द्वारा आशयपूर्वक उसका (प्रत्यर्थी सं० 3) का अपमान अथवा अभित्रास किया गया था। संपूर्ण परिवाद में, यह कहीं नहीं उल्लिखित किया गया है कि अपीलार्थी–अभियुक्त अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं था और उसने सार्वजनिक रूप से किसी स्थान पर प्रत्यर्थी सं० 3 का अपमान करने के आशय के साथ आशयपूर्वक उसको अपमानित अथवा अभित्रासित किया था। जब परिवाद में अपराध के मूल अवयव गायब हैं, तब ऐसे परिवाद को जारी रखने की अनुमति देना और अपीलार्थी को दांडिक विचारण की कठिनाइयों का सामना करने के लिए मजबूर करना पूर्णतः अन्यायोचित होगा जो विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग की ओर ले जाएगा।''

9. अस्माथुनिन्नसा बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य, लोक अभियोजक के प्रतिनिधित्व में AIR 2011 SC (Cri)1016 में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संप्रेक्षित किया गया था:–

''इस न्यायालय ने अनेक मामलों में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय की शक्तियों के विस्तार और परिधि को अधिकथित किया है। दं० प्र० सं० की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्ति, यद्यपि ये व्यापक हैं, का प्रयोग यदा–कदा, सावधानीपूर्वक एवं अत्यन्त सतर्कता के साथ करना होगा और केवल तब जब स्वयं इस धारा में विनिर्दिष्टतः अधिकथित परीक्षाओं द्वारा ऐसे प्रयोग को न्यायोचित ठहराया जाता है। न्याय करने के लिए न्यायालय के प्राधिकार का अस्तित्व है। यदि अन्याय की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया के किसी दुरुपयोग को न्यायालय के ध्यान में लाया जाता है, तब न्यायालय संविधि में विनिर्दिष्ट प्रावधानों की अनुपस्थिति में अंतर्निहित शक्तियों का अवलंब लेकर, अन्याय को रोकने में न्यायोचित होगा।''

10. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, मैं पाता हूँ कि विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने विधि के सांविधिक प्रावधान और भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांतों को गलत समझा है और इसलिए,

दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 60 वर्ष 2010 में दिनांक 23.2.2011 को अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा दर्ज आदेश विधि के अधीन संपोषित नहीं किया जा सकता है, और तद्नुसार, इसे अपास्त किया जाता है। मैं आगे पाता हूँ और अभिनिर्धारित करता हूँ कि दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(i)(x) के अधीन याचीगण के विरुद्ध प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं निर्मित हुआ है। विचारण दंडाधिकारी को वर्तमान दर्ज आदेश के प्रति किसी प्रतिकूलता के बिना याचीगण के विरुद्ध प्रस्तावित अथवा विरचित आरोप के विचारण के लिए अग्रसर होने का निर्देश दिया जाता है।

11. यह याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया एवं पी॰ पी॰ भट्ट, न्यायमूर्तिगण

गोपाल राउत

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (DB) No. 130 of 2003. Decided on 28th July, 2011.

एस॰ टी॰ सं॰ 243 वर्ष 2000 में सत्र न्यायाधीश, देवघर द्वारा पारित दिनांक 16.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 17.12.2002 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302 एवं 323—हत्या–आजीवन कारावास एवं 20,000/- रुपयों का जुर्माना अधिनिर्णीत–अपीलार्थी और मृतक के बीच दुश्मनी थी–विचारण न्यायालय द्वारा सह-अभियुक्त दोषमुक्त किया गया–अपीलार्थी को सह-अभियुक्तगण द्वारा उकसाया गया था जिन्हें दोषमुक्त कर दिया गया था–मृतक की मृत्यु उसके मस्तक पर एक उपहति के कारण हुई–हत्या का कोई पूर्व चिंतन नहीं था और घटना अचानक झगड़े के दौरान हुई थी–यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि अपीलार्थी ने अनुचित लाभ लिया और क्रूर अथवा असामान्य तरीके से कृत्य किया–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि धारा 304, भाग II में परिवर्तित की गयी–पहले ही भुगत ली गयी अवधि के लिए दंडादेश परिवर्तित किया गया। (पैराएँ 4 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s A.K. Kashyap, S.N. P. Roy, For the Appellant; Mr. V.S. Sahay, For the State.

न्यायालय द्वारा–पक्षों को सुना गया।

2. यह अपील एस॰ टी॰ सं॰ 243 वर्ष 2000 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, देवघर द्वारा पारित दिनांक 16.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 17.12.2002 को पारित दंडादेश के आदेश से उद्भूत होती है जिसके द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302 और 323 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन कठोर आजीवन कारावास भुगतने और 20,000/- रुपयों के जुर्माना का दंडादेश दिया गया था। यदि जुर्माना का भुगतान नहीं किए जाने पर, दो वर्षों की अतिरिक्त अवधि का दंडादेश अधिरोपित किया गया था। भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध 3 माह के कठोर कारावास का अतिरिक्त दंडादेश दिया गया था। दोनों दंडादेशों को साथ-साथ चलना था।

3. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि सूचक संजय कुमार साह, अ॰ सा॰ 6 ने दिनांक 11.7.1999 को शाम लगभग 7 बजे फर्दबयान दर्ज कराया कि जिला परिवहन कार्यालय, देवघर में एजेंट के रूप में कार्यरत उसका मामा रमेश कुमार साह (मृतक) पक्षों से पैसा वसूलने सूचक के साथ जा रहा

था। जब वे बाजार पहुँचे, मृतक ने अपना स्कूटर रोका और सूचक को किसी संतोष माहेश्वरी (अ॰ सा॰ 4) से धन लाने को कहा जिस पर, सूचक संतोष माहेश्वरी के दुकान में गया। जब वह लगभग 8 बजे रात में लौट रहा था, उसने अपीलार्थी को यह कहते हुए कि वह उसकी हत्या कर देगा, मृतक को गाली देते देखा। कोई दिलीप राउत और पप्पु यादव भी वहाँ थे और वे भी मृतक को गंदी गालियाँ दे रहे थे और मृतक की हत्या करने के लिए अपीलार्थी को उकसा रहे थे। अपीलार्थी ने उसके मस्तक और गर्दन के बीच में लोहे की छड़ से मृतक पर प्रहार किया जिसके परिणामस्वरुप मृतक गिर गया। अपीलार्थी और गर्दन के बीच में लोहे की छड़ से मृतक पर प्रहार किया जिसके परिणामस्वरुप, मृतक गिर गया। अपीलार्थी ने सूचक पर भी लोहे की छड़ से प्रहार किया। हल्ला करने पर, मुकेश कुमार (मृतक का छोटा भाई, अ॰ सा॰ 2) और अन्य व्यक्ति भी वहाँ जमा होने लगे। उनको देखकर, अपीलार्थी और अन्य व्यक्ति भाग गए। मृतक के मस्तक पर खून बहने की उपहति थी और वह बेहोश हो गया। उसे सदर अस्पताल ले जाया गया जहाँ उपचार के दौरान उसकी मृत्यु हो गयी। अभिकथित किया गया था कि अपीलार्थी और मृतक के बीच दुश्मनी थी और अपीलार्थी मृतक को गंभीर परिणामों की धमकी दिया करता था। दिलीप राउत और पप्पू यादव को विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था।

4. अपीलार्थी के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ कश्यप ने निवेदन किया कि अ॰ सा॰ 1 संतोष कुमार और अ॰ सा॰ 2 मुकेश कुमार साह हितबद्ध गवाह हैं और वे चश्मदीद गवाह नहीं हैं यद्यपि उन्हें चश्मदीद गवाह के रूप में दर्शाया गया है। अ॰ सा॰ 1 का नाम प्राथमिकी में प्रकट नहीं किया गया था। अ॰ सा॰ 2 के संबंध में, प्राथमिकी में कहा गया था कि हल्ला होने पर, अ॰ सा॰ 2 और अन्य व्यक्ति वहाँ आए और इसलिए, अ॰ सा॰ 1 और 2 चश्मदीद गवाह नहीं हैं। अ॰ सा॰ 6, जो सूचक है और चश्मदीद गवाह बताया जाता है, ने अन्य बातों के साथ यह कहा कि एक ओर अपीलार्थी, दिलीप राउत और पप्पू यादव तथा दूसरी ओर मृतक के बीच कुछ झगड़ा था। अभिकथित किया गया है कि दिलीप राउत और पप्पू यादव (दोनों दोषमुक्त) अपीलार्थी को मृतक की हत्या करने के लिए उकसा रहे थे जिस पर, अपीलार्थी ने मृतक के मस्तक पर लोहे की छड़ से प्रहार किया किंतु मृतक की हत्या करने का उसका आशय सिद्ध नहीं किया गया है। आगे निवेदन किया गया था कि अपीलार्थी की पत्नी मधु देवी का बयान केस डायरी के पैराग्राफ 118 में दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 161 के अधीन दर्ज किया गया है जिसने कहा कि उसने मृतक के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 376/511 के अधीन अपराध के लिए दिनांक 2.9.1998 को देवघर पी॰ एस॰ केस सं॰ 228/1998 संस्थापित किया था जो लंबित था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि डॉक्टर ने भी मत दिया है कि मृतक पर पायी गयी उपहति कारित की जा सकती थी, संभव थी यदि कोई स्कूटर पर जा रहा हो और स्कूटर फिसल गया हो और सवार सड़क के बगल में बोल्डर पर गिर गया हो। अत:, उन्होंने निवेदन किया कि इस मामले में अपीलार्थी को झूठा आलिप्त किए जाने से इनकार नहीं किया जा सकता है। अंत में उन्होंने निवेदन किया कि अधिकाधिक अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग II के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता था।

5. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि घटना के चश्मदीद गवाह हैं और इसलिए, इस मामले में यह बचाव कि यह दुर्घटना का मामला था, केवल डॉक्टर के मत के आधार पर स्वीकार नहीं किया जा सकता है। राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन भी किया गया है कि बचाव के मामले का समर्थन करने के लिए कोई सामग्री नहीं है। उन्होंने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

6. हम यह बचाव विवरण स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि दुर्घटनावश गिरने के कारण मृतक की मृत्यु हो गयी थी। किंतु, हम अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के निवदेन में बल पाते

हैं कि अपीलार्थी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग II के अधीन दंडनीय अपराध किया है क्योंकि साक्ष्य में आया है कि अपीलार्थी और मृतक के बीच दुश्मनी थी, और प्रहार के पहले, अपीलार्थी को दिलीप राउत और पप्पू यादव (दोनों दोषमुक्त) द्वारा उकसाया गया था। मृतक की मृत्यु कड़े और भोथरे वस्तु/लोहे की छड़ द्वारा उसके मस्तक पर कारित उपहति के कारण हुई थी। अन्य उपहति 2½" x 2" आकार वाली गर्दन के बाएँ हिस्से के एचिमोसिस के साथ सूजन थी जो मृतक की मृत्यु का कारण नहीं थी। बार दोहराया नहीं गया था। अ॰ सा॰ 1 और 2 को वास्तविक घटना का चश्मदीद गवाह नहीं कहा जा सकता है। इस मामले के सूचक अ॰ सा॰ 6 को चश्मदीद गवाह बताया गया है। जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, दोषमुक्त अभियुक्तगण द्वारा उकसावा था और अभिकथित घटना के समय पर गाली-गलौज हुआ था। इन परिस्थितियों में, हम स्वीकार करते हैं कि मृतक की हत्या करने का कोई पूर्वचिंतन नहीं था और घटना अचानक हुए झगड़े के दौरान हुई थी और यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि अपीलार्थी ने अनुचित लाभ लिया और क्रूर अथवा असामान्य तरीके से कृत्य किया था।

7. परिणामस्वरुप, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग II के अधीन दोषसिद्धि में परिवर्तित की जाती है। जहाँ तक दंडादेश का संबंध है, अपीलार्थी 12 वर्षों से अधिक से कारा में है। तद्नुसार, दंडादेश की अवधि अपीलार्थी द्वारा पहले ही कारा में भुगत ली गयी अवधि तक परिवर्तित की जाती है। दोषसिद्धि और दंडादेश में इस परिवर्तन के साथ यह अपील अंशतः अनुज्ञात की जाती है। चूँकि अपीलार्थी जेल में है, उसे तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

श्याम दास सिंह

बनाम

झारखंड राज्य

Cr.M.P. No. 264 of 2010. Decided on 21st July, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 406/409/420/120B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 197 एवं 482—लोक सेवक द्वारा न्यास का दांडिक भंग और आम जनता के साथ छल—प्रासंगिक समय पर याची कनीय अभियंता था और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 21 के अधीन लोक सेवक था—दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन कोई मंजूरी प्राप्त नहीं की गयी थी—यह मामला नहीं था कि अभिकथित कृत्य याची द्वारा अपनी निजी हैसियत से और अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए किया गया था—संज्ञान लेने के पहले दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन मंजूरी अनिवार्य थी—संज्ञान का आक्षेपित आदेश अपास्त—याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.—M/s P.P.N. Roy, A.K. Sahani, For the Petitioner; Mr. S.N. Rajgarhia, For the State.

आदेश

याची ने दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 12 वर्ष 2007 में अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ I, गढ़वा द्वारा पारित दिनांक 17.2.2010 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा जी॰ आर॰ सं॰ 289 वर्ष 1997 में श्री टी॰ हसन, न्यायिक दंडाधिकारी प्रथम श्रेणी, गढ़वा द्वारा अस्वीकृत याची की उन्मोचन याचिका अभिपुष्ट की गयी थी और पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया था, के अभिखंडन के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. गढ़वा पुलिस के समक्ष प्रस्तुत प्रखंड विकास अधिकारी, गढ़वा की लिखित रिपोर्ट के मुताबिक अभियोजन मामला यह है कि योजना सं॰ 1 वर्ष 1990-91 के विरुद्ध गोवावल उच्च विद्यालय, धूमरिया के निर्माण के लिए 3,65,000/- रुपयों का खर्च मूल्यांकित किया गया था और प्रथम चरण में संकर्म किसी जदुनंदन दूबे को आवंटित किया गया था जिसने दिनांक 24.9.1991 तक 1,10,250/- रुपए मूल्य का आंशिक काम किया था किंतु इसका मूल्य 1,09,700/- रुपया निर्धारित किया गया था। उसकी ओर से कतिपय लापरवाही पाते हुए, संकर्म का शेष भाग एक अन्य व्यक्ति राजेन्द्र झा को 4,01,500/- रुपए के पुनरीक्षित मूल्य के विरुद्ध दिया गया था। उसने 2,93,050/- रु॰ की एक राशि प्राप्त की थी एवं उसके द्वारा किया गया 3,10,725/- रु॰ का मूल्यांकित किया गया था जिसे माप पुस्तिका में प्रविष्ट किया गया था। कुछ समय बाद दिनांक 15.1.1996 को विद्यालय भवन के निर्माण का संकर्म कार्यपालक अभियंता, एन॰ आर॰ ई॰ पी॰, गढ़वा द्वारा पर्यवेक्षित किया गया था और उन्होंने माप पुस्तक में टिप्पणी किया कि जब तक भवन के निर्माण का संकर्म और गुणवत्ता, सुधारी नहीं जाती है, कोई अंतिम भुगतान नहीं किया जाएगा। कुछ समय बाद, विद्यालय भवन का निर्माण संकर्म कार्यपालक अभियंता (निगरानी) द्वारा निरीक्षित किया गया था और उन्होंने संप्रेक्षित किया कि भवन के निर्माण में गलती थी चूँकि यह भूमि की प्रकृति के अनुरुप नहीं था। कुछ माह बाद कार्यपालक अभियंता, एन॰ आर॰ ई॰ पी॰ गढ़वा ने उप कमिश्नर, गढ़वा और सूचक को रिपोर्ट किया कि विद्यालय के नवनिर्मित भवन में दरार था और इसलिए, नवनिर्मित भवन में छात्रों को अध्ययन करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। अन्य प्राधिकारीगण द्वारा भी भवन का निरीक्षण किया गया था और परिवाद सत्य पाया गया था। उप कमिश्नर, गढ़वा के निर्देश पर, सूचक बी॰ डी॰ ओ॰ ने यह अभिकथन करते हुए कि ठेकेदारों जदुनंदन दूबे, पंचायत सेवक और राजेन्द्र झा, जनसेवक, गढ़वा द्वारा विद्यालय भवन के निर्माण में घटिया गुणवत्ता वाले सामग्रियों का प्रयोग किया गया था, मामला दर्ज किया। इसी प्रकार से, याची श्याम दास सिंह, तत्कालीन कनीय अभियंता और लक्ष्मी नारायण प्रसाद, तत्कालीन सहायक अभियंता एन॰ आर॰ ई॰ पी॰, गढ़वा ने कृत्रिम रूप से बढ़ाए गए दर पर निर्माण मूल्य और माप को दर्ज करके और तद्द्वारा माप पुस्तक में झूठी प्रविष्टि करके दांडिक षडयंत्र को अग्रसर करने में 4,03,330/- रुपयों के सार्वजनिक धन का गबन किया था।

3. लिखित रिपोर्ट के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406/409/420/120B के अधीन अभिकथित अपराध के लिए गढ़वा पी॰ एस॰ केस सं॰ 86 वर्ष 1997 दर्ज किया गया था। अन्वेषण के बाद पुलिस ने आरोप-पत्र प्रस्तुत किया और तद्नुसार याची और अन्य के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया गया था। याची ने एक अन्य के साथ उन्मोचन के लिए याचिका दाखिल किया जिसे श्री एस॰ बी॰ ओझा, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, गढ़वा के न्यायालय द्वारा दिनांक 16.9.2002 के आक्षेपित आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था।

4. याची ने लक्ष्मी नारायण प्रसाद के साथ दिनांक 16.9.2002 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा याची के उन्मोचन के लिए याचिका को अस्वीकार कर दिया गया था और याची को आरोप का सामना करने के लिए कहा गया था, के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 656 वर्ष 2002 दाखिल किया।

5. इस न्यायालय ने दिनांक 28.7.2006 के विस्तृत आदेश द्वारा दिनांक 16.9.2002 का आक्षेपित आदेश अपास्त कर दिया और संबंधित न्यायालय को गृह विभाग, बिहार सरकार के मेमो सं॰ 1075 दिनांक 17.11.1986 के तहत सरकारी अधिसूचना, जिसमें संबंधित विभाग के मुख्य अभियंता से कनीय अभियंता अथवा सहायक अभियंता के अभियोजन से पहले सरकार से मंजूरी प्राप्त करने के लिए अनुदेश जारी किया

गया था, को विचार में लेते हुए विधि के अनुरुप नया और सकारण आदेश पारित करने का निर्देश दिया। किंतु, याची के उन्मोचन याचिका पर पुनर्विचार किया गया था और इसे दिनांक 9.1.2007 को श्री टी॰ हसन, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी द्वारा खारिज कर दिया गया था जिसके विरुद्ध याची ने दांडिक पुनरीक्षण दाखिल किया जिसे भी खारिज कर दिया गया था।

6. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ पी॰ एन॰ रॉय ने निवेदन किया कि स्वीकृत रूप से प्रासंगिक समय पर याची श्याम दास सिंह कनीय अभियंता था और भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के अधीन लोक सेवक था जैसा लोक संकर्म विभाग द्वारा जारी दिनांक 14.3.1977 की अधिसूचना सं॰ 4493 (परिशिष्ट-10) के तहत बिहार सरकार द्वारा घोषित किया गया था और इसलिए, उसके विरुद्ध अभियोजन आरंभ करने के पहले दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन मंजूरी की आवश्यकता थी। वस्तुत:, कार्यपालक अभियंता, एन॰ आर॰ ई॰ पी॰, गढ़वा ने तत्कालीन अविभाजित बिहार में संपूर्ण राज्य के लिए शिक्षा विभाग, बिहार सरकार के मॉडल प्लान के मार्गदर्शक सिद्धांतों पर धूमरिया में विद्यालय भवन के निर्माण के लिए योजना और अनुमानित व्यय तैयार किया था और इस तरीके से संबंधित प्राधिकारीगण ने राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में मिट्टी की भिन्न-भिन्न दशाओं के आवश्यक कारक को नजरअंदाज कर दिया और मिट्टी की दशा को दृष्टि में रखते हुए किसी स्थान विशेष पर विद्यालय भवन के निर्माण के लिए कोई एहतियाती कदम नहीं उठाया गया था। अभिकथित किया गया था कि धूमरिया में विद्यालय भवन का निर्माण, भवन खड़ा करने के लिए भूमि की उपयुक्तता का अन्वेषण किए बिना आरंभ किया गया था और इसलिए, याची योजना, प्राक्कलन और दिए गए स्थल से अबाद्ध था और अपनी पर्यवेक्षणीय कर्तव्यों का पालन करने के सिवाय उसके पास कोई विकल्प नहीं था। कनीय अभियंता होने के नाते साइट की दशा के बारे में प्रश्न उठाने के लिए और किसी कमी के विरुद्ध सुरक्षा के लिए उसके पास न तो प्राधिकार था और न ही अधिकारिता। मिट्टी ब्लैक कॉटन एल्यूवियल कोटि का होने के कारण, इसे भवन में दरार और नुकसानी से बचाने के लिए सीमेंट कॉलम में विनिर्दिष्ट रीइनफोर्स्ड कंक्रीट के पाइल फाउंडेशन के माध्यम से विशेष प्रकार के नींव की आवश्यकता थी। कार्यपालक अभियंता (निगरानी) ने पता लगाया कि ब्लैक कॉटन मिट्टी की प्रकृति वाले दरार पड़े मिट्टी के छिद्रों के माध्यम से वर्षा का पानी रिसने के कारण भवन की बाहरी दीवारों में दरारें पड़ गयी थी और तद्नुसार उसने भविष्य की नुकसानी के विरुद्ध सुरक्षा के लिए समुचित एहतियाती कदमों को सुझाया और अनुशंसित किया। अत:, नींव को छोड़कर निर्माण संकर्म में किसी प्रकार का दोष नहीं पाया गया था। वस्तुत: प्रखंड विकास पदाधिकारी ने कार्यपालक अभियंता (निगरानी) के सुझाव को क्रियान्वित करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया और उपेक्षापूर्वक छोटी दरारों का बड़ा हो जाने दिया। दोष दूसरों के सिर मढ़ने अथवा अपने दायित्व को दूसरे पर डालने के तिर्यक हेतु के साथ प्राथमिकी भवन संकर्म के पूरा होने के तीन वर्षों से अधिक के बाद दर्ज की गयी थी। अनियमित भुगतानों के परिणाम अथवा प्रयुक्त सामग्री के संरचनात्मक मजबूती की गुणवता अथवा मात्रा के प्रति या उसके कार्यकुशलता के प्रति कार्य के असंपादन अथवा गलत अथवा अधिक माप के लिए इस याची के विरुद्ध कोई अभिकथन नहीं था। कार्यपालक अभियंता, एन॰ आर॰ ई॰ पी॰, गढ़वा ने 94/5 एम॰ बी॰ 57 पृष्ठ पर संतोषजनक काम का शर्तरहित प्रमाणपत्र दिया था कि उसने काम संतोषजनक पाया था, किंतु, उसने स्पष्ट किया कि ठेकेदारों के साथ अंतिम समायोजन दरारों को बढ़ने से रोकने के लिए किए जा रहे सुधार कार्य के बाद ही किया जाना चाहिए। विद्यालय भवन निर्माण कार्य में लगाए गए ठेकेदार ''प्रखंड स्टाफ'' में से लिए गए थे और संपूर्ण भुगतान और संवितरण ''सूचक बी॰ डी॰ ओ॰''

में निहित किया गया था जो उनके द्वारा किए गए काम से संतुष्ट होने के बाद ठेकेदारों को अग्रिम सहित चालू भुगतानों को करता था और ठेकेदारों, जो उसके नियंत्रणाधीन प्रखंड स्टॉफ थे, द्वारा किए गए काम की प्रकृति के प्रति प्रखंड विकास अधिकारी ने कोई प्रतिकूल टिप्पणी नहीं किया था। अंत में, विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ पी॰ एन रॉय ने निवेदन किया कि इन तथ्यों और परिस्थितियों में, याची कनीय अभियंता, जो स्वीकृत रूप से भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के अधीन लोक सेवक है, के विरुद्ध लेने के लिए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन मंजूरी आवश्यक थी और यह अभिकथन नहीं था कि उसने अपने निजी हैसियत में और निजी लाभ के लिए अपराध किया था।

7. दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 लागू करने के लिए आवश्यक घटक ये हैं कि अपराध लोक सेवक द्वारा किया गया हो और कि संघ अथवा राज्य के क्रियाकलापों के संबंध में नियुक्त लोक सेवक केंद्र सरकार अथवा राज्य सरकार की मंजूरी जैसा भी मामला हो, के बिना पद से हटाए जाने योग्य नहीं है। मैं दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 12 वर्ष 2007 में अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ सं॰ 1 गढ़वा द्वारा दर्ज आक्षेपित आदेश के परिशीलन से पाता हूँ कि दिनांक 17.2.2010 को दांडिक पुनरीक्षण खारिज करते हुए यद्यपि उन्होंने कनीय अभियंता के मामले पर विचार किया था कि उसके विरुद्ध संज्ञान लेने के पहले दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन मंजूरी आवश्यक है किंतु याची श्याम दास सिंह के संबंध में यद्यपि उन्होंने स्वीकार किया कि याची लोक सेवक था किंतु संप्रेक्षित किया कि बिहार/झारखंड सरकार की मंजूरी के बिना ही वह पद से हटाए जाने योग्य था और उनका ऐसा संप्रेक्षण इस संबंध में सूचना/दस्तावेज के किसी स्रोत को प्रकट करते हुए पुख्ता नहीं किया गया है। गृह विभाग, बिहार सरकार के परिपत्र के संदर्भ में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने संप्रेक्षित किया कि यह सांविधिक विधि का स्थान नहीं ले सकता था और उन्होंने अभिनिर्धारित किया कि याची श्याम दास सिंह, कनीय अभियंता, के अभियोजन के लिए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन मंजूरी आवश्यक नहीं थी, मैं पाता हूँ कि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा किया गया संप्रेक्षण गलत अनुचिंतनों पर आधारित था और किसी प्रासंगिक दस्तावेज के समर्थन के बिना था। उक्त कथित कारणों से और बिहार सरकार की अधिसूचना (परिशिष्ट–10) पर विश्वास करते हुए, मैं पाता हूँ और अभिनिर्धारित करता हूँ कि याची कनीय अभियंता भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के अधीन लोक सेवक है। मामला यह नहीं था कि उसके द्वारा तात्पर्यित और अभिकथित रूप से किया गया कृत्य उसकी निजी हैसियत से और उसके निजी लाभों के लिए किया गया था और इसलिए, दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में उसके विरुद्ध संज्ञान लेने के पहले दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन मंजूरी ''अनिवार्य'' थी। इन तथ्यों और परिस्थितियों में, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन मंजूरी की कमी के कारण याची श्याम दास सिंह का अभियोजन विधि के अधीन संपोषित नहीं किया जा सकता है, तद्नुसार, श्री टी॰ हसन, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, गढ़वा अथवा उसके उत्तराधिकारी के समक्ष लंबित जी॰ आर॰ सं॰ 289 वर्ष 1997 में उसका अभियोजन अपास्त किया जाता है और श्री टी॰ हसन, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, गढ़वा द्वारा दर्ज दिनांक 9.1.2007 का आक्षेपित आदेश और दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 12 वर्ष 2007 में अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰–I, गढ़वा द्वारा दर्ज दिनांक 17.2.2010 का आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया जाता है। यह याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

रवि शेखर सिंह एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P.(C) No. 3292 of 2011. Decided on 28th June, 2011.

शैक्षणिक विधि–आयुर्विज्ञान शिक्षा–आरक्षण–छात्रों के लिए रोस्टर अंकों का नियतिकरण–उपलब्ध सीटों के आधार पर प्रत्येक वर्ष आरक्षण प्रावधानित करना होगा–मेडिकल फैकल्टी में स्नातकोत्तर अध्ययन में भी आरक्षण अनुज्ञेय है–दिनांक 10.6.2011 के कार्यपालिका अनुदेश में, मेडिकल फाकल्टी में स्नातकोत्तर में अध्ययन हेतु प्रवेश के लिए सरकार द्वारा कोई अयुक्तियुक्त अथवा अत्यधिक आरक्षण नियत नहीं किया गया है–राज्य ने बिल्कुल स्वस्थ आरक्षण नीति नियत किया है–विषयवार आरक्षण का परिणाम शत-प्रतिशत आरक्षण में हो सकता है जब कभी भी किसी विषय विशेष में केवल एक सीट उपलब्ध होता है–याचिका खारिज। (पैराएँ 7 से 9)

निर्णयज विधि.–AIR 1993 SC 477; (2008)6 SCC 1—Relied on; (2005)2 SCC 65; (2010)1 SCC 477; (1998)4 SCC 1; 2003(3) JCR 188 (Jhr); AIR 1990 SC 2023;—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Ajit Kumar, For the Petitioner; A.G., For the State; M/s P.K. Prasad, J.J. Sanga, For the Respondent No.7 to 10.

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.–यह रिट याचिका निम्नलिखित प्रार्थना के साथ दाखिल की गयी है:–

(i) प्रत्यर्थी सं० 2 के हस्ताक्षर के अधीन जारी दिनांक 10.6.2011 के पत्र सं० 226 (7A) के अभिखंडन के लिए जिसके द्वारा और जिसके अधीन उक्त प्रत्यर्थी ने स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान शिक्षा के अनेक विषयों/फैकल्टी में प्रवेश के लिए दिनांक 17.2.2009 के सरकार की प्रचलित नीति और संकल्प को किसी अधिकारिता एवं प्राधिकार के बिना परिवर्तित करना इप्सित किया था, यद्यपि सरकार द्वारा जारी दिनांक 17.2.2009 के उक्त संकल्प पर दिनांक 8.7.2009 को दाखिल डब्ल्यू० पी० (सी०) सं० 1992 वर्ष 2009 के संबंधित मामले में सम्यक् रूप से विश्वास किया गया है और झारखंड राज्य की आरक्षण नीति के नार्म्स के प्रति अनुरुप कथन किया गया है;

(ii) उनको कारण बताने के लिए कहते हुए और प्रत्यर्थी सं० 2 को आदेशित करते हुए अन्य उपयुक्त आदेशों/निर्देशों को जारी करने के लिए कि कैसे सीटवार/विषयवार/संस्थानवार आरक्षणों को प्रदान करने की नीति का पालन किए बिना झारखंड राज्य में अवस्थित मेडिकल महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर और विशिष्टीकृत पी० जी० डिप्लोमा सीटों के आरक्षण के मामले में विपथन की अनुमति दी जा सकती है विशेषतः जब भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय, जिसका अनुसरण अब तक झारखंड राज्य में किया गया है, की दृष्टि में एकल पद कैडर में रोस्टर अथवा अन्यथा के माध्यम से आरक्षण लागू नहीं किया जा सकता है;

(iii) स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान शिक्षा के अनेक विषयों/फैकल्टी में प्रवेश के लिए सीटों को भरते हुए सामान्य एवं आरक्षित कोटि के उम्मीदवारों के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए ताकि सामान्य कोटि के उम्मीदवारों को उपलब्ध मेधा-सह-विकल्प को अनदेखा नहीं किया जाए और अयुक्तियुक्त रूप से अधिक्रमित नहीं किया जाए,

प्रत्यर्थीगण को रास्ता निकालने का आदेश देने और समुचित एवं उपयुक्त आदेशों को जारी करने के लिए।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आरंभ में नीति वर्ष 2002 के लिए प्रत्यर्थी-राज्य द्वारा प्रारंभ की गयी थी जो रिट याचिका के मेमो के परिशिष्ट-3 पर परिलक्षित होता है। तत्पश्चात, आरक्षण के लिए नीति दिनांक 17 फरवरी, 2009 को प्रारंभ की गयी थी जो रिट याचिका के मेमो के परिशिष्ट-4 पर है जिसमें अनुसूची-I और II के मुताबिक आरक्षण बिंदु/अंक दिए गए हैं। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि तत्पश्चात प्रत्यर्थी-राज्य ने पूर्व नीतियों से पूर्ण विपथन किया है और अब दिनांक 10.6.2009 का कार्यपालिका अनुदेश जारी किया है जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-11 पर है, जिसके द्वारा, स्नातकोत्तर मेडिकल सीटों में कतिपय विषय में 100% आरक्षण दिया गया है, जिसमें रिक्ति केवल एक पद के लिए है। उदाहरणस्वरुप, बायो-केमेस्ट्री, एम॰ डी॰ (एफ॰ एम॰ टी॰), एम॰ डी॰ (डर्मेटोलॉजी), एम॰ एस॰ (इ॰ एन॰ टी॰), एम॰ सी॰ एच॰ (न्यूरोसर्जरी) में केवल एक सीट है और यदि दिनांक 10 जून, 2011 को प्रत्यर्थी राज्य द्वारा जारी कार्यपालिका अनुदेश, जो नयी आरक्षण नीति के बारे में कथन करता है, को जारी रहने की अनुमति दी जाती है, तब पूर्वोक्त फैकल्टी सामान्य कोटि के उम्मीदवारों के लिए उपलब्ध नहीं हो सकती है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि यदि पूर्वोक्त विषयों, जो मेडिकल फैकल्टी में स्नातकोत्तर अध्ययन में उपलब्ध है, में आरक्षण की अनुमति दी जाती है, यह 100% आरक्षण के समान होगा जो विधि की दृष्टि में अनुज्ञेय नहीं है और इसलिए प्रत्यर्थी-राज्य द्वारा जारी कार्यपालिका अनुदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-11) अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता ने **(1998)4 SCC 1 (पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टिच्यूट ऑफ मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च बनाम फैकल्टी एसोसियेशन एवं अन्य), 2003 (3) JCR 188 (Jhr.) (रजनीश मिश्रा एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य)** और **AIR 1990 SC 2023 (डॉ॰ सुरेश चंद्र वर्मा एवं अन्य बनाम चांसलर, नागपुर विश्वविद्यालय एवं अन्य)** सहित अनेक निर्णयों पर विश्वास किया है और इंगित किया है कि इस न्यायालय की विशेष पीठ ने विनिश्चित किया है कि नियुक्ति मामले में आरक्षण नीति को मेडिकल फैकल्टी में स्नातकोत्तर अध्ययन में प्रवेश के मामलों में भी प्रयोज्य बनाया जाएगा और पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में आरक्षण विषयवार करना था जबकि परिशिष्ट-II को देखते हुए प्रतीत होता है कि राज्य ने विषयवार आरक्षण नहीं किया है और इसलिए भी याचिका के मेमो के परिशिष्ट-II पर मॉजूद आदेश को अपास्त करने की आवश्यकता है।

4. प्रत्यर्थी सं॰ 4, 5 और 6 के विद्वान अधिवक्ता ने भी याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों को अपनाया है और आगे निवेदन किया है कि दिनांक 10 जून, 2011 के आदेश के तहत याचिका के मेमो के परिशिष्ट-11 पर मौजूद कार्यपालिका अनुदेश क्रियान्वित नहीं किया जा सकता है और ऐसा ही संकल्प उनके बोर्ड की बैठक में दिनांक 23 जून, 2011 को लिया गया है।

5. विद्वान महाधिवक्ता ने निवेदन किया है कि वस्तुत: सरकार द्वारा कोई नया फैसला नहीं लिया गया है बल्कि सरकार ने केवल उसे स्पष्ट किया है जो पहले ही दिनांक 17 फरवरी, 2009 के याचिका के मेमो के परिशिष्ट-4 के तहत विनिश्चित किया गया है। आगे निवेदन किया गया है कि दिनांक 17 फरवरी, 2009 के आरक्षण के संबंध में नीतिगत निर्णय पहले से ही अस्तित्व में हैं और इस नीतिगत निर्णय, जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-4 पर है, को कोई चुनौती नहीं दी गयी है। याचिका के मेमो

के परिशिष्ट–11 पर दिनांक 10 जून, 2011 का कार्यपालिका अनुदेश और कुछ नहीं बल्कि उक्त आरक्षण नीति का दोहराया जाना मात्र है।

6. राज्य के विद्वान महाधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि क्रमांक 1, 3, 5, 7, 9, 11, 13, 15, 17, 19, 21, 23, 25, 27, 29, 31, 33, 35 और 37 पर रोस्टर अंक अनारक्षित अथवा सामान्य उम्मीदवारों के लिए है जिसके लिए पृथक मेधा सूचियाँ हैं। इस प्रकार, मेडिकल फैकल्टी में स्नातकोत्तर अध्ययन में उपलब्ध कुल 56 सीटों में से 28 सीटें अनारक्षित है जबकि 14 सीटें रोस्टर अंक सं॰ 2, 8, 10, 14, 18, 22, 26, 30, 34, 38, 42, 44, 50 और 52 पर अनुसूचित जनजाति कोटि से आने वाले उम्मीदवारों के लिए आरक्षित है। इसी प्रकार, मेडिकल फैकल्टी में स्नातकोत्तर अध्ययन में कुल 46 सीटों में से, 6 सीटों को अनुसूचित जाति कोटि से आने वाले उम्मीदवारों के लिए आरक्षित किया गया है जिनका रोस्टर अंक 6, 16, 24, 36, 46 और 56 है। इसी प्रकार, 56 सीटों में से 5 सीटें अत्यन्त पिछड़ा वर्ग (ओ॰ बी॰ सी॰ II) के लिए आरक्षित की गयी हैं और उनका रोस्टर अंक 12, 28 और 40 है। इसी प्रकार से, रिट याचिका के मेमो के परिशिष्ट–11 पर दिनांक 10 जून, 2011 के कार्यपालिका के अनुदेश में डिप्लोमा पाठ्यक्रम के संबंध में स्पष्टीकरण दिया गया है जो इस रिट याचिका में चुनौती के अधीन है।

7. राज्य के विद्वान महाधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 15 (5) को देखते हुए सरकार द्वारा मेडिकल फैकल्टी में स्नातकोत्तर अध्ययन में प्रवेश देने के लिए नीतिगत निर्णय के रूप में आरक्षण नियत किया जा सकता है। विद्वान महाधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि भारत के संविधान के अनुच्छेदों 16(4) और 15(5) के बीच विशाल भिन्नता है जैसा कि **अशोक कुमार ठाकुर बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2008)6 SCC 1 और गुलशन प्रकाश (डॉ॰) एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, (2010)1 SCC 477** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों पर विश्वास किया गया है और निवेदन किया है कि प्रत्यर्थी राज्य द्वारा जारी दिनांक 10 जून, 2011 के पत्र के मुताबिक पाँच भिन्न मेधा सूचियाँ है जो निम्नलिखित है:–

(a) सामान्य जाति के उम्मीदवार,

(b) अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवार,

(c) अनुसूचित जाति के उम्मीदवार,

(d) ओ॰ बी॰ सी॰ I के उम्मीदवार जो अत्यंत पिछड़ा वर्ग है

(e) ओ॰ बी॰ सी॰ II के उम्मीदवार जो अन्य पिछड़ा वर्ग है।

पूर्वोक्त पाँच मेधा सूची में से, रोस्टर अंक के मुताबिक प्रथम उम्मीदवार अपनी मेधा के अनुसार सामान्य कोटि का होगा और उसे स्नातकोत्तर में 18 फैकल्टियों का विकल्प दिया जाएगा, जिसमें से वह एक चुन सकता है। ये 18 कोटियाँ निम्नलिखित हैं:–

(1) एम॰ डी॰ (एनाटोमी),

(2) एम॰ डी॰ (बायोकेमिस्ट्री),

(3) एम॰ डी॰ (फिजियोलॉजी),

(4) एम॰ डी॰ (एफ॰ एम॰ टी॰),

(5) एम॰ डी॰ (माइक्रोबायोलॉजी),

(6) एम॰ डी॰ (पैथोलॉजी),

(7) एम० डी० (फार्माकोलॉजी),

(8) एम० डी० (एनेस्थेसियोलॉजी),

(9) एम० डी० (मेडिसिन),

(10) एम० डी० (पेडियाट्रिक्स),

(11) एम० डी० (डर्मेटोलॉजी),

(12) एम० डी० (रेडियोलॉजी),

(13) एम० डी० (गाइनोकोलॉजी),

(14) एम० एस० (इ० एन० टी०),

(15) एम० एस० (सर्जरी),

(16) एम० एस० (आई)

(17) एम० एस० (ऑर्थोपेडिक्स),

(18) एम० सी० एच० (न्यूरोसर्जरी)।

इस प्रकार, प्रथम उम्मीदवार पूर्वोक्त फैकल्टियों में से किसी एक को चुनेगा और तब द्वितीय कोटि के उम्मीदवार को अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिए पृथक रूप से तैयार की गयी मेधा सूची से बुलाया जाएगा जिसे शेष 17 फैकल्टियों के लिए विकल्प दिया जाएगा जो किसी एक विषय को चुन सकता है जैसा यहाँ ऊपर कथित किया गया है। इसी प्रकार से, तृतीय कोटि के उम्मीदवार को सामान्य कोटि के मेधा सूची से बुलाया जाएगा। जो शेष फैकल्टियों में से किसी एक विषय को चुनेगा और चतुर्थ उम्मीदवार अत्यन्त पिछड़ा वर्ग अर्थात ओ॰ बी॰ सी॰ I के मेधा सूची से बुलाया जाएगा जो शेष फैकल्टियों में से किसी एक विषय को चुनेगा और इसी प्रकार से संपूर्ण रोस्टर अंक का प्रचलन किया जाएगा और, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि किसी विषय विशेष में शत-प्रतिशत आरक्षण है जैसा यहाँ ऊपर प्रगणित किया गया है। राज्य के विद्वान महाधिवक्ता द्वारा यह निवेदन भी किया गया है कि मेडिकल फैकल्टी में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में अंतिम परामर्श और प्रवेश के लिए **मृदुल धर (अवयस्क) एवं एक अन्य बनाम भारत संघ, (2005)2 SCC 65** के मामले में दिए गए निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विहित अंतिम तिथि दिनांक 30 जून, 2011 है। अत:, सीटें बेकार चली जाएँगी और रिक्तियाँ बनी रहेंगी जैसी वे बनी हुई हैं यदि पूर्वोक्त तिथि के परे इस रिट याचिका को स्थगित किया जाता है।

8. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मैं मुख्यत: निम्नलिखित कारणों से इस रिट याचिका को ग्रहण करने का कोई कारण नहीं देखता हूँ:-

(i) कि वर्तमान याचिका वहाँ कोई आरक्षण के बिना स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में मेडिकल फैकल्टी में प्रवेश पाने के लिए याचीगण द्वारा दाखिल की गयी है और वे मुख्यत: याचिका के मेमो के परिशिष्ट-11 में अंतर्विष्ट प्रत्यर्थीगण द्वारा जारी दिनांक 10 जून, 2011 के कार्यपालिका अनुदेश को चुनौती दे रहे हैं। इस कार्यपालिका अनुदेश में, सामान्य कोटि, अनुसूचित जन जाति कोटि, अनुसूचित जाति कोटि और अत्यन्त पिछड़ा वर्ग अर्थात् ओ॰ बी॰ सी॰ I एवं पिछड़ा वर्ग अर्थात् ओ॰ बी॰ सी॰ II कोटियों से आने वाले उम्मीदवारों के लिए रोस्टर अंक नियत किया गया है।

(ii) याचिका के मेमो के परिशिष्ट-4 पर दिनांक 17 फरवरी, 2009 को पहले ही लिए जा चुके नीतिगत निर्णय को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि अनुसूची-I के मुताबिक रोस्टर के अंक पहले ही नियत कर दिए गए हैं और जहाँ तक अनुसूची-II का संबंध है, इसे तब प्रवर्तित किया जाएगा जब रिक्तियों की कुल संख्या 50 से कम हो।

(iii) राज्य द्वारा लिए गए नीतिगत निर्णय से यह प्रतीत होता है कि क्रमांक 1 से 50 तक के लिए कतिपय रोस्टर अंक पहले ही नियत किए जा चुके हैं और तत्पश्चात इन्हें दोहराया जाएगा, उदाहरणस्वरुप, मेधा सूची में क्रमांक 51 पर के छात्र को रोस्टर अंक के मुताबिक नंबर 1 माना जाएगा; क्रमांक 52 को रोस्टर अंक के मुताबिक नंबर 2 माना जाएगा, क्रमांक 53 रोस्टर अंक के मुताबिक नंबर 3 माना जाएगा, आदि, आदि।

(iv) मामले के तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि याचिका के मेमो के परिशिष्ट-4 को चुनौती नहीं दी गयी है। जहाँ तक याचिका के मेमो के परिशिष्ट-11 का संबंध है, दिनांक 17 फरवरी, 2009 के पहले ही लिए जा चुके नीतिगत निर्णय (परिशिष्ट-4) से रोस्टर अंकों के संबंध में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। सामान्य कोटि से आने वाले उम्मीदवारों के लिए पृथक मेधा सूची तैयार की जाएगी और इसी प्रकार से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अत्यंत पिछड़ा वर्ग अर्थात ओ॰ बी॰ सी॰ I और पिछड़ा वर्ग अर्थात ओ॰ बी॰ सी॰ II कोटियों से आने वाले अन्य उम्मीदवारों के लिए स्नातकोत्तर मेडिकल एडमिशन टेस्ट, 2011 में प्राप्त अंकों के आधार पर पृथक मेधा सूचियों को तैयार किया जाएगा और रोस्टर अंकों के मुताबिक उम्मीदवारों को बुलाया जाएगा; उदाहरणस्वरुप, रोस्टर अंक सं॰ 1 के लिए सामान्य कोटि के उम्मीदवारों से सर्वाधिक/उच्चतम अंक वाला एक उम्मीदवार चुना जाएगा और उसे कुल अठारह फैकल्टियों में से किसी एक को चुनने का विकल्प दिया जाएगा जैसा यहाँ ऊपर कहा गया है। वह न्यूरोसर्जरी अथवा एम॰ एस॰ (इ॰ एन॰ टी॰) अथवा एम॰ डी॰ (रेडियोलॉजी) अथवा एम॰ डी॰ (डर्मेटोलॉजी अथवा एम॰ डी॰ (एफ॰ एम॰ टी॰) चुन सकता है। तत्पश्चात, रोस्टर अंक सं॰ 2 के लिए अनुसूचित जनजाति कोटि से आने वाले उम्मीदवारों के लिए तैयार की गयी मेधा सूची में सबसे उपर मौजूद उम्मीदवार को बुलाया जाएगा और कुल शेष सीटों में से किसी एक को चुनने का विकल्प दिया जाएगा।

(v) याचिका के मेमो के परिशिष्ट-11, दिनांक 10 जून, 2011 को प्रत्यर्थीगण द्वारा जारी कार्यपालिका अनुदेश को देखते हुए प्रतीत होता है कि इसे किसी भी तरह से भारत के संविधान के अनुच्छेद 15 सह पठित अनुच्छेद 16 का उल्लंघनकारी अथवा अयुक्तियुक्त बताया नहीं जा सकता है। आरक्षण का प्रतिशत 50% से अधिक नहीं है जिसे दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा स्वीकार किया गया है। कुल आरक्षण 50% है।

(vi) याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने उन विषयों, जिनके लिए केवल एक सीट है, अर्थात् न्यूरोसर्जरी, इ॰ एन॰ टी॰ (रेडियोलॉजी) और एफ॰ एम॰ टी॰ और डर्मेटोलॉजी के बारे में अनेक शिकायत किया है और निवेदन किया है कि कोई आरक्षण नहीं हो सकता है अन्यथा यह उन सीटों के लिए 100% आरक्षण होगा जहाँ केवल एक सीट है।

याचीगण की ओर से ऐसी आशंका अनावश्यक और अनपेक्षित है। जैसा यहाँ उपर कहा गया है, आरक्षण नियत करते हुए रोस्टर अंक पहले ही नियत किए जा चुके हैं। सामान्य कोटि, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, ओ॰ बी॰ सी॰ I और ओ॰ बी॰ सी॰ II से आने वाले उम्मीदवारों के लिए विभिन्न मेधा सूचियाँ हैं। रोस्टर अंकों के मुताबिक एक-एक करके उम्मीदवारों को बुलाया जाएगा और उम्मीदवार को 18 विषयों अथवा शेष विषयों में से किसी एक को चुनने का विकल्प होगा। अत:, यह नहीं कहा जा सकता है कि पूर्वोक्त सीटों के लिए 100% आरक्षण है।

(vii) इसके अतिरिक्त, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रतिवाद किया गया है कि पद अर्थात् कैडर पद को भरने के लिए जो भी आरक्षण नीति प्रयोज्य है, उसे अध्ययन के प्रयोजन के लिए मेडिकल फैकल्टी में स्नातकोत्तर सीटों को भरने के लिए भी प्रयोज्य बनाया जाना चाहिए।

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता के इस प्रतिवाद को इस न्यायालय द्वारा मुख्यत: इन कारणों से स्वीकार नहीं किया गया है कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 15(5), जिसे वर्ष 2006 में संशोधित किया

गया है, सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों अथवा अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति के प्रगति के लिए विशेष प्रावधानों को बनाने के लिए, जहाँ तक यह शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश से संबंधित है, राज्य को कदम उठाने की अनुमति देता है। अत: राज्य में सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों अथवा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के उद्धार के लिए आरक्षण नीति बनाना राज्य के विवेक पर छोड़ दिया गया है।

(viii) आरक्षण नीति उपलब्ध सीटों पर अनुसूचित जनजाति के सदस्यों सहित विभिन्न आरक्षित कोटियों के लिए आरक्षण दिया जाना प्रावधानित करती है और इसलिए उपलब्ध सीटों के आधार पर प्रत्येक वर्ष आरक्षण प्रावधानित करना होगा।

(ix) **इन्द्र साहनी बनाम भारत संघ एवं अन्य, AIR 1993 SC 477** के मामले में दिए गए निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने भी पैराग्राफ 96 पर अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्येक वर्ष को एक इकाई के रूप में लेते हुए आरक्षण को संगणित करना होगा जिसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

"96. इस प्रश्न का अगला पहलू यह है कि क्या 50% का नियम लागू करने के प्रयोजन से इकाई के रूप में वर्ष को अथवा कैडर के कुल स्ट्रेंथ को लिया जाना चाहिए, बालाजी (AIR 1963 SC 649) इस पहलू पर विचार नहीं करता है किंतु देवदासन (AIR 1964 SC 179) (बहुमत का मत) करता है। बहुमत की ओर से बोलते हुए मुधोलकर, न्यायमूर्ति कहते है:–

''हम जोर देना चाहेंगे कि अनुच्छेद 16 (1) में अंतर्विष्ट गारंटी रोजगार से, और राज्य के अधीन किसी पद पर नियुक्तियों से संबंधित समस्त नागरिकों के लिए अवसर की समानता सुनिश्चित करने के लिए है। इसका अर्थ यह है कि भर्ती के प्रत्येक अवसर पर राज्य को देखना चाहिए कि समस्त नागरिकों के साथ समान रूप से व्यवहार किया जाय। गारंटी प्रत्येक नागरिक को दी गयी है और, इसलिए, प्रत्येक नागरिक, जो रोजगार अथवा राज्य के अधीन किसी पद पर नियुक्ति इप्सित कर रहा है, ऐसा रोजगार अथवा नियुक्ति, जब कभी भी यह भरे जाने के लिए आशयित है, इप्सित करने के लिए अवसर दिए जाने का हकदार है। गारंटी को प्रभावशाली बनाने के लिए भर्ती के प्रत्येक वर्ष को स्वयं द्वारा विचारित किया जाएगा और पिछड़े समुदायों के लिए आरक्षण इतना अत्यधिक नहीं होना चाहिए जो एकाधिकार सृजित करे अथवा अन्य समुदायों के वैध दावों में असम्यक रूप से छेड़छाड़ करे।''

दूसरी ओर, राय मुख्य न्यायाधीश द्वारा अपनाया गया रवैया है। थॉमस (AIR 1976 SC 490) में 50% के नियम की शुद्धता को विवादित नहीं करते हुए वह एक प्रकार से संपूर्ण सेवा पर इसे लागू करते हुए प्रतीत होते हैं। हमारे मत में, राय, मुख्य न्यायाधीश द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण अनुच्छेद 16 के अनुरूप नहीं होगा। यह सत्य है कि पिछड़े वर्ग, जो ऐतिहासिक सामाजिक अन्याय के पीड़ित है, जो अभी तक पूरी तरह अस्तित्वहीन नहीं हुआ है, का प्रतिनिधित्व राज्य के अधीन सेवाओं में समुचित रूप से नहीं हुआ है किंतु इस असंतुलन को एक बार में ही अर्थात एक-दो वर्ष में दूर करना संभव नहीं है। एक उदाहरण द्वारा इस अवस्था को अच्छी प्रकार से स्पष्टीकृत किया जा सकता है। एक हजार पदों से गठित किसी इकाई/सेवा/कैडर को लें। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए 50% आरक्षण है जिसका अर्थ है कि 1000 पदों में से 500 पद इन वर्गों के सदस्यों द्वारा धारित किए जाने चाहिए अर्थात् 270 पद अन्य पिछड़ों द्वारा, 150 पद अनुसूचित जाति द्वारा और 80 पद अनुसूचित जनजाति द्वारा। अब हम कहें, समय के दिए गए किसी बिंदु पर, इकाई/सेवा/कोटि में ओ० बी० सी० के सदस्यों की संख्या केवल 50 है

अर्थात 220 की कमी। इसी प्रकार से, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की संख्या क्रमशः केवल 20 और 5 है, अर्थात् 130 और 75 की कमी। यदि संपूर्ण सेवा/कैडर को इकाई के रूप में लिया जाता है और संचय (backlog) को पूरा किया जाना इप्सित किया जाता है, तब खुली प्रतियोगिता चैनल को कई वर्षों के लिए तब तक अवरुद्ध कर देना होगा जब तक समस्त पिछड़े वर्गों के सदस्यों की संख्या 500 नहीं हो जाती है अर्थात् जब तक उनमें से प्रत्येक के लिए कोटा भर नहीं दिया जाता है। इसमें अनेक वर्ष लग सकते हैं क्योंकि प्रत्येक वर्ष उद्भूत होने वाली रिक्तियों की संख्या अधिक नहीं है। इस बीच, खुली प्रतियोगिता कोटि के सदस्य आयु से वर्जित और अपात्र हो जाएँगे। उनके मामलों में अवसर की समानता मात्र मरीचिका हो जाएगी। यह याद रखना होगा कि खंड (i) द्वारा गारंटी दी गयी अवसर की समानता देश के प्रत्येक नागरिक के लिए है जबकि खंड (4) सामाजिक रूप से असुविधाग्रस्त वर्गों के पक्ष में विशेष प्रावधान बनाया जाना अनुध्यात करता है। एक-दूसरे के विरुद्ध दोनों का संतुलन बनाए रखना होगा। किसी को दूसरे पर ग्रहण लगाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। उक्त कारणों से हम अभिनिर्धारित करते हैं कि 50% का नियम लागू करने के प्रयोजन से वर्ष को इकाई के रूप में लेना चाहिए और न कि कैडर, सेवा अथवा ईकाई, जो भी मामला हो, के पूरे स्ट्रेंथ को।

(x) **अशोक कुमार ठाकुर बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2008)6 SCC 1** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, जिसके पैराग्राफों 91 और 92 के पृष्ठ 471-472 पर निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है, की दृष्टि में मेडिकल फैकल्टी में स्नातकोत्तर अध्ययन में भी आरक्षण अनुज्ञेय है:-

"91. डब्ल्यू० पी० सं० 265 वर्ष 2006 में प्रत्यर्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री टी० आर० अंध्यारुजिना ने प्रतिवाद किया कि अनुच्छेद 15(4) और 16 (4) भिन्न-भिन्न क्षेत्र में प्रवर्तित होते हैं और अनुच्छेद 15 (4) पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष प्रावधानों को बनाने के लिए राज्य सरकार को सक्षम बनाता है जिसे विधि द्वारा अथवा कार्यपालिका आदेश द्वारा किया जा सकता है। अनुच्छेद 15 (4) के विशेष प्रावधान केवल शैक्षणिक संस्थानों में एस० इ० बी० एस० सी० और एस० टी० की प्रगति तक निर्बंधित नहीं है और आरक्षण के अतिरिक्त अनेक प्रकार के सकारात्मक एक्शन प्रोग्राम बनाने के लिए राज्य को सक्षम बनाते हैं। किंतु, राज्य निजी गैर सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों में ऐसा आरक्षण नहीं कर सकता है जैसा टी० एम० ए० पाई फाउंडेशन और पी० ए० ईनामदार में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है। यह निःशक्तता टी० एम० ए० पाई फाउंडेशन के कारण थी जिसने प्रावधानित किया था कि निजी गैर सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों के पास अनुच्छेद 19(1)(g) के अधीन शिक्षा देने के ''रोजगार'' का अधिकार था। अतः अनुच्छेद 19(1)(g) के प्रावधानों के बावजूद किसी विनिर्दिष्ट विषय अर्थात् निजी शैक्षणिक संस्थानों चाहे वह सहायता प्राप्त हो या गैर सहायता प्राप्त सहित शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश के संबंध में एस० सी० एस० टी० और एस० ई० बी० सी० के प्रगति के लिए विशेष प्रावधानों को बनाने के लिए राज्य को सक्षम बनाने हेतु संसद ने संविधान (93वाँ संशोधन) अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 15 (5) पुरःस्थापित किया था किंतु अनुच्छेद 15(5) ने निजी शैक्षणिक संस्थानों, जो अनुच्छेद 30 के खंड (1) में निर्दिष्ट अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान हैं, को अपवर्जित किया। अनुच्छेद 15 (5) में

अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों के लिए सुरक्षा वस्तुतः, अत्यधिक सावधानी बरतना है क्योंकि अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान संवैधानिक रूप से सुरक्षित है और हर समय अन्य निजी शैक्षणिक संस्थानों से भिन्न माने जाते हैं।

92. अनुच्छेद 15 (5) संविधान का ''मूल ढाँचा'' समाप्त नहीं करता है। संविधान के ''मूल ढाँचा'' को इतना महत्वहीन नहीं बना देना चाहिए कि यह संविधान के अन्य लक्षणों को अवरूद्ध करे। केशवानन्द भारती मामले में खन्ना, न्यायमूर्ति द्वारा किए गए संप्रेक्षणों को भी निर्दिष्ट किया गया था। यह निवेदन भी किया गया था अनुच्छेद 15(5) इस सीमा तक प्रविष्टि 25 सूची III को संशोधित नहीं करता है कि राज्य अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों में सीटों के आरक्षण के लिए अब कानून नहीं बना सकता है और, इसलिए, यह कहना सही नहीं है कि अनुच्छेद 15(5) में संशोधन अनुच्छेद 368 (2) के अधीन अनुसमर्थन की अपेक्षा करता था। अनुच्छेद 245 के अधीन विधान बनाने की शक्ति सदैव संविधान के अन्य प्रावधानों, मौलिक अधिकारों सहित, के अध्यधीन है। अनुच्छेद 15(4) राज्य द्वारा अनुच्छेद 162 के अधीन कार्यपालिका की कार्रवाई द्वारा स्वयं अपने संस्थानों में आरक्षण करने की शक्ति वापस नहीं लेता है। व्यवसाय करने का अधिकार संविधान के मूल ढाँचा का अंश नहीं है।''

(xi) इसके अतिरिक्त, रोस्टर अंकों को देखते हुए, जैसा याचिका के मेमो के परिशिष्ट-11 पर दिनांक 10.6.2011 के कार्यपालिका अनुदेश में कथित किया गया है, प्रतीत होता है कि मेडिकल फैकल्टी में स्नातकोत्तर अध्ययन में प्रवेश के लिए सरकार द्वारा कोई अयुक्तियुक्त अथवा अत्यधिक आरक्षण नियत नहीं किया गया है। कुछ 56 उपलब्ध सीटों में से, 28 सीटें सामान्य कोटि से आने वाले उम्मीदवारों के लिए रखी गयी है, 14 सीटें अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित की गयी हैं, 6 सीटें अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित की गयी हैं, 5 सीटें अत्यन्त पिछड़ा वर्ग अर्थात ओ॰ बी॰ सी॰-I के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित की गयी हैं और 3 सीटें पिछड़ा वर्ग अर्थात ओ॰ बी॰ सी॰ II के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित की गयी है। इस प्रकार के आरक्षण मेडिकल फैकल्टी में स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए कुल उपलब्ध सीटों के 50% से अधिक नहीं है। इसी प्रकार से, डिप्लोमा पाठ्यक्रम के लिए भी आरक्षण है। कुल 37 सीटों में से, 19 सीटें सामान्य कोटि से आने वाले उम्मीदवारों के लिए अनारक्षित है और पूर्वोक्त कार्यपालिका अनुदेश, जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-11 है, में उनके रोस्टर अंकों को कथित किया गया है।

(xii) पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़ा वर्ग अथवा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवार समुचित आरक्षण पाएँगे और मेडिकल फैकल्टी में स्नातकोत्तर में अध्ययन के लिए उन्हें पर्याप्त अवसर मिलेगा। प्रत्यर्थी सरकार ने न्यूरोसर्जरी, इ॰ एन॰ टी॰ (रेडियोलॉजी) डर्मेटोलॉजी और एफ॰ एम॰ टी॰ में 100% आरक्षण नियत नहीं किया है। इन समस्त विषयों में केवल एक सीट है। सामान्य कोटि के लिए बनाया गया रोस्टर अंक 1, 3, 5, 7 और 9..... वाला कोई उम्मीदवार भी पूर्वोक्त सीटों में से किसी एक को अथवा पूर्वोक्त विषयों में से किसी एक को मेडिकल फैकल्टी में अपने स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए चुन सकता है। विषयवार रोस्टर अंकों को नियत करने के लिए राज्य की ओर से कोई विधिक बाध्यता नहीं है जो याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया मुख्य तर्क है।

यदि इस प्रतिवाद को स्वीकार किया जाता है, तब सरकार, कतिपय विषयों के लिए जिनमें केवल एक सीट है, आरक्षण नियत कर सकती है। इस स्थिति से बचने के लिए, सही प्रकार से नीतिगत निर्णय लिया गया है कि रोस्टर अंकों को नियत किया गया है और उम्मीदवारों को बुलाया जाएगा जो पूर्वोक्त 18 विषयों में से किसी एक विषय को चुन सकते हैं।

सामान्य कोटि से आने वाले ***उम्मीदवारों के लिए*** *रोस्टर अंक हैं: 1, 3, 5, 7, 9, 11, 13, 15, 17, 19, 21, 23, 25, 27, 29, 31, 33, 35, 37, 39, 41, 43, 45, 47, 49, 51, 53 एवं 55।*

अनुसूचित जनजाति से आने वाले ***उम्मीदवारों के लिए*** *रोस्टर अंक हैं.-*

2, 8, 10, 14, 18, 22, 26, 30, 34, 38, 42, 44, 50, 52

अनुसूचित जाति से आने वाले ***उम्मीदवारों के लिए*** *रोस्टर अंक हैं:-*

6, 16, 24, 36, 46, 66।

ओ० बी० सी० I कोटि से आने वाले ***उम्मीदवारों के लिए*** *रोस्टर अंक हैं:-*

4, 20, 32, 48, 54।

ओ० बी० सी० II कोटि से आने वाले ***उम्मीदवारों के लिए*** *रोस्टर अंक हैं:-*

12, 28, 40।

(xiii) इस नीतिगत निर्णय को देखते हुए पूर्वोक्त रोस्टर अंकों के आधार पर, कोई उम्मीदवार इन विषयों में से कोई एक चुन सकता है। इसके विपरीत, राज्य ने स्वस्थ आरक्षण नीति नियत किया है। विषयवार आरक्षण का परिणाम 100% आरक्षण में हो सकता है जब कभी विषय विशेष में केवल एक सीट उपलब्ध है और, इसलिए, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क कि सरकार द्वारा विषयवार आरक्षण नियत किया जाना चाहिए था, इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 के अधीन रोजगार के लिए किसी पद पर नियुक्ति एक चीज है और मेडिकल फैकल्टी में विशेषत: स्नातकोत्तर अध्ययन में, शिक्षा देना बिल्कुल भिन्न जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 15(5) से नियंत्रित होता है। भारत के संविधान का अनुच्छेद संशोधित किया गया है और वर्ष 2006 से प्रभाव में लाया गया है जो पूर्वोक्त आरक्षण नीति बनाने की राज्य को अनुमति देता है।

9. पूर्वोक्त तथ्यों, कारणों और न्यायिक उद्घोषणाओं के समेकित प्रभाव के कारण, मैं इस रिट याचिका को ग्रहण करने का कोई कारण नहीं देखता हूँ। इसमें कोई सार न होने के कारण इस रिट याचिका को एतद् द्वारा खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

रामजी लाल सारदा

बनाम

गोपाल शरण नाथ सहदेव एवं अन्य

Election Petition No. 05 of 2010. Decided on 14th July, 2011.

जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951—धाराएँ 80A एवं 81—मतों की पुनर्गणना की प्रार्थना की अस्वीकृति–अभिकथित भ्रष्ट आचरण–डाले गए मतों का योगफल निकालने या गणना करने में पायी गयी विसंगतियाँ संदेह के लिए विपुल स्थान देती थी–नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के पूर्ण उल्लंघन में रिटर्निंग अधिकारी द्वारा परिवाद स्वीकार नहीं किया गया था–परिवाद

दाखिल करने के लिए याची को दिया गया 20 मिनटों का समय युक्तियुक्त समय अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है–पुनर्गणना की प्रार्थना अनुज्ञात की गयी। (पैराएँ 10 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. B.S. Lall, For the Petitioner; M/s V. Shivnath, For the Respondent No.9; Shiv Kumar Sharma, For the Respondent No.8; Mr. Mahesh Kumar Sinha, For the Respondent No.2; Mrs. Nehala Sharmin, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–याची ने यह धारित करते हुए कि भ्रष्ट आचरण अपनाकर और मतदान केंद्रों में से कुछ के पोलिंग स्टाफ सहित रिटर्निंग अधिकारी और अन्य गणना स्टाफ को प्रभावित कर उक्त निर्वाचन क्षेत्र से प्रत्यर्थी सं॰ 1 गोपाल शरण नाथ सहदेव को निर्वाचित उम्मीदवार घोषित किया गया था, प्रत्यर्थी सं॰ 1 गोपाल शरण नाथ सहदेव (अब मृत) अर्थात झारखंड राज्य में 64 हटिया विधानसभा क्षेत्र से निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव को चुनौती देते हुए और जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 9 के अधीन आदेश के लिए अनुरोध करते हुए जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धाराओं 80A और 81 के अधीन इस चुनाव याचिका को दाखिल किया है। याची ने आगे इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों में डाले गए संपूर्ण मतों की पुनर्गणना के लिए अनुरोध किया है। दिनांक 13.4.2011 को अंतर्वर्ती आवेदन सं॰ 1169 वर्ष 2011 दाखिल करके उसमें कथन किया गया था कि चुनाव याचिका में याची की प्रार्थनाओं में से एक मुख्य याचिका में किए गए अभिकथनों के आधार पर 64 हटिया विधानसभा क्षेत्र में दिनांक 25.11.2009 को डाले गए कुल मतों की पुनर्गणना के लिए थी जिसके प्रति प्रत्यर्थी सं॰ 9 श्री नवीन कुमार जायसवाल ने पूर्वोक्त अंतर्वर्ती आवेदन का उत्तर दाखिल किया जिसमें उसने प्राख्यान किया था कि यदि मतों की गणना करते हुए इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों ने गलत छवि दर्ज किया था, तब यह उपधारित करना होगा कि इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनें खराब थीं और इसलिए, इन परिस्थितियों में मतों, जिनका मतदान दोषपूर्ण इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों में किया गया था, की पुनर्गणना भी दोषपूर्ण होगी और इसलिए मतों की पुनर्गणना द्वारा किसी लाभदायी प्रयोजन पर नहीं पहुँचा जाएगा। इसके अतिरिक्त, आगे उत्तर दिया गया था, कि याची का अभिकथन यह नहीं है कि निर्वाचन संचालन नियमावली, 1961 के नियम 49 (E) के प्रावधान का अनुपालन नहीं किया गया था।

2. प्रत्यर्थी सं॰ 2 उर्मिला यादव की ओर से प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया था जिसमें उसने गणना के दिन 64 हटिया विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र के गणना हॉल का सजीव चित्रण दिया है और कथन किया है कि उसने रिटर्निंग अधिकारी से की गई शिकायत में आपत्ति किया था कि क्यों उम्मीदवारों और उनके एजेंटों के सेलफोनों को गणना हॉल के गेट पर निर्बंधित कर दिया गया था किंतु निर्वाचित उम्मीदवार गोपाल शरण नाथ सहदेव के गणना एजेंटों और पर्यवेक्षकों को सेल फोन अंदर ले जाने की अनुमति दी गयी थी, और फिर भी, रिटर्निंग अधिकारी द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गयी थी। न तो संतोषजनक उत्तर दिया गया था और न ही रिटर्निंग अधिकारी ने भेदभाव रोकने का कभी कोई प्रयास किया था। मतों की गणना को समाप्त किए जाने के दौरान उम्मीदवारों और उनके एजेंटों, जो गणना हॉल में उपस्थित थे, को रिटर्निंग अधिकारी द्वारा सूचित किया गया था कि मतदान किए गए कुल मत 150088 थे और कि गोपाल शरण नाथ सहदेव रामजी लाल सारदा (वर्तमान याची) से 60 मतों से पीछे थे। उसने आगे कथन किया कि इस बीच रिटर्निंग अधिकारी बाहर गया और लगभग 40-45 मिनटों बाद गणना हॉल में वापस आया और घोषित किया कि मतदान किए गए कुल मत 150164 थे और गोपाल शरण नाथ सहदेव ने याची रामजी लाल सारदा द्वारा प्राप्त किए गए मतों से 75 मत अधिक पाया था और तद्नुसार, उसे निर्वाचित उम्मीदवार के रूप में घोषित किया गया था जिसके प्रति गणना एजेंटों द्वारा यह स्पष्ट करते हुए गंभीर आपत्ति की गयी

थी कि जब मतदान किए गए कुल मत 1,50088 थे, तब किस प्रकार 150164 मतों को इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों में प्रविष्ट किए गए कुल मतों के रूप में गिना गया था और आगे कि किस प्रकार गोपाल शरण नाथ सहदेव ने उक्त निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं द्वारा दिए गए मतों के परे 76 मत अधिक पाया था।

3. पूरक प्रत्युत्तर में प्रत्यर्थी सं॰ 9 नवीन कुमार जायसवाल ने प्रतिवाद किया कि गणना हॉल में गणना कुल 16 चक्र में पूरा किया गया था। कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवार को 393434 मतों को प्राप्त करता दर्शाया गया था जबकि बी॰ जे॰ पी॰ उम्मीदवार ने 39496 मत प्राप्त किया था और इस प्रकार बी॰ जे॰ पी॰ उम्मीदवार (अर्थात् वर्तमान याची) के पक्ष में 153 मतों की बढ़त थी किंतु बूथ सं॰ 356 से 359 तक से संग्रहित ई॰ वी॰ एम॰ से मतों की गणना के 16 वें राउंड में कांग्रेस उम्मीदवार ने 578 मत अधिक पाया था जबकि बी॰ जे॰ पी॰ उम्मीदवार ने केवल 400 मत पाया था और तत्पश्चात् कांग्रेस उम्मीदवार ने दिनांक 25.11.2009 को तैयार किए गए और मुख्य रिटर्निंग अधिकारी द्वारा अनुमोदित किए गए चुनाव इन्डेक्स कार्ड (परिशिष्ट A/9) के मुताबिक 64 हटिया विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र में 178 मत अधिक पाया था और इसलिए भ्रष्ट आचरण अपनाए जाने का याची द्वारा किए गए संपूर्ण अभिकथनों को अपास्त किया जा सकता है।

4. प्रत्यर्थी एस॰ डी॰ ओ॰, राँची डॉ॰ धनंजय सिंह अर्थात् चुनाव जिसे 64 हटिया विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र के लिए करवाया गया था, के तत्कालीन रिटर्निंग अधिकारी के उत्तराधिकारी की ओर से दाखिल प्रतिशपथ पत्र में शपथ जैसा पैराग्राफ सं॰ 6 में अंतर्दिष्ट है, पर कथन किया गया कि श्री गोपाल शरण नाथ सहदेव को दिनांक 12.12.2009 को 64 हटिया विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से झारखंड विधान सभा के सदस्य के रूप में निर्वाचित घोषित किया गया था और यह स्वीकृत तथ्य था कि प्रत्यर्थी सं॰ 1 श्री गोपाल शरण नाथ सहदेव केवल 25 मतों से निर्वाचित किए गए थे। प्रत्यर्थी एस॰ डी॰ ओ॰ ने तत्कालीन रिटर्निंग अधिकारी का उत्तराधिकारी होने के नाते प्रतिशपथ पत्र के पैराग्राफ सं॰ 15 के संदर्भ में निष्पक्षत: स्वीकार किया कि रिटर्निंग अधिकारी श्रीमती सुची त्यागी के समक्ष 64 हटिया विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र में मतदान किए गए कुल मतों की गणना के लिए परिवाद याचिका दाखिल किया गया था किंतु ऐसे परिवाद में किए गए अनुरोध को दिनांक 23.12.2009 के आदेश (परिशिष्ट-A) के निबंधनानुसार अस्वीकार कर दिया गया था।

5. याची के वरीय अधिवक्ता, श्री बी॰ एस॰ लाल, प्रत्यर्थी सं॰ 9 के वरीय अधिवक्ता, श्री वी॰ शिवनाथ और प्रत्यर्थी राज्य की ओर से स्थायी अधिवक्ता सं॰ 2 के कनीय अधिवक्ता, श्रीमती नेहल शर्मिन को सुना गया।

6. याची के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता ने आरंभ में निवेदन किया कि (विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र) 64 हटिया के ''पॉलिंग रिपोर्ट'' (परिशिष्ट-16) के मुताबिक उक्त निर्वाचन क्षेत्र में पुरुष और महिला सहित कुल 380463 निर्वाचक थे किंतु केवल 150088 कुल मत डाले गए थे जिसे 39% मतदान संगणित किया गया था। दिनांक 23.12.2009 को सायं 4.48 बजे गणना के दिन परिणाम की स्थिति (परिशिष्ट-18) के मुताबिक याची को निर्वाचित उम्मीदवार गोपाल शरण नाथ सहदेव से 60 मतों से आगे दर्शाया गया था। गणना के अंतिम छोर पर अपनाए गए भ्रष्ट आचरण से असंतुष्ट होकर याची ने उसी दिन सायं 4.30 बजे रिटर्निंग अधिकारी के समक्ष विरोध दर्ज करने के लिए दो घंटे का समय इप्सित करते हुए आरंभिक आपत्ति याचिका (परिशिष्ट-19) दाखिल किया किंतु पृष्ठांकन करके दिनांक 23.12.2009 को सायं 4.34 बजे तक केवल 20 मिनट तक का समय दिया गया था।

7. याची ने याचिका दाखिल करके रिटर्निंग अधिकारी के समक्ष दिनांक 23.12.2009 को सायं 4.55 बजे विरोध दर्ज किया कि यदि मतदान किए गए कुल मत केवल 150088 थे तब किस प्रकार इसे 150164 गिना जा सकता था और इसने स्पष्टत: गणना में त्रुटि परिलक्षित किया था जो मानवीय गलती

के कारण कारित हो सकती थी और यह परिणाम प्रभावित करेगी और इसलिए याची ने मतदान किए गए मतों का योगफल पुन: निकालने की आवश्यकता (परिशिष्ट–20) अभिव्यक्त किया और पुनर्गणना के लिए आवश्यक आदेशों के लिए अनुरोध किया। किंतु रिटर्निंग अधिकारी ने अभिकथित याचिका पर सायं 4.52 का समय पृष्ठांकित करके ऐसी याचिका को स्वीकार नहीं किया था और इस तरीके से मतों की पुनर्गणना को याची का अनुरोध ठुकरा दिया गया था क्योंकि याचिका 20 मिनट के भीतर दाखिल नहीं की जा सकी थी बल्कि इसे परामर्श के साथ 18 मिनट की देरी से दाखिल किया गया था और इस तरीके से याची को मतदान किए गए कुल मतों की पुनर्गणना के उसके बहुमूल्य अधिकार से वंचित कर दिया गया था क्योंकि पुनर्गणना की प्रक्रिया को अवैध पाया गया था।

8. विरोध याचिका के विरुद्ध, 64 हटिया विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र के रिटर्निंग अधिकारी ने दिनांक 23.12.2009 का आर्डरशीट (एस॰ डी॰ ओ॰ राँची का दिनांक 25.6.2010 का प्रतिशपथ पत्र (परिशिष्ट–A) निकाला था जिसमें यह कहा गया था कि मतों की गणना के 15 वें राउंड के अंत तक कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवार गोपाल शरण नाथ सहदेव ने केवल 39343 मत प्राप्त किया था जबकि इसी राउंड में याची ने 39496 मत पाया था। किंतु गणना के अंतिम राउंड अर्थात् 16 वें राउंड में गोपाल शरण नाथ सहदेव ने 578 मत पाया था। जबकि याची ने केवल 400 मत पाया और तद्द्वारा कांग्रेस उम्मीदवार गोपाल शरण नाथ सहदेव ने याची द्वारा प्राप्त किए गए मतों से 25 मत अधिक पाया था और एस॰ डी॰ ओ॰ इसको लेकर मौन थे कि क्या गणना के अंतिम (16 वें) राउंड में किसी अन्य उम्मीदवार ने कोई मत पाया था या नहीं।

9. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री वी॰ शिवनाथ ने प्रतिवाद का विरोध किया और निवेदन किया कि मतदान किए गए कुल मतों की पुनर्गणना के लिए आदेश देना इस कारण से समुचित नहीं होगा कि याची ने अभिकथित किया था कि इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन दोषपूर्ण थी और इन्होंने सही परिणाम नहीं दिया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि यह कहना गलत प्राख्यान था कि मतदान किए गए कुल मत 150088 थे बल्कि ई॰ वी॰ एम॰ में दर्ज किए गए कुल मतों को 150164 दर्शाया गया था जो सही आँकड़ा था और कि अंतिम परिणाम उक्त आँकड़ों के आधार पर घोषित किया गया था और यह तथ्य चुनाव इंडेक्स कार्ड द्वारा सिद्ध किया गया है।

10. अंतर्वर्ती आवेदन में उठाया गया संक्षिप्त प्रश्न यह है कि दिए गए तथ्यों की दृष्टि में क्या 64 हटिया विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र में डाले गए कुल मतों की गणना में भ्रष्ट आचरण अपनाया गया था?

न तो एस॰ डी॰ ओ॰, राँची अर्थात् हटिया विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र के रिटर्निंग अधिकारी के उत्तराधिकारी के प्रतिनिधित्व में राज्य प्रत्यर्थी यह स्पष्ट करने में सक्षम हो सका था कि जब उक्त निर्वाचन क्षेत्र में मतदान किए गए मतों की कुल संख्या 150088 थी, तब किस प्रकार से 150164 मतों को ई॰ वी॰ एम॰ में प्रविष्ट किए गए कुल मतों के रूप में गिना गया था और किस प्रकार से कांग्रेस उम्मीदवार श्री गोपाल शरण नाथ सहदेव (अब मृत) ने 76 मत अधिक पाया था यद्यपि एस॰ डी॰ ओ॰ के प्रतिनिधित्व में प्रत्यर्थी राज्य दृढ है कि श्री गोपाल शरण नाथ सहदेव को केवल 25 मतों, जो उन्होंने वर्तमान याची को मिले मतों से अधिक पाया था, के मार्जिन के साथ निर्वाचित उम्मीदवार के रूप में घोषित किया गया था।

11. मैं आगे पाता हूँ कि याची ने मतदान किए गए मतों की गणना के अंतिम राउन्ड अर्थात् 16वें राउन्ड के दौरान की गयी कतिपय अवैधता की ओर तत्कालीन रिटर्निंग अधिकारी का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया था किंतु परिवाद दाखिल करने के लिए उसे केवल 20 मिनट दिया गया था और परिवाद विहित 20 मिनट के 18 मिनट बाद दाखिल किया जा सका था और केवल इस आधार पर याची का परिवाद नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में स्वीकार नहीं किया गया था क्योंकि परिवाद दाखिल करने के

लिए याची को युक्तियुक्त समय नहीं दिया गया था और कि 20 मिनट, जिसे याची को दिया गया था, को युक्तियुक्त समय अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है।

12. इन तथ्यों और परिस्थितियों के अधीन, मैं प्रथम दृष्टया पाता हूँ कि याची को उसके वैध अधिकार से इनकार किया गया था जब गणना के दिन अर्थात् 23.12.2009 को मतदान किए गए कुल मतों की पुनर्गणना का उसका अनुरोध इस आधार पर स्वीकार नहीं किया गया था कि वह 20 मिनटों के परे परिवाद दाखिल कर सका था। मैं आगे पाता हूँ कि मतदान किए गए मतों का योगफल निकालने अथवा गणना करने में पायी गई विसंगतियाँ, जैसी चर्चा यहाँ ऊपर विस्तारपूर्वक की गयी है, संदेह का विपुल अवसर देता है। मैं न्याय के उद्देश्य के लिए विधान सभा चुनाव, जिसे दिनांक 25.11.2009 को करवाया गया था, के संदर्भ में 64, हटिया विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र में समस्त बूथों पर मतदान किए गए कुल मतों की पुनर्गणना का निर्देश देता हूँ। तद्नुसार, एस॰ डी॰ ओ॰, राँची के प्रतिनिधित्व में प्रत्यर्थी राज्य को चुनाव लड़ रहे दलों के एजेंटों/प्रतिनिधियों की उपस्थिति में इस आदेश के आठ सप्ताह की अवधि के भीतर संपूर्ण काम को पूरा करने का निर्देश दिया जाता है। यह अंतर्वती आवेदन तद्नुसार अनुज्ञात किया जाता है।

चुनाव याचिका सं॰ 5 वर्ष 2010

इस चुनाव याचिका को रिपोर्ट के साथ प्रस्तुत किया जाय।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया एवं पी॰ पी॰ भट्ट, न्यायमूर्तिगण

धूमा प्रधान

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. (Jail) Appeal (DB) No. 271 of 2002. Decided on 1st August, 2011.

एस॰ टी॰ सं॰ 102 वर्ष 2000 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, सिमडेगा द्वारा पारित दिनांक 28.7.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 30.7.2001 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–कुल्हाड़ी द्वारा घातक प्रहार–प्रहार के तरीके के संबंध में कुछ विसंगति है–मृतक की हत्या करने का अपीलार्थी का कोई हेतु नहीं–अपीलार्थी ने भावावेश में मृतक पर कुल्हाड़ी का घातक वार किया–मृतक की हत्या करने का अपीलार्थी का कोई पूर्वचिंतन नहीं–दोषसिद्धि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग I में परिवर्तित की गयी–दंडादेश पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक परिवर्तित किया गया।

(पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. S.K. Dev, For the Appellant; Mr. R.C.P. Sah, For the State.

न्यायालय द्वारा.–अपीलार्थी की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ। न्यायालय की सहायता करने के लिए अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री एस॰ के॰ देव को न्यायमित्र के रूप में नियुक्त किया गया। राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री आर॰ सी॰ पी॰ साह उपस्थित हुए। पक्षों को गुणागुण के मामले पर तर्क करने का निर्देश दिया गया।

बाद में

पक्षों को सुना गया।

2. यह अपील एस॰ टी॰ सं॰ 102 वर्ष 2000 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, सिमडेगा द्वारा पारित दिनांक 28.7.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 30.7.2001 के दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की

गयी है, जिसके द्वारा अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था।

3. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि दिनांक 15.7.99 को दोपहर लगभग 3 बजे गंदूर प्रधान (सूचक अ॰ सा॰ 4 का मृतक पति) मांस लाने भगतू महतो के घर गया था। लगभग 4 बजे अपीलार्थी धूमा प्रधान (जो मृतक का भतीजा है) घर वापस आया और प्रकट किया कि उसने भगतू महतो के आंगन में कुल्हाड़ी से उस पर प्रहार करके गंदूर प्रधान की हत्या कर दी थी। इस पर सूचक सीता देवी (अ॰ सा॰ 4) और उसकी पुत्री (अ॰ सा॰ 5) फिरनी देवी वहाँ गयीं और ललाट, दाएँ गाल और सिर पर खून बहती उपहतियों के साथ गंदूर प्रधान को छटपटाती दशा में देखा। अ॰ सा॰ 1 बुधवा महतो, अ॰ सा॰ 2 बंदे महतो और अ॰ सा॰ 7 बोंदे महतो वहाँ उपस्थित थे और उन्होंने प्रकट किया कि अपीलार्थी ने मृतक पर कुल्हाड़ी से प्रहार किया था। वे अपीलार्थी को घर लाए। डॉक्टर को बुलाया गया था किंतु उसके आने के पहले उपहतियों के चलते मृतक की मृत्यु हो गयी।

4. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित, श्री देव ने निवेदन किया कि मृतक ने अपीलार्थी को गाली दी और तब अपीलार्थी ने मृतक पर प्रहार किया। उन्होंने आगे निवेदन किया कि गाँव के घरों में कुल्हाड़ी सामान्य रूप से उपलब्ध होता है। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि मृतक की हत्या करने का कोई पूर्व चिंतन था। मृतक ने अपना दोष स्वीकार किया। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि अपीलार्थी को अधिकाधिक भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग I के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता था। अंत में उन्होंने निवेदन किया कि अपीलार्थी 11 वर्षों से अधिक से कारा अभिरक्षा में है।

5. दूसरी ओर, राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री आर॰ सी॰ पी॰ साह ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

6. अ॰ सा॰ 1, 2 और 7 चश्मदीद गवाह हैं और उन्होंने अन्य बातों के साथ साथ कथन किया कि बकरे का मांस तैयार किया जा रहा था जब अपीलार्थी वहाँ पहुँचा और इसे तैयार करने में मदद करने लगा। इस बीच, मृतक वहाँ आया और अपीलार्थी को गंदी गालियाँ दी, जिस पर, अपीलार्थी ने मृतक के शरीर के नाजुक अंगों पर कुल्हाड़ी से बार-बार प्रहार किया। प्रहार के तरीके के संबंध में कुछ विसंगति है। कुछ गवाहों ने कहा कि प्रहार टांगी के पिछले हिस्से से किया गया था जबकि अन्य ने कहा कि प्रहार टांगी के तेज धार वाले हिस्से से किया गया था। अ॰ सा॰ 3 मृत्यु समीक्षा गवाह है। अ॰ सा॰ 4 सूचक है। अ॰ सा॰ 5 सूचक की पुत्री है। अ॰ सा॰ 6 कुल्हाड़ी के अभिग्रहण का गवाह है और अ॰ सा॰ 9 अन्वेषण अधिकारी है। सूचक अ॰ सा॰ 4 और उसकी पुत्री अ॰ सा॰ 5 ने स्पष्टत: कथन किया कि उनके और अपीलार्थी के बीच अच्छा संबंध है। यह प्रतीत होता है कि मृतक की हत्या करने का अपीलार्थी का कोई हेतु नहीं था, किंतु जब मृतक ने अपीलार्थी को गंदी भाषा में फटकारा, अपीलार्थी ने भावावेश में उसके मस्तक और चेहरे पर कुल्हाड़ी से वार किया जो घातक बन गया।

7. अपीलार्थी को झूठा आलिप्त किए जाने के बारे में बचाव विवरण पर विचारण न्यायालय द्वारा सही प्रकार से अविश्वास किया गया है। किंतु, हम आश्वस्त हैं कि मृतक की हत्या करने का अपीलार्थी का कोई पूर्व चिंतन नहीं था। यह सत्य है कि मृतक के शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर बार-बार कुल्हाड़ी से वार किया गया था, किंतु इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हमारे मत में, अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग I के अधीन और न कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया जाय।

8. परिणामस्वरुप, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग–I के अधीन दोषसिद्धि में परिवर्तित की जाती है। जहाँ तक दंडादेश का संबंध है, यह कथन किया गया है कि अपीलार्थी 11 वर्षों से अधिक से कारा में है। तद्नुसार, दंडादेश की अवधि अपीलार्थी द्वारा जेल में पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक परिवर्तित किया जाता है। दोषसिद्धि और दंडादेश में इस परिवर्तन के साथ, यह अपील अंशत: अनुज्ञात की जाती है। परिवर्तित दोषसिद्धि वारन्ट जारी करने के लिए इस आदेश को संबंधित विचारण न्यायालय को तुरन्त भेजा जाए ताकि अपीलार्थी को तुरन्त निर्मुक्त किया जा सके, यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

लालमनि एक्का

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 802 of 2011. Decided on 25th July, 2011.

बिहार पेंशन नियमावली, 1950—नियम 58 एवं 59—पेंशन–अर्हक सेवा–दिनांक 4.9.1962 की अधिसूचना सं॰ 12928 F–राज्य सरकार के अधीन अस्थायी सेवा अथवा स्थानापन्न सेवा जब उसी अथवा किसी अन्य पद पर स्थायित्वता द्वारा अनुसरित की जाती है, तब पूर्ण पेंशन में इसकी गणना करनी चाहिए–ऐसे मामले में भी जहाँ किसी ने राज्य सरकार के अधीन अस्थायी पद पर अथवा स्थानापन्न हैसियत में काम किया हो और बाद में किसी अन्य पद (स्थायी) पर काम किया हो, अस्थायी पदभार की अवधि भी पेंशन योग्य होगी–आक्षेपित आदेश अपास्त–प्रत्यर्थी को सेवानिवृत्ति देयों का भुगतान करने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 5 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. Bhanu Kumar, For the Petitioner; J.C. to Sr. S.C.I, For the State; Mr. Suresh Kumar, For the A.G.

आदेश

याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, ए॰ जी॰ और राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची को आरंभ में दिनांक 20.8.1976 को जिला शिक्षा अधीक्षक, हजारीबाग के कार्यालय में 'क्लर्क' के पद पर नियुक्त किया गया था। जब वह सेवा में था, उसने सहायक शिक्षक के पद, अधीनस्थ शिक्षा सेवा के अधीन कैडर पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन दिया। उक्त पद पर नियुक्त किए जाने के लिए चयनित होने पर, दिनांक 9.8.1983 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया था। ऐसी नियुक्ति पर, याची को दिनांक 31.8.1983 को जिला शिक्षा अधीक्षक, हजारीबाग के कार्यालय से पदमुक्त कर दिया गया था। अगले दिन तुरन्त याची ने राजकीय उच्च विद्यालय, चाईबासा में 'सहायक शिक्षक' का पद ग्रहण किया। प्राधिकारी को पूर्ण संतोषानुसार सेवा देने के बाद, याची दिनांक 30.9.2009 को सेवानिवृत्त हो गया, किंतु चूँकि तब से याची को उसकी सेवानिवृत्ति पश्चात मिलने वाले देयों का भुगतान नहीं किया गया था शायद इस कारण से कि प्राधिकारीगण दुविधा में थे कि क्या वर्ष 1976 से दिनांक 31.8.1983 तक जिला शिक्षा अधीक्षक,

हजारीबाग के कार्यालय में 'क्लर्क' के रूप में दी गयी सेवा अवधि को पेंशन योग्य अवधि के रूप में माना जाएगा या नहीं। याची ने अनेक बार प्राधिकारी के समक्ष अभ्यावेदन दिया कि वित्त विभाग द्वारा जारी परिपत्र की दृष्टि में, इस अवधि को पेंशन के प्रयोजन से जोड़ना होगा, किंतु अंतत:, निदेशक माध्यमिक शिक्षा, झारखंड, राँची ने दिनांक 1.9.2010 के अपने पत्र सं॰ 4081 (परिशिष्ट-9) के तहत निर्णय लिया कि चूँकि याची को प्रत्यक्षत: बिहार अधीनस्थ शिक्षा सेवा में नियुक्त किया गया था, पेंशन के प्रयोजन से पूर्वतर सेवा गिनी नहीं जाएगी, जिस आदेश को दोषपूर्ण बताते हुए इस रिट आवेदन में चुनौती दी गयी है।

3. विद्वान अधिवक्ता दिनांक 4.9.1962 की अधिसूचना सं॰ 12928 एफ॰ के नियमों 58 और 59 को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन करते हैं कि अन्य सरकारी विभाग में दी गयी सेवावधि को पेंशन योग्य अवधि के रूप में मानना होगा जिसे बिहार अधीनस्थ शिक्षा सेवा में दी गयी सेवावधि में जोड़ने की आवश्यकता है। उक्त प्रावधान को दृष्टि में रखते हुए, वित्त विभाग द्वारा अधिसूचना जारी की गयी है, जैसा दिनांक 19.3.1990 के पत्र सं॰ 1399 में अंतर्विष्ट है, जिसका पालन इस प्रकार के मामलों में राज्य के प्राधिकारी द्वारा किया जा रहा है, किंतु याची के मामले में न तो पेंशन नियमावली के प्रावधान और न ही पूर्वोल्लिखित अधिसूचना को विचार में लिया गया था और इसलिए, दिनांक 1.9.2010 के पत्र सं॰ 4081 में अंतर्विष्ट आदेश (परिशिष्ट-9) अपास्त किए जाने योग्य है।

4. इसपर कोई विवाद प्रतीत नहीं होता है कि याची ने राजकीय उच्च विद्यालय, चाईबासा में सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त किए जाने के पहले दिनांक 28.8.1976 से दिनांक 31.8.1983 तक जिला शिक्षा अधीक्षक, हजारीबाग के कार्यालय में क्लर्क के रूप में सेवा दिया था। बिहार अधीनस्थ शिक्षा सेवा में नियुक्त किए जाने पर, उसने दिनांक 1.9.1983 से दिनांक 30.9.2009 तक अपने सेवानिवृत्त हो जाने तक सेवा दिया, किंतु निदेशक, माध्यमिक शिक्षा, झारखंड, राँची ने अपने आदेश के तहत, जैसा दिनांक 1.9.2010 के पत्र सं॰ 4081 में अंतर्विष्ट है, घोषित किया कि पेंशन के प्रयोजन से पूर्व सेवावधि को नहीं गिना जाएगा, क्योंकि उसे प्रत्यक्षत: सहायक शिक्षक के पद पर नियुक्त किया गया था, जो निर्णय बिहार पेंशन नियमावली, 1950 के कतिपय नियम, विशेषत: नियम 58 और 59 के अनुरुप नहीं है।

*बिहार पेंशन नियमावली, **1950** के नियम **58** का पठन निम्नलिखित है:-सरकारी सेवक की सेवा पेंशन के लिए अर्हित नहीं होती है जब तक यह निम्नलिखित तीन शर्तों के अनुरुप नहीं हो।*

प्रथम-सेवा सरकार के अधीन होना चाहिए।

द्वितीय-नियोजन सारवान और स्थायी होना चाहिए।

तृतीय-सरकार द्वारा सेवा का भुगतान करना होना चाहिए।

*पुनः बिहार पेंशन नियमावली, **1950** के नियम **59** का पठन निम्नलिखित है:-किन्तु प्रांतीय सरकार, सामान्य राजस्व से भुगतान की गयी सेवा के मामले में, यद्यपि शर्तों (1) और (2) में से दोनों अथवा किसी एक को परिपूर्ण नहीं किया गया हो-*

(1) घोषणा कर सकती है कि गैर राजपत्रित कर्मचारी की हैसियत से दी गयी कोई विनिर्दिष्ट प्रकार की सेवा पेंशन के लिए अर्हित होगी;

(2) व्यक्तिगत मामलों में, और ऐसी शर्तों के अध्यधीन, जिसे प्रत्येक मामले में अधिरोपित करना यह समुचित समझती है, निर्देश दे सकती है कि सरकारी सेवक द्वारा दी गयी सेवा पेंशन के लिए गिनी जाएगी।

5. पूर्वोक्त प्रावधानों, विशेषत: नियम 58 से वस्तुत: प्रतीत होता है कि कोई पेंशन का हकदार होगा वशर्ते उसने सरकार के अधिष्ठायी पद पर सेवा दिया हो और सरकार द्वारा उसके वेतन का भुगतान किया जा रहा हो। किसी का मामला यह नहीं है कि याची सरकार में क्लर्क का मूल पद धारण नहीं कर रहा था।

6. बाद में, सरकार ने दिनांक 4.9.1962 की अधिसूचना सं॰ 12928 एफ॰ के तहत निर्णय लिया कि राज्य सरकार के अधीन अस्थायी सेवा अथवा स्थानापन्न सेवा, जब इसी अथवा किसी अन्य पद में स्थायित्वता द्वारा अनुसरित किया जाता है, को (i) गैर-पेंशननीय स्थापन में अस्थायी सेवावधि और (ii) आकस्मिक निधि से भुगतान की गयी सेवावधि को छोड़कर पेंशन के लिए पूरे तौर पर गिनी जाएगी।

7. अत: ऐसे मामले में भी जहाँ किसी ने सरकार के अधीन अस्थायी पद पर अथवा स्थानापन्न हैसियत में काम किया हो और बाद में किसी अन्य पद (स्थायी) पर काम किया हो, अस्थायी पदग्रहण की अवधि पेंशननीय होगी परन्तु यह कि स्थापन, जहाँ उसने अस्थायी पद पर काम किया था, पेंशननीय स्थापन था और उसने सरकारी राजस्व से वेतन पाया था। मामले के इस पहलू को ध्यान में रखते हुए, वित्त विभाग ने वर्ष 1990 में अधिसूचना जारी किया था जो उसमें यह अनुबंधित करते हुए कि जहाँ कोई कर्मचारी, राज्य सरकार अथवा केन्द्र सरकार की सेवा में है अथवा उसने सरकार के एक अथवा अन्य विभाग में काम किया है, यदि वह विभाग बदलता है, वह पेंशन के प्रयोजन से पूर्व में दी गयी सेवावधि के साथ पश्चात में दी गयी सेवावधि के गिने जाने का हकदार होगा और यह परिपत्र प्रत्यर्थीगण द्वारा निरंतर अनुसरित किया जा रहा है।

8. इस स्थिति के अधीन, आदेश जैसा दिनांक 1.9.2010 के पत्र सं॰ 4081 (परिशिष्ट-9) में अंतर्विष्ट है निश्चय ही दोषपूर्ण प्रतीत होता है और तद्नुसार अपास्त किया जाता है।

9. परिणामस्वरुप, प्रत्यर्थी को दी गयी सेवा, जब वह दिनांक 20.8.1976 से दिनांक 31.8.1983 तक क्लर्क के रूप में पदस्थापित था, की पूर्ण अवधि को ध्यान में लेते हुए, पेंशन के नियतिकरण के मामले में आवश्यक कार्रवाई करने का निर्देश दिया जाता है। प्रत्यर्थी को इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर सेवानिवृत्ति पश्चात मिलने वाले देयों का भुगतान करने का भी निर्देश दिया जाता है।

तद्नुसार, यह रिट आवेदन निपटाया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

डॉ॰ नवीन कुमार एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 778 of 2011. Decided on 14th July, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 498A/313/406/420/34—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—क्रूरता–संज्ञान–दहेज की मांग, प्रहार और पत्नी के सतीत्व पर अभिकथन–आपसी सहमति से तलाक के लिए याचिका न्यायालय में लंबित है–पक्षों ने संयुक्त

सुलह याचिका के विवरणों के अनुसार अपने विवादों को सुलझा लिया है और एक दूसरे के विरुद्ध संस्थापित मामलों/वाद को वापस लेने के लिए सहमत हो गए हैं–अभियोजन याचीगण की दोषसिद्धि सुनिश्चित करने में समक्ष नहीं होगा–संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित।

(पैराएँ 7 से 10)

निर्णयज विधि.–(2003)4 SCC 675—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajeev Ranjan, For the Petitioners; M/s Mahesh Tewari, Shailesh, For the O.P. No.2; Mr. Shekhar Sinha, For the State.

आदेश

याचीगण ने दिनांक 20.4.2011 के आदेश, जिसके द्वारा न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद ने सी॰ पी॰ केस सं॰ 533 वर्ष 2011 की जाँच के बाद उनके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498A/313/406/420/34 और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराओं 3/4 के अधीन प्रथम दृष्टया मामला पाया था, के अभिखंडन के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. परिवादी–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 रबीन्द्र कुमार लाला ने विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद के समक्ष परिवाद याचिका सं॰ 533 वर्ष 2011 प्रस्तुत किया और कथन किया कि दिनांक 20.1.2011 को हिंदू रीति–रिवाजों के अनुसार उसकी पुत्री नेहा लाला का विवाह याची रोमित कुमार के साथ धनबाद में हुआ था और उस समय उसे बताया गया था कि दूल्हा इलेक्ट्रॉनिक्स एवं इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग में इंजीनियर था और पूना से एम॰ बी॰ ए॰ भी पूरा किया था। विवाह के अवसर पर दूल्हा पक्ष को पर्याप्त नगद राशि और गहने दिए गए थे। विवाहोपरांत, उसकी पुत्री राँची स्थित अपने दांपत्य गृह गयी। दिनांक 2.2.2011 को आयोजित स्वागत भोज में अभियुक्तगण द्वारा मारुति Sx4 कार मांगा गया था और कहा गया था कि वे दिनांक 12.1.2011 को दहेज की राशि, जो उनको देय थी, संग्रहित करने के लिए धनबाद आएँगे। दिनांक 11.2.2011 को, दुल्हन नेहा लाला गेट परीक्षा में उपस्थित होने धनबाद आयी जहाँ उसने अपने माता–पिता को स्पष्ट किया कि उसके समस्त गहनों और अन्य बहुमूल्य वस्तुओं को उसकी सास अर्थात् याची सं॰ 3 द्वारा अपने पास रख लिया गया था। याचीगण पहले से तय योजना के अनुसार दिनांक 12.2.2011 को धनबाद आए और परिवादी की ओर से अभिकथित रूप से देय 50,000/- रुपया मांगा और मारुति Sx4 कार की अपनी मांग को पुनः दोहराया। दांपत्य गृह में रहने के दौरान नेहा लाल गर्भवती हो गयी जिस पर अभियुक्त सं॰ 3 अर्थात् सास ने धमकी दी कि नेहा लाला को गर्भवती बने रहने की अनुमति तब तक नहीं दी जाएगी जबतक उनके द्वारा मांगे गए दहेज को परिपूर्ण नहीं किया जाता है। वह अभियुक्त याचीगण के हाथों अनेक प्रकार से मानसिक और शारीरिक यातना की शिकार हुई। मार्च माह में उसके गर्भाशय में दर्द हुआ किंतु उसका इलाज नहीं करवाया गया था। उसकी सास द्वारा किसी तरह की दवा दी गयी थी जिसके परिणामस्वरुप उसका दर्द और भी बढ़ गया। याचीगण तब उसे धनबाद ले आए किंतु उसकी गंभीर दशा को विचार में लेते हुए परिवादी उसे राँची उसके दांपत्य गृह में वापस ले गया जिसके लिए परिवादी–नेहा लाल के पिता को फटकारा गया था और गर्मागर्म बहस भी हुई थी। इसी क्रम में, नेहा लाला को अभियुक्तगण द्वारा घसीटा गया था और उस पर प्रहार किया गया था। तब उसे धनबाद लाया गया था जहाँ उसे अत्यधिक रक्त स्राव हुआ और उसकी दशा बिगड़ गयी। उसे जालान मेमोरियल अस्पताल ले जाया गया था जहाँ उसे जीवित रहने के लिए पूर्ण गर्भपात करवाने का परामर्श दिया गया था और तद्नुसार डॉक्टर की सलाह पर उसका गर्भपात करवाया गया था।

3. परिवादी–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 उपस्थित हुआ और प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया। पक्षों की ओर से तर्कों के दौरान, न्यायालय ने प्रस्ताव दिया और पूछा कि मामले के इन तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में कि दुल्हन नेहा के पिता ने वर्तमान मामला संस्थापित किया था किंतु प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, राँची के समक्ष हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 12(1) (d) के अधीन विवाह के विघटन के लिए पति याची द्वारा पृथक वाद दाखिल किया गया था, क्या पक्षों के बीच सुलह का कोई मौका था।

4. विपक्षी–पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा गंभीर आपत्ति उठायी गयी थी कि प्रधान न्यायाधीश कुटुंब न्यायालय, राँची के समक्ष पति याची सं॰ 2 द्वारा दाखिल वैवाहिक वाद में उसके पतिव्रत पर प्रश्न करते हुए कि वह विवाह के समय भी गर्भवती थी, नेहा लाल के विरुद्ध उसके चरित्र के प्रति हानिकर गंभीर अभिकथन किए गए थे और ऐसा अभिवचन करते हुए पति ने विवाह के विघटन के लिए वाद दाखिल किया था। किंतु, पक्षों के अधिवक्ता के अनुरोध पर स्थगनों को दिया गया था और अंततः दोनों पक्ष राजी हुए और संयुक्त सुलह याचिका के रूप में आई॰ ए॰ सं॰ 1278 वर्ष 2011 दाखिल किया जिसमें सुलह की मोडेलिटियों को निम्नलिखित रूप में संगणित किया गया था:–

(i) पति याची सं॰ 2 और परिवादी–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की पुत्री ने प्रधान न्यायाधीश, राँची के समक्ष हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(B) के अधीन याचिका दाखिल करके आपसी सहमति से तलाक की डिक्री विवाह अधिनियम की धारा 13(1) (B) के अधीन याचिका दाखिल करके आपसी सहमति से तलाक की डिक्री द्वारा एक–दूसरे से अलग होकर विवाद के समाधान का निर्णत लिया है।

(ii) सुलह के उक्त निबंधनों की दृष्टि में, याची सं॰ 2 पति किसी दबाव के बिना लाला के पक्ष में तीन डिमांड ड्राफ्टों के जरिए 12.5 लाख रुपयों का स्थायी निर्वाह–भत्ता का भुगतान करने पर सहमत हुआ और तद्नुसार सुलह याचिका (आई॰ ए॰ सं॰ 1278 वर्ष 2011) के पैरा 6 में अंतर्विष्ट तरीके से इन्हें उसको दिया गया था। नेहा लाला को 12.5 लाख रुपयों की उस राशि का भुगतान किया गया था और एक बार दिए गए स्थायी निर्वाह भत्ता के रूप में उसके द्वारा स्वीकार किया गया था और कि वह भविष्य में याची सं॰ 2 पति अथवा उसके परिवार के सदस्यों से किसी निर्वाह भत्ता अथवा किसी भी राशि का दावा नहीं करेगी। यह स्वीकार किया गया था कि नेहा लाल का संपूर्ण स्त्रीधन उसे लौटा दिया गया था किंतु विनिर्दिष्ट किया गया था कि याचीगण ने भी अपने पूर्ण संतोषानुसार उसके विवाह के अवसर पर नेहालाल को उनके द्वारा दी गयी अपनी वस्तुओं को वापस ले लिया था।

5. सुलह की दृष्टि में परिवादी–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने इस न्यायालय के समक्ष अनुरोध किया कि वह सी॰ पी॰ केस सं॰ 533 वर्ष 2011 को वापस लेने के लिए वापसी याचिका दाखिल करेगा।

6. वैकल्पिक रूप से, अनुरोध किया गया है कि सी॰ पी॰ केस सं॰ 533 वर्ष 2011 के अभिखंडन के लिए दाखिल वर्तमान दांडिक विविध याचिका को सुलह याचिका के आधार पर अनुज्ञात किया जा सकता है। संयुक्त सुलह याचिका (आई॰ ए॰ सं॰ 1278 वर्ष 2011) में याची सं॰ 2 हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 12(1) (d) के अधीन नेहालाला के विरुद्ध अपने द्वारा दाखिल वैवाहिक वाद सं॰ 140 वर्ष 2011 को वापस लेने के लिए सहमत हुआ किंतु इस घोषणा के साथ कि वाद तथ्य के भ्रम के अधीन दाखिल किया गया था और उसकी ओर से सद्भावपूर्व गलती हुई थी और कि वह दिनांक 16.7.2011 तक सकारात्मक रूप से ऐसा वैवाहिक वाद वापस ले लेगा अन्यथा, यह इस न्यायालय के समक्ष शपथ पर गलत बयान देने की कोटि में आएगा। हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 (1)(B) के अधीन याचिका दाखिल करके आपसी सहमति से एक–दूसरे से तलाक लेने के लिए नेहा लाला और याची सं॰ 2 रोमित कुमार

सहमत हुए थे और ऐसा करते हुए संबंधित पक्ष अपना व्यय स्वयं वहन करेंगे। अंतत:, परिवाद किया गया था कि वैवाहिक विवाद से उद्भूत होने वाला पक्षों के बीच विवाद शुद्धत: व्यक्तिगत प्रकृति का है और इसलिए मामले में सुलह करने की अनुमति पक्षों को दी जा सकती है।

7. अंतत: याचीगण और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने श्री बी॰ के॰ पांडे, न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद के न्यायालय में लंबित सी॰ पी॰ केस सं॰ 533 वर्ष 2011 से उद्भूत होने वाली दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए सुलह और **बी॰ एस॰ जोशी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं एक अन्य, (2003)4 SCC 675,** में अधिकथित सिद्धांतों के निबंधनानुसार अनुरोध किया जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया है:–

> *''वर्तमान मामले में, पत्नी ने शपथ पत्र दाखिल किया कि स्वभावगत भिन्नताओं और विवक्षित लांछनों के कारण उसके कहे जाने पर प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। लांछनों का समर्थन नहीं करने के अनेक कारण हो सकते है। ऐसी स्थिति में दोषसिद्धि का कोई मौका नहीं होगा। अतः अभिखंडन करने की शक्ति के प्रयोग से इनकार करना इस आधार पर समुचित नहीं होगा कि यह गैर–शमनीय अपराधों को शमनित करने की अनुमति पक्षों को देना होगा। किंतु यह भिन्न मामला होगा यदि उच्च न्यायालय सद्भाव की कमी सहित किसी वैध कारणों से तथ्यों पर अभिखंडन के लिए की गयी प्रार्थना को इनकार करता है। इसके अतिरिक्त, माधवराव जीवाजीराव सिंधिया बनाम संभाजी राव चंद्रोजीराव आंग्रे, (1988)1 SCC 692, में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धारा 482 के अधीन अभिखंडन करने की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए, यह विचार करने के लिए कि क्या अभियोजन जारी रखने की अनुमति देना समीचीन और न्याय के हित में है, किन्हीं विशेष लक्षणों जो किसी मामला विशेष में सामने आते हैं, को विचार में लेना उच्च न्यायालय की मर्जी पर है। ऐसे वैवाहिक मामलों में विशेष लक्षण स्पष्ट प्रकट है। वैवाहिक विवादों के वास्तविक समाधान को प्रोत्साहित करना न्यायालय का कर्तव्य है।''*

8. तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखने पर, मैं पाता हूँ कि चूँकि पति सहित याचीगण ने परिवादी–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के साथ अपने विवादों का समाधान संयुक्त सुलह याचिका के मोडेलिटियों के निबंधनानुसार कर लिया है और वे एक–दूसरे के विरुद्ध संस्थापित मामलों/वादों को वापस लेने के लिए सहमत हैं, मैं इस मामले में कुछ विशेष लक्षणों को पाता हूँ कि दी गयी परिस्थितियों में अभियोजन याचीगण की दोषसिद्धि सुनिश्चित करने में सक्षम नहीं होगा।

9. बी॰ एस॰ जोशी के मामले (ऊपर) में संप्रेक्षित किया गया था कि ''जहाँ न्यायालय के मत में अंतत: दोषसिद्धि का अवसर क्षीण होता है और, इसलिए, दांडिक अभियोजन जारी रखने की अनुमति देने से किसी लाभदायी प्रयोजन पूरा होने की संभावना नहीं है, न्यायालय मामले के विशेष तथ्यों को विचार में लेते हुए कार्यवाही अभिखंडित भी कर सकता है।''

10. यहाँ पहले निर्दिष्ट निर्णय पर विश्वास करते हुए और यह पाते हुए कि यह मामला विशेष लक्षणों से युक्त है, श्री बी॰ के॰ पांडे, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, धनबाद के समक्ष लंबित परिवाद याचिका सं॰ 533 वर्ष 2011 से उद्भूत होने वाली याचीगण की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही को आई॰ ए॰ सं॰ 1278 वर्ष 2011 में अधिकथित सुलह के निबंधनानुसार अभिखंडित किया जाता है। तद्नुसार, यह याचिका और आई॰ ए॰ सं॰ 1278 वर्ष 2011 अनुज्ञात किए जाते हैं जैसा ऊपर उपदर्शित किया गया है।

ekuuh; Mhñ dñ flUgk] U;k;efr

जयराम सिंह एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Criminal Revision No. 454 of 2008. Decided on 11th July, 2011.

जी॰ आर॰ सं॰ 3984 वर्ष 2000 (टी॰ आर॰ सं॰ 285 वर्ष 2008) से उद्‌भूत होने वाली दांडिक अपील सं॰ 5 वर्ष 2008 में श्री अमिताभ कुमार, सत्र न्यायाधीश, पश्चिमी सिंहभूम, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 2.4.2008 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 406 एवं 498A—दहेज की मांग एवं पत्नी को शारीरिक तथा मानसिक यातना–दोषसिद्धि–पत्नी के सतीत्व और पतिव्रत पर प्रश्न रखना क्रूरता की कोटि में आएगा–यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि परिवादी ने याची द्वारा दाखिल वैवाहिक वाद जिसे जिला न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया था, के प्रतिशोध में याचीगण के विरुद्ध परिवाद दाखिल किया था–आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं–दांडिक पुनरीक्षण खारिज। (पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s Rana Pratap Singh, Aparesh Kumar Singh, Abhay Kumar Tewari, For the Petitioner; Mr. Jay Prakash Pandey, For the O.P. No.2; Mr. Amaresh Kumar, Forthe State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण दांडिक अपील सं॰ 5 वर्ष 2008 में सत्र न्यायाधीश, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम द्वारा दर्ज दिनांक 2.4.2008 के निर्णय के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा जी॰ आर॰ सं॰ 3984 वर्ष 2000, टी॰ आर॰ सं॰ 285 वर्ष 2008 के तत्सम, में सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, पोराहाट द्वारा याचीगण के विरुद्ध दर्ज दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अभिपुष्ट किया गया था और अपील खारिज कर दिया गया था।

2. समस्त याचीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406/498A के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया था और उनमें से प्रत्येक को दो वर्ष का कठोर कारावास भुगतने और 2000/- रुपया जुर्माने के भुगतान प्रत्येक गणना पर व्यतिक्रम अनुबंध के साथ करने का दंडादेश दिया गया था।

3. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि जब परिवादी-वि॰ प॰ सं॰ 2 ने विद्वान मुख्य मेट्रोपॉलिटन दंडाधिकारी, कोलकाता के समक्ष परिवाद सं॰ 4448 वर्ष 2000 प्रस्तुत किया, इसे द॰ प्र॰ सं॰ की धारा 156(3) के अधीन पार्क स्ट्रीट पुलिस थाना को निर्दिष्ट किया गया था जिसके द्वारा अभियुक्तगण के विरुद्ध पार्क स्ट्रीट पी॰ एस॰ केस सं॰ 43 वर्ष 2000 संस्थापित किया गया था। वर्तमान परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 रीमा सिंह ने परिवाद याचिका में कथन किया कि दिनांक 23.4.2000 को उसका विवाह याची सं॰ 1 जयराम सिंह के साथ हिंदू रीति-रिवाजों के मुताबिक बिहार में उसके पुश्तैनी गाँव में हुआ था और विवाह के अवसर पर उसके पिता ने उसके पति जयराम सिंह के लिए मोटर साइकिल की कीमत के रूप में 30,000/- रु॰ नगद के अतिरिक्त बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से 1,50,000/- रुपया उसके श्वसुर को दिया था। अभियुक्त को सोना-चांदी के गहने भी दिए गए थे। वह अपने विवाह के अगले दिन कोलकाता में अपने दांपत्य गृह आयी किंतु उसने अभिकथित किया कि सात दिनों बाद उसके समस्त ससुराल वालों और पति ने कोलकाता में भूमि का टुकड़ा खरीदने के लिए अपने पिता से 3 लाख रुपया मांगने के लिए कहा। इस संबंध में अनेक बार याचीगण द्वारा उस पर प्रहार किया गया था और शारीरिक एवं मानसिक यातना

के अध्यधीन किया गया था। याचीगण ने उसका गला दबाकर और उसके शरीर में आग लगाकर उसकी हत्या करने का भी प्रयास किया किंतु निकट के पड़ोसियों द्वारा उसे बचा लिया गया था और विवाह के अवसर पर उसको दिए गए गहनों और बहुमूल्य वस्तुओं को रखने के बाद अंतत: उसे उसके दांपत्य गृह से निकाल दिया गया था। अन्वेषण अधिकारी ने पार्क स्ट्रीट केस सं॰ 436 वर्ष 2000 का अन्वेषण करने के बाद भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406/498A के अधीन याचीगण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया। किंतु भारत के सर्वोच्च न्यायालय के मध्यक्षेप और आदेश के बाद मामला विचारण के लिए सब-डिविजनल दंडाधिकारी, पोराहाट, चाईबासा के न्यायालय को अंतरित कर दिया गया था। कुल मिलाकर पाँच गवाहों का परीक्षण अभियोजन की ओर से किया गया था और याची जयराम सिंह ने स्वयं को बचाव गवाह के रूप में प्रस्तुत किया जिसका बयान ब॰ सा॰ 1 के रूप में दर्ज किया गया था।

4. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री राणा प्रताप सिंह ने निवेदन किया कि अ॰ सा॰ 1 कामेश्वर प्रसाद सिंह परिवादी का पिता था, अ॰ सा॰ 2 अवधेश पांडे कामेश्वर प्रसाद सिंह का मित्र था, अ॰ सा॰ 3 परिवादी रीमा सिंह थी, अ॰ सा॰ 4 सुधांशु कुमार ठाकुर ने मामले का अन्वेषण किया था और अ॰ सा॰ 5 रबीन्द्र नाथ दत्ता विचारण के दौरान औपचारिक गवाह था। याची सं॰ 1 जयराम सिंह ने स्वयं को बचाव गवाह के रूप में प्रस्तुत करते हुए दो दस्तावेजों को न्यायालय के समक्ष लाया था जो चिन्हित किए गए प्रदर्श थे। अ॰ सा॰ 4 सुधांशु कुमार ठाकुर और अ॰ सा॰ 5 रबीन्द्र नाथ दत्ता औपचारिक गवाह थे जबकि परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 का पिता अ॰ सा॰ 1 कामेश्वर प्रसाद सिंह और अ॰ सा॰ 2 अवधेश पांडे अनुश्रुत गवाह थे और इसलिए, एकमात्र शेष तात्विक गवाह स्वयं परिवादी थी। विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने परिवाद याचिका में संगत रूप से कथन किया था कि याचीगण ने गला दबाकर और उसके शरीर में आग लगाकर उसकी हत्या करने का प्रयास किया था और कि निकट के पड़ोसियों द्वारा उसे बचा लिया गया था किंतु आश्चर्यजनक रूप से निकट के पड़ोसियों में से किसी का परीक्षण विचारण के दौरान नहीं किया गया था और इसलिए, यातना के अभिकथन का यह अंश सिद्ध नहीं किया जा सका था। विचारण न्यायालय ने गवाहों, जो परिवादी को छोड़कर चश्मदीद गवाह नहीं थे, की ओर से दिए गए साक्ष्य का अधिमूल्यन करने में गंभीर गलती की और किसी विधिक साक्ष्य के बिना याचीगण को दोषसिद्ध किया। परिवादी ने अभिकथित किया कि दिनांक 16.9.2000 की शाम को अभियुक्तगण द्वारा उसे और उसके पिता को निकाल दिया गया था किंतु दो पड़ोसियों के हस्तक्षेप पर अभियुक्त याचीगण ने परिवादी और उसके पिता को रातभर के लिए दांपत्य गृह में रुकने की अनुमति दी और तब उसने अपने चाचा कामेश्वर सिंह से संपर्क किया और उन्हें उसको दी जा रही क्रूरता और यातना के बारे में सूचित किया किंतु याचीगण के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 498A/406 के अधीन आरोप को सिद्ध करने के लिए अभियोजन की ओर से न तो पड़ोसियों और न ही कामेश्वर सिंह को प्रस्तुत किया गया था और परीक्षण किया गया था।

5. विद्वान वरीय अधिवक्ता ने आगे स्पष्ट किया कि वस्तुत:, परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 रीमा सिंह के विरुद्ध तलाक की डिक्री इप्सित करते हुए पति-याची जयराम सिंह द्वारा वैवाहिक वाद सं॰ 146 वर्ष 2000 संस्थापित किया गया था जिसमें दिनांक 19.8.2000 को उसे नोटिस जारी किया गया था और व्यथित होकर और वैवाहिक वाद के परिणाम में प्रत्याक्रमण में उसने दिनांक 12.9.2000 को मुख्य मेट्रोपॉलिटन दंडाधिकारी, कोलकाता के समक्ष परिवाद दर्ज किया था। याची जयराम सिंह ने उनके विवाह

के चार माह के भीतर यह पता लगने पर कि वह विवाह के पहले से ही गर्भवती थी, उसके विश्वासघात के आधार पर तलाक की डिक्री इप्सित करते हुए वैवाहिक वाद दाखिल किया था और वर्तमान मामला बाद में सोच-विचार कर लांछन, जिसे उसके विरुद्ध पाया गया था, की गंभीरता को कम करने के लिए संस्थापित किया गया था और इस तरीके से उसने अभिकथन को क्षीण करने का प्रयास किया और याचीगण को बैकपुट पर रखने का प्रयास किया। विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि इन तथ्यों और परिस्थितियों में यह विश्वास किए जाने योग्य बिल्कुल नहीं है कि याची सं॰ 1 ने कभी दहेज मांगा था अथवा कोई क्रूरता की थी अथवा शारीरिक और मानसिक रूप से उपहति कारित किया था।

6. विद्वान अधिवक्ता ने आगे स्पष्ट किया कि याची सं॰ 1 परिवादी का पति था, याची सं॰ 2 भैंसुर (पति का बड़ा भाई) था और याची सं॰ 3 परिवादी का श्वसुर था। याची सं॰ 2 महेश सिंह का अपने छोटे भाई के परिवार के क्रियाकलाप के साथ कोई संबंध नहीं था और वह किसी प्रकार की अभिकथित मांग का अंतिम रूप से लाभार्थी नहीं था यदि याची सं॰ 1–पति द्वारा ऐसी कोई मांग की भी गयी थी। वह प्रासंगिक समय पर कोलकाता में पुलिस विभाग में ड्राइवर के रूप में कार्यरत था और परिवादी अपने पति के साथ कुछ समय के लिए इस याची के घर में रुकी थी। बहुप्रयोजनीय अभिकथनों को छोड़कर महेश सिंह के विरुद्ध कोई विनिर्दिष्ट प्रत्यक्ष कृत्य नहीं बताया गया था। याची सं॰ 3 रामायण सिंह परिवादी का श्वसुर होने के नाते भूमि का टुकड़ा खरीदने के लिए उसके पति द्वारा किए गए तीन लाख रुपयों की अभिकथित मांग का लाभार्थी नहीं था। इसी प्रकार से, उसके द्वारा दिए गए शारीरिक और मानसिक यातना का अभिकथन भी किसी अन्य गवाह द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सका था, और इस प्रकार, भारतीय दंड संहिता की धारा 406/498A के अधीन उसकी दोषसिद्धि के लिए श्वसुर के विरुद्ध अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं थी। जहाँ तक याची सं॰ 1 पति का संबंध है, वह विपरीत परिस्थितियों का पीड़ित और शिकार बन गया है जो उसकी परिवादी पत्नी द्वारा लाया गया था जो उसके लिए दुर्भाग्य लेकर आयी थी। वस्तुतः वह विवाह के काफी पहले से गर्भवती थी और जब याची सं॰ 1 द्वारा इस तथ्य का पता लगाया गया था, उसने उसके विश्वासघात के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त किया था और अभिव्यक्त किया था कि उसे उसके माता-पिता द्वारा धोखा दिया गया था और कि वह कुवाँरी नहीं थी और भारतीय सिविल समाज के सन्नियमों के विरुद्ध गर्भ धारण किए हुए थी। याची सं॰ 1 पति ने सुलह का रास्ता और साधन निकालने का प्रयास किया किंतु जब उसे सहयोग प्राप्त नहीं हुआ, उसने उसके विश्वासघात के आधार पर तलाक की डिक्री के लिए वैवाहिक वाद दाखिल किया और प्रत्याक्रमण में याचीगण के विरुद्ध झूठा मामला संस्थापित किया गया था और तद्नुसार उनको दोषसिद्ध किया गया था।

7. विद्वान वरीय अधिवक्ता ने याचीगण के बचाव को स्पष्ट करते हुए निवेदन किया कि ब॰ सा॰ 1 जयराम सिंह अर्थात् परिवादी के पति के बयानों से स्पष्ट होगा कि उसने दिनांक 16.8.2000 को प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, कोलकाता के समक्ष तलाक के लिए वैवाहिक वाद दाखिल किया था और उक्त वाद का ऑडरशीट सिद्ध किया था जिसे प्रदर्श A चिन्हित किया गया है। उसने आगे नोटिस, जिसे उस पर तामीला किया गया था, की अभिस्वीकृति प्राप्ति पर परिवादी रीमा सिंह का हस्ताक्षर सिद्ध किया और दिनांक 19.8.2000 का पृष्ठांकन करते हुए उसके हस्ताक्षर का समर्थन किया और इसे प्रदर्श B चिन्हित किया गया है। स्वीकृत रूप से परिवाद काफी समय बाद दिनांक 12.9.2000 को दाखिल किया गया था। मैं परिवादी के पति ब॰ सा॰ 1 के प्रतिपरीक्षण से पाता हूँ कि वैवाहिक वाद, जिसे उसने प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, कोलकाता के समक्ष दाखिल किया था, को भी जिला न्यायाधीश, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम के न्यायालय को अंतरित कर दिया गया था। इस गवाह ने स्वीकार किया कि तलाक वाद जिला न्यायाधीश, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम द्वारा खारिज कर दिया गया था क्योंकि इसे गुणागुण रहित

पाया गया था और परिवादी के विश्वासघात के आधार पर तलाक की डिक्री इप्सित करते हुए लाया गया वाद सिद्ध नहीं किया जा सका था और मेरे दृष्टिकोण में पत्नी के सतीत्व और पतिव्रत पर प्रश्नचिन्ह लगाना क्रूरता की कोटि में आएगा। हो सकता है, बचाव ने सिद्ध किया हो कि वैवाहिक वाद, जिसे तलाक की डिक्री इप्सित करने के लिए पति याची द्वारा दाखिल किया गया था, की नोटिस की प्राप्ति के बाद परिवादी द्वारा परिवाद दाखिल किया गया था किंतु केवल इस आधार पर यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि परिवादी ने याचीगण के विरुद्ध प्रत्याक्रमण में और वैवाहिक वाद, जिसे गुणागुण रहित पाये जाने के कारण जिला न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया था, के अनुक्रम में परिवाद दाखिल किया था। अन्वेषण के दौरान गहनों, जिन्हें अभियुक्तगण द्वारा अपने पास रख लिया गया था, को इस न्यायालय के आदेश द्वारा जब्त किया गया था और इन्हें परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को दिया गया था। विचारण न्यायालय के समक्ष कतिपय बैंक ड्राफ्टों के काउंटर फ्वायल को प्रदर्शित किया गया। प्रदर्श 4 श्रृंखला के विषय वस्तु ने परिलक्षित किया कि अभियुक्त-याची रामायण सिंह के पक्ष में निकाले गए 30,000/- रुपए प्रत्येक के ड्राफ्ट के पे-इन-स्लिप के पाँच प्रतिपर्ण को पुलिस द्वारा जब्त किया गया था और रामायण सिंह के पक्ष में जारी 4000/- रुपयों का एक पे-इन-स्लिप भी जब्त कर लिया गया था। समस्त प्रतिपर्णों को अ॰ सा॰ 4 अन्वेषण अधिकारी द्वारा सिद्ध किया गया है जिन्हें प्रदर्श 4/1 से 4/6 तक चिन्हित किया गया है। इस गवाह ने परिवादी के गहनों की एक अन्य अभिग्रहण सूची भी सिद्ध किया है जिसे प्रदर्श 2/1 चिन्हित किया गया है और न्यायालय के आदेश के अधीन उसके गहनों को परिवादी को लौटा दिया गया था जैसा ऊपर कहा गया है। मैं पाता हूँ कि परिवादी को बाहर निकाल दिया गया था जब वह अपने पति के साथ पार्क स्ट्रीट क्षेत्र में महेश सिंह के घर में रह रही थी और महेश सिंह पुलिस विभाग में ड्राइवर था। उसे गवाह की उपस्थिति में उसके घर से निकाला गया था और कि उससे दहेज की मांग उसके घर और जानकारी के भीतर था और उससे की गई ऐसी मांग और उसके प्रति की गयी क्रूरता का उसने समर्थन किया। मैं पाता हूँ कि प्रदर्श-4 श्रृंखला जो याची रामायण सिंह अर्थात् परिवादी के श्वसुर के पक्ष में विभिन्न तिथियों पर जारी बैंक ड्राफ्टों के प्रतिपर्ण थे, उसकी सह-अपराधिता को पर्याप्त रूप से दर्शाता है और अभिकथन को सिद्ध किया जा सकता था कि अन्य के अतिरिक्त उसके द्वारा भी दहेज मांगा गया था। बैंक ड्राफ्टों को भी उसके नाम पर तैयार किया गया था। मैं आगे पाता हूँ कि विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ ने अभियोजन की ओर से दिए गए साक्ष्य का संवीक्षण करते हुए और याची पति जयराम सिंह के साक्ष्य का अधिमूल्यन करते हुए याचीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 498A/406 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित किया और उन्हें दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन विरचित आरोपों से विमुक्त कर दिया। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपील में याचीगण और बचाव की ओर से दिए गए साक्ष्य का विस्तारपूर्वक परीक्षण करके तथ्यों का समवर्ती निष्कर्ष दिया है और याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय, जिनके समवर्ती निष्कर्ष थे, द्वारा दर्ज आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता अथवा अनियमितता दर्शाने में विफल रहे जो हस्तक्षेप की अपेक्षा करता हो। यह दांडिक पुनरीक्षण गुणागुण रहित है, तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है। याचीगण को दंडादेश की शेष अवधि भुगतने का निर्देश दिया जाता है। विचारण न्यायालय को आदेशिका जारी करने का निर्देश दिया जाता है ताकि दंडादेश भुगतने के लिए उनको गिरफ्तार किया जा सके यदि वे जी॰ आर॰ सं॰ 3984 वर्ष 2000, टी॰ आर॰ सं॰ 285 वर्ष 2008 के तत्सम में आत्मसमर्पण नहीं करते हैं। उनके जमानत बंधपत्रों को रिक्त/रद्द किया जाता है।

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

झारखंड राज्य (2 में)

स्वपन कुमार झा उर्फ सपन कुमार (669 में)

अमरेन्द्र कुमार शर्मा उर्फ विक्की (905 में)

रॉकी दत्ता उर्फ रॉकी दत्ता (779 में)

cuke

स्वप्न कुमार झा (2 में)

झारखंड राज्य (669, 905, 779 में)

Death Reference No.2 of 2010 with Criminal Appeal No. 669, 905, 779 of 2010.
Decided on 29th July, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 88 वर्ष 2009 (जी॰ आर॰ सं॰ 2933 वर्ष 2008 में श्री कुमार कमल, अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ III, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 1 जुलाई, 2010 और 7 जुलाई, 2010 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 364A, 302 एवं 201/34—अपहरण एवं हत्या–मृत्युदंड–अपीलार्थीगण द्वारा किए गए संस्वीकृति के आधार पर मृत शरीर बरामद किया गया–अभियुक्तगण ने पूर्व नियोजित तरीके से फिरौती पाने की मंशा के साथ अपहरण का लक्ष्य साधा और अपनी योजना को बारीकी से निष्पादित किया–मृत्युदंड से दण्डित दोषसिद्ध मृतक का संबंधी है–दांडिक आशय की उपस्थिति आरंभ से ही उपस्थित है–अभियुक्तगण ने सारी तैयारियाँ की और उनके पास पीड़ित की हत्या करने की योजना थी–अपीलों को खारिज किया गया। (पैराएँ 16 से 24)

(ख) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872—धारा 27—प्रकटीकरण बयान–मृत शरीर की बरामदगी की ओर ले जाती अपीलार्थीगण की उपलब्ध संस्वीकृति धारा 27 के अधीन बिल्कुल ग्राह्य है। (पैरा 20)

(ग) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 364A एवं 302—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 354 (3)—अपहरण एवं हत्या–फिरौती की मांग–मृत्यु दंडादेश–मृतक की हत्या करने के बाद भी फिरौती मांगी गयी थी–यह एक पूर्व नियोजित, बेरहम हत्या थी–मृत्युदंड से दण्डित दोषसिद्ध जो मृतक का निकट संबंधी था, द्वारा योजना बनायी गयी थी–वह फिरौती के भुगतान को विचार में लिए बिना मृतक की हत्या करने के लिए आरंभ से ही पूर्व निश्चित था–मामला विरल मामलों से विरलतम के कार्य क्षेत्र के अंतर्गत आता है–मृत्युदंड का दंडादेश संपुष्ट किया गया। (पैराएँ 29 एवं 30)

निर्णयज विधि.–(2010)3 SCC 56—Applied; (1980)2 SCC 684; (2009)6 SCC 498; 2004 SCC (Cri) 524; (1983)3 SCC 470—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s B.M. Tripathy, Nutan Sharma, N. K. Jaiswal (in 669); Mr. Shree Nivas Roay (in 905); Mr. S.K. Murthy (in 779), For the Appellant; Mr. T.N. Verma (in all), For the State of Jharkhand; M/s R.S. Majumdar, Rajesh Kumar, For the Informant.

डी॰ एन॰ उपाध्याय, न्यायमूर्ति.–इन समस्त मामलों में अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया। दांडिक अपील सं॰ 669 वर्ष 2010 में अपीलार्थी स्वपन कुमार झा को, दांडिक अपील सं॰ 905 वर्ष 2010 में अमरेंद्र कुमार शर्मा उर्फ विकी को और दांडिक अपील

सं॰ 779 वर्ष 2010 में अपीलार्थी रॉकी दत्ता को इसके बाद क्रमशः अपीलार्थी सं॰ 1, 2 और 3 के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।

इन अपीलों को सत्र विचारण सं॰ 88 वर्ष 2009 में अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ III, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 1.7.2010 और 7.7.2010 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा समस्त अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 364A/302/201/34 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया गया है और तद्नुसार अपीलार्थी सं॰ 2 और 3 को आजीवन कारावास भुगतने और प्रत्येक को 10,000/- (दस हजार) रुपयों के जुर्माने का भुगतान करने और भुगतान के व्यतिक्रम में छह माह का अतिरिक्त कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है। अपीलार्थी सं॰ 1 स्वपन कुमार झा को उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के आदेश और दंडादेश की संपुष्टि के अध्यधीन भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 364A/302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए मृत्यु दंडादेश दिया गया है। उक्त के अतिरिक्त, समस्त तीनों अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 201 के अधीन सात वर्षों का कठोर कारावास भुगतने और प्रत्येक को 10,000/- रुपया जुर्माना का भुगतान करने और जुर्माना के भुगतान के व्यतिक्रम में छह माह का अतिरिक्त कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है।

2. अभियोजन मामला, जैसा यह श्री सुधांशु शेखर ओझा द्वारा दर्ज लिखित रिपोर्ट से प्रतीत होता है, यह है कि दिनांक 28.9.2008 को सायं लगभग 4.30 बजे फोन कॉल प्राप्त करने के बाद सूचक का पुत्र सुमित (मृतक) अपनी माता को सूचित करने के बाद कि वह आधे घंटे में लौट आएगा, घर से निकला किंतु वापस नहीं आया। सूचक और परिवार के अन्य सदस्य चिंतित हो गए और उन्होंने सुमित को तलाशा किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। सुमित के गायब होने के संबंध में, दिनांक 29.9.2008 को पुलिस थाना में सूचना दी गयी थी जिसके बाद झरिया पुलिस थाना में स्टेशन डायरी प्रविष्ट की गयी थी।

आगे प्रकट किया गया है कि दिनांक 1.10.2008 की सुबह में, सूचक ने अपने लैंडलाइन फोन नम्बर 2460618 पर कॉल प्राप्त किया और अज्ञात कॉलर ने सूचक से फिरौती मांगी थी। पूर्वोक्त कॉल से सूचक को विश्वास हुआ कि कुछ व्यक्तियों द्वारा उसके पुत्र सुमित का अपहरण कर लिया गया है। तत्पश्चात्, दिनांक 1.10.2008 को झरिया पुलिस थाना में लिखित रिपोर्ट दर्ज किया गया था जिसके आधार पर मोबाइल नंबर 9798148773 के धारक के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 364A के अधीन झरिया पी॰ एस॰ केस सं॰ 280 वर्ष 2008 दर्ज किया गया था। अन्वेषण के दौरान, सुमित का मृत शरीर बरामद किया गया था जिसके बाद दिनांक 23.10.2008 को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 302/201/34 को भी जोड़ा गया था।

अन्वेषण के दौरान, सुमित कुमार ओझा उर्फ गोविंद के अभिकथित अपहरण और हत्या में इन अपीलार्थीगण की अंतर्ग्रस्तता सामने आयी थी जिसके बाद स्वपन कुमार झा और अमरेंद्र कुमार शर्मा उर्फ विक्की को गिरफ्तार किया गया था और उन्होंने अपना इकबालिया बयान दिया था जिसमें प्रकट किया गया था कि उन्होंने इंडिका कार सं॰ जे॰ एच॰ 09 डी॰ 6666 भाड़े पर लिया था और गौतम कुमार ओझा (मृतक का भाई) जो कोलकाता में पढ़ रहा था, का अपहरण करने की योजना बनायी थी। तत्पश्चात, तीनों अपीलार्थीगण दिनांक 24.9.2008 को कोलकाता गए और होटल में रुके। फिरौती के लिए अपहरण की योजना मुख्यतः स्वपन कुमार झा द्वारा बनायी गयी थी और आरंभ में उसने गौतम को लक्ष्य बनाया था जो और कोई नहीं बल्कि स्वपन कुमार झा का ममेरा भाई है और तद्नुसार गौतम से संपर्क स्थापित किया गया था। अपीलार्थीगण के साथ घूमते हुए गौतम कुमार ओझा ने यह सूचित करते हुए कि वह अभियुक्तगण के साथ है, अपने रुमेट को एस॰ एम॰ एस॰ भेजा। पूर्वोक्त पहलू पर विचार करते हुए,

अपीलार्थीगण ने गौतम कुमार ओझा का अपहरण करने की योजना त्याग दिया और झरिया (धनबाद) लौट गए और पुनः सुमित कुमार उर्फ गोविन्द को लक्ष्य बनाया जो गौतम का छोटा भाई था। किसी बहाने, अपीलार्थीगण द्वारा सुमित को बुलाया गया था जिसके बाद, सुमित उनसे चिल्ड्रेन पार्क, झरिया के निकट मिला और वहाँ से, उक्त कार के चालक के अलावा अपीलार्थीगण स्वपन कुमार झा और विक्की शर्मा के साथ इंडिका कार में बैठा। उनके द्वारा सुमित को खालसा होटल गोविंदपुर ले जाया गया था और अपीलार्थीगण के मित्रगण भी उनके पीछे बोलेरो कार में आ रहे थे। वे सब होटल में शराब पीना चाहते थे, किंतु सुमित होटल में शराब पीने के लिए तैयार नहीं हुआ जिसके परिणामस्वरुप उन्होंने वाइन/ह्विस्की का बोतल खरीदा और गिरीडीह की ओर चले गए। गिरीडीह के रास्ते में, उन सबों ने शराब पिया और सुमित को भी जबरदस्ती पिलाई। वे अपीलार्थी सं॰ 2 विक्की शर्मा के घर गए जहाँ नींद लाने वाली दवा मिलाकर सुमित को चाय पिलाया गया था जिसके बाद वह सो गया और अपीलार्थीगण के साथियों द्वारा उसे कोलकाता की ओर ले जाया गया था।

तत्पश्चात, अपीलार्थीगण ने सुमित की निर्मुक्ति के लिए 20,000,00 (बीस लाख) रुपया सूचक से मांगते हुए कॉल किया था, किंतु पुलिस द्वारा अपीलार्थी सं॰ 1 और 2 को गिरफ्तार कर लिया गया था और जेल अभिरक्षा में भेज दिया गया था।

3. अपीलार्थीगण को पुलिस रिमांड पर लिया गया था जिसके बाद पुनः अपीलार्थी सं॰ 1 की संस्वीकृति दर्ज की गयी थी जिसके आधार पर सुमित उर्फ गोविंद के मृत शरीर को भंडारीडीह, जिला गिरिडीह स्थित कब्रिस्तान से कार्यपालक दंडाधिकारी, गवाहों और आम लोगों की उपस्थिति में बरामद किया गया था। मृत शरीर को खोदकर निकालने की प्रक्रिया की विडियोग्राफी भी की गयी थी। अन्वेषण की समाप्ति पर, इन अपीलार्थीगण के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया था और उनका विचारण किया गया था।

4. अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 364A/302/201/34 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोपित किया गया था, जिससे उन्होंने इनकार किया।

5. अभियोजन ने आरोपों को सिद्ध करने के लिए 14 गवाहों का परीक्षण किया था जबकि अपीलार्थीगण ने अपने बचाव में डॉ॰ सी॰ के॰ साही का ब॰ सा॰ 1 के रूप में परीक्षण किया था।

6. सुधांशु शेखर ओझा मृतक का पिता और सूचक भी है और उसका परीक्षण अ॰ सा॰ 9 के रूप में किया गया है। उसने अभियोजन मामले का समर्थन किया है जैसा लिखित रिपोर्ट में उसके द्वारा बनाया गया था जिसे प्रदर्श-3 के रूप में सिद्ध किया गया है। उसने (अ॰ सा॰ 9) अभिसाक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी सं॰ 1 और 2 द्वारा इंगित किए जाने पर दिनांक 19.10.2008 को भंडारीडीह, गिरिडीह स्थित कब्रिस्तान से कार्यपालक दंडाधिकारी, गवाहों की उपस्थिति में सुमित का मृत शरीर खोदकर निकाला गया था और उसने मृत शरीर को अपने पुत्र के शरीर के रूप में पहचाना था। उसने इस तथ्य का समर्थन भी किया है कि अपीलार्थीगण कोलकाता गए थे और उन्होंने गौतम कुमार ओझा से संपर्क किया था और उसके साथ उजली इंडिका कार में घूमे थे।

चूँकि गौतम कुमार ओझा ने अपने रूमेट को अपीलार्थीगण के साथ अपने आने-जाने के बारे में सूचित किया था, उसे छोड़ दिया गया था और अपीलार्थीगण ने गौतम का अपहरण करने की अपनी योजना बदल दिया था और बोकारो लौट गए थे। इस गवाह ने अपीलार्थीगण को पहचाना था और प्रकट किया था कि अपीलार्थी सं॰ 1 उसकी बहन का पुत्र है। गौतम कुमार ओझा अ॰ सा॰ ने इस तथ्य की संपुष्टि की है कि अपीलार्थीगण कोलकाता आए थे और उनके द्वारा उससे संपर्क किया गया था। वे उजली इंडिका कार में साथ-साथ घूमे थे, किंतु बाद में, अभियुक्त अपीलार्थीगण द्वारा उसे छोड़ दिया गया था। जब गौतम

को अपीलार्थी सं॰ 1 और उसके साथी की गिरफ्तारी के बारे में और अपने भाई सुमित के गायब होने के बारे में भी पता चला, उसने प्रकट किया था कि अपीलार्थीगण कोलकाता गए थे और वे उससे मिले थे। अपीलार्थी सं॰ 1 स्वपन कुमार झा ने विक्की शर्मा और रॉकी दत्ता अपीलार्थी सं॰ 2 और 3) जो उसके साथ थे, का परिचय कराया था।

7. अ॰ सा॰ 4 मुक्तिपद सेन और अ॰ सा॰ 5 शंकर शर्मा, जो सुमित को जानते थे, ने दिनांक 28.9.2008 को सायं लगभग 4.30 बजे चिल्ड्रेन पार्क के निकट उजली इंडिका कार में सुमित को जाते देखा था और उक्त वाहन में कार के चालक के अलावा दो व्यक्ति और बैठे थे। जब उन्हें सुमित के अपहरण और हत्या के बारे में पता चला, उन्होंने अपीलार्थीगण को और सूचक तथा उसके परिवार के सदस्यों को भी इस तथ्य को प्रकट किया था।

8. अशोक कुमार ओझा अ॰ सा॰ 1 और श्रीधर ओझा अ॰ सा॰ 3 मृतक के चाचा हैं और उन्होंने अभियोजन मामले का समर्थन किया है जैसा सूचक अ॰ सा॰ 9 और उसकी पत्नी द्वारा उन्हें प्रकट किया गया था। उन दोनों ने कथन किया है कि दिनांक 28.9.2008 को सायं लगभग 4.30 बजे सुमित उर्फ गोविंद फोन कॉल पाने के बाद घर से गया किंतु वापस नहीं आया। दो दिन बाद, दुष्टों द्वारा फिरौती मांगी गयी थी और अपीलार्थी सं॰ 1 और 2 की गिरफ्तारी के बाद उन्हें पता चला कि उनके द्वारा गोविन्द का अपहरण किया गया था और उसकी हत्या कर दी गयी थी। सुमित उर्फ गोविंद का मृत शरीर कब्रिस्तान से बरामद किया गया था और परिवार के सदस्यों द्वारा इसे पहचाना गया था। दोनों गवाह (अ॰ सा॰ 1 और 3) अनुश्रुत गवाह हैं और उन्होंने उनके द्वारा सुनी गयी घटना के बारे में विवरण दिया था। सबिता ओझा अ॰ सा॰ 8 मृतक सुमित की माता है और उसने कथन किया है कि दिनांक 28.9.2008 को जब वह घर पर थी, उसने लैंडलाइन पर फोन कॉल रिसीव किया था। कॉलर ने अपनी पहचान नहीं बतायी थी और कहा कि वह गोविंद का मित्र है और सुमित को फोन देने का अनुरोध किया था। उसके अनुरोध को स्वीकार करते हुए, उसने अपने पुत्र सुमित उर्फ गोविंद को बुलाया जिसने फोन पर बात किया और तब इस गवाह से कहा कि वह आधे घंटे के भीतर वापस आएगा और घर से चला गया। जब सुमित देर शाम तक घर नहीं लौटा, मामला उसके पिता के ध्यान में लाया गया। अगली सुबह, सुमित के गायब होने का रिपोर्ट पुलिस को दिया गया था। इसके दो-तीन दिन बाद उन्होंने एक अन्य फोन कॉल पाया जिसके द्वारा सुमित की निर्मुक्ति के लिए 20 लाख रुपयों की राशि मांगी गयी थी और तब लिखित रिपोर्ट दर्ज किया गया था। घटना के लगभग 20 दिन बाद, कब्रिस्तान से सुमित का मृत शरीर बरामद किया गया था, उसने शव परीक्षण गृह में अपने पुत्र सुमित का मृत शरीर पहचाना था। आगे की कहानी कि सुमित चिल्ड्रेन पार्क के निकट उजली इंडिका कार में बैठा था, इसे अ॰ सा॰ 8 द्वारा समर्थित की गयी है।

9. गौतम कुमार ओझा अ॰ सा॰ 6 मृतक का भाई है और उसने कथन किया है कि उसे सुमित के गायब होने के बारे में उसके मित्रों में से एक के द्वारा सूचित किया गया था जिसके बाद वह दिनांक 29.9.2008 को घर पहुँचा था। चूँकि अपीलार्थीगण कोलकाता गए थे और वह उनके साथ उजली इंडिका कार में घूमा था, उसने अपीलार्थी सं॰ 1 को कॉल किया और सुमित के गायब होने के बारे में सूचित किया। अपीलार्थी सं॰ 1 द्वारा जवाब दिया गया था कि वह अभी गया में है और वह वार्तालाप दिनांक 3.10.2008 को हुआ था। अपीलार्थी सं॰ 1 और 2 की गिरफ्तारी के बाद उसने अपने माता-पिता को प्रकट किया कि अपीलार्थी सं॰ 1, 2 और 3 कोलकाता गए थे और अपीलार्थी सं॰ 1 ने उसे कॉल किया और कहा कि उसने कार खरीदा था। और उसको कार में घूमने का निमंत्रण दिया और वह उनके साथ हो लिया। जब यह गवाह अपनी आवाजाही के बारे में अपने रुमेट को सूचित करना चाहता था, अपीलार्थी सं॰ 1 ने उसे ऐसा करने से रोका किंतु अवसर पाने पर उसने अपने रूमेट को एस॰ एम॰ एस॰ भेजकर

सूचित किया। जब यह तथ्य अपीलार्थीगण की जानकारी में आया, उन्होंने उसे छोड़ दिया और बोकारो वापस लौट गए। इस गवाह ने भी इसको लेकर अपनी अपधारणा दर्शायी है कि शायद अपीलार्थीगण की योजना उसका अपहरण करने की थी, किंतु वे सफल नहीं हो सके थे क्योंकि उसने अपने रूमेट को अपीलार्थीगण के साथ अपनी आवाजाही के बारे में सूचित किया था। इस गवाह के अनुसार, उसका उपधारणा सच्चाई में बदल गया जब अपीलार्थी सं॰ 1 और 2 को सुमित का अपहरण करने के आरोप पर गिरफ्तार किया गया था। इस गवाह ने भी सुमित कुमार ओझा उर्फ गोविंद के मृत शरीर की बरामदगी का समर्थन किया है और उसने अपने भाई के मृत शरीर की शिनाख्त करने का दावा भी किया है। इसके अतिरिक्त, समस्त अभियुक्त अपीलार्थीगण को उसके द्वारा पहचाना गया था और उसने उक्त इंडिका कार के चालक का नाम दुलाल महतो भी प्रकट किया था।

हीरालाल महतो अ॰ सा॰ 7 और मो॰ इम्तियाज खान अ॰ सा॰ 14 औपचारिक गवाह हैं। अ॰ सा॰ 7 ने वाहन का अभिग्रहण सिद्ध किया है और उसने कथन किया है कि इंडिका कार सं॰ जे॰ एच॰ 09 डी॰ 6666 को इस मामले के संबंध में जब्त किया गया था और उक्त वाहन संध्या नंदकुलियार की है। वाहन की जब्ती के समय वह किसी लड़के के अपहरण के बारे में जान सका था। अ॰ सा॰ 14 ने मृतक के वस्त्रों को प्रस्तुत किया है जिसे मृत शरीर से उतारा गया था और उक्त वस्त्रों को तात्विक प्रदर्श–2 के रूप में चिन्हित किया गया है। न्यायिक दंडाधिकारी संजीव कुमार दास ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन चालक दुलाल महतो अ॰ सा॰ 2 का बयान दर्ज किया था।

महबूब आलम अ॰ सा॰ 11 इशलाहुल मोमिनिन अंजुमान, भंडारीडीह का सचिव है। उसके अभिसाक्ष्य के अनुसार, दिनांक 19.10.2008 को दोपहर बाद, पुरुष का मृत शरीर भंडारडीह कब्रिस्तान से खोदकर निकाला गया था। कब्रिस्तान से मृत शरीर को खोदकर निकालने के पहले स्थानीय प्रशासन की अनुमति इप्सित की गयी थी। मृत शरीर की बरामदगी के समय, उसके अलावा सरकारी पदधारी, पुलिस और कई लोग वहाँ मौजूद थे। उसके द्वारा मृतक के कपड़ों को स्पष्ट किया गया था।

अभियोजन का मुख्य गवाह दुलाल महतो अ॰ सा॰ 2 है जो उक्त इंडिका कार सं॰ जे॰ एच॰ 09 डी 6666 का चालक था। उसके बयान के अनुसार, दिनांक 23.8.2008 को अपीलार्थी सं॰ 1 के अनुरोध पर पूर्वोक्त वाहन उसे किराया पर दिया गया था। उसे धनबाद आने का निर्देश दिया गया था और बैंक मोड़, धनबाद से वह अपीलार्थी सं॰ 1, 2 और 3 को कोलकाता ले गया। अपीलार्थीगण कोलकाता में होटल में रुके थे और गौतम (सुमित का भाई) से संपर्क किया था। समस्त अपीलार्थीगण गौतम के साथ यहाँ–वहाँ घूमे थे। तत्पश्चात, गौतम को कोलकाता में छोड़ दिया गया था और वे बोकारो वापस लौट गए थे। दिनांक 27.9.2008 को, पुनः वे धनबाद के रास्ते गिरिडीह गए। वे अपीलार्थी सं॰ 2 के घर गए और उस रात उसके ही घर में रहे। अगले दिन दोपहर लगभग 2-3 बजे, वे झरिया वापस आए और सुमित को कॉल किया और उसको चिल्ड्रेन पार्क के निकट आने को कहा। अपीलार्थी सं॰ 1 द्वारा सुमित को साथ लिया गया था और उस समय पर अपीलार्थी सं॰ 2 उसके साथ था। वे कॉफी हाऊस गए और खाने–पीने के बाद पुनः खालसा होटल की ओर गए। वे शराब पीना चाहते थे किंतु सुमित सहमत नहीं हुआ और इसलिए उन्होंने दुकान से शराब खरीदा और गिरिडीह की ओर गए। गिरिडीह के रास्ते में, उन्होंने मदिरा सेवन किया और जबरन सुमित को भी पिलाया। वे अपीलार्थी सं॰ 2 के घर गए जहाँ अपीलार्थी सं॰ 3 भी आया था। अगले दिन, सुबह अपीलार्थी सं॰ 1 से 3, जो घर के बाहर खड़े थे, बात कर रहे थे कि "15-20 लाख फिरौती मिल जाएगा।'' इस गवाह को देखने के बाद, वे मौन हो गए। जब उसने सुमित के बारे में पूछा, उन्होंने कहा कि उसे उनके द्वारा छोड़ दिया जाएगा और तत्पश्चात अपीलार्थी सं॰ 3 द्वारा इस गवाह (अ॰ सा॰ 2) को कार के भाड़ा के मद में 4000/- (चार हजार) रुपयों का भुगतान किया गया था और उसके

बाद वह बोकारो लौट गया। दो दिन बाद, उसे सुमित के अपहरण के बारे में पता चला और तब उसके पास यह विश्वास करने का कारण था कि इन अपीलार्थीगण द्वारा सुमित का अपहरण किया गया था।

वह (अ॰ सा॰ 2) आगे कहता है कि दंडाधिकारी द्वारा उसका बयान भी दर्ज किया गया था और उसने प्रदर्श–1, 1/1 एवं 1/2 के रूप में चिन्हित उस बयान पर हस्ताक्षर सिद्ध किया है। उसने उन सब अपीलार्थीगण को पहचाना था जो उसके अभिसाक्ष्य के समय पर न्यायालय में उपस्थित थे। अपने प्रति परीक्षण में, उसने स्वीकार किया है कि उसने वाहन के स्वामी को पहले ही सूचित किया था कि कोलकाता जाने के लिए अपीलार्थीगण द्वारा वाहन को भाड़े पर लिया गया था। आरंभ में वह गौतम अथवा सुमित को नहीं जानता था किंतु, अपीलार्थीगण के साथ घूमने के क्रम में और घटना की रिपोर्टिंग के बाद उसने उनके बारे में जाना। उसने वाहन में तेल भरने के संबंध में कोई रसीद प्रस्तुत नहीं किया था। इस गवाह ने प्रति परीक्षण में उससे पूछे गए समस्त प्रश्नों का उत्तर दिया है।

10. डॉ॰ विनीत पी॰ टिग्गा अ॰ सा॰ 10 ने दिनांक 19.10.2008 को प्रातः 9 बजे पी॰ एम॰ सी॰ एच॰, धनबाद में कृत्रिम प्रकाश में स्थानीय प्रशासन से अनुदेश प्राप्त करने के बाद सुमित के मृत शरीर का शव परीक्षण संचालित किया था। शव परीक्षण के दौरान अ॰ सा॰ 10 द्वारा निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में लिया गया थाः

1. eg d nk, dk.k tgk fupyk tcMk VVk gvk ik;k x;k Fkk] d Bhd uhp 2" x 1" x vfLFk rd ohnh.k t[eA

2. ck;s fgLl ij Hkh fupyk tcMk dk VVk gvk ik;k x;k FkkA

'ko foPNn dju ijh%

(a) lkeu oky vfLFk d ck;s fgLl ij 2" x 1/2" {k= e [kkiMh d uhp ,fpekfll ik;k x;k Fkk(

(b) nk;s fgLl d vkDlhihVy ijkbVy {k= ij 3" x 1";

cu nohHkr ik;k x;k FkkA

xnu d lkeu nkuk fgLlk d lcD;Vfu; l fV'kvk e ,fpekfll ik;k x;k FkkA nk;s fgLl ij gkb;kM cku d xVj dkjukok dk vfLFkHkx ik;k x;k FkkA ân; fjDr] FkyFky vkj uje voLFkk e FkkA iV e 'kjkc dh xèk nu okyk 50 xke ylylk [kk| vrfn"V FkkA CykMj [kkyh Fkk] Liyhu nohHkr FkkA vU; leLr vx nohHkr voLFkk e FkkA ,ifMDl xk;c ik;k x;k FkkA bld vroLr dk ljf{kr j[kr g, iV d lkFk ân;] QQMk] fyoj] Liyhu] ,d ijh fMlDVM fdMuh lhycn] ycy dh x;h Fkh vkj jklk;fud ijh{k.k d fy, Hkt tku d fy, dkLVcy dk nh x;h FkhA

मृत्यु के बाद से बीता समय 20-25 दिन था।

मृत्यु का कारण–गला घोंटने के परिणामस्वरुप दम घुटने से मृत्यु। रासायनिक विश्लेषण के लिए विसेरा सुरक्षित रखा गया है।

अन्य उपहतियाँ कड़े एवं भोथरे वस्तु द्वारा कारित की गयी थी।

शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श–4 के रूप में चिन्हित किया गया है। उन्होंने आगे कथन किया कि एफ॰ एस॰ एल॰ रिपोर्ट उपदर्शित करती है कि विसेरा के अंश में अल्युमिनियम फॉस्फाइड का पता लगा था।

शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श–4 के रूप में चिन्हित किया गया है।

न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला से प्राप्त रिपोर्ट इस तथ्य का उपदर्शक थी कि अल्युमिनियम फॉसफाइड पाया गया था।

11. सिया शरण प्रसाद, जो अन्वेषण अधिकारी हैं, का परीक्षण अ॰ सा॰ 13 के रूप में किया गया था। उसने प्रदर्श सूची के मुताबिक औपचारिक प्राथमिकी, अभिग्रहण सूची और अन्य दस्तावेजों को सिद्ध किया है और अभिसाक्ष्य दिया है कि स्टेशन डायरी प्रविष्टि 749 दिनांक 29.9.2008 को अपने पुत्र सुमित उर्फ गोविन्द के गायब होने के संबंध में अ॰ सा॰ 9 द्वारा दर्ज सूचना के आधार पर की गयी थी। दिनांक 1.10.2008 को, लिखित रिपोर्ट दर्ज किया गया था, उसने अन्वेषण का प्रभार लिया और गवाहों का बयान और अ॰ सा॰ 9 के पश्चातवर्ती बयान को दर्ज किया। प्रथम घटनास्थल, जहाँ से सुमित (मृतक) इंडिका कार में चढ़ा था, को उसके अभिसाक्ष्य के पैराग्राफ 8 में वर्णित किया गया है और स्थान चिल्ड्रेन पार्क झरिया के निकट की सड़क है। अन्वेषण के क्रम में, अपीलार्थीगण द्वारा उपयोग किया गया मोबाइल ट्रैक पर रखा गया था और उनकी सही स्थिति जानने के बाद अपीलार्थी सं॰ 2 के घर पर छापा मारा गया था, जिसके बाद अपीलार्थी सं॰ 1 और 2 को गिरफ्तार किया गया था। उन दोनों ने अपना इकबालिया बयान दिया था जिसे प्रदर्श 8 और 9 के रूप में सिद्ध किया गया है। दो मोबाइल सेटों को भी जब्त किया गया था और अभिग्रहण सूची प्रदर्श 10 है। अन्वेषण अधिकारी अ॰ सा॰ 13 ने गोल्डन डीयर गेस्ट हाऊस, कोलकाता का दौरा भी किया था और पता लगाया गया था कि दिनांक 24.9.2008 को दोपहर में, अपीलार्थीगण ने रूम नं॰ 204 लिया था और वेटर घनश्याम बेहरा ने संपुष्ट किया था कि अपीलार्थीगण उजली कार सं॰ जे॰ एच॰ 09 डी 6666 पर आए थे। अन्वेषण अधिकारी द्वारा पूर्वोक्त कार सुबोध कुमार नंदकुलियार के घर से जब्त की गयी थी और अभिग्रहण सूची (प्रदर्श 10/1) तैयार की गयी थी। गिरफ्तार किए गए अभियुक्त अपीलार्थीगण को न्यायालय में प्रस्तुत किया गया था और उनको पुलिस रिमांड पर लिया गया था जिसके बाद भंडारीडीह, गिरिडीह स्थित कब्रिस्तान से दिनांक 19.10.2008 को सुमित उर्फ गोविंद का मृत शरीर बरामद किया गया था। दिनांक 18.10.2008 को पुनः अपीलार्थी सं॰ 1 का इकबालिया बयान दर्ज किया गया था जिसे प्रदर्श 11 के रूप में चिन्हित किया गया है। इस गवाह (अन्वेषण अधिकारी) ने कब्रिस्तान और इसके लोकेशन के बारे में विस्तृत वर्णन किया है जहाँ से सुमित का मृत शरीर बरामद किया गया था। अपीलार्थीगण द्वारा उपयोग में लाई गई मोबाइल कॉल डिटेल रिपोर्ट (सी॰ डी॰ आर॰) प्राप्त किया गया था और अन्वेषण समाप्त करने के बाद, भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 302/364A/201/34 के अधीन समस्त अपीलार्थीगण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था और अपने परीक्षण में, वह स्वीकार करता है कि कोई डी॰ एन॰ ए॰ टेस्ट नहीं किया गया था और यह कहना गलत है कि उन्होंने केवल कंकाल बरामद किया था। वह स्वीकार करता है कि उसने उस व्यक्ति का परीक्षण नहीं किया था, जिसके नाम में उन सिम कार्डों जिनका उपयोग अपीलार्थीगण द्वारा किया गया था, को जारी किया गया था।

12. अपीलार्थीगण ने अपने बचाव में ब॰ सा॰ 1 के रूप में डॉ॰ डी॰ के॰ साही का परीक्षण किया था। ब॰ सा॰ 1 ने उस रिपोर्ट को सिद्ध किया है जिसके द्वारा उन्होंने पी॰ एम॰ सी॰ एच॰ धनबाद के मेडिकल बोर्ड द्वारा परीक्षित किए जाने के लिए मृत शरीर को निर्दिष्ट किया था क्योंकि मृत शरीर विघटन के अंतिम चरण में था। रिपोर्ट को प्रदर्श 1 के रूप में सिद्ध किया गया है और उस रिपोर्ट पर किए गए ब॰ सा॰ 1 (डॉक्टर) के हस्ताक्षरों को प्रदर्श A/1, A/2 और A/3 के रूप में सिद्ध किया गया है। उनके अनुसार, मृत शरीर शिनाख्त किए जाने की अवस्था में नहीं था। त्वचा और मांसपेशी द्रवीभूत हो गयी थी और नरम टिशु की उपहतियों का पता लगाना संभव नहीं था। अपने प्रति परीक्षण में, वह स्वीकार करता है कि फॉरवर्डिंग रिपोर्ट में मृतक का नाम सुमित उर्फ गोविन्द के रूप में उल्लिखित किया गया है।

13. अपीलार्थीगण ने मुख्यतः निम्नलिखित अभिवचन किया है:-

(i) अपीलार्थीगण के विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है और मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला अपूर्ण है और यह उनकी निर्दोषिता को अपवर्जित करते हुए अपीलार्थीगण के दोष की ओर नहीं ले जाती है।

(ii) मृत शरीर अत्यंत विघटित था और शरीर के मुख्य अंश द्रवीभूत थे। यह पहचाने जाने की अवस्था में नहीं था जो ब॰ सा॰ 1 के साक्ष्य से स्पष्ट है।

(iii) भारतीय दंड संहिता की धारा 364A के घटक आकृष्ट नहीं होते हैं और अभियोजन यह साक्ष्य देने में विफल रहा कि इन अपीलार्थीगण में से किसी ने फिरौती की कोई मांग की थी।

(iv) अभियोजन ने विभिन्न अंतरालों पर दर्ज अपीलार्थी सं॰ 1 के दो इकबालिया बयानों को अभिलेख पर लाया है और यह नहीं कहा जा सकता था कि इकबालिया बयान उस खोज की ओर ले जा रहा था जिसके परिणामस्वरुप सुमित का मृत शरीर बरामद किया गया था और इकबालिया बयान साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 को लागू करने के बाद भी साक्ष्य के रूप में ग्राह्य नहीं है।

(v) अभिकथित संस्वीकृति में आने वाला बयान, यदि इस पर विश्वास किया भी जाय, एक भिन्न कहानी देता है जिसका अन्वेषण नहीं किया गया। अपीलार्थीगण में से किसी के द्वारा शव परीक्षण रिपोर्ट से सामने आने वाले मृत्यु के कारण की संस्वीकृति कभी नहीं की गयी थी। अ॰ सा॰ 2 के साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उसका आचरण स्वीकार्य प्रतीत नहीं होता है।

(vi) अन्वेषण समुचित नहीं है; अनेक ढिलाईयाँ प्रकट है और ऐसे कमजोर अन्वेषण के आधार पर मृत्युदंड नहीं दिया जा सकता था।

(vii) तात्विक गवाहों के बयान तात्विक बिंदुओं पर एक दूसरे के विरोधाभासी हैं।

(viii) अपीलार्थी सं॰ 3 की ओर से विनिर्दिष्ट अभिवाक् किया गया है कि वह सुमित के अपहरण के अभिकथित स्थान और समय पर अन्य अपीलार्थीगण के साथ उपस्थित नहीं था।

(ix) अपीलार्थी सं॰ 1 की ओर से, यह बिंदु उठाया गया है कि एक ही साक्ष्य के आधार पर, शेष दो अपीलार्थीगण को आजीवन कारावास अधिनिर्णीत किया गया है किंतु उसे मृत्युदंड दिया गया है। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभिलेख पर आए गुरुतर और कम करने वाली परिस्थितियों पर विचार नहीं किया है और अपीलार्थी सं॰ 1 का मामला गलत रूप से विरल मामलों में से विरलतम के रूप में विरचित किया गया है।

14. दूसरी ओर, अभियोजन ने अनेक परिस्थितियों पर विचार किया है जो निम्नलिखित है:–

(i) अपीलार्थीगण कोलकाता गए थे और उन्होंने इस बहाने कि अपीलार्थी सं॰ 1 ने कार खरीदा था, कार में घूमने के लिए गौतम कुमार ओझा (अ॰ सा॰ 6) को निर्मंत्रित किया। तद्नुसार, गौतम कुमार ओझा अपीलार्थीगण के साथ गया और उक्त उजली इंडिका कार में घूमा किंतु अपने आवाजाही के बारे में अपने मित्र को उसके द्वारा भेजी गयी सूचना ने अपीलार्थीगण को चौकन्ना किया और उन्होंने गौतम के अपहरण की योजना छोड़ दी और बोकारो लौट गए।

(ii) तत्पश्चात अपीलार्थीगण ने छोटे भाई सुमित कुमार ओझा उर्फ गोविंद को लक्ष्य बनाया और अपने साथ चलने के लिए प्रलोभित किया और तद्नुसार दिनांक 28.9.2008 को सायं लगभग 4.30 बजे सुमित उर्फ गोविंद (मृतक) उनके साथ गया और चिल्ड्रेन पार्क, झरिया के निकट कार में बैठा। सुमित को अ॰ सा॰ 4 एवं 5 द्वारा कार में बैठते देखा गया था।

(iii) दिनांक 1.10.2008 को मृतक सुमित के माता–पिता ने सुमित की निर्मुक्ति के लिए फिरौती का कॉल प्राप्त किया और दुष्टों ने 20 लाख रुपया मांगा था।

(iv) अन्वेषण के दौरान, मोबाइल फोन सं॰ जिससे कॉल प्राप्त किए गए थे को ट्रैक पर रखा गया था और पुलिस अपीलार्थी सं॰ 1 और 2 को गिरफ्तार करने में सफल हुई थी। अन्वेषण के दौरान, अन्वेषण अधिकारी ने कॉल डिटेल्स रिपोर्टर (सी॰ डी॰ आर॰) संग्रहित किया था और अपीलार्थीगण के कब्जा से प्रयुक्त सिम कार्डों के साथ मोबाइल फोनों को जब्त किया था।

(v) इकबालिया बयानों के आधार पर, सुमित उर्फ गोविन्द का मृत शरीर भंडारीडीह (गिरिडीह) स्थित कब्रिस्तान से बरामद किया गया था।

(vi) अपराध करने में प्रयुक्त कार जब्त की गयी थी और स्वामी तथा चालक का बयान दर्ज किया गया था।

(vii) शव परीक्षण रिपोर्ट इस तथ्य का उपदर्शक है कि सुमित पर प्रहार किया गया था। उसने चेहरे पर उपहतियाँ पायी थी और गला दबाने के कारण उसकी मृत्यु हो गयी। विसेरा रिपोर्ट में अल्कोहल की गंध और जहरीले पदार्थ की उपस्थिति सिद्ध किया है।

15. दोनों पक्षों को सुनने के बाद, हमने अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य का परीक्षण किया है और आक्षेपित निर्णय का परिशीलन किया है। नि:संदेह, अपीलार्थीगण के विरुद्ध प्रत्यक्ष साक्ष्य प्रकट नहीं है और इसलिए, हमें अभिलेख पर उपलब्ध परिस्थितिजन्य साक्ष्य का संवीक्षण करना होगा। संपूर्ण प्रसंग में, अपीलार्थीगण द्वारा उजली इंडिका कार का उपयोग किया जाना प्रकाश में आया है। अभिलेख से और अ॰ सा॰ 2 के साक्ष्य से भी प्रकट होता है कि सफेद इंडिका कार सं॰ जे॰ एच॰ 09 डी॰ 6666, जिसे अपीलार्थीगण द्वारा भाड़े पर लिया गया था, जब्त कर ली गयी थी। अ॰ सा॰ 2 दुलाल महतो उक्त कार का चालक था। उसके साक्ष्य के अनुसार, दिनांक 23.9.2008 को बैंक मोड़, धनबाद में पूर्वोक्त कार अपीलार्थीगण सं॰ 1 से 3, के नियंत्रण में दी गयी थी। अगले दिन अपीलार्थीगण कोलकाता गए थे, होटल में एक कमरा लिया था और गौतम (अ॰ सा॰ 6) से मिले थे। आरंभ में, उसे लक्ष्य बनाया गया था किंतु गौतम द्वारा बरती गयी सावधानी ने उसे बचा दिया। चूँकि उसने अपीलार्थीगण के साथ अपनी आवाजाही के बारे में अपने मित्र को सूचित कर दिया था, उसे वहाँ छोड़ दिया गया था।

16. पुन:, अ॰ सा॰ 2 के साक्ष्य के अनुसार, अपीलार्थीगण वापस बोकारो लौट गए किंतु दिनांक 28.9.2008 को, वे उक्त कार में धनबाद आए और उस अवसर पर, अपीलार्थी सं॰ 1 और 2 उसके साथ था। वाहन चिल्ड्रेन पार्क, झरिया के निकट पार्क किया गया था जहाँ से सुमित को साथ लिया गया था और तब वे गिरिडीह की ओर गए थे किंतु रास्ते में उन्होंने मदिरा सेवन किया था और सुमित को भी शराब पीने के लिए मजबूर किया गया था। गिरिडीह पहुँचने के बाद, वे विक्की शर्मा (अपीलार्थी सं॰ 2) के घर गए और वहाँ रूके। दुलाल महतो अ॰ सा॰ 2 ने गाड़ी में रात बितायी जबकि सुमित और अपीलार्थीगण घर के भीतर रहे। सुबह में, चालक ने अपीलार्थीगण को 15-20 लाख रुपयों की फिरौती की बात करते सुना। तत्पश्चात, उसने कार का भाड़ा मांगा और अपीलार्थी रॉकी दत्ता द्वारा 4000/- (चार हजार) रुपयों का भुगतान किया गया था जिसके बाद वह अपनी कार में बोकारो लौट गया। जब उसने सुमित के गायब होने के बारे में सुना, उसके पास विश्वास करने का कारण था कि उन तीन अभियुक्त/अपीलार्थीगण द्वारा सुमित का अपहरण किया गया था। इस गवाह का बयान दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन दर्ज किया गया था।

17. यह साक्ष्य कि सुमित दिनांक 28.9.2008 को चिल्ड्रेन पार्क, झरिया के निकट कार में चढ़ा था, अ॰ सा॰ 4 और 5 के साक्ष्य जो सुमित को पहले से जानते थे, के साक्ष्य से समर्थन पाता है। प्रासंगिक

स्थान और समय पर इन दोनों गवाहों की उपस्थिति अन्वेषण अधिकारी के साक्ष्य से समर्थन पाती है। अ॰ सा॰ 4 मुक्ति पद सेन साइकिल मरम्मती के दुकान पर उपस्थित था, जबकि अ॰ सा॰ 5 शंकर शर्मा उस स्थान के निकट सैलुन में था। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 8 सबिता ओझा का साक्ष्य बिल्कुल स्पष्ट है कि उसने लैंडलाइन पर फोन कॉल प्राप्त किया था और कॉलर ने सुमित से बात करने की इच्छा व्यक्त की थी। तद्नुसार, रिसीवर सुमित को दिया गया था जिसने कॉल एटेंड करने के बाद अपनी माता को सूचित किया वह आधे घंटे में लौट आएगा और घर से चला गया। दिनांक 28.9.2008 से, सुमित गायब पाया गया था, पुलिस को सूचना दी गयी थी और अगली सुबह स्टेशन डायरी प्रविष्टि की गयी थी। दिनांक 1.10.2008 को अ॰ सा॰ 9 ने एक कॉल प्राप्त किया जिसके द्वारा सुमित की निर्मुक्ति के लिए फिरौती मांगी गयी थी। तत्पश्चात्, प्राथमिकी दर्ज की गयी थी और पुलिस सक्रिय हुई थी। दुष्टों द्वारा उपयोग किया गया मोबाइल ट्रैक पर रखा गया था जिसके बाद अपीलार्थीगण 1 और 2 को गिरफ्तार किया गया था। उनके कब्जे से उनके द्वारा इस्तेमाल किया गया मोबाइल फोन और सिम कार्ड जब्त किए गए थे। बाद में उन अपीलार्थीगण की संस्वीकृति के आधार पर सुमित का मृत शरीर बरामद किया गया था। मृत शरीर दंडाधिकारी और कब्रिस्तान के सदर की उपस्थिति में बरामद किया गया था और विडियोग्राफी की गयी थी। मृत शरीर अत्यंत विघटित अवस्था में था, किंतु अ॰ सा॰ 1, 6, 8 और 9 द्वारा पहचाना गया था।

अत: अभियोजन साक्ष्य आरंभ से अंत तक अर्थात् उस चरण से, जब अपराध करने के लिए अपीलार्थीगण ने कार भाड़े पर लिया था, भंडारीडीह स्थित कब्रिस्तान से मृत शरीर की बरामदगी तक बिल्कुल संगत है। हम अपीलार्थीगण की निर्दोषिता के परिकल्पना को उद्भूत करने वाली कोई कड़ी गायब नहीं पाते हैं। उक्त की दृष्टि में, हम इस निवेदन से सहमत नहीं हैं कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला पूर्ण नहीं है।

18. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान ब॰ सा॰ 1 के साक्ष्य की ओर आकृष्ट किया है और प्रतिवाद किया है कि मृत शरीर सुमित का नहीं था क्योंकि यह पहचाने जाने की अवस्था में नहीं था। किंतु अ॰ सा॰ 1, 6, 8 और 9 के साक्ष्य पर चर्चा के बाद विद्वान अधिवक्ता ने स्वीकार किया है और उन्होंने उस बिंदु को त्याग दिया है। यद्यपि हम यह उल्लिखित करना आवश्यक समझते हैं कि सुमित के शरीर पर पुरानी सर्जरी के चिन्हों को गवाहों द्वारा ध्यान में लिया गया था और सर्जरी उसके एपेंडिक्स को हटाने के प्रयोजन से की गयी थी।

19. अपीलार्थीगण की ओर से उठाया गया अगला बिंदु यह था कि किसी अपीलार्थी को कोई फिरौती का भुगतान नहीं किया गया था और अपीलार्थीगण एवं गवाहों के बीच हुए वार्तालाप के संबंध में कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य अभिलेख पर नहीं आया है। इस संबंध में, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय में इस बिंदु पर विस्तार से चर्चा किया है। सूचक ने स्पष्टत: कथन किया है कि दिनांक 1.10.2008 को उसने फोन कॉल प्राप्त किया जिसके द्वारा सुमित की निर्मुक्ति के लिए बीस लाख रुपयों की राशि मांगी गयी थी; केवल तत्पश्चात, प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। कॉल डिटेल रिपोर्ट, जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 (B) के अधीन ग्राह्य है अभिलेख पर है।

20. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 की प्रयोज्यता और किए गए अन्वेषण के संबंध में विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार तर्क किया। हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि अपीलार्थीगण 1 और 2 की गिरफ्तारी के बाद उन्हें जेल अभिरक्षा में अग्रसारित किया गया था और फिर, उन्हें पुलिस रिमांड पर लिया गया था और उनके इकबालिया बयान के आधार पर पुलिस दल गिरिडीह गया था और कार्यपालक दंडाधिकारी को नियुक्त किया गया था, प्रशासन और कब्रिस्तान के सदर से अनुमति इप्सित की गयी थी और पूर्वोक्त प्राधिकारीगण और लोगों की बड़ी संख्या की उपस्थिति में सुमित का मृत शरीर खोदकर निकाला गया

था और तद्नुसार मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट एवं अन्य औपचारिकताओं को पूरा किया गया था। स्थान विशेष, जहाँ मृत शरीर दफनाया गया था, की पहचान केवल अपीलार्थीगण द्वारा इंगित किए जाने पर ही संभव हो सका था। मृत शरीर को खोदकर बाहर निकाले जाने की विडियोग्राफी की गयी थी। अत:, अपीलार्थीगण द्वारा की गयी उपलब्ध संस्वीकृति मृत शरीर की बरामदगी की ओर ले गयी थी और उनकी संस्वीकृति का यह अंश साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन बिल्कुल ग्राह्य है। हम बिल्कुल सहमत हैं कि संस्वीकृति के शेष भाग पर उनकी दोषसिद्धि के आधार के रूप में विचार नहीं किया जाएगा।

21. यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थीगण ने हर संभव तरीके से अन्वेषण को गुमराह करने का प्रयास किया और उन्होंने प्रकट नहीं किया था कि किस तरह वास्तविक रूप में सुमित की हत्या की गयी थी। उन्होंने घटना के तरीके के बारे में संस्वीकृति नहीं किया था किंतु यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में प्रयोज्य अंतिम बार देखे जाने के सिद्धांत की दृष्टि में कोई भेद नहीं करेगा। पुन:, यह उल्लिखित करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि अ॰ सा॰ 2 ने इन अपीलार्थीगण की कंपनी में सुमित को छोड़ा था जिसके बाद सुमित को जीवित नहीं देखा गया था। इसके अतिरिक्त, संस्वीकृति के आधार पर मृत शरीर बरामद किया गया था और संस्वीकृति का हिस्सा अ॰ सा॰ 2, 4, 5, 11 और 14 के साक्ष्य, शव परीक्षण रिपोर्ट, विसेरा रिपोर्ट और तात्विक प्रदर्शों से समर्थन पाता है।

22. साक्ष्य का विस्तारपूर्वक और वस्तुपरकता के साथ विश्लेषण करने के बाद यह स्पष्ट होता है कि अभियुक्तगण ने फिरौती पाने के हेतु के साथ पूर्व नियोजित तरीके से लक्ष्य को चिन्हित किया था। तद्नुसार, उन्होंने विस्तारपूर्वक अपनी योजना को निष्पादित किया। उनके कृत्यों से प्रकट है कि अभियुक्तगण की नेतृत्व स्वपन कुमार झा कर रहा था। क्योंकि उसने ही लक्ष्य को पहचाना और नियत किया था। सूचक की पृष्ठभूमि और उसकी संपन्नता को जानने वाला वह सर्वोत्तम व्यक्ति था। वह सूचक का सगा भगिना है। लक्ष्य पहचानने के बाद योजना बनायी गयी थी और लक्ष्य सूचक का पुत्र था। आरंभ में उन्होंने कोलकाता से गौतम कुमार ओझा (अ॰ सा॰ 6) को प्रलोभित करने की योजना बनायी थी, किंतु यह विफल रही। सफेद इंडिका कार द्वारा कोलकाता जाने का तथ्य और अन्वेषण अधिकारी के साक्ष्य के मुताबिक सिद्ध किया गया है। पुलिस दल कोलकाता गया था और सत्यापन किया गया था। ऐसी योजना की विफलता के बाद अभियुक्तगण ने वैकल्पिक योजना अर्थात् सूचक के छोटे पुत्र के अपहरण की योजना बनायी। अभियुक्त स्वपन कुमार झा अन्य अभियुक्तगण के साथ सुमित कुमार ओझा का अपहरण करने में सफल हुआ। योजना सफल हुई और निष्पादित की गयी थी।

अभियुक्तगण के मनोभाव प्रकट हैं और वे जानते थे कि उन्हें क्या करना था। उन्हें परिणाम ज्ञात था। यह सर्वविदित है कि जब कभी किसी ज्ञात व्यक्ति द्वारा अपहरण किया जाता है, पीड़ित के जीवित रहने का अवसर उतना ही कम होता है। अत:, आरंभ से ही अभियुक्तगण जानते थे कि पीड़ित, यदि उसका अपहरण किया जाता है, की हत्या करनी होगी। किसी ज्ञात पीड़ित के जीवित लौटने का अवसर लगभग नगण्य है। इस मामले में पीड़ित अभियुक्त/अपीलार्थी स्वपन कुमार झा का सगा कजिन है। पीड़ित को जीवित लौटने की अनुमति देने का प्रश्न दूर तक नहीं था भले ही फिरौती का भुगतान किया गया हो। दांडिक आशय (आपराधिक मन:स्थिति) की उपस्थिति आरंभ से ही उपस्थित है और अभियुक्तगण ने सारी तैयारियाँ की थी और पीड़ित की हत्या करने की योजना बनायी थी। इस मामले में, हत्या के बाद भी अभियुक्तगण ने सूचक को कॉल करने और फिरौती मांगने का दु:साहस किया। दिए गए साक्ष्य से यह पहले ही सिद्ध किया जा चुका है कि उन्होंने पेशेवर तरीके से कब्रिस्तान में शरीर दफनाया था। उनका दांडिक आशय युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध किया गया है।

23. वर्तमान मामले से सामने आने वाले तथ्य और परिस्थितियाँ **विक्रम सिंह बनाम पंजाब राज्य (2010 (3) SCC 56)** के मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से पूरी तरह मेल खाती हैं। उस मामले में

16-17 वर्षीय विद्यालय जा रहे बालक का अपहरण फिरौती के लिए किया गया था और ज्ञात व्यक्ति अपहरण में अंतर्ग्रस्त थे। लड़के का अपहरण एक कार में किया गया था, जो अभियुक्तों द्वारा किराए पर ली गयी थी। लड़के पर काबू पाने के लिए क्लोरोफॉर्म सुंघाया गया था। अभियुक्तगण ने मृतक के पिता से पचास लाख रुपया मांगा था किंतु अन्वेषण के दौरान उन्हें पकड़ा गया था और अपराध करने में प्रयुक्त वाहन जब्त किया गया था। संस्वीकृति के आधार पर, अपराध में फँसाने वाली वस्तुओं को बरामद किया गया था और अंत में अभियुक्तगण को दोषी अभिनिर्धारित किया गया था और मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत किया गया था।

24. ऊपर की गयी चर्चा और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों की दृष्टि में हम पाते हैं कि अभियोजन ने अपीलार्थीगण के दोष की ओर ले जाने वाले साक्ष्य की पूर्ण श्रृंखला निर्मित करने में सफल हुआ है और विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश अपीलार्थीगण को भा० दं० सं० की धाराओं 364A/302/201/34 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए सही प्रकार से दोषी अभिनिर्धारित किया है।

अपीलार्थीगण अमरेंद्र कुमार शर्मा उर्फ विक्की और रॉकी दत्ता के विरुद्ध पारित दंडादेश पर चर्चा की आवश्यकता नहीं है किंतु मृत्यु संदर्भ पर विचार करते हुए अपीलार्थी सं० 1 स्वपन कुमार झा के विरुद्ध पारित मृत्यु दंड पर चर्चा की जरूरत है।

25. यह प्रतिवाद किया गया था कि साक्ष्य के समरुप समूह पर अन्य दो अपीलार्थीगण को कठोर आजीवन कारावास का दंड अधिनिर्णीत किया गया था, किंतु अपीलार्थी सं० 1 को मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत किया गया था और वे आधार जिन पर दंडादेश को सुभिन्न किया गया है समुचित और मान्य नहीं प्रतीत होता है। मामला विरल मामलों से विरलतम के कार्यक्षेत्र के अधीन नहीं आता है। स्वीकृत रूप से, मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है और विद्वान सत्र न्यायाधीश अपीलार्थी सं० 1 स्वपन कुमार झा से संबंधित गुरुतर और कम करने वाली परिस्थितियों के संबंध में समुचित बैलेंस शीट तैयार करने में विफल रहे हैं। अपीलार्थी सं० 1 के विरुद्ध कोई दांडिक पूर्ववृत्त अथवा दोषसिद्धि अभिलेख पर लाया गया है वह एक नौजवान लड़का है तथा उसके सुधरने एवं पुनर्वास की सारी संभावनायें हैं, क्योंकि उसके जीवन का एक बड़ा भाग बिताया जाना शेष है। संक्षिप्त तरीका अपना कर अमीर बनने का दुर्विचार उसके मन में हो सकता था किंतु उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि उपदर्शित नहीं करती है कि वह ऐसे अपराधों को करने का अभ्यस्त है। विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने **बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1980 [2] SCC 684),** मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों का गलत अधिमूल्यन किया है। विद्वान अवर न्यायालय को **2009 (6) SCC 498 (संतोष कुमार सतीश भूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य)** में प्रकाशित सर्वोच्च न्यायालय के दृष्टिकोण पर विचार करना चाहिए था जिसमें उस मामले के तथ्यों और साक्ष्य पर विचार करने के बाद दोषसिद्धों के पक्ष में कम करने वाली परिस्थितियों को पैरा 170 से 178 तक में श्रेणीकृत और स्पष्ट किया गया था। उक्त निर्णय में विचार किए गए अधिकतर कम करने वाली परिस्थितियाँ वर्तमान मामले में अपीलार्थी सं० 1 स्वपन कुमार झा के संबंध में पूर्णत: प्रयोज्य है और उसे मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत नहीं करना चाहिए था।

26. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास किया है:–

(i) ***1980 (2) SCC 684 (cpu fl g cuke i tkc jkT;)***

(ii) ***2010 (3) SCC 56 (foØe fl g cuke i tkc jkT;)***

(iii) ***2004 SCC (Cri) 529 (l 'khy ee cuke >kj[kM jkT;)***

(iv) ***1983 (3) SCC 470 (ePNh fl g cuke i tkc jkT;)***

27. हम **मच्छी सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1983 (3) SCC 470,** में प्रकाशित मामले में निर्णय के पैराग्राफों 32, 33, 34 और 37 को यहां नीचे उद्धृत करना चाहेंगे जो किसी मामला विशेष को विरल मामलों से विरलतम की कोटि में लाने के लिए हमारा मार्गदर्शन करता है।

*"32. D;k lenk; li.k :i l ^^fdlh ljr e eR; nMkn'k ugh** fl)kr e ifjyf{kr ekuoh; :[k dk i"Bkfdr ugh djrk g] bldk dkj.k bfllr djuk ef'dy ugh gA çFker%] ;g ekuoh; çlkn ^^thou d çfr J)k** d fl)kr dh uho ij fufer fd;k x;k gA tc lenk; dk dkb lnL; fdlh vU; lnL; dh gR;k djd bl fl)kr dk mYy?ku djrk g] lekt Lo; dk bl fl)kr dh ttHjk l tdMk egll ugh dj ldrk gA f}rh; r%] ;g le>uk gkxk fd lenk; dk çR;d lnL; lenk; d lj{kkRed lgkjk vkj bld }kjk çcfyr fofèk d 'kklu d dkj.k Lo; viu thou dk [krjk e Mky fcuk lj{kk d lkFk jgu e l{ke gA fofèk d 'kklu dk vfLrRo vkj nfMr fd, tku dk Hk; mu ykxk d çfr fuokjd d :i e çofrr gkrk g ftUg fdlh vU; dh gR;k dju e tjk Hkh ldkp ugh g ;fn ;g mud mí';k dk ijk djrk gA lenk; dk çR;d lnL; bl lj{kk d fy, lenk; dk dtnkj gA tc ÑrKrk d ctk; lenk;] tk ekj tku l Lo; gR;kj dh lj{kk djrk g] d fdlh lnL; dh ^^gR;k** djd Ñr?urk n'kk;h tkrh g vFkok tc lenk; egll djrk g fd Lo&lj{k.k d ykHk d fy, gR;kj dh gR;k djuh gkxh] lenk; eR; nM etj djd lj{kk okil y ldrk gA fdr lenk; çR;d ekey e ,lk ugh djxkA ;g ^^fojy ekeyk l fojyre** e ,lk dj ldrk g tc bldh lkefgd vrjkRek dk bl dnj vk?kkr yxrk g fd ;g eR; nM dk j[k jgu dh okNuh;rk vFkok vU;Fkk d lcèk e viu0;fDrxr er dk è;ku e fy, fcuk U;kf;d 'kfDr dn d èkkjdk l eR; nM nu dh vi{kk djxkA lenk; ,lh Hkkouk dk xg.k dj ldrk g tc vijkèk gr vFkok vijkèk dju d rjhd vFkok vijkèk d lekt fojkèkh vFkok u'kl çÑfr d lyVQke l n[kk tkrk g] mnkgj.kLo#i%*

I. gR;k dju dk rjhdk

33. tc gR;k vR;Ur Øj] ohHkRl] nkuoh;] t?kU; vFkok u'kl rjhd l dh tkrh g rkfd lenk; dk ?kkj vkj vR;fèkd Økèk mRiUu djA mnkgj.kLo#i%

(i) tc ?kj e mldk ftnk tyku d mí'; dk nf"V e j[kdj ihfMr d ?kj e vkx yxk fn;k tkrk gA

(ii) tc mldh eR; d fy, ihfMr dk ;kruk vFkok Øjrk d vekuoh; ÑR;k d vè; èkhu fd;k tkrk gA

(iii) tc nkuoh; rjhd l ihfMr dk 'kjhj VdMk e dkV Mkyk tkrk g vFkok mld 'kjhj dk vxHkx fd;k tkrk gA

II. gR;k dju dk gr

34. tc gR;k ,l gr l dh tkrh g tk i.k vufrdrk vkj vèkerk n'kkrh gkA mnkgj.kLo#i] (a) tc èku vFkok ijLdkj d ykHk d fy, HkkM ij fy;k x;k gR;kjk gR;k djrk g] (b) tc lifÙk gkfly dju vFkok gR;kj d fu;=.k d vèkhu fdlh çfrikY; vFkok 0;fDr vFkok ftldh ryuk e gR;kjk çHkko'kkyh

voLFkk vFkok fo'okl dh voLFkk e g] dh lifÙk d Åij fu;=.k iku d fy, lkph le>h ;ktuk d lkFk u'kl gR;k dh tkrh g vFkok (c) tc ekrHkfe d lkFk nxk dju d Øe e gR;k dh tkrh gA

III. gR;k d ihfMr dk 0;fDrRo

37. tc gR;k dk f'kdkj (a) ,d funk"k ckyd g tk gR;k d fy, cgkuk] mdlkok dh rk ckr gh nj] rd çnku ugh dj ldrk Fkk vFkok ugh fd;k g (b) fu%lgk; efgyk vFkok o)koLFkk vFkok ncyrk }kjk fu%lgk; cuk fn;k x;k 0;fDr g (c) tc ihfMr og 0;fDr g ftldh ryuk e gR;kjk çHkko'kkyh vFkok fo'okl dh voLFkk e g (d) tc ihfMr mld }kjk nh x;h lok d fy, lenk; }kjk lkèkkj.kr% fi; vkj tkuk&ekuk 0;fDrRo g vkj gR;k futh dkj.kk l fHkUu jktuhfrd vFkok le#i dkj.kk l dh tkrh gA

28. ऊपर दिए मार्गदर्शक सिद्धांतों की दृष्टि में, हमने विरल मामलों में से विरलतम की परिधि के अंतर्गत अपीलार्थी सं॰ 1 के मामले को विरचित करने के लिए निम्नलिखित कारणों पर विचार किया है:–

29. इस मामले में 19 वर्षीय लड़का जो छात्र था, का अपहरण 20 लाख रुपयों की फिरौती मांगने के लिए किया गया था।

(ii) अपीलार्थी सं॰ 1 स्वपन कुमार झा और कोई नहीं बल्कि मृतक सुमित उर्फ गोविन्द का कजन है। वह योजना का मास्टर माइंड था और विपुल राशि पाने के लिए उसने अपने संबंधियों में से एक का अपहरण करने के लिए उसको पहचाना था और लक्ष्य बनाया था। सूचक दोषसिद्ध स्वपन कुमार झा का मामा है।

(iii) चूँकि दोषसिद्ध को लक्ष्य ज्ञात था और अपीलार्थी सं॰ 1 के दिमाग में हर समय यह बात थी कि फिरौती पाने के बाद भी शिकार को जीवित छोड़ा नहीं जाएगा। यह सामान्य हत्या का मामला नहीं है, बल्कि, अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 364A के अधीन अपराधों के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया गया है और फिरौती के लिए अपहरण के खतरे को कम करने के लिए यह धारा पुर:स्थापित की गयी थी।

(iv) यह प्रतीत होता है कि मृतक को नकली दवाइयाँ खिलायी गयी थी और तत्पश्चात उसकी हत्या की गयी थी और मृतक की हत्या करने के बाद भी फिरौती मांगी गयी थी।

(v) यह विश्वासघात का मामला है और कोई समाज जीवित नहीं रह सकता है यदि निकट संबंधी द्वारा विश्वासघात किया जाता है।

(vi) दोषसिद्धों ने विधिक दंड से स्वयं को बचाने के लिए पेशेवर अपराधकर्ता की भाँति मृत शरीर को ठिकाने लगा दिया था। उन्होंने अत्यन्त सावधानीपूर्वक और चौकन्नेपन से अपनी योजना निष्पादित की और मृत शरीर को कब्रिस्तान में मिट्टी के नीचे लगभग 6 फीट गहरा दफना दिया था।

(vii) माता–पिता, जिन्होंने अपना पुत्र खो दिया था वह भी उनके निकट संबंधी के कारण, की मानसिक वेदना ने उन्हें गंभीर आघात पहुँचाया और ऐसी घटना व्यापक समाज को खतरे में डालने के लिए पर्याप्त है और कोई भी किसी अन्य का विश्वास नहीं करेगा।

(viii) यह पूर्व नियोजित, नृशंस हत्या थी और योजना दोषसिद्ध सं॰ 1 द्वारा बनायी गयी थी जो मृतक का निकट संबंधी है। उसने फिरौती के लिए अपराध किया है और वह फिरौती के भुगतान को ध्यान में

लिए बिना मृतक की हत्या करने के लिए आरंभ से ही तय कर रखा था और इसलिए हम पाते हैं कि **विक्रम सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2010 (3) SCC 56,** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांत वर्तमान मामले पर प्रयोज्य होंगे और हम विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश के दृष्टिकोण से वस्तुतः सहमत हैं कि दोषसिद्ध स्वपन कुमार झा, अपीलार्थी सं॰ 1 का मामला विरल मामलों में से विरलतम के कार्य क्षेत्र के अंतर्गत आता है और वह मृत्यु दंडादेश दिए जाने योग्य है।

तद्नुसार, अपीलार्थी सं॰ 1 को अधिनिर्णीत मृत्यु दंडादेश संपुष्ट किया जाता है।

30. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टियों में, हम ऊपर निर्दिष्ट अपीलार्थीगण द्वारा दाखिल अपीलों में से किसी में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं और इन्हें खारिज किया जाता है। सत्र विचारण सं॰ 88 वर्ष 2009 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश मान्य ठहराया जाता है।

आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

---

ekuuh; i'kkr dekj] U;k;efr

अंग्रेज दास

cuke

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

Cr. Revision No. 1055 of 2007. Decided on 7th September, 2011.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 202 एवं 203—परिवाद याचिका का खारिज किया जाना—धारा 202 के अधीन जांच के प्रक्रम पर, दंडाधिकारी को केवल परिवाद याचिका में किए गए अभिकथन के समर्थन में उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने की आवश्यकता है—अवर न्यायालय एक समान विचारण में अभियुक्त का दोष न्यायनिर्णित करने के उपरांत परिवाद खारिज करने में अपनी अधिकारिता से आगे चला गया—परिवाद याचिका में किये गये अभिकथनों के समर्थन में पर्याप्त सामग्रियां है—आक्षेपित आदेश समर्थित नहीं किया जा सकता—पुनरीक्षण आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 4 से 6)

निर्णयज विधि.–AIR 1972 SC 2639—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Rajeeva Sharma, Darshan Singh, Sarfaraz Akhtar, For the Petitioner; Mr. S.K. Srivastava, For the State; Mr. Mithilesh Singh, For the O.P. Nos.(2, 4, 5).

आदेश

विचारण केस सं॰ 27 वर्ष 2007 के तत्सम पी॰सी॰आर॰ केस सं॰ 44 वर्ष 2007 में विद्वान अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, दुमका द्वारा पारित दिनांक 1.12.2007 के आदेश को निरस्त करने के लिए यह आवेदन दाखिल किया गया है, जिसके द्वारा याची की परिवाद याचिका दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के अधीन खारिज कर दी गयी है।

2. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री राजीव शर्मा द्वारा यह निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के उपरांत परिवाद याचिका इस प्रकार खारिज कर दी जैसे वह नियमित विचारण कर रहे हों। यह निवेदन किया गया है कि जांच के प्रक्रम

पर एक दंडाधिकारी के लिए केवल यह देखना आवश्यक होता है कि सामग्रियों से प्रथम दृष्टया एक अभियुक्त के विरुद्ध अपराध बनता है या नहीं। पूर्वोक्त तथ्य के समर्थन में, श्री शर्मा ने **AIR 1972 SC 2639** में रिपोर्ट किये गये माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया।

3. दूसरी ओर, विपक्षी सं॰ 4-5 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री मिथिलेश कुमार सिंह निवेदन करते हैं कि एक दंडाधिकारी के लिए जांच के प्रक्रम पर प्रस्तुत साक्ष्य का अवलोकन करने का विकल्प खुला होता है और अगर वह पाता है कि गवाहों के बयान परस्पर विरोधी हैं, तब वह परिवाद याचिका खारिज कर सकता है। यह भी निवेदन किया गया है कि वर्तमान मामले में परिवादी का बयान परस्पर विरोधी है क्योंकि परिवाद याचिका में याची (परिवादी) ने कथित किया कि घटना तब हुई थी जब वह बरमसिया स्थित अपने घर सामानो को एकत्रित करने के लिए जा रहा था, जबकि शपथ पर अपने बयान में उसने कथित किया कि घटना तब घटित हुई थी जब वह एक ट्रक से नाला की ओर जा रहा था। तदनुसार, यह निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय ने उचित रूप से परिवाद याचिका खारिज कर दिया था।

4. निवेदनों को सुनकर, मैंने मामले के अभिलेख का अवलोकन किया है। **AIR 1972 SC 2639** में रिपोर्ट किये गये **निर्मलजीत सिंह हून बनाम पश्चिम बंगाल राज्य** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ''दं॰प्र॰सं॰ की धारा 202 के अधीन अभिकल्पित जांच केवल यह अभिनिश्चित करने के लिए है कि परिवाद के समर्थन में साक्ष्य है या नहीं जिससे कि आदेशिका का निर्गत किया जाना न्यायसंगत हो सके। धारा यह नहीं कहती कि उस प्रक्रम पर उस व्यक्ति, जिसके विरुद्ध शिकायत की गयी है, की सत्यता या अन्यथा का निर्णय करने का एक नियमित विचारण होना चाहिए, क्योंकि ऐसे व्यक्ति को उसके विरुद्ध लगाये गये आरोप का जवाब देने के लिए तभी कहा जा सकता है जब एक आदेशिका निर्गत कर दी गयी हो और वह विचारण पर हो।''

5. आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि विद्वान अवर न्यायालय ने परिवाद खारिज कर दिया था क्योंकि अभिकथित घटना के समर्थन में किसी स्थानीय व्यक्ति की परीक्षा नहीं की गयी थी। विद्वान अवर न्यायालय अभियुक्त व्यक्ति द्वारा किये गये गाली गलौज के संबंध में भी विरोधात्मकता पाता है। मैं यह भी पाता हूँ कि विद्वान अवर न्यायालय ने अभियुक्त के दोष का निर्णय करने के लिए साक्ष्यों का मूल्यांकन इस प्रकार किया कि वह विचारण का कार्य कर रहे हों। उक्त परिस्थिति के अधीन, मैं पाता हूँ कि विद्वान अवर न्यायालय ने परिवाद खारिज करने में अपनी अधिकारिता से आगे जाकर कार्य किया था। मेरे विचार में, दं॰प्र॰सं॰ की धारा 202 के अधीन जांच के प्रक्रम पर एक दंडाधिकारी को केवल यह देखने की आवश्यकता है कि परिवाद याचिका में किये गये अभिकथन के समर्थन में साक्ष्य उपलब्ध है या नहीं। वर्तमान मामले में परिवाद याचिका, सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर परिवादी के कथन और गवाहों के बयान (जिनकी अभिप्रमाणित प्रति इस आवेदन से संलग्न है) के भी परिशीलन से मैं परिवाद याचिका में किये गये अभिकथनों के समर्थन में पर्याप्त सामग्रियां पाता हूँ जिससे प्रथम दृष्टया एक निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 342, 385, 504, 323 के अधीन अपराध कारित किये थे।

6. तदनुसार, मैं पाता हूँ कि आक्षेपित आदेश तात्विक अवैधानिकताओं एवं अनियमितताओं से ग्रस्त है, अतएव समर्थित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार, यह पुनरीक्षण अनुज्ञात किया जाता है तथा आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। विद्वान अवर न्यायालय को पुनः जांच करने तथा विधि के अनुसार आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है।

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k] U;k;efr

बुधुआ मछुआ (759 में)

सोमला मछुआ (190 में)

cuke

झारखण्ड राज्य (दोनों में)

Criminal Appeal (S.J.) Nos.759 of 2002 with 190 of 2000. Decided on 15th September, 2011.

सत्र विचारण सं० 408 वर्ष 1996 में श्री तारकेश्वर प्रसाद, सत्र न्यायाधीश, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 2.3.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय तथा 3.3.2000 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धाराएँ 366 एवं 376—अपहरण एवं बलात्संग—दोषसिद्धि—यह प्रेम प्रसंग का एक मामला था—डॉक्टर द्वारा बलात्संग का कोई चिन्ह् नहीं पाया गया—अपीलार्थी के संबंधियों ने अभिकथित अपराध कारित करने में उसकी सहायता की—अपीलार्थीगण संदेह के लाभ का हकदार—अपीलार्थीगण पहले ही अपने दंडादेशों का अधिकांश भाग भुगत चुके हैं—आक्षेपित निर्णय अपास्त—अपीलें अनुज्ञात। (पैराएँ 3, 5 से 7)

अधिवक्तागण.–Mr. R.C Khatri, For the Appellants; A.P.P., For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–भा० दं० सं० की धाराओं 109/366 के अधीन अपीलार्थी सोमला मछुआ की दोषसिद्धि करते हुए तथा उसे तीन वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए सत्र विचारण सं० 408 वर्ष 1996 में श्री तारकेश्वर प्रसाद, सत्र न्यायाधीश, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 2.3.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय तथा 3.3.2000 के दंडादेश के विरुद्ध ये दोनों अपीलें दाखिल की गयी हैं। अपीलार्थी बुधुआ मछुआ की भा०दं०सं० की धाराओं 366 एवं 376 के अधीन दोषसिद्धि की गयी है। उसे भा०दं०सं० की धारा 376 के अधीन 10 वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने तथा भा०दं०सं० की धारा 366 के अधीन चार वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने का दंडादेश सुनाया गया है। तथापि, दोनों दंडादेशों के साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

2. अभियोजन मामला संक्षेप में यह है कि सूचनादाता मथियास टोपनो (अ०सा० 3) ने 9.7.2006 को पुलिस को एक लिखित रिपोर्ट दी थी अन्य के साथ साथ यह कथित करते हुए कि 7.7.1996 को उसकी लगभग 13 वर्षीय अवयस्क पुत्री अगाथा टोपनो (अ०सा० 1) अपनी सहेलियों (अ०सा० 2, 4, 5 एवं 6) के साथ मशरूम एकत्रित करने के लिए जंगल गयी थी। जब वे लौट रहे थे, अपीलार्थी बुधुवा मछुआ, अभियुक्त गणेश मछुआ का गोत्रज भाई तथा महादेव मछुआ वहां आये थे और अगाथा टोपनों को बलपूर्वक जंगल की ओर ले गये थे। तलाश करने पर, सूचनादाता को कहीं भी अपनी पुत्री नहीं मिली थी।

3. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री आर० सी० खत्री ने विभिन्न आधारों पर आक्षेपित निर्णय की आलोचना की। उन्होंने निवेदन किया कि साक्ष्य में यह आया है कि यह प्रेम प्रसंग का एक मामला था और यह कि डॉक्टर के अनुसार अगाथा की आयु लगभग 17-18 वर्ष थी। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि उसकी घटना के पांच दिनों के बाद डॉक्टर द्वारा परीक्षा की गयी थी जिसने बलात्संग का कोई चिन्ह् नहीं पाया था। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि 10 वर्षों के दंडादेशों में से अपीलार्थी बुधुआ मछुआ लगभग सात वर्षों एवं आठ महीनों तक जेल में रहा है और तीन वर्ष के दंडादेश में से अपीलार्थी सोमला मछुआ लगभग एक वर्ष नौ महीनों तक जेल में रहा है।

4. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया है।

5. यह प्रतीत होता है कि अगाथा 7.7.1996 से 10.7.1996 के बीच अपीलार्थी बुधुआ मछुआ के साथ रही थी और यात्रा की थी। अभियोजन ने यह दर्शाने के लिए साक्ष्य पर कुछ नहीं लाया है कि उसने भाग निकलने का प्रयास किया था या प्रतिरोध किया था। केस डायरी के पैरा 21 से यह प्रतीत होता है कि पुलिस को मालूम पड़ा था कि यह प्रेम प्रसंग का मामला है। यह भी प्रतीत होता है कि अपीलार्थी बुधुआ मछुआ के पिता, माता एवं अन्य संबंधियों ने अभिकथित अपराध कारित करने में उसकी सहायता की थी।

6. पक्षकारों की सुनवाई करने के उपरांत तथा अभिलेखों का सावधानीपूर्वक अवलोकन करके मेरे विचार में, अपीलार्थीगण संदेह के लाभ के अधिकारी हैं क्योंकि अभियोजन अपना मामला सभी युक्तिसंगत संदेहों से परे करके सिद्ध करने में सक्षम नहीं रहा है। किसी भी परिस्थिति में, अपीलार्थीगण ने अपने दंडादेशों का अधिकांश भाग पूरा कर लिया है।

7. परिणामतः, यह अपीलें अनुज्ञात की जाती हैं और आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण को उनकी जामनत बंध-पत्रों की दायिताओं से उन्मोचित किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ i lkn] U;k;efr

राकेश कुमार जायसवाल

cuke

बिहार राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 02 of 2000 [R]. Decided on 9th September, 2011.

विद्वान अपर जिला-सह-सत्र न्यायाधीश, चाईबासा द्वारा एस॰टी॰ सं॰ 262 वर्ष 1998 में पारित दिनांक 28.2.1999 के एक आदेश से उद्भूत।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 304, भाग-I—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 227—आपराधिक मानव वध—उन्मोचन याचिका का अस्वीकरण—कृत्य हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध होगा अगर कृत्य मृत्यु कारित करने के आशय से किया जाता है—मृतक को याची द्वारा नियोजित किया गया था—किसी सामग्री की अनुपस्थिति में, यह नहीं कहा जा सकता कि याची ने मृतक की मृत्यु कारित करने के इरादे से उसे लोहा काटने को कहा था—धारा 304, भाग I के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है—याची को उन्मोचित किया गया। (पैराएँ 5 से 8)

अधिवक्तागण.–M/s Milan Kumar Dey, For the Petitioners; A.P.P., For the Respondents.

निर्णय

न्यायालय द्वारा.–यह आवेदन दिनांक 28.9.1999 के आदेश के विरुद्ध निर्दिष्ट है जिसके द्वारा दं॰प्र॰सं॰ की धारा 227 के अधीन निर्मुक्ति के लिए याची द्वारा दाखिल आवेदन विद्वान अपर जिला-सह-सत्र न्यायाधीश, चाईबासा द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था।

2. इस मामले को उद्भूत करने वाले तथ्य ये हैं कि केशव दास नामक मृतक, जो एक अकुशल मजदूर था, को एक लोहे का ढाँचा काटने के लिए इस याची द्वारा नियोजित किया गया था जो कुछ ऊँचाई पर अवस्थित था। जबकि वह इसे काट रहा था, वह ऊँचाई से चोट खाते हुए नीचे गिर पड़ा जिसके परिणामतः उसकी मृत्यु हो गयी। ऐसे अभिकथन पर, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 287, 114, 304 के अधीन प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। अन्वेषण के उपरांत, आरोप पत्र दाखिल किया गया था जिस पर भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग-I के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था। तदुपरांत जब

मामला सत्र न्यायालय को भेजा गया था, भारतीय दंड संहिता की धारा 227 के अधीन एक आवेदन दाखिल किया गया था उसमें मामले से याची को मुक्त करने का आग्रह करते हुए क्योंकि भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग–I के अधीन किसी भी प्रकार का अपराध नहीं बनता था क्योंकि प्राथमिकी में किये गये अभिकथन को देखते हुए याची को हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध का अपराध कारित करने वाला नहीं कहा जा सकता, परन्तु निर्मुक्ति के लिए आवेदन यह अभिनिर्धारित करते हुए अस्वीकार कर दिया गया था कि धारा 304, भाग–I के अधीन एक अपराध बनता है।

इस आदेश से व्यथित होकर, यह आवेदन दाखिल किया गया है।

3. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री डे निवेदन करते हैं कि कल्पना की किसी भी सीमा तक याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग–I के अधीन अपराध कारित करने वाला नहीं बताया जा सकता क्योंकि याची को हत्या कारित करने के लिए कोई आशय रखने वाला नहीं कहा जा सकता या उसने इस जानकारी के साथ कोई कृत्य नहीं किया था कि यह मृतक की मृत्यु कारित कर देगा और, अतएव, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश अपास्त किये जाने योग्य है।

4. इस निवेदन की दृष्टि में और प्राथमिकी में किए गए अभिकथन के संदर्भ में, धारा 304, भाग–I में यथा अंतर्विष्ट प्रावधान को ध्यान में लेना उपयुक्त होगा, जो निम्नवत् पठित है :–

*"304. **gR;k dh dkfV e u vku oky vkijkfèkd ekuo oèk d fy, n.M**&tk dkb ,lk vkijkfèkd ekuo oèk djxk] tk gR;k dh dkfV e ugh vkrk g] ;fn og ;g dk; ftld }kjk eR; dkfjr dh xb g] eR; ;k ,lh 'kkjhfjd {kfr] ftll eR; gkuk lEHkkO; g] dkfjr dju d vk'k; l fd;k tk,xk] rk og vkthou dkjkokl l] ;k nkuk e l fdlh Hkkfr d dkjkokl l] ftldh vofèk nl o"k rd dh gk ldxh] nf.Mr fd;k tk,xk vkj teku l Hkh n.Muh; gkxk(*

*vFkok ;fn og dk; bl Kku d lkFk fd mll eR; dkfjr djuk lEHkkO; g] fdUr eR; ;k ,lh 'kkjhfjd {kfr] ftll eR; dkfjr djuk lEHkkO; g] dkfjr dju d fdlh vk'k; d fcuk fd;k tk,] rk og nkuk e l fdlh Hkkfr d dkjkokl l] ftldh vofèk nl o"k rd dh gk ldxh] ;k teku l] ;k nkuk l] nf.Mr fd;k tk,xkA**

5. प्रावधान के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानव वध के अपराध का दोषी होगा अगर उस कृत्य, जिससे मृत्यु कारित हो गयी है, को मृत्यु कारित करने के आशय से या ऐसी शारीरिक उपहति कारित करने के इरादे से किया जाता है जिसके द्वारा मृत्यु कारित होने की संभावना हो। इसके अतिरिक्त कृत्य हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध होगा, अगर यह कृत्य इस जानकारी के साथ किया जाता है कि इसके द्वारा मृत्यु कारित होने या ऐसी शारीरिक उपहति कारित होने की संभावना है जिससे मृत्यु कारित हो सकती है परन्तु ऐसा करने का कोई आशय न हो।

6. स्वीकार्यतः, मृतक को याची द्वारा नियोजित किया गया था और वह लोहे के ढाँचे को काटने में संलग्न था, जिसे कुछ ऊँचाई पर रखा गया था, परन्तु किसी सामग्री की अनुपस्थिति में, यह नहीं कहा जा सकता कि याची ने मृतक को उसकी मृत्यु कारित करने के आशय से यह जानकारी रखते हुए उसे लोहा काटने को कहा था कि मृतक निश्चित रूप से नीचे गिर पड़ेगा और मर जाएगा।

7. तदनुसार, अगर समूचे अभिकथनों को भी सही माना जाता है, भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग–I के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है।

इन परिस्थितियों के अधीन, याची को मामले से उन्मोचित किया जाता है।

8. तदनुसार, एस०टी० सं० 262 वर्ष 1998 में विद्वान अपर जिला सह-सत्र न्यायाधीश, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 28.9.1999 का आदेश एतद द्वारा अपास्त किया जाता है। परिणामत:, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh;k t ;k jk;] U;k;efr

कंचन महतो एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (S.J.) No. 156 of 2003. Decided on 13th September, 2011.

सत्र केस सं० 215 वर्ष 1999 में श्री कमलेश मिश्रा, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ० टी० सी० IV, देवघर द्वारा पारित दिनांक 19 दिसम्बर, 2002 के दोषसिद्धि के निर्णय तथा दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 148/324—अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958—घोर उपहति—दोषसिद्धि—परिवीक्षा पर छोड़ा जाना—पक्षकारों के बीच लंबे समय से चला आ रहा भूमि विवाद—बचाव पक्ष के साक्षियों ने प्रश्नाधीन जमीन पर अभियुक्त-अपीलार्थीगण के परिवार के कब्जे के बारे में कथित किया—पक्षकारों के बीच कई मुकदमें भी चल रहे हैं—विवादित जमीनों के कब्जे के संबंध में कुछ संदेह है—अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ प्रदान किया जाना चाहिए क्योंकि वे भी जमीन पर अपने अधिकार का दावा कर रहे हैं—दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त—अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 9 से 11)

अधिवक्तागण.—Mr. Arvind Kumar Choudhary, For the Appellants; Mr. S. N. Rajgarhia, For the State.

न्यायालय द्वारा.—अपीलार्थीगण के अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. अपीलार्थीगण ने एस०सी० केस० सं० 215 वर्ष 1999 (टी०आर०सं० 107 वर्ष 2002) में श्री कमलेश मिश्रा, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ०टी०सी० IV, देवघर द्वारा पारित दिनांक 19 दिसम्बर, 2002 के दोषसिद्धि के निर्णय तथा दंडादेश के विरुद्ध यह अपील दाखिल किया है। जिसके द्वारा अपीलार्थी सं० 1 से 9 को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147/323 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है तथा कामदेव महतो नामक अपीलार्थी सं० 10 को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 148/324 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है। 2 वर्षों की अवधि तक अच्छा व्यवहार बनाये रखने के लिए अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन दंडादेश सुनाये गये सभी व्यक्तियों को 3,000/- रुपये का बंध पत्र निष्पादित करने के लिए कहा गया है।

3. अभियोजन मामला संक्षेप में यह है कि 7.7.1998 को लगभग 2:30 बजे दिन में सूचनादाता-जयदेव महतो ने प्रभारी पदाधिकारी, पालाजोर पुलिस थाना के समक्ष एक लिखित परिवाद प्रस्तुत किया था उसमें यह कथित करते हुए कि लगभग 11 बजे पूर्वाह्न में जब सूचनादाता एवं उसके पिता तथा उसके परिवार के अन्य सदस्य शिमला गांव के प्लॉट सं० 116 की जोताई कर रहे थे तब सभी अभियुक्त अपीलार्थीगण, अर्थात्, कंचन महतो, राधेश्याम महतो उर्फ राधे महतो, मनोहर महतो, फौदी महतो, चुन्नी महतो, खूबलाल महतो, सुखदेव महतो, बलदेव महतो, अमीन महतो एवं कामदेव महतो वहां लाठी, छड़ एवं फरसा से लैस होकर पहुंच गये तथा उक्त जमीन की जोताई करने पर अभ्यापत्ति किया। तत्पश्चात्, कुछ कहासुनी के उपरांत, उन्होंने सूचनादाता एवं उसके परिवार के सदस्यों को मारना

पीटना प्रारंभ कर दिया जिस पर सूचनादाता पक्ष के कुछ व्यक्तियों को चोटें आई। सूचनादाता द्वारा दाखिल उक्त लिखित परिवाद के आधार पर, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147/148/149/323/324/307 के अधीन मामला दर्ज किया गया है। अन्वेषण के उपरांत, पुलिस ने सभी पूर्वोक्त अभियुक्त/अपीलार्थीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 323/324/307/149/147/148 के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया है।

4. तत्पश्चात्, मामला सत्र न्यायालय को भेज दिया गया है। अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध करने के लिए सात गवाहों को परीक्षित किया है। बचाव पक्ष ने भी अपनी ओर से तीन गवाहों को परीक्षित किया है। दोनों पक्षकारों ने कई दस्तावेज दाखिल किये हैं जिन्हें प्रदर्श बनाया गया है। दोनों पक्षकारों के गवाहों द्वारा प्रस्तुत मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के उपरांत, विचारण न्यायालय ने पूर्वोक्त अभियुक्त-अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि की है जैसा कि पूर्व में कथित किया गया है।

5. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता, श्री अरविंद कुमार चौधरी ने निवेदन किया है कि प्रदर्श A एवं B स्पष्टत: दर्शाते हैं कि प्रश्नाधीन जमीन, अर्थात्, प्लॉट सं० 16 बिहारी महतो के नाम दर्ज है जो अपीलार्थी सं० 1 से 5 का दादा था। यह भी निवेदन किया गया है कि प्रश्नाधीन जमीन अभियुक्त-अपीलार्थीगण के कब्जे में है तथा पिछले पांच दशकों से सूचनादाता के पक्ष तथा अभियुक्त के पक्ष के बीच जमीन के कई विवाद चले आ रहे हैं।

6. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने निर्दिष्ट किया है कि अभियोजन साक्षियों में से किसी ने भी प्रश्नाधीन जमीन पर सूचनादाता के पक्ष के कब्जे के बारे में कथित नहीं किया है। दूसरी ओर, बचाव पक्ष के सभी तीन गवाहों ने स्पष्ट रूप से कथित किया है कि यद्यपि उक्त जमीन के संबंध में एक विवाद है परन्तु अभियुक्त-अपीलार्थीगण का प्रश्नाधीन जमीन पर अभी भी कब्जा है। अपीलार्थीगण के अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क रखा गया है कि अ०सा० 2 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में निवेदन किया है कि प्रश्नाधीन जमीन अभी भी बिहारी महतो के नाम दर्ज है जो अभियुक्त-अपीलार्थीगण में से कुछ का दादा है। इतना ही नहीं, अन्य गवाहों ने पूर्वोक्त प्रश्नाधीन जमीन के संबंध में पक्षकारों के बीच लंबी चली आ रही शत्रुता के बारे में भी स्वीकार किया है। उक्त गवाह अ०सा० 2 अपनी प्रति परीक्षा में यह भी स्वीकार किया है कि पक्षकारों के बीच कई मामले संस्थित किये हैं तथा निर्णित भी हुए हैं। इस प्रकार, अ०सा० 3 ने भी प्रश्नाधीन जमीन पर अभियुक्त-अपीलार्थीगण के कब्जे के संबंध में अपने साक्ष्य में स्वीकार किया है।

7. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने यह भी तर्क रखा है कि प्रदर्श A विवादित जमीन की लगान रसीद है और प्रदर्श B खतियान है जो दर्शाता है कि विवादित जमीन बिहारी महतो के नाम दर्ज है जो स्वीकार्यत: अभियुक्त-अपीलार्थीगण में से कुछ का पितामह था।

8. राज्य के अधिवक्ता, श्री एस० एन० राजगढ़िया ने उचित रूप से स्वीकार किया है कि अभियोजन साक्षियों में से किसी ने भी प्रश्नाधीन जमीन पर सूचनादाता पक्ष के कब्जे के बारे में कथित नहीं किया है यद्यपि दूसरी ओर उन्होंने स्वीकार किया है कि प्रश्नाधीन जमीन बिहारी महतो के नाम दर्ज है।

9. अभिलेख से, मैं पाती हूँ कि अभियोजन साक्षीगण सूचनादाता पक्ष द्वारा यथा दावा किए गए इस तथ्य को सिद्ध नहीं कर सके कि सूचनादाता पक्ष का जमीन पर कब्जा है। मैं बचाव पक्ष द्वारा प्रदर्शित दस्तावेजों, विशेषकर प्रदर्श B से यह भी पाती हूँ कि विवादित जमीन बिहारी महतो के नाम दर्ज है। दूसरी ओर, बचाव पक्ष के साक्षियों ने प्रश्नाधीन जमीन पर अभियुक्त-अपीलार्थीगण के परिवार के कब्जे के बारे में कथित किया है। नि:संदेह, अपने साक्ष्य में कई गवाहों ने पक्षकारों के बीच लंबी चली आ रही

शत्रुता के बारे में कथित किया है और उनके बीच कई मुकदमें भी चल रहे हैं। मामलों में से कुछ का पहले ही सूचनादाता के हक में फैसला हो चुका है परन्तु इस प्रक्रम पर यह कहना कठिन है कि सूचनादाता पक्ष का विवादित जमीन पर कब्जा है। इस मामले में विवादित जमीन के कब्जे के संबंध में मैं कोई राय नहीं देने जा रही हूँ क्योंकि विवादित जमीनों के कब्जे के संबंध में कुछ संदेह है, मेरी राय में, अभियुक्त-अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए क्योंकि प्रश्नाधीन जमीन पर वे भी अपने अधिकार का दावा कर रहे हैं।

10. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों तथा पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य पर सम्पूर्णता में विचार करते हुए मैं पूर्वोक्त अभियुक्त-अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ प्रदान करते हुए सत्र केस सं॰ 215 वर्ष 1999 में श्री कमलेश मिश्रा, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰टी॰सी IV, देवघर द्वारा पारित दिनांक 19 दिसम्बर, 2002 के दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय तथा दंडादेश को अपास्त करती हूँ तथा पूर्वोक्त आरोपों से सभी पूर्वोक्त अभियुक्त-अपीलार्थीगण को बरी करती हूँ।

11. तदनुसार, अपील अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

जनक महतो एवं अन्य

cuke

मोस्मात बिगाही देवी एवं अन्य

Second Appeal No. 261 of 2005. Decided on 1st August, 2011.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 100—द्वितीय अपील–वाद संपत्ति के अभिधान और कब्जा की पुनर्स्थापना के लिए डिक्री–अभिपुष्टिकरण के निर्णय के विरुद्ध अपील–विचारण न्यायालय ने और अवर अपीलीय न्यायालय ने भी समस्त प्रासंगिक तथ्यों पर पूरी तरह विचार किया और अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्यों का समुचित रूप से संवीक्षण और आकलन किया और इस निष्कर्ष पर आए कि वादीगण ने एक भूखंड पर अपना हक सिद्ध किया है–साक्ष्यों पर सम्यक् रूप से चर्चा और आकलन करने के बाद अवर न्यायालयों द्वारा समवर्ती रूप से प्राप्त तथ्यों के निष्कर्षों में द्वितीय अपील में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है–अपील खारिज। (पैराएँ 8 से 14)

अधिवक्तागण.–Mr. L.K. Lal, For the Appellants; M/s Manjul Prasad, Arbind Kr. Sinha, For the Respondents.

आदेश

यह द्वितीय अपील अभिधान अपील सं॰ 21 वर्ष 2003 में विद्वान जिला न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 15 जून, 2005 के उस निर्णय एवं डिक्री (डिक्री 28.6.2005 को हस्ताक्षरित) के विरूद्ध दाखिल की गई है जिसके द्वारा विद्वान सब-जज-IV, हजारीबाग द्वारा अभिधान वाद सं॰ 66 वर्ष 1992 में पारित निर्णय एवं डिक्री को बरकरार रखा गया था तथा अपील खारिज कर दी गई थी।

2. अपीलार्थीगण अभिधान वाद सं॰ 66 वर्ष 1992 में प्रतिवादीगण थे। उक्त वाद वादीगण-प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल किया गया था और उसमें हक की घोषणा और कब्जा की संपुष्टि के लिए डिक्री अथवा

वैकल्पिक रूप से वाद संपत्ति के कब्जा की पुनर्स्थापना के लिए और वाद संपत्ति के ऊपर कोई निर्माण करने से प्रतिवादीगण को निर्बंधित करते हुए व्यादेश प्रदान करने के लिए भी प्रार्थना की गयी थी।

3. वादीगण का मामला है कि बिहारी महतो, ग्राम केकेबर का व्यवस्थापित रैयत था। उक्त गाँव के खाता सं॰ 7 की भूमि अंतिम सर्वेक्षण में उसके पिता और चाचा के नाम में दर्ज की गयी थी। गाँव केकेबर के मुन्ना मियाँ के पुत्र इब्राहिम मियाँ ने वर्ष 1932 में भूतपूर्व भूस्वामी से 99 डिसमिल माप वाले भूखंड सं॰ 99 का रैयती व्यवस्थापन लिया था। इब्राहिम मियाँ उक्त भूमि पर शांतिपूर्वक खेती करने के लिए काबिज हुआ। वह भूतपूर्व भूस्वामी को लगान दिया करता था। बाद में इब्राहिम मियाँ ने दिनांक 16.3.1983 के रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के फलस्वरुप बहुमूल्य प्रतिफल के लिए वादी सं॰ 1 के पति और वादी सं॰ 2 से 7 के पिता बिहारी महतो को भूखंड सं॰ 99 की 90 डिसमिल भूमि बेच दिया। बिहारी महतो खरीदी गयी भूमि पर काबिज हुआ। नामांतरण केस सं॰ 550/1984-85 में बिहारी महतो के नाम पर भूमि नामांतरित कर दी गयी थी। बिहारी महतो ने प्रतिवादीगण के नोटिस और जानकारी में भूखंड सं॰ 568 की भूमि का 41 डिसमिल भी खरीदा था। वादीगण द्वारा कथन किया गया है कि यद्यपि प्रतिपादीगण के पास बिहारी महतो द्वारा खरीदी गयी भूखंड सं॰ 99 और भूखंड सं॰ 568 के ऊपर कोई अधिकार, हक और कब्जा नहीं था, वे बल का प्रयोग करके वाद भूमि हड़पने का प्रयास कर रहे हैं। उन्होंने उस प्रयोजन से कुछ दस्तावेजों को भी निर्मित किया है। प्रतिवादीगण ने भूखंड सं॰ 99 के पूर्वी और उत्तरी हिस्से की ओर चारदीवारी भी जबरन खड़ा करने लगे जो दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 144/145 के अधीन कार्यवाही की ओर ले गया। वादीगण के पास कोई वैकल्पिक उपचार नहीं होने के कारण उन्होंने वर्तमान वाद दाखिल किया।

4. प्रतिवादीगण ने वाद का प्रतिवाद किया। अपने लिखित कथन में उन्होंने अन्य बातों के साथ साथ कथन किया कि वाद विधि के अनेक प्रावधानों के अधीन वर्जित है। प्रतिवादीगण ने वाद भूमि पर अपने कब्जा का दावा किया। प्रतिवादी छोटू महतो के अनुसार प्रतिवादी सं॰ 1 के पिता ने वाद भूमि के अंश सहित गाँव केकेबर के खाता सं॰ 1 की भूमि का व्यवस्थापन सह-अंशधारी भूतपूर्व भूस्वामी लेडू महतो से लिया। उसने भूस्वामी को लगान का भुगतान भी किया। संपदा के राज्य में निहित होने के उपरांत उसने राज्य को लगान का भुगतान किया। व्यवस्थापन के बाद उन्होंने भूखंड सं॰ 99 के ऊपर रैयती अधिकार पाया और वे विगत 49 वर्षों से भूमि पर खेती कर रहे हैं। उन्होंने ईंट से बनी चारदीवारी भी निर्मित किया है। वे खाता सं॰ 1 के अधीन भूखंड सं॰ 568 पर शांतिपूर्वक काबिज हैं। वह भूमि भूखंड सं॰ 99 के पश्चिमी हिस्से पर उत्तर के पार्श्व है। अंचलाधिकारी ने प्रतिवादीगण को काबिज पाया है। वादीगण के नामों में नामांतरण अवैध और अधिकारितावहीन है। वादीगण का दावा तुच्छ और आधारहीन है और वाद खारिज किए जाने का दायी है।

5. पक्षों के उक्त अभिवचनों पर विद्वान विचारण न्यायालय ने तथ्यों और विधि के अनेक विवाद्यकों को विरचित किया है।

6. दोनों पक्षों ने अपना मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दिया है। विद्वान विचारण न्यायालय साक्ष्यों पर विस्तारपूर्वक चर्चा और आकलन के बाद इस निष्कर्ष पर आया कि वादीगण भूखंड सं॰ 99 के 90 डिसमिल के ऊपर अपना हक सिद्ध करने में सक्षम रहे हैं किंतु, भूखंड सं॰ 568 पर वे अपना हक सिद्ध करने में विफल रहे। उन्होंने आगे अभिनिर्धारित किया कि वाद परिसीमा, प्रतिकूल कब्जा अथवा विधि के किसी अन्य प्रावधानों द्वारा वर्जित नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय ने भूखंड सं॰ 99 पर वादीगण का हक अभिनिर्धारित करते हुए और भूखंड सं॰ 99 के एक अंश पर खड़ी की गयी दीवार को स्वयं अपने खर्च पर हटाने और इसका कब्जा वादीगण को देने का निर्देश प्रतिवादीगण को देते हुए वाद को अंशत: डिक्री किया।

7. उक्त निर्णय एवं डिक्री के विरूद्ध, प्रतिवादीगण ने जिला न्यायाधीश, हजारीबाग के न्यायालय में अपील दाखिल किया जो अभिधान अपील सं॰ 21 वर्ष 2003 है।

8. विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने पक्षों को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का आकलन किया और तथ्यों एवं विधि पर विचार करते हुए स्वतंत्र निष्कर्ष पर आया कि वादीगण भूखंड सं॰ 99 की भूमि के 90 डिसमिल के ऊपर अपना हक सिद्ध करने में सक्षम रहे हैं। उन्होंने आगे अभिनिर्धारित किया कि वादीगण भूखंड सं॰ 568 के ऊपर अपना हक सिद्ध नहीं कर सके थे। विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री में कोई दुर्बलता अथवा अवैधता नहीं थी जो किसी हस्तक्षेप की अपेक्षा करती हो, विद्वान विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को मान्य ठहराया। विद्वान जिला न्यायाधीश ने विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को संपुष्ट किया और अपील खारिज कर दिया था।

9. प्रतिवादीगण ने विद्वान अवर न्यायालयों के निर्णय और डिक्री का विरोध इस आधार पर किया है कि उन्होंने अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और साक्ष्यों पर समुचित रूप से विचार और आकलन नहीं किया है और गलत निष्कर्ष दर्ज किया है। वे प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण की ओर से दिए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों का समुचित अधिमूल्यन करने में विफल रहे। उन्होंने प्रदर्श-6 पर भारी विश्वास किया जो नामांतरण का दस्तावेज है और उस आधार पर गलत रूप से वादीगण का हक विनिश्चित किया। वादीगण भूखंड सं॰ 99 के संबंध में अपना हक सिद्ध करने में पूर्णत: विफल रहे। विद्वान अवर न्यायालयों के आक्षेपित निर्णय और डिक्री अवैध और विकृत हैं।

10. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और सामग्रियों पर विचार किया है। विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय के परिशीलन पर, मैं पाता हूँ कि विद्वान विचारण न्यायालय ने समस्त प्रासंगिक तथ्यों पर पूरी तरह विचार किया है और अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों का समुचित रूप से संवीक्षण और आकलन किया है और इस निष्कर्ष पर आया है कि वादीगण भूखंड सं॰ 99 के संबंध में अपना हक सिद्ध करने में सक्षम रहे हैं। विद्वान अवर न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि वादीगण भूखंड सं॰ 568 के ऊपर अपना हक सिद्ध नहीं कर सके थे।

11. विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने भी अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और साक्ष्यों पर विस्तारपूर्वक विचार किया है और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा प्राप्त तथ्यों के निष्कर्षों के साथ सहमत होते हुए अपना स्वतंत्र निष्कर्ष दर्ज किया है।

12. विद्वान अवर न्यायालयों के निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर सम्यक् चर्चा और आकलन पर आधारित है। उन्होंने समस्त प्रासंगिक पहलूओं पर विचार किया है। मैं अपीलार्थीगण के आधार में कोई सार नहीं पाता हूँ कि प्रतिवादीगण के साक्ष्यों का समुचित रूप से अधिमूल्यन और इन पर चर्चा नहीं किया गया था।

13. साक्ष्यों के सम्यक् चर्चा और आकलन पर विद्वान अवर न्यायालयों द्वारा समवर्ती रूप से प्राप्त तथ्यों के निष्कर्षों में द्वितीय अपील में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

14. मैं इस अपील में विरचित और विनिश्चित किए जाने के लिए विधि के किसी सारभूत प्रश्न को उद्भूत करता कोई आधार नहीं पाता हूँ।

15. तद्नुसार, यह द्वितीय अपील खारिज की जाती है।

---

ekuuh; ç'kkr dekj] U;k;efr

सुरेन्द्र कुमार वर्मा

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1418 of 2007. Decided on 3rd August, 2011.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 197(1)—लोक सेवक के अभियोजन के लिए मंजूरी–याची ने अंचलाधिकारी होने के नाते परिवादी के परिवार की वंशावली का झूठा प्रमाण पत्र जारी किया–अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में याची द्वारा प्रमाण पत्र जारी किया गया–राज्य सरकार द्वारा मंजूरी नहीं दी गयी–आक्षेपित आदेश धारा 197 (1) के उल्लंघन में पारित किया गया था और इसे संपोषित नहीं किया जा सकता है–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s P.P. N. Roy, Alok Kumar, For the Petitioner; Mr. V.K. Prasad, For the Opp. Party; Mr. Awanish Ranjan Mishra, For the O.P. No.-2.

आदेश

यह आवेदन टी॰ आर॰ सं॰ 1313 वर्ष 2007 में न्यायिक दंडाधिकारी, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 10.9.2007 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा उन्होंने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 467/468/471/120B के अधीन अपराधों के लिए याची के विरुद्ध संज्ञान लिया था।

2. अभिकथित किया गया है कि अंचलाधिकारी ने परिवादी के परिवार की वंशावली का झूठा प्रमाण पत्र जारी किया था जिसके आधार पर सह–अपराधी ने अपने नाम पर भूमि अंतरित करवाया था।

3. याची की ओर से उपस्थित वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ पी॰ एन॰ रॉय ने निवेदन किया है कि याची राज्य सरकार द्वारा नियुक्त अंचलाधिकारी है, और इसलिए, उसे केवल राज्य सरकार द्वारा सेवा से हटाया जा सकता है। आगे निवेदन किया गया है कि स्वीकृत रूप से याची ने अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में वंशावली का प्रमाण पत्र जारी किया था। अत: दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 (1) के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधान के मुताबिक राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी के बिना कोई न्यायालय याची के विरुद्ध संज्ञान नहीं ले सकता है। निवेदन किया गया है कि वर्तमान मामले में याची के अभियोजन के लिए राज्य सरकार द्वारा कोई मंजूरी नहीं दी गयी है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि इस न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश को संपोषित नहीं किया जा सकता है।

4. विपक्षी पक्षकार के विद्वान अधिवक्ता ने पूर्वोक्त निवेदन का खंडन नहीं किया है और निष्पक्षत: कथन किया है कि वर्तमान मामले में याची के अभियोजन के लिए मंजूरी नहीं दी गयी है।

5. निवेदनों को सुनने पर, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। आक्षेपित आदेश के परिशीलन से मैं पाता हूँ कि याची को परिवादी के परिवार की वंशावली का प्रमाणपत्र जारी करने के लिए अभियोजित किया जा रहा है। इस प्रकार यह स्वीकृत अवस्था है कि उक्त प्रमाणपत्र याची द्वारा अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में जारी किया गया था। दिनांक 27.10.2010 को याची द्वारा दाखिल पूरक शपथ पत्र के परिशिष्ट–7 के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि याची को बिहार लोक सेवा आयोग की अनुशंसा पर राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया गया था। उक्त परिस्थिति के अधीन, याची को केवल राज्य सरकार द्वारा सेवा से हटाया जा सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 (1) का पठन निम्नलिखित है:–

> *U;k;kèkh'kk vkj ykd lodk dk vfHk;ktu-&(1) tc fdlh 0;fDr ij] tk U;k;kèkh'k ;k eftLVV ;k ,lk ykd lod g ;k Fkk ftl ljdkj }kjk ;k mldh etjh l gh mld in l gVk;k tk ldrk g@Fkk vU;Fkk ugh] fdlh ,l vijkèk dk vfHk;kx g ftld ckj e ;g vfHkdfFkr g fd og mld }kjk rc fd;k x;k Fkk tc og viu inh; drO; d fuogu e dk; dj jgk Fkk tc mldk ,lk dk; djuk rkRif;r Fkk] rc dkb Hkh U;k;ky; ,l vijkèk dk lKku&*

(a) ,l 0;fDr dh n'kk e] tk l?k d dk;dyki d lcèk e] ;FkkfLFkfr] fu;kftr g ;k vfHkdfFkr vijkèk fd, tku d le; fu;kftr Fkk] dUnh; ljdkj dh(

(b) ,l 0;fDr dh n'kk e] tk fdlh jkT; d dk;&dyki d lcèk e] ;FkkfLFkfr] fu;kftr g ;k vfHkdfFkr vijkèk fd, tku d le; fu;kftr Fkk] ml jkT; ljdkj dh] io etjh l gh djxk] vU;Fkk ugh(

*[ijUr tgk vfHkdfFkr vijkèk [kM (b) e fufn"V fdlh 0;fDr }kjk ml vofèk d nkjku fd;k x;k Fkk tc jkT; e lfoèkku d vuPNn 356 d [kM (1) d vèkhu dh xb mn?kk"k.kk çoÙk Fkh] ogk [kM (b) bl çdkj ykx gkxk] ekuk mle vku oky ^^jkT; ljdkj** in d LFkku ij ^^dUnh; ljdkj** in ij j[kk x;k gA]*

6. अत: पूर्वोक्त प्रावधान के मुताबिक, यदि सरकारी सेवक राज्य सरकार द्वारा सेवा से हटाए जाने के योग्य है, राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी के बिना कोई न्यायालय उसके विरुद्ध संज्ञान नहीं ले सकता है। स्वीकृत रूप से, इस मामले में राज्य सरकार द्वारा मंजूरी नहीं दी गयी है। अत: मैं निष्कर्षित करता हूँ कि आक्षेपित आदेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 (1) के उल्लंघन में पारित किया गया है और इसलिए इसे संपोषित नहीं किया जा सकता है।

7. तद्नुसार, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। आक्षेपित आदेश, जहाँ तक यह याची से संबंधित है, अभिखंडित किया जाता है।

---

ekuuh; ujn ukFk frokjh] U;k;efr

भोला कुमार झा

cuke

भारत संघ एवं अन्य

W.P.(S) No. 3199 of 2006. Decided on 29th July, 2011.

सीमा सुरक्षा बल नियमावली, 1969—नियम 25—शारीरिक अयोग्यता के आधार पर सेवा से निवृत्ति–आतंकियों के आक्रमण में दायीं आँख का नुकसान–मेडिकल बोर्ड ने याची को सिविल प्रकृति की सेवा के योग्य पाया–प्रासंगिक समय पर याची सिविल प्रकृति के पद पर पदस्थापित था और कर्तव्य का निर्वहन कर रहा था–नि:शक्तता अधिनियम के प्रावधानों से योधक कार्मिकों की समस्त श्रेणियों को निर्मुक्त/पूरी करती नि:शक्तता अधिनियम, 1955 के अधीन जारी अधिसूचना याची के मामले में प्रयोज्य नहीं है क्योंकि इसका भूतलक्षी प्रभाव नहीं है–याची की समयपूर्व सेवानिवृत्ति का अधिकथित आधार अनाघटित, अप्रासंगिक और स्व-पराजयी है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–याची पहले की तरह सिविल पद पर बना रहेगा।

(पैराएँ 6 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. S. N. Prasad, For the Petitioner; Mr. Prabhash Kumar, For the Respondents.

आदेश

इस रिट याचिका में, याची ने प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा जारी दिनांक 29 दिसंबर, 2004 के आदेश के अभिखंडन के लिए प्रार्थना की है, जिसके द्वारा याची को सीमा सुरक्षा बल नियमावली, 1969 के नियम 25 के तात्पर्यित प्रावधान के अधीन दिनांक 12 दिसंबर, 2004 के प्रभाव से शारीरिक अयोग्यता के

अभिकथित आधार पर सेवा से निवृत्त होने के लिए मजबूर किया गया है। याची सेवा में बने रहने और अपने कर्तव्य का निर्वहन करने की उसको अनुमति देने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश देने की प्रार्थना भी की है।

2. याची के अनुसार, उसने दिनांक 23.2.1988 को सीमा सुरक्षा बल की सेवाओं को ग्रहण किया था। सेवा के क्रम में, याची जम्मू एवं कश्मीर क्षेत्र में पदस्थापित था। जबकि दिनांक 29.6.1995 को याची कर्तव्य पर था, उसने आर्तकियों द्वारा हमले में बम विस्फोट से हुई उपहति प्राप्त किया था और अपनी दायीं आँख गवाँ बैठा था। उसे उपचार के लिए अस्पताल ले जाया गया था। उपचार के बाद, उसकी नि:शक्तता के निर्धारण के लिए मेडिकल बोर्ड गठित किया गया था। मेडिकल बोर्ड ने उसे 60% नि:शक्त पाया था। मेडिकल बोर्ड की उक्त नि:शक्तता रिपोर्ट की दृष्टि में याची को भारतीय तेल निगम में पुनर्वास प्रशिक्षण के लिए भेजा गया था। प्रशिक्षण के बाद, प्रत्यर्थी–प्राधिकारीगण ने दिनांक 8.8.1997 के आदेश के तहत मेडिकल आधार पर मुख्यालय में अथवा बी॰ एस॰ एफ॰ की बटालियन 9 में पदस्थापित किए जाने के लिए उसके नाम को अनुशंसित किया था।

3. याची के अनुरोध और उसकी नि:शक्तता पर विचार करते हुए, प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 10.1.1998 के आदेश द्वारा प्रशिक्षण केंद्र एवं विद्यालय, बी॰ एस॰ एफ॰, हजारीबाग में याची को पदस्थापित किया था। याची ने उक्त प्रशिक्षण केंद्र में पदग्रहण किया। तब उसे नि:शक्त बी॰ एस॰ एफ॰ कार्मिकों के लिए अभिप्रेत प्रशिक्षण के लिए भेजा गया था। याची ने प्रशिक्षण में भाग लिया और इसे सफलतापूर्वक पूरा किया। तब याची को प्रशिक्षण केंद्र एवं विद्यालय, बी॰ एस॰ एफ॰, हजारीबाग में अपना कर्तव्य स्थायी रूप से पुन: शुरू करने के लिए अग्रसर होने का निर्देश देते हुए दिनांक 31.7.2000 को मूवमेंट आर्डर दिया गया था। तद्नुसार, याची ने डी॰ आई॰ जी॰ एवं कमांडेंट, प्रशिक्षण केंद्र एवं विद्यालय, बी॰ एस॰ एफ॰, हजारीबाग के समक्ष अपना पदग्रहण किया था। उसका पदग्रहण स्वीकार किया गया था और उसे प्रशिक्षण केंद्र एवं विद्यालय, बी॰ एस॰ एफ॰, हजारीबाग के संसूचना अधिकारी के अधीन रिपोर्ट करने और काम करने का निर्देश दिया गया था। तद्नुसार, याची ने कर्तव्य के लिए रिपोर्ट किया था और तब से लगातार काम कर रहा था।

4. अचानक, इस आधार पर कि वह मेडिकल बोर्ड के मत में, बल में अपने कर्तव्य का निर्वहन करने के लिए शारीरिक रूप से योग्य नहीं था, पर दिनांक 31.12.2004 के प्रभाव से उसकी समयपूर्व सेवानिवृत्ति की सूचना देते हुए उस पर दिनांक 29 दिसंबर, 2004 का आक्षेपित आदेश तामील किया गया था।

5. याची की शिकायत यह है कि चूँकि उसके काम की प्रकृति योधक से अयोधक में प्रत्यर्थीगण द्वारा परिवर्तित कर दी गयी थी, उस आधार पर मेडिकल बोर्ड के मत के लिए और याची को सेवानिवृत्त होने के लिए मजबूर करने का अवसर नहीं था।

6. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि नि:शक्त सदस्य के अधिकार नि:शक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 (इसमें इसके बाद नि:शक्तता अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 47 के प्रावधानों के अधीन सुरक्षित किए गए है। निवेदन किया गया है कि उक्त विधिक प्रावधान पर विचार करते हुए याची का काम योधक कार्मिक से अयोधक कार्मिक में प्रत्यर्थीगण द्वारा परिवर्तित कर दिया गया था और, इस प्रकार, यह आधार कि वह बल में आगे सेवा के लिए सुयोग्य नहीं था, अप्रासंगिक और प्रत्यर्थीगण द्वारा अभिलेख पर लाए गए मेडिकल बोर्ड के निष्कर्ष (परिशिष्ट–C) के विपरीत है। उक्त मेडिकल रिपोर्ट के कॉलम 15 में स्पष्टत: उल्लिखित किया गया है कि याची सिविल सेवा के सुयोग्य है। इस प्रकार, याची को सेवानिवृत्त करने का अवसर नहीं था जो पहले से ही सिविल प्रकृति का काम कर रहा था।

7. याची के दावे का प्रतिवाद करते हुए प्रत्यर्थीगण की ओर से प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है। अन्य बातों के साथ साथ कथन किया गया है कि मेडिकल बोर्ड द्वारा याची का चिकित्सीय परीक्षण किया गया था और उसकी नि:शक्तता 70% निर्धारित की गयी थी। याची को बल में सेवा के लिए अयोग्य पाया गया था। यह कथन किया गया है कि याची नि:शक्तता अधिनियम की धारा 47 का लाभ पाने का हकदार नहीं है क्योंकि उक्त अधिनियम के प्रावधान से बी॰ एस॰ एफ॰ को छूट दिया गया है।

8. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और सामग्रियों का परीक्षण किया है।

9. दिनांक 10 सितंबर, 2002 के भारत के राजपत्र का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण मंत्रालय ने उक्त नि:शक्तता अधिनियम, 1995 के प्रावधान से योधक कार्मिकों की समस्त श्रेणियों को छूट देते हुए अधिसूचना जारी किया था।

10. किंतु, वर्तमान मामले में उक्त अधिसूचना से स्थिति नहीं बदलती है। उक्त अधिसूचना को जारी किए जाने के काफी पहले जनवरी, 2001 में याची को सिविल जॉब में शिफ्ट करके उक्त अधिनियम का लाभ दिया गया था। द्वितीयत:, उक्त छूट केवल योधक कार्मिकों के लिए है। अधिसूचना को भूतलक्षी प्रभाव से प्रभावी नहीं बनाया गया है और, इस प्रकार, यह याची के मामले में प्रयोज्य नहीं है जो अयोधक पद पर पदस्थापित था। प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रस्तुत मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट से स्पष्ट है कि बोर्ड ने याची को सिविल प्रकृति के काम के योग्य पाया है। प्रासंगिक समय पर याची सिविल प्रकृति के पद पर पदस्थापित था और कर्तव्य का निर्वहन कर रहा था। याची की समयपूर्व सेवानिवृत्ति का अभिकथित आधार प्रत्यर्थीगण के स्वयं अपने दस्तावेज के अनुसार, बेबुनियाद और अप्रासंगिक और आत्मपराजयी है।

11. उक्त की दृष्टि में, मैं याची को समयपूर्व सेवानिवृत्ति के लिए मजबूर करने के लिए दिनांक 29 दिसंबर, 2004 का आक्षेपित आदेश जारी करने का कोई विधिक आधार नहीं पाता हूँ।

12. परिणामस्वरुप, परिशिष्ट–10 में अंतर्विष्ट दिनांक 29 दिसंबर, 2004 का आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया जाता है। यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

13. प्रत्यर्थीगण ने याची को सिविल प्रकृति के पद, जिस पर वह उक्त आदेश के पहले काम कर रहा था, अथवा सिविल प्रकृति के किसी अन्य पद पर अपनी सेवा जारी रखने की अनुमति देने का निर्देश दिया है। चूँकि दिनांक 29 दिसंबर, 2004 का आक्षेपित आदेश अभिखंडित कर दिया गया है, याची मध्यवर्ती अवधि के वेतन और अन्य पारिणामिक लाभों का हकदार है। प्रत्यर्थीगण को इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से दो माह के भीतर याची को बकाया वेतन और अन्य ग्राह्य लाभों का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।

---

ekuuh; vkjh dh ejkfB;k] U;k;efr

ठाकुर टियू

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (SJ) No. 615 of 2002. Decided on 13th September, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 49 वर्ष 1996 में श्री अजित कुमार ठाकुर, तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 3 सितंबर, 2002 और दिनांक 5 सितंबर, 2002 के क्रमश: दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 376—बलात्संग–सात वर्षों का कठोर कारावास अधिनिर्णीत–मुख्य अभियोजन साक्षी पक्षद्रोही हो गया और सूचक का खंडन किया–डॉक्टर ने मत दिया कि पीड़िता के शरीर पर किसी उपहति की अनुपस्थिति इस तथ्य को सुझाती है कि वह सहमत पक्ष हो सकती है–अपीलार्थी संदेह का लाभ पाने का पात्र है क्योंकि अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध नहीं कर सका था–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s Ananda Sen, Nagmani Tiwari, For the Appellant; Miss. Anita Sinha, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 49 वर्ष 1996 में श्री अजित कुमार ठाकुर, तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, चाईबासा द्वारा क्रमशः दिनांक 3 सितंबर, 2002 और 5 सितंबर, 2002 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा एकमात्र अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अपराध करने का दोषी पाया गया है और तद्द्वारा सात वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि सूचक लक्ष्मी गंगराय ने दिनांक 13.12.1995 को सायं 5 बजे अपने घर पर पुलिस के समक्ष प्राथमिकी दर्ज कराया कि दिनांक 6.12.1995 को दोपहर लगभग 1 बजे दिन में जब वह अपने 'फुफु' सूरज मनि लगूरी (अ॰ सा॰ 6) के घर जा रही थी और टूंगरी जंगल के निकट पहुँची थी, अपीलार्थी उससे मिला, जिसने उसे पकड़ लिया और जमीन पर पटक दिया और उसके साथ बलात्संग किया। उसने लगातार इसका विरोध किया और अन्य को इसके बारे में बताने की धमकी दी पर अपीलार्थी नहीं रूका। बलात्संग करने के बाद उसने उसे 10/- रुपया दिया और किसी को घटना नहीं बताने को कहा। तब अपीलार्थी आधे रास्ते उसके साथ गया और फिर लौट गया।

सूचक अपने फुफु (अ॰ सा॰ 6) के घर गयी और उसे घटना के बारे में बताया। वह वहाँ दो दिन रही और शुक्रवार (दिनांक 8.12.1995) को दिन में 1 बजे अपने घर लौटी और जोबती माई (अ॰ सा॰ 2), जो सूचक के घर में काम करती थी, को घटना के बारे में बताया जिसने सूचक की माता मनि गगराय (अ॰ सा॰ 3) को घटना के बारे में बताया। घर लौटने के बाद, सूचक ने साबुन से अपने वस्त्र को धोया। घटना गाँव के मुंडा प्रताप गगराय (अ॰ सा॰ 4) को बतायी गयी थी जिसने अभियुक्त को पंचायती में उपस्थित होने की नोटिस दी किंतु इसमें उपस्थित नहीं हुआ और तब सूचक ने पुलिस को मामला बताया।

3. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री आनंद सेन ने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया और निवेदन किया कि अभियोजन अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध करने में विफल रहा है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अभिकथित घटना की तिथि और समय पर अपीलार्थी लगभग 18-19 वर्ष का मासूम नौजवान था और कि वह वर्ष 1995 से इस अभियोजन से पीड़ित रहा है और लगभग आठ माह की कुल अवधि तक जेल अभिरक्षा में बना रहा है।

4. दूसरी ओर, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ सुश्री अनिता सिन्हा ने आक्षेपित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश का समर्थन किया।

5. यह प्रतीत होता है कि अ॰ सा॰ 6 सूरज मनि लगूरी अर्थात् सूचक की फुआ पक्षद्रोही हो गयी है क्योंकि उसने स्पष्टतः कथन किया कि सूचक ने उसे घटना के बारे में नहीं बताया था यद्यपि वह उसके

घर आयी थी। प्राथमिकी लगभग एक सप्ताह बाद दर्ज की गयी थी। दिनांक 15.12.1995 अर्थात् अभिकथित घटना के लगभग नौ दिन बाद डॉक्टर द्वारा सूचक का परीक्षण किया गया था। डॉक्टर ने शरीर पर कोई उपहति नहीं पायी थी और बलात्संग का कोई सकारात्मक चिन्ह भी नहीं पाया था। डॉक्टर ने मत दिया कि सूचक 14 से 16 वर्ष के बीच की आयु की थी। डॉक्टर ने यह मत भी दिया कि पीड़िता के शरीर पर किसी भी उपहति की अनुपस्थिति इस तथ्य का द्योतक है कि वह सहमत पक्ष हो सकती है।

6. पक्षों को सुनने और अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के बाद, मेरे मत में, अपीलार्थी संदेह का लाभ पाने के योग्य है क्योंकि अभियोजन अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है जैसा ऊपर गौर किया गया है।

7. परिणामस्वरुप, अपील अनुज्ञात की जाती है। अपीलार्थी के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय और दंडादेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी, जो जमानत पर है, को उसके जमानत बंधपत्र के दायित्वों से उन्मोचित किया जाता है।

---

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

भव रंजन दास

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 3425 of 2010. Decided on 26th July, 2011.

सेवा विधि–नियमितिकरण–याची मंजूर किए गए और रिक्त पद पर 29 वर्षों से दैनिक वेतन पर कार्यरत है–तीन व्यक्ति, जो इसी प्रकार की स्थिति में थे और नियमितिकरण के प्रयोजन के लिए सूची में नीचे थे, को विभाग द्वारा नियमित/नियुक्त किया गया है–याची के दावा पर विचार नहीं करने का कोई कारण नहीं है–प्रत्यर्थीगण को याची के दावे पर विचार करने और समुचित आदेश पारित करने का निर्देश। (पैराएँ 3 से 7)

अधिवक्तागण.–Mr. D.K. Chakraborty, For the Petitioner; J.C. to S.C. (Mines), For the Respondents.

आदेश

इस रिट याचिका में कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग, बिहार सरकार (जैसा तब था) द्वारा दिनांक 18.6.1993 के मेमो सं॰ 5940 द्वारा जारी नीतिगत निर्णय के प्रकाश में याची की सेवाओं को नियमित करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश देने के लिए प्रार्थना की गयी है।

2. यह कथन किया गया है कि याची रुरल इंजीनियरिंग संगठन में मंजूर और रिक्त पद पर लगभग 20 वर्षों से दैनिक वेतन के आधार पर कार्यरत है। दैनिक वेतनभोगियों, जिन्होंने दिनांक 1.8.1985 से पहले 240 दिनों तक लगातार काम किया था, की सेवाओं को नियमित करने के लिए दिनांक 18.6.1993 के मेमो सं॰ 5940 के तहत कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग, बिहार सरकार द्वारा परिपत्र जारी किया गया था। याची ने दिनांक 1.8.1985 के पहले 240 दिनों से अधिक के लिए काम किया था। वह दिनांक 21.11.1981 से दैनिक मजदूरी के आधार पर कार्यरत रहा है। परिपत्र के अनुरुप विभाग द्वारा उस प्रयोजन से एक सूची तैयार की गयी थी, जिसमें याची का नाम, क्रमांक 2 पर था। इसी सूची में याची के नाम के नीचे क्रमांकों 3, 4 और 5 पर सुनील कुमार पोलाए, रामप्रवेश सिंह और शेषनाथ शुक्ला का नाम था। उक्त व्यक्तियों को दिनांक 28.1.2010 की मेमो सं॰ 55 द्वारा संसूचित कार्यालय आदेश सं॰ 01 दिनांक 28.1.2010

द्वारा विभाग द्वारा नियमित नियुक्त किया गया था किंतु याची के साथ भेदभाव किया गया था और उसे नियमित नहीं किया गया था। याची ने सचिव, ग्रामीण विकास विभाग, झारखंड सरकार के समक्ष अनेक अनुरोध किया और अभ्यावेदन दाखिल किया किंतु आज की तिथि तक कोई आदेश पारित नहीं किया गया है।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थीगण ने **सचिव, कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम उमा देवी एवं अन्य, (2006)4 SCC 1,** मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अभिवचन किया है किंतु उक्त निर्णय के पैराग्राफ 53 में यह स्पष्ट करते हुए कि ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ सम्यक् रूप से मंजूर और रिक्त पदों पर सम्यक् रूप से अर्हित व्यक्तियों की अनियमित नियुक्तियाँ (अवैध नियुक्तियाँ नहीं) किए गए हों और कर्मचारीगण न्यायालयों अथवा अधिकरणों के मध्यक्षेप के बिना दस वर्षों अथवा अधिक से काम कर रहे हों, ऐसे कर्मचारीगण की सेवाओं के नियमितिकरण के प्रश्न पर गुणागुणों पर विचार किया जा सकता है, सामान्य निर्देश से एक अपवाद काढ़ कर निकाला गया है। ऐसे मामलों में, भारत संघ/राज्य सरकारों को ऐसे नियुक्त व्यक्तियों, जो न्यायालयों अथवा अधिकरणों के किसी मध्यक्षेप के बिना सम्यक् रूप से मंजूर पदों पर दस वर्षों या अधिक से काम कर रहे हैं, की सेवाओं को नियमित करने के लिए कदम उठाने का निर्देश दिया गया था। चूँकि याची ने 29 वर्षों तक लम्बी अवधि के लिए काम किया है और ऐसे व्यक्तियों को नियमित करने के लिए प्रत्यर्थीगण का नीतिगत निर्णय था और तीन व्यक्तियों, जो नियमितिकरण के प्रयोजन से तैयार सूची में नीचे थे, को नियमित/नियुक्त किया गया है, अत: याची के नियमितिकरण/नियुक्ति से इनकार करने का वैध आधार नहीं है।

4. प्रत्यर्थीगण ने याची की प्रार्थना का विरोध किया है। अन्य बातों के साथ साथ उनके प्रति शपथपत्र में कथन किया गया है कि **''सचिव, कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम उमा देवी एवं अन्य (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में याची के दावे पर विचार नहीं किया जा सकता है। किंतु, याची का यह दावा कि वह मंजूर और रिक्त पद के विरुद्ध 29 वर्षों से लगातार काम कर रहा है, प्रत्यर्थीगण द्वारा इनकार नहीं किया गया है। उन्होंने उन व्यक्तियों की नियुक्तियों से भी इनकार नहीं किया है जिनके नाम नियमितिकरण के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा तैयार सूची में याची के नीचे थे।

5. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इस विधिक अवस्था से भी इनकार नहीं किया है कि **सचिव, कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम उमा देवी एवं अन्य (ऊपर)** में निर्णय के पैराग्राफ 53 में सामान्य नियम से अपवाद किया गया है। प्रत्यर्थीगण ने इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया है कि तीन व्यक्तियों, जो इसी प्रकार की स्थिति में थे और नियमितिकरण के प्रयोजन से तैयार सूची में नीचे थे, को विभाग द्वारा नियमित/नियुक्ति किया गया है।

6. उक्त की दृष्टि में, मैं याची के दावे पर विचार नहीं करने और अन्य व्यक्तियों, जिनके नाम क्रमांक 3, 4 और 5 पर सूची में इससे नीचे थे और जिन्हें उमा देवी के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद नियमित/नियुक्त किया गया है, के साथ उसको बराबर रूप से बर्ताव नहीं करने का कोई न्यायोचित कारण नहीं पाता हूँ।

7. उक्त पर विचार करते हुए, यह रिट याचिका प्रत्यर्थीगण को उक्त उल्लिखित नीतिगत निर्णय और याची को अधिक्रांत करते उसी सूची (परिशिष्ट–3) में से व्यक्तियों की सेवाओं के नियमितिकरण के अपने पूर्व आदेश को विचार में लेते हुए याची के दावे पर विचार करने और समुचित आदेश पारित करने का निर्देश देते हुए निपटायी जाती है। प्रत्यर्थीगण इस आदेश की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से दो माह के भीतर अंतिम आदेश पारित करेंगे।

ekuuh; çdk'k rkfr;k] dk;dkjh e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

एडवोकेट एसोसिएशन

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (PIL) No. 2211 of 2010. Decided on 12th September, 2011.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—जनहित याचिका–उच्च न्यायालय के लिए नए भवन के निर्माण का विवाद्यक–उच्च न्यायालय के स्पष्ट निर्देश के बावजूद राज्य द्वारा प्रोजेक्टों के संबंध में कोई सामग्री नहीं दी गयी–राज्य सरकार उच्च न्यायालय के भवन के निर्माण को राज्य सरकार के अन्य भवनों के निर्माण के साथ नहीं जोड़ सकती है जिनके लिए योजना बनानी होगी–राज्य को उच्च न्यायालय के भवन के लिए पृथक रूप से भूमि की पहचान करने और दिनांक 17.10.2011 तक अथवा इसके पहले उच्च न्यायालय को सौंपने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 3 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Shekhar Sinha, For the Petitioner; Mr. A.K. Sinha, For the Respondents.

आदेश

बहुत पहले दिनांक 17 मई, 2010 को इस न्यायालय की खंडपीठ ने महाधिवक्ता को यह बताने का निर्देश दिया था कि क्यों उच्च न्यायालय के नए भवन के प्रयोजन से 300 एकड़ भूमि देने के लिए राज्य सरकार से बयान आने के बावजूद आज की तिथि तक कुछ भी नहीं किया गया है। यह इंगित करते हुए कि पृथक राज्य के रूप में झारखंड राज्य के सृजन के पहले सरकारों, चाहे वह बिहार सरकार हो या केंद्र सरकार, द्वारा विचार किया जाना था कि किस प्रकार झारखंड राज्य सृजित किया जाएगा और झारखंड राज्य के सृजन की वित्तीय विवक्षा क्या होगी, दिनांक 18 मई, 2011 को इस न्यायालय द्वारा विस्तृत आदेश पारित किया गया था। हमारे पास विश्वास करने का कारण है कि गरीबी रेखा के नीचे विशाल जनसंख्या के साथ अनुसूचित जातियों के सदस्यों और अनेक आदिवासियों की विशाल जनसंख्या अंतर्विष्ट करने की इसकी विचित्र स्थिति के कारण झारखंड राज्य सृजित किया गया था। अतः, हम विश्वास कर सकते हैं कि झारखंड राज्य के संपूर्ण विकास के लिए केंद्र सरकार से कुछ विनिर्दिष्ट पैकेज और मदद होनी ही चाहिए। यदि ऐसा नहीं है, तब हम जानना चाहेंगे कि झारखंड के नए राज्य के सृजन का लक्ष्य और उद्देश्य क्या था।

2. हम इस तथ्य के प्रति जागरुक हैं कि मुंसिफ के न्यायालय का निर्माण भी वित्तीय विवक्षा को जाने बिना नहीं किया जा सकता है, अतः, इसका अपना विधान सभा और सचिवालय एवं अन्य सरकारी भवनों और उच्च न्यायालय के भवन होने के स्वाभाविक परिणामों को जाने बिना झारखंड राज्य सृजित नहीं किया गया था और इसलिए, दिनांक 18 मई, 2011 को विस्तृत आदेश पारित किया गया था। तब दिनांक 20 जून, 2011 को और तत्पश्चात दिनांक 13 जुलाई, 2011 को हमने आदेशों को पारित किया कि राज्य सरकार को प्रोजेक्टों के संबंध में पर्याप्त सामग्रियाँ देनी होगी। जिन्हें झारखंड के नए राज्य के निर्माण का मिशन शुरु करते हुए विचार में लिया गया होगा। किंतु, आज के दिन तक कोई सामग्री उपलब्ध नहीं करायी गयी है।

3. जैसा पहले ही गौर किया गया है, दो वर्ष से अधिक बीत चुके हैं जब राज्य को बयान देने के लिए निर्देश दिया गया था कि उच्च न्यायालय के लिए 300 एकड़ भूमि देने के लिए राज्य सरकार द्वारा

क्या किया गया है और यद्यपि राज्य सरकार की ओर से आश्वासन दिया गया था कि उच्च न्यायालय को भूमि दी जाएगी और इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय को भूमि सौंपने के लिए दिनांक 20 जून, 2011 तक की समय सीमा नियत किया था, पर आज विद्वान महाधिवक्ता ने निवेदन किया कि एच॰ ई॰ सी॰ से अर्जित भूमि के भीतर विधान सभा भवन, सचिवालय भवन और उच्च न्यायालय भवन के लिए विस्तृत प्रोजेक्ट तैयार करने के लिए राज्य सरकार ने एक एजेंसी को काम पर लगाया था और इसके लिए एजेंसी को छह माह का समय दिया गया है।

4. हम ऊपर निर्दिष्ट तथ्यों की पृष्ठभूमि और आलोक में आज राज्य सरकार द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की सराहना नहीं कर सकते हैं जो स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि न्यायालय ने काफी पहले मई, 2010 में ही उच्च न्यायालय को भूमि सौंपने का मामला लिया है और एक वर्ष से अधिक समय पहले ही बीत चुका है। केवल यही नहीं, 20 जून, 2011 की समय सीमा नियत करने के बाद भी कुछ भी ठोस नहीं किया गया है। हम विधानसभा और सचिवालय भवन, आदि के निर्माण जैसे अन्य मामलों के साथ उच्च न्यायालय भवन के निर्माण का प्रोजेक्ट सम्मिलित करने का कोई न्यायोचित कारण नहीं पाते हैं और उन संरचनाओं को पूरा किए जाने तक न्यायपालिका द्वारा प्रतीक्षा करने का कोई कारण नहीं है ताकि उच्च न्यायालय के लिए भूमि पायी जा सके। स्वयं राज्य सरकार ने विधान सभा, सचिवालय और अन्य सरकारी भवनों के निर्माण के लिए कोई कार्रवाई नहीं किया है। इस आधार पर, राज्य सरकार उच्च न्यायालय भवन के निर्माण को राज्य सरकार के अन्य भवनों के निर्माण के साथ नहीं जोड़ सकती है जिसके लिए योजना बनानी होगी, जिसका अभी तक अता–पता नहीं है।

5. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया है कि उनकी जानकारी के मुताबिक काफी पहले, संभवत: 7-8 वर्ष पहले झारखंड राज्य के नए राजधानी शहर की परिकल्पना भी की गयी थी और उस प्रयोजन से प्रासंगिक व्यक्तियों द्वारा जनता से इसका श्रेय लेना इप्सित किया गया किंतु प्रचार करने के अलावा कुछ भी नहीं किया गया है।

6. उक्त कारणों की दृष्टि में और उक्त अनुभव की दृष्टि में हम राज्य सरकार को दिनांक 17 अक्टूबर, 2011 को अथवा इसके पहले उच्च न्यायालय के लिए भूमि पृथक रूप से पहचानने और इसे उच्च न्यायालय को सौंपने का निर्देश देते हैं। हम यह स्पष्ट करते हैं कि राज्य सरकार से भूमि की पहचान करने की अपेक्षा की जाती है और उच्च न्यायालय ने पहले ही आवश्यक भूमि का प्रस्ताव दिया है, जिसमें घटकों की संख्या सम्मिलित नहीं की गयी है और उच्च न्यायालय की न्यूनतम भूमि की रूपरेखा दी गयी है।

7. उक्त कारणों की दृष्टि में, राज्य को इस आदेश का अनुपालन करना होगा और राज्य की राजधानी की हैसियत रखने के लिए राँची शहर के निर्माण के लिए सरकार द्वारा किए गए वित्तीय निर्धारण के संबंध में विस्तृत विवरण भी देना होगा। राज्य ऊपर निर्दिष्ट प्रासंगिक निर्माणों के लिए योजना व्यय और गैर–योजना व्यय में निधियों के आवंटन को मोटे तौर पर उपदर्शित कर सकता है जिसके लिए केंद्र सरकार और राज्य सरकार योगदान देंगे ताकि राज्य सरकार द्वारा भी मामले का परीक्षण किया जा सके कि क्या राज्य को राज्य के अधिकार के मुताबिक निधि मिली है और विगतकाल में उपयोग में लाई गयी है और यदि केंद्र सरकार से निधि अब तक प्राप्त नहीं की गयी है, वे केंद्र सरकार से निधि प्राप्त करने के लिए कार्रवाई कर सकते हैं और झारखंड राज्य के विकास के लिए और राँची शहर को झारखंड राज्य की राजधानी बनाने के लिए अपना योगदान दे सकते हैं। उक्त विशिष्टियों, विवरणों और तथ्यों को दिनांक 20 अक्टूबर, 2011 को अथवा इसके पहले इस न्यायालय को दिया जा सकता है और राज्य को उच्च न्यायालय के परिशीलन के लिए अपना अभिलेख रखने की स्वतंत्रता होगी, यदि यह अभिलेख प्रस्तुत करने में कोई मुश्किल पाती है।

8. इस मामले को दिनांक 20 अक्टूबर, 2011 को रखा जाय।

9. इस आदेश की प्रति विद्वान न्यायमित्र और विद्वान महाधिवक्ता को कल तक दी जाय।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efrx.k

हर्षवर्द्धन एस॰ सैनी

cuke

बिरला इंस्टिच्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी

L.P.A. No. 0267 of 2011. Decided on 30th August, 2011.

शैक्षणिक विधि–प्रवेश–बी॰ ए॰ पाठ्यक्रम में अनंतिम प्रवेश का रद्दकरण–अपीलार्थी को AIEEE के नियमों और सन्नियमों के विरुद्ध प्रवेश का दावा करने का विधिक अधिकार नहीं है–केवल इसलिए कि गणित की परीक्षा में उत्तीर्णता के अध्यधीन उसे अनंतिम प्रवेश दिया गया था, वह प्रवेश का दावा नहीं कर सकता है–आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप का कोई आधार नहीं–अपील खारिज। (पैराएँ 4 से 6)

अधिवक्तागण.–Mrs. Anjana Sahni, For the Appellant; Mr. Rohit Roy, For the Respondents.

आदेश

यह इंट्रा कोर्ट अपील अपीलार्थी की ओर से दाखिल रिट याचिका को खारिज करते हुए डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 4462 वर्ष 2010 में पारित दिनांक 4.8.2011 के आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्रीमती अंजना साहनी ने निवेदन किया कि अपीलार्थी ने बैचलर ऑफ आर्किटेक्चर में प्रवेश के लिए मापदंड परिपूर्ण किया था और इसलिए, उसका अनंतिम प्रवेश रद्द नहीं किया जाना चाहिए था और गणित विषय में उसके उत्तीर्ण होने के बाद उसे अपना अध्ययन जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए थी। अपीलार्थी प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ और इसलिए, उसे अनंतिम प्रवेश दिया गया था और गणित विषय में उत्तीर्ण होने की अनुमति दी गयी थी। उन्होंने आगे निवेदन किया कि नेशनल इंस्टिच्यूट ऑफ ओपेन स्कूलिंग (एन॰ आई॰ ओ॰ एस॰) से ऐसे विषय में उत्तीर्ण होना सेंट्रल बोर्ड ऑफ सेकेन्डरी एजुकेशन (सी॰ बी॰ एस॰ ई॰) से उत्तीर्ण होने के समतुल्य है।

3. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है।

4. यह निवेदन किया गया था कि अपीलार्थी को नियमों के निबंधनानुसार अनंतिम प्रवेश दिया गया था। यह इंगित किया गया है कि प्रवेश परीक्षा में उसने पेपर-I भौतिकी, रसायन एवं गणित में 32 अंक और विषय-II गणित, एप्टिच्यूड टेस्ट और ड्राइंग में 217 अंक पाया। आगे निवेदन किया गया है कि यद्यपि इसे अपीलार्थी द्वारा प्रकट नहीं किया गया था किंतु जाँच करने पर पाया गया था कि वह सी॰ बी॰ एस॰ ई॰ द्वारा ली गयी कंपार्टमेंटल गणित परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहा और तब वह एन॰ आई॰ ओ॰ एस॰ की गणित परीक्षा में उपस्थित हुआ। यह निवेदन भी किया गया है कि एन॰ आई॰ ओ॰ एस॰ का प्रमाण पत्र परिशिष्ट-9 यह दर्शाते हुए कि उसने गणित में 37 अंक प्राप्त किया था और यह उत्तीर्णता का प्रमाण पत्र नहीं है, अपीलार्थी द्वारा प्राप्त किए गए अंक की घोषणा मात्र है। आगे निवेदन किया गया है कि नियम

1.6 (v) 'अर्हक परीक्षा' को परिभाषित करता है जिसका अर्थ है ''परीक्षा जिसके परिणाम पर उम्मीदवार ऑल इंडिया इंजीनियरिंग/आर्किटेक्चर एंट्रेंस एक्जामिनेशन में प्रवेश के लिए आवेदन देने का पात्र बन जाता है'' और परिशिष्ट-VIII के खंड (VI) में अर्हक परीक्षा की सूची दी गयी है:–''न्यूनतम पाँच विषयों के साथ नेशनल ओपेन स्कूल द्वारा संचालित सीनियर सेकेन्डरी स्कूल परीक्षा में पास ग्रेड''। अत:, निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी को दिया गया अनंतिम प्रवेश सही प्रकार से दिनांक 6.1.2010 को रद्द कर दिया गया था।

5. अपीलार्थी ए॰ आई॰ ई॰ ई॰ ई॰ (ऑल इंडिया इंजिनियरिंग एंट्रेंस एक्जामिनेशन) के नियमों और सन्नियमों के विरुद्ध प्रवेश का दावा नहीं कर सकता है। केवल इसलिए कि उसे गणित परीक्षा में उत्तीर्णता के अध्यधीन अनंतिम प्रवेश दिया गया था, वह दावा नहीं कर सकता है कि उसे प्रवेश दिया जाना चाहिए। अपीलार्थी द्वारा संलग्न ''अंकों के विवरण'' से प्रतीत होता है कि उसने गणित में 37 अंक प्राप्त किया था। इसके अतिरिक्त, उसके अनंतिम प्रवेश को रद्द करने में प्रत्यर्थीगण की ओर से कोई मनमानापन अथवा असद्भाव नहीं है। आगे प्रतीत होता है कि अनंतिम प्रवेश दिनांक 6.1.2010 को ही रद्द कर दिया गया था। तब अपीलार्थी ने दिनांक 30.1.2010 के पत्र द्वारा अपना अध्ययन जारी रखने की अनुमति उसे देने के लिए अनुरोध किया किंतु तुरन्त बाद दिनांक 1.2.2010 को उसके पिता द्वारा एक अन्य पत्र लिखा गया था कि अपीलार्थी खराब स्वास्थ्य के कारण अपना अध्ययन जारी नहीं रख सकता था और उसे आराम की और पर्यवेक्षण के अधीन निरंतर दवा की आवश्यकता है। अत: उसके नियमित अध्ययन से जुलाई, 2010 में अगले सत्र तक अस्थायी रूप से वापस लेने का अनुरोध किया गया था।

6. पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने के बाद और विभिन्न पहलूओं पर मामले पर विचार करने पर हमारे मत में डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 4462 वर्ष 2010 में पारित दिनांक 4.8.2011 के आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार बनाया नहीं गया है। तद्नुसार यह अपील खारिज की जाती है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] dk;dkjh e[; U;k;kèkh'k

बिनोद कुमार उर्फ बिनोद कुमार भगत

cuke

सुरेश कुमार गडोडिया एवं एक अन्य

Arbitration Application No.1 of 2010. Decided on 12th September, 2011.

माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996—धारा 8—परिसीमा अधिनियम, 1963—धारा 14—मध्यस्थ की नियुक्ति–मध्यस्थ के पास जाने के निर्देश के साथ विचारण न्यायालय द्वारा वाद खारिज–दस व्यक्तियों द्वारा नोटिस दिया गया था और वाद केवल याची द्वारा दाखिल किया गया था–मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए शेष नौ व्यक्तियों द्वारा दी गयी नोटिस को धारा 11 के अधीन नोटिस के रूप में नहीं माना जा सकता है–इसके अतिरिक्त, याची साढ़े तीन वर्ष के विलंब के बाद उच्च न्यायालय के पास गया–आवेदन परिसीमा द्वारा वर्जित है और खारिज किया जाता है। (पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.–M/s Manoj Tandon, Rupesh Kumar, For the Petitioner; Mr. Sumit Gadodia, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–यह आवेदन माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11(5) के अधीन दाखिल किया गया है। याची का प्रतिवाद है कि दिनांक 7 जून, 1992 को याची और प्रत्यर्थी सं॰ 1 तथा 2 के

बीच भागीदारी विलेख निष्पादित किया गया था। तत्पश्चात, दिनांक 28 मार्च, 2001 को एक नया भागीदारी विलेख निष्पादित किया गया था और याची दिनांक 1.4.2001 को सेवानिवृत्त हो गया था। तत्पश्चात, विवाद के कारण याची ने वर्ष 2004 में सिविल न्यायालय के समक्ष अभिधान वाद सं॰ 44 वर्ष 2004 दाखिल किया। उक्त वाद में, प्रत्यर्थीगण ने माध्यस्थम एवं सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 8 के अधीन आपत्ति उठायी थी और उसमें कथन किया कि माध्यस्थम खंड की दृष्टि में, वादी द्वारा वाद जारी नहीं रखा जा सकता है। प्रत्यर्थीगण की आपत्ति सिविल न्यायालय द्वारा दिनांक 5 दिसंबर, 2006 के आदेश के तहत स्वीकार की गयी थी और पक्षों को मध्यस्थ के पास जाने का निर्देश दिया गया था।

2. याची के अनुसार, उसने प्रस्तावित मध्यस्थ के लिए प्रत्यर्थीगण को दिनांक 18 मार्च, 2008 को नोटिस दिया किंतु प्रत्यर्थीगण ने उक्त नोटिस का उत्तर नहीं दिया और, इसलिए, याची ने दिनांक 1 फरवरी, 2010 को इस न्यायालय में इस माध्यस्थम आवेदन को दाखिल किया है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, इस तथ्य की दृष्टि में कि दिनांक 7 जून, 1992 के भागीदारी विलेख में माध्यस्थम का खंड है और याची ने परिसीमा की अवधि के भीतर वाद दाखिल किया जहाँ प्रत्यर्थीगण की आपत्ति सिविल न्यायालय द्वारा स्वीकार की गयी थी और उसकी दृष्टि में पक्षों को मध्यस्थ से निर्णय प्राप्त करना चाहिए था। सिविल न्यायालय के निर्देश का अनुसरण करते हुए उसने प्रत्यर्थीगण पर नोटिस तामील किया और स्वीकृत रूप से प्रत्यर्थीगण आवेदक द्वारा सुझाए गए नाम से सहमत नहीं हुए, और इसलिए, न्यायालय माध्यस्थम एवं सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (5) के अधीन मध्यस्थ नियुक्त कर सकता है।

4. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि स्वीकृत रूप से याची ने सिविल न्यायालय के समक्ष वाद दाखिल किया था जिसमें विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थीगण की आपत्ति को स्वीकार किया और दिनांक 5 दिसंबर, 2006 को याची का वाद खारिज कर दिया जबकि मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए यह आवेदन इस न्यायालय में दिनांक 1 फरवरी, 2010 को दाखिल किया गया है। प्रथमतः, याची का दावा समय द्वारा वर्जित है क्योंकि याची दिनांक 1 फरवरी, 2010 को इस न्यायालय के पास आया। यदि भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के अधीन याची को कोई लाभ दिया भी जाय, तब भी उसने उक्त अधिनियम की धारा 14 के अधीन कोई आवेदन नहीं दिया है। यदि उक्त अधिनियम की धारा 14 के अधीन कोई लाभ याची को दिया भी जाता है, तब भी वह सिविल न्यायालय में कार्यवाही करने में लगे समय के लिए दिया जा सकता है और याची ने परिसीमा की अवधि के अवसान के ठीक पहले वाद दाखिल किया और उसका वाद दिनांक 5 दिसंबर, 2006 को खारिज कर दिया गया था और तत्पश्चात उसने वर्ष 2010 में मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए इस न्यायालय के समक्ष आवेदन दाखिल किया था। अतः, यदि उस अवधि की भी गणना की जाय। तब भी उसका आवेदन समय द्वारा वर्जित है। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि याची द्वारा अभिकथित रूप से दिया गया नोटिस प्रत्यर्थीगण द्वारा कभी नहीं प्राप्त किया गया था। यह निवेदन भी किया गया है कि वाद केवल याची द्वारा दाखिल किया गया था किंतु नोटिस दस व्यक्तियों की ओर से दिया गया था जो पूर्णतः गैर-कानूनी और अवैध नोटिस है और, इसलिए, स्वयं याची द्वारा अभिवचन किए गए तथ्यों से, यह स्पष्ट है कि याची द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए कोई वैध नोटिस नहीं दिया गया था।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि दस व्यक्तियों की ओर से नोटिस दिया गया था, तब व्यक्तियों में से एक मध्यस्थ की नियुक्ति इप्सित करने वाला आवेदक याची है। किंतु, याची के विद्वान अधिवक्ता ने स्वीकार किया कि नोटिस (परिशिष्ट-4) में नामित व्यक्ति में से क्रमांक 2 से 10 तक फर्म के भागीदार नहीं थे जिसके लिए दिनांक 7 जून, 1992 और दिनांक 28 मार्च, 2001 को भागीदारी विलेख निष्पादित किया गया था।

6. पूर्वोक्त की दृष्टि में, यह स्पष्ट है कि दिनांक 7 जून, 1992 को याची और प्रत्यर्थी सं॰ 1 और 2 के बीच भागीदारी विलेख निष्पादित किया गया था। तब दिनांक 28 मार्च, 2001 को एक नया भागीदारी विलेख निष्पादित किया गया था और याची दिनांक 1.4.2001 को सेवानिवृत्त हो गया। तत्पश्चात याची ने अभिधान वाद सं॰ 44 वर्ष 2004 दाखिल किया जिसमें दिनांक 5 दिसंबर, 2006 के आदेश के तहत प्रत्यर्थीगण का आवेदन अनुज्ञात किया गया था। याची ने प्रत्यर्थीगण के ऊपर नोटिस के तामील के प्रमाण में, किसी निजी कूरियर द्वारा दी गयी रसीद को अभिलेख पर यह उपदर्शित करने के लिए प्रस्तुत किया है कि याची द्वारा कुछ मामला प्रत्यर्थीगण को भेजा गया था किंतु जहाँ तक रसीद का संबंध है, यह अभिलेख में नहीं है। नोटिस (परिशिष्ट-4) से भी यह स्पष्ट है कि नोटिस दस व्यक्तियों द्वारा दिया गया था और स्वीकृत रूप से वाद केवल याची द्वारा दाखिल किया गया है न कि शेष व्यक्तियों द्वारा। अतः, शेष नौ व्यक्तियों द्वारा दी गयी नोटिस को मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए माध्यस्थम एवं सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11 के अधीन दिए गए नोटिस के रूप में नहीं माना जा सकता है क्योंकि प्रत्यर्थीगण द्वारा इस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती थी और स्वीकार नहीं किया जा सकता था और याची तत्पश्चात अर्थात् नोटिस की अभिकथित तिथि के दो वर्ष बाद इस न्यायालय के पास आया।

7. उक्त कारणों की दृष्टि में, याची एक ऐसे मामले में परिसीमा की अवधि स्पष्ट करने में विफल रहा जहाँ उसे दिनांक 5 दिसंबर, 2006 के आदेश के तहत मध्यस्थ के समक्ष निर्दिष्ट किया गया था और वह लगभग साढ़े तीन वर्षों के विलंब के बाद दिनांक 1 फरवरी, 2010 को इस न्यायालय के पास आया है।

8. उक्त कारणों की दृष्टि में, आवेदन को परिसीमा द्वारा वर्जित अभिनिर्धारित किया जाता है और परिणामस्वरुप इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjî dñ ejkfB;k] U;k;efr

बैजनाथ सोनार एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal No. 758 of 2002. Decided on 15th September, 2011.

सत्र केस सं॰ 335 वर्ष 1988 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय सं॰ III, गढ़वा द्वारा पारित दिनांक 9.10.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 326 एवं 323—घोर उपहति–दोषसिद्धि–खेत जोतने पर विवाद–पक्षों के बीच दीर्घकालीन मुकदमा–अन्य उपहतियों के अतिरिक्त सूचक के मस्तक पर घोर उपहति पायी गयी दोषसिद्धि अभिपुष्ट–मामला वर्ष 1987 का है और अपीलार्थीगण वृद्ध हैं–उनको जेल भेजने से कोई प्रयोजन पूरा नहीं होगा–जुर्माना का अधिरोपण न्याय के उद्देश्य को पूरा करेगा–दंडादेश प्रत्येक को 5000/- रुपयों के जुर्माना में परिवर्तित किया गया।

(पैराएँ 5 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. J.P. Pandey, For the Appellants; Mr. D.K. Prasad, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र केस सं॰ 335 वर्ष 1988 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट सं॰ III, गढ़वा द्वारा पारित दिनांक 9.10.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध

दाखिल की गयी है जिसके द्वारा अपीलार्थीगण बैजनाथ सोनार, सरजू सोनार और राजेन्द्र सोनार को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 326 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और उन्हें तीन वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है, जबकि अपीलार्थी सुरेन्द्र सोनार को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और छह माह का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि दिनांक 29.7.1987 को प्रातः लगभग 10.45 बजे सूचक बैकुंठ चौबे द्वारा फर्दबयान दर्ज किया गया था कि जब वह अपने खेत में गया, उसने अपीलार्थीगण को इसे जोतते हुए पाया। प्रश्नगत भूमि के संबंध में मुकदमा था और अभियोजन पक्ष के पास उनके पक्ष में कमिश्नर, राँची के न्यायालय से डिक्री थी और मांग भी व्यवस्थापित कर दी गयी थी। सूचक अपने भाई हीराचंद चौबे के साथ खेत में गया और अभियुक्तगण से इसे नहीं जोतने को कहा। अचानक अपीलार्थीगण बैजनाथ सोनार और सरजू सोनार और एक अभियुक्त रामसूरत सोनार (अब मृत) ने पास पड़े गड़ाँसे से खून बहती उपहति कारित करते हुए उसके मस्तक पर वार किया। अपीलार्थीगण राजेन्द्र सोनार और सुरेन्द्र सोनार लाठी से लैस होकर वहाँ आए और उसके बाएँ हाथ पर प्रहार किया। जब हीराचंद चौबे ने उसे बचाने का प्रयास किया, अपीलार्थी सरजू सोनार ने गड़ाँसे से उसके मस्तक के दाएँ भाग पर प्रहार किया। सुरेन्द्र सोनार ने लाठी से उसके बायें हाथ पर वार किया। सूचक पक्ष द्वारा हल्ला करने पर सह ग्रामीण धीरेन्द्र चौबे वहाँ आया और घटना को देखा।

3. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री जे॰ पी॰ पांडे ने निवेदन किया कि पक्षों के बीच भूमि विवाद था और मामला एवं प्रति मामला था और कि अभियोजन ने समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध नहीं किया है।

4. दूसरी ओर, विद्वान राज्य अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

5. पक्षों को सुनने और अभिलेखों का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के बाद, यह प्रतीत होता है कि अभियोजन ने सिद्ध करने का प्रयास किया कि अभियुक्तगण हमलावर थे। विद्वान विचारण न्यायालय ने अन्य बातों के साथ साथ अभिनिर्धारित किया कि यह घोषित करना संभव नहीं था कि कौन सा पक्ष प्रश्नगत भूमि पर वास्तविक रूप से काबिज था और कि वर्ष 1980 से उनके बीच दीर्घकालीन मुकदमा था और कि दांडिक अधिकारिता में सिविल विवाद विनिश्चित नहीं किया जा सकता है। यह सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया गया है कि अपीलार्थी बैजनाथ सोनार और अभियुक्त रामसूरत सोनार (अब मृत) ने सूचक बैकुंठ चौबे के मस्तक पर गड़ाँसा से प्रहार किया। अपीलार्थी सरजू सोनार ने हीराचंद चौबे के मस्तक पर गड़ाँसा से प्रहार किया। अपीलार्थीगण राजेन्द्र सोनार और सुरेन्द्र सोनार ने सूचक के दोनो पुत्रों मनोज कुमार चौबे (अ॰ सा॰ 3) और अनुज कुमार चौबे (अ॰ सा॰ 4) पर लाठी से प्रहार किया। डॉक्टर ने अन्य उपहतियों के अतिरिक्त सूचक बैकुंठ चौबे के मस्तक पर घोर उपहति पाया था। उसने हीराचंद चौबे पर अन्य उपहतियों के अतिरिक्त उसके दायें अलना पर फ्रैक्चर उपहति और स्काल्प पर विदीर्ण जख्म भी पाया था। सूचक बैकुंठ चौबे और हीराचंद चौबे पर पायी गयी उपहति सं॰ 1 गंभीर थी जबकि अन्य सामान्य प्रकृति की थी। मनोज कुमार चौबे (अ॰ सा॰ 3) और अनुज कुमार चौबे (अ॰ सा॰ 4) पर पायी गयी उपहतियाँ सामान्य प्रकृति की थी। पक्षों के परस्पर मामलों और अभिलेख पर लाए गए सामग्रियों पर विचार करने के बाद, विद्वान विचारण न्यायालय ने सही प्रकार से भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 326 और 323 के अधीन अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया।

6. मैं दोषसिद्धि के निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाता हूँ।

7. जहाँ तक दंडादेश का संबंध है, यह प्रतीत होता है कि मामला वर्ष 1987 का है और अपीलार्थी सं॰ 1 बैजनाथ सोनार अब 84 वर्ष की आयु का होगा, अपीलार्थी सं॰ 2 सरजू सोनार अब 79 वर्ष की आयु का होगा, अपीलार्थी सं॰ 3 राजेन्द्र सोनार अब 61 वर्ष की आयु का होगा और अपीलार्थी सं॰ 4 सुरेन्द्र सोनार जिसे छह माह का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था अब 49 वर्ष की आयु का होगा। पक्षों के बीच भूमि विवाद था। यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थीगण लगभग एक पखवारे की संक्षिप्त अवधि के लिए कारा में हैं किंतु इस मामले में उनको जेल भेजने से कोई लाभदायी प्रयोजन पूरा नहीं होगा। मेरे मत में, जुर्माना का अधिरोपण न्याय के उद्देश्य को पूरा करेगा।

8. तद्नुसार, दंडादेश प्रत्येक को 5000/- रुपयों के जुर्माना में परिवर्तित किया जाता है। अपीलार्थीगण को आज के दिन से छह सप्ताह के भीतर विचारण न्यायालय में जुर्माना की राशि जमा करने का निर्देश दिया जाता है। यदि एक अथवा अन्य अपीलार्थीगण जुर्माना की राशि जमा करने में विफल रहता है, उसे तीन माह का सामान्य कारावास भुगतना होगा। यदि जुर्माना की राशि जमा कर दी जाती है, विचारण न्यायालय अपीलार्थीगण को जमानत बंधपत्रों से उन्मोचित करेगा और सूचक/उसके परिवार के सदस्यों को नोटिस जारी करेगा जो जुर्माना की राशि को लेने के लिए स्वतंत्र होंगे।

9. दंडादेश में इस परिवर्तन के साथ यह अपील खारिज की जाती है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy] U;k;efr

छंदा घोष

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 4778 of 2009. Decided on 3rd August, 2011.

सेवा विधि–सेवा समाप्ति–परिवीक्षा के दौरान महिला कांस्टेबल की सेवा समाप्ति–झारखंड पुलिस मैनुअल, 2000 के नियम 668 के अधीन कोई जाँच किए बिना परिवीक्षाधीन व्यक्ति की सेवा की समाप्ति अनुज्ञेय है–किंतु जब सेवा समाप्ति दंडात्मक प्रकृति की है, तब जाँच आवश्यक है–जब एक बार इस तथ्य कि याची परिवीक्षाधीन है या नहीं, को ध्यान में लिए बिना सेवा की समाप्ति के जरिए याची के विरुद्ध दंडात्मक आदेश पारित किया जाता है, तब विभागीय जाँच किया जाना जरूरी है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित। (पैराएँ 4 एवं 5)

निर्णयज विधि.–(2010)8 SCC 220—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Dr. S. N. Pathak, For the Petitioner; J.C. to A.G., For the Respondents.

आदेश

वर्तमान याचिका प्रत्यर्थी सं॰ 5 द्वारा पारित दिनांक 27.12.2008 के बर्खास्तगी के आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-5) के विरुद्ध दाखिल की गयी है, जिसके द्वारा याची की सेवाएँ मुख्यत: इस तथ्य के कारण कि वह चार दिन तक अनुपस्थित रही, प्रत्यर्थी सं॰ 5 द्वारा समाप्त कर दी गयी है, आक्षेपित आदेश में अनुपस्थिति के अभिकथन के अतिरिक्त, अनुशासनहीनता, कर्तव्य की अवहेलना, मनमाने रूप से काम करना और संदेहास्पद आचरण का अभिकथन भी याची के विरुद्ध किया गया है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि इन अभिकथनों को न्यायोचित ठहराते हुए न तो कोई जाँच संचालित की गयी है और न ही याची को कोई आरोप-पत्र दिया गया है और न ही इन अभिकथनों का प्रतिवाद करने के लिए याची को सुनवाई का अवसर दिया गया है। अत:, याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि (a) **(2010)8 SCC 220;** (b) **(1998)6 SCC 538;** (c) **(1998)8 SCC 194** एवं (d) 2004 (2) JLJR 185 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों के आलोक में यदि याची परिवीक्षाधीन व्यक्ति भी है, तब भी परिवीक्षा अवधि के दौरान यदि गंभीर अभिकथनों को लगाते हुए याची की सेवाएँ समाप्त की जाती है, याची को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए था। मामले के तथ्यानुसार, याची परिवीक्षाधीन व्यक्ति है, वह चयन की सम्यक् प्रक्रिया के बाद दिनांक 20.3.2008 को नियुक्त महिला कांस्टेबल है और पूर्वोक्त अभिकथनों द्वारा उसकी सेवाएँ दिनांक 27.12.2008 को समाप्त नहीं कर दी जानी चाहिए थी।

3. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि जब परिवीक्षाधीन व्यक्ति की सेवा को समाप्त करना है, तो जाँच करने की कोई आवश्यकता नहीं है। परिवीक्षा की अवधि के दौरान याची की सेवाएँ झारखंड पुलिस निर्देशिका, 2000 के नियम 668 के फलस्वरूप समाप्त कर दी गयी है। इसके अतिरिक्त, चार दिनों की अनुपस्थिति सहित आक्षेपित आदेश में अनेक अभिकथन हैं। आगे निवेदन किया गया है कि याची को आवश्यक कारण बताओ नोटिस दिया गया था और आक्षेपित आदेश में निर्दिष्ट अभिकथनों के लिए स्पष्टीकरण इप्सित किया गया था। दिनांक 3.12.2008 की इस कारण बताओ नोटिस में, जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-3 पर है, याची के विरुद्ध अभिकथन न केवल अनुपस्थिति के बारे में है बल्कि अनुशासनहीनता, कर्तव्य की अवहेलना, मनमाने रूप से काम करने और संदेहास्पद व्यवहार के बारे में भी है किंतु यह सत्य है कि याची के विरुद्ध प्रश्नगत अभिकथनों के लिए कोई नियमित जाँच नहीं की गयी थी।

4. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए मैं एतद् द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 5 द्वारा पारित दिनांक 27.12.2008 के आदेश, जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-5 पर है, को निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से अभिखंडित और अपास्त करता हूँ:-

(i) oreku ;kph dk fofèk dh lE;d çfØ;k }kjk vFkkr foKkiu d çdk'ku d ckn(ijh{kk yu d ckn vkj fyf[kr] ekf[kd vkj 'kkjhfjd ijh{kkvk e mÙkh.k gku d ckn fnukd 20.3.2008 dk efgyk dkLVcy d :i e fu;Dr fd;k x;k FkkA

(ii) ;g çrhr gkrk g fd ;kph doy pkj fnuk rd fnukd 26.7.2008 l fnukd 29.7.2008 rd chekjh d dkj.k vuifLFkr jghA vuifLFkfr d fy, vkj vU; vfHkdFkuk d fy, fnukd 3.12.2008 dk ;kph dk dkj.k crkvk ukfVl tkjh fd;k x;k Fkk tk ;kfpdk d eek d ifjf'k"V&3 ij gA

(iii) ;kph d fo#) fd, x, vfHkdFku fuEufyf[kr g%

(a) fd og fnukd 26.7.2008 l fnukd 30.7.2008 rd pkj fnuk d fy, vuifLFkr jghA

(b) fd og vu'kklughu g] mlu dr0; dh vogyuk dh g] og eueku :i l dke dj jgh g vkj mldk 0;ogkj lngkLin gA

(iv) vkx ;g çrhr gkrk g fd ;kph dh ifjoh{kk vofèk py jgh Fkh] vr% çR;Fkhx.k u >kj[kM ifyl funf'kdk] 2000 d fu;e 668 d vulj.k e dkb fu;fer tkp fd, fcuk ;kph dh lokvk dk lekIr dj fn;k g tk fofèk dh nf"V

e vuK; ugh g tc xHkhj vkjki yxk, x, g] t lk ;gk Åij fufn"V fd;k x;k gA çR;Fkhx.k dk ;kph d fo#) tkp djuk pkfg, FkkA oreku ekey d rF;k e] dkb fu;fer tkp ugh dh x;h FkhA tc ;kph d fo#) vu'kk lughurk] dr0; e vogyuk] eueku : i l dke dju vkj lngkLin 0;ogkj t l xHkhj vfHkdFku fd, x, g] rc çR;Fkhx.k bu vfHkdFkuk dk fl) dju d fy, ckè; gA ifjoh{kkèkhu 0;fDr dh lokvk dh ^^lhèk rkj ij lekflr(** >kj[kM ifyl funf'kdk] 2000 d fu;e 668 d vèkhu dkb tkp fd, fcuk vuK; g fdr tc lok lekflr nMkRed çÑfr dk g] tkp djuk gh gkxkA

(v) >kj[kM ifyl funf'kdk] 2000 d fu;e 668 dk iBu fuEufyf[kr g%

668. **çR;{kr% fu;Dr vFkok ifjoh{kk ij çkUur vfèkdkfj;k dk gVk;k tkuk vFkok çfroru%**-&ifyl vkj vulfpoh; vfèkdkjhx.k dh çFke fu;fDr vkj çkUufr fuEufyf[kr fu;ek }kjk 'kkflr gkx t lk ifjf'k"V&41 e of.kr fd;k x;k g%&

(a) leLr vfèkdkjhx.k dk çFker% ifjoh{kk ij fu;Dr vFkok çkUur fd;k tk,xkA tgk fu;ek e ifjoh{kk dh vofèk vU;Fkk çkoèkkfur ugh dh x;h g] ogk dk;ikyd vfèkdkjhx.k d ekey e ;g vofèk nk o"kk dh vkj vulfpoh; vfèkdkjhx.k d ekey e ,d o"k gkxhA ,lh fu;fDr vFkok çkUufr dju d fy, çkfèkÑr 0;fDr ,lh ifjoh{kk vofèk d nkjku vkj fu;e 828 e vfèkdfFkr vkipkfjdrkvk d fcuk fdlh le; çR;{kr% fu;Dr vfèkdkjh dk gVk ldrk g vFkok ,l çkUur vfèkdkjh dk çfrofrr dj ldrk g ftlu viuh fu;fDr dh 'krk dk ifji.k ugh fd;k g vFkok ftlu ,lh fu;fDr vFkok çkUufr d fy, Lo; dk v;kX; n'kk;k gA blh çdkj l] fdlh dkj.k&iPNk d fcuk ifjoh{kk vofèk Hkh c<k;h tk ldrh gA ,l ekeyk e dkb vihy ugh gkxhA

(b) LFkk;h fjfDr;k dk NkMdj vU; idkj l fu;Dr vFkok çkUur dk;ikyd vfèkdkjhx.k Hkh Åij [kM (a) e minf'kr rjhd l gVk, tku vFkok çfrofrr fd, tku d nk;h gA

(vi) tc ifjoh{kkèkhu 0;fDr dh lok l lhèk rkj ij lekIr dh tkrh g] ;g >kj[kM ifyl funf'kdk] 2000 d fu;e 668 d vèkhu dkb tkp fd, fcuk fd;k tk ldrk g fdr tc lok lekflr nMkRed çÑfr dk g] rc tkp vko';d gA

(vii) ;kfpdk d eek d ijkxkQ 13 e fuEufyf[kr vfHkdfFkr fd;k x;k g%&

"13. fd ;kph fuonu djrh g fd mld fo#) fdlh foHkkxh; dk;okgh dk vkjHk fd, fcuk ;kph dh c[kkLrxh dk vk{kfir vkn'k fcYdy xj&dkuuh] eueku vkj Hkkjr d lfoèkku d vuPNnk 14, 16 vkj 311 d mYy?ku e gA**

(viii) iokDr ijkxkQ dk mÙkj jkT; }kjk nkf[ky çfr'kiFk i= d ijkxkQ 22 e fn;k x;k g tk fuEufyf[kr gA

"22. fd oreku fjV vkonu d ijkxkQk 12 vkj 13 e ;kph }kjk fn, x, c;kuk d lcèk e fouerkiod dFku vkj fuonu fd;k tkrk g fd ; Hkked g vkj bul budkj fd;k tkrk gA**

(ix) bld vfrfjDr] çfr 'kiFki= d ijkxkQ 12 dk iBu fuEufyf[kr g%

"13. fd bl U;k;ky; d fopkjkFk oreku fjV vkonu d ijkxkQ 2 e ;kph }kjk fojfpr fofèk d ç'uk d lcèk e fouerkiod dFku vkj fuonu fd;k tkrk g fd ; lgh ugh gA ;kph u mi{kk djd xHkhj vijkèk fd;k vkj viu mPprj

*çkfèkdkjh l iokuefr fy, fcuk viu dr0; u yxkrkj vuifLFkr jghA bld vfrfjDr] mlu viu mPprj inèkkjhx.k d fo#) >Bk vfHkdFku fd;kA blfy,] mld fo#) lgh çdkj l vu'kkLfud dkjokb dh x;h g vkj mld fo#) yxk, x, vkjkik dk lgh ik;k x;k gA blfy,] ifyl funf'kdk vkj lok lfgrk d vkKkid çkoèkkuk dk mYy?ku dju d fy, ;kph dk lgh çdkj l lok l c[kkLr fd;k x;k gA*** (tkj fn;k x;k)

(x) vr%] tc ,d ckj bl rF; fd ;kph ifjoh{kkèkhu 0;fDr g ;k ugh] dk è;ku e fy, fcuk lokvk dh lekfIr d tfj, ;kph d fo#) nMkRed vkn'k ikfjr fd;k tkrk g] foHkkxh; tkp dk lpkfyr dju dh vko';drk gkrh gA

(xi) Hkkjr l?k ,o vU; cuke egkohj lhO fl?koh] (2010)8 SCC 220 e ijkxkQ 45 e ekuuh; lokPp U;k;ky; }kjk fuEufyf[kr vfHkfuèkkfjr fd;k x;k g%&

*"45. pfd mPp U;k;ky; çklfxd vfHky[kk dk ifj'kh yu dju d ckn ekey dh xgjkb rd x;k g vkj fo}ku vij lkfyflVj tujy ge fHkUu nf"Vdk.k viuku d fy, vk'oLr djku e l{ke ugh g, g] ge fo'k"k vuefr ;kfpdk e vk{kfir mPp U;k;ky; d fu.k; vkj vkn'k e gLr{ki dju dk dkb dkj.k ugh ikr gA u doy vfHky[k ij miyCèk lkefx;k l ;g Li"V g] cfYd viu vfHkopuk e ;kphx.k u Lo; Lohdkj fd;k g fd fnukd 13.6.2002 dk vkn'k çR;Fkh x.k d vopkj d dkj.k tkjh fd;k x;k Fkk vkj vopkj mDr vkn'k dk e[; vkèkkj FkkA ,lk gku d ukr] bl U;k;ky; }kjk viuk, x, lxfri.k nf"Vdk.k dk è;ku e j[kr g, fd ;fn ifjoh{kkèkhu 0;fDr d mUekpu dk vkn'k mldk viuk cpko dju dk dkb volj fn, fcuk nMkRed dne d :i e ikfjr fd;k tkrk g] ;g voèk vkj vfHk[kfMr fd, tku dk nk;h gkxk vkj ;gh fu"d"k çR;Fkh d ekeyk ij Hkh ykx gkxkA*** (tkj fn;k x;k)

5. पूर्वोक्त तथ्यों और कारणों और न्यायिक उद्घोषणाओं की दृष्टि में, मैं एतद्द्वारा दिनांक 27.12.2008 के आदेश, जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट–5 पर है, को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ। यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है। याची के विरुद्ध कार्रवाई करने की स्वतंत्रता झारखंड राज्य के लिए सुरक्षित की जाती है, यदि वे ऐसा करना चुनते हैं, किंतु विधि के अनुरुप और कम से कम नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण करने के बाद।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efrx.k

विजय सिंह (1053 में)

हरेन्दर सिंह एवं अन्य (549 में)

जय मंगल दूबे (425 में)

गिरिवर सिंह (364 में)

cuke

झारखंड राज्य (सभी में)

Cr. Appeal (DB) Nos. 1053 of 2005 with 549, 425 & 364 of 2003. Decided on 3rd August, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 49 वर्ष 2002 में श्री आर॰ जी॰ सिंह नागेश, प्रथम अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लातेहार द्वारा पारित दिनांक 19.2.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 20.2.2003 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34 एवं 120B—हत्या एवं षडयंत्र–तीन व्यक्तियों की हत्या–आजीवन कारावास–दोषसिद्धि मुख्यतः संस्वीकृति और बरामदगी पर आधारित–न तो अभिग्रहित वस्तुओं को परीक्षण के लिए न्यायालयिक प्रयोगशाला भेजा गया और न ही न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया–अपीलार्थी के घर से बरामदगी को पूर्णतः सिद्ध नहीं किया गया–संस्वीकृति के गवाहगण पक्षद्रोही हो गए–अभियोजन हत्या के संबंध में हेतु सिद्ध करने में विफल रहा–मामले का अन्वेषण और पर्यवेक्षण समुचित रूप से नहीं किया गया–अपीलार्थीगण दोषमुक्त–राज्य सरकार को अन्वेषण अधिकारी तथा लोक अभियोजक के आचरण की जाँच करने का निर्देश। (पैराएँ 15 से 21)

निर्णयज विधि.–AIR 1964 SC 1184; (2010)1 SCC 94—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s. Anil Kumar, Ashutosh Kumar (in 1053); Mr. Surendra Pd. Sinha (in 549 and 425); M/s. A. K. Chaturvedi, Gyan Nath Tiwari (in 364), For the Appellant; Mr. T. N. Verma (in all), For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–एक ही निर्णय से उद्भूत होने वाली इन अपीलों को साथ साथ सुना गया था और इस एक ही आदेश द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. ये अपीलें सत्र विचारण सं॰ 49 वर्ष 2002 में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302/34 के अधीन और धारा 120B के अधीन भी अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करते हुए श्री आर॰ जी॰ सिंह नागेश, विद्वान प्रथम अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लातेहार द्वारा पारित दिनांक 19.2.2003 के आदेश से उद्भूत हुई है। प्रत्येक को धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए कठोर आजीवन कारावास और 5,000/- (पाँच हजार) रुपयों का जुर्माना तथा जुर्माने के भुगतान के व्यतिक्रम में एक वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास अधिरोपित किया गया था। भारतीय दंड संहिता की धारा 120B के अधीन अपराध के लिए एक वर्ष का कठोर कारावास अधिरोपित किया गया था। दंडादेशों को साथ-साथ चलना था।

3. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि अ॰ सा॰ 7 सोहराई पासवान, पुलिस चौकीदार ने बरवाडीह पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी के समक्ष दिनांक 19.10.2001 को प्रातः लगभग 11 बजे इस प्रभाव का बयान दिया कि जब वह अपनी ड्यूटी निभाने जा रहा था, उसे पता चला कि तीन व्यक्तियों की हत्या कर दी गयी थी। इस सूचना पर, वह खूटा गाँव पहुँचा जहाँ गाँववालों ने उसे बताया कि तेजधार वाले हथियार का प्रयोग करके राजकुमार सिंह, उसकी पत्नी (चिंता देवी) और 11 वर्षीय पुत्री (गीता कुमारी) की हत्या कर दी गयी थी। घटना का कारण मृतक और उसकी पहली पत्नी के परिवार के सदस्यों के बीच भूमि विवाद बताया जाता था। पहली पत्नी के परिवार के सदस्यों ने विगत वर्ष धमकी दी थी कि वे अगले वर्ष उपज की कटाई करने नहीं देंगे और इसलिए फसल काटने के पहले दिनांक 18/19.10.2001 की रात के बीच तीनों अभियुक्तगण की हत्या कर दी गयी है। उक्त बयान पर अज्ञात लोगों के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज की गयी थी।

4. अभियोजन के अनुसार, दिनांक 24.10.2001 को किसी उदय साहू (जिसे विचारण के लिए नहीं भेजा गया था) का घर, राम और अपीलार्थी बुधराम का घर उनकी संस्वीकृति पर तलाशा गया था। उदय साहू के घर से 1300/- रुपया, एक रक्तरंजित कमीज और एक रेडियो बरामद किया गया था और अपीलार्थी बुधराम के घर से एक श्वेत-श्याम टी॰ वी॰, खून के धब्बों के साथ एक बड़ा और एक छोटा चाकू और खून के धब्बों के साथ एक जोड़ी जूती बरामद की गयी थी।

अभियोजन के अनुसार, बरामदगी अपीलार्थी बुधराम, राम और अपीलार्थी विजय सिंह के इकबालिया बयान पर की गयी थी। दोनों संस्वीकृतियाँ पुलिस के समक्ष की गयी थी। बुधराम राम की संस्वीकृति अ॰ सा॰ 3 और 6 सहित गाँववालों के समक्ष दर्ज की गयी थी।

5. बचाव पक्ष ने आरोपों से इनकार किया। विचारण न्यायालय नें मुख्यत: उक्त संस्वीकृति और बरामदगी के आधार पर अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया।

6. अन्य मामलों में अन्य अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित अन्य विद्वान अधिवक्ताओं की सहायता से अपीलार्थी विजय सिंह की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री अनिल कुमार ने निम्नलिखित निवेदन किया।

अपीलार्थीगण–बुधराम, राम और विजय सिंह की संस्वीकृति साक्ष्य अधिनियम की धारा 30 के प्रतिकूल है क्योंकि अभिकथित अभिग्रहण/बरामदगी को सिद्ध नहीं किया गया है और परिणामस्वरुप इन अपीलार्थीगण के विरुद्ध एक ही चीज बनी रहती है जो पुलिस के समक्ष संस्वीकृति है। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 8 (आई॰ ओ॰) के अनुसार, अ॰ सा॰ 3 और 6 ऐसी संस्वीकृति के समय पर उपस्थित थे किंतु अ॰ सा॰ 3 और 6 को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया था और उन्होंने पुलिस के समक्ष ऐसी संस्वीकृतियों के बारे में कुछ नहीं कहा था।

इसके अतिरिक्त, यद्यपि अभिग्रहण गवाहों अ॰ सा॰ 1 और 2 ने अभिग्रहण सूची पर अपना हस्ताक्षर स्वीकार किया, किंतु कहा कि अभिग्रहण उनकी उपस्थिति में नहीं किया गया था और पुलिस थाना में कागज पर उनका हस्ताक्षर लिया गया था। न तो परीक्षण के लिए अभिग्रहित वस्तुओं को न्यायालयिक प्रयोगशाला में भेजा गया था और न ही उन्हें न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था।

उन्होंने आगे निवेदन किया कि अभियोजन ने घटना के हेतु के बारे में विभिन्न कहानियाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। एक कहानी यह है कि मृतक राज कुमार सिंह और उसकी पहली पत्नी के परिवार के सदस्यों के बीच भूमि और उपज के संबंध में विवाद था। एक अन्य कहानी यह है कि मृतका (चिंता देवी) और अपीलार्थीगण विजय सिंह और गिरिवर सिंह के बीच घर के गैरकानूनी निर्माण के संबंध में दुश्मनी थी। किंतु किसी भी कहानी को अभियोजन द्वारा सिद्ध नहीं किया गया है और केवल संदेह के आधार पर, अपीलार्थीगण को अभियुक्त बनाया गया है। अपीलार्थी हरेन्द्र सिंह मृतक राज कुमार सिंह की पहली पत्नी का पुत्र है।

उन्होंने **मो॰ अंकूस एवं अन्य बनाम लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद, (2010)1 SCC 94,** पर विश्वास किया और निवेदन किया कि साक्ष्य के रूप में केस डायरी का उपयोग नहीं किया जा सकता है। उन्होंने **हरिचरण कुर्मी बनाम बिहार राज्य, AIR 1964 SC 1184** में, दिए गए निर्णय पर भी विश्वास किया और निवेदन किया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 30 के मुताबिक पुलिस के समक्ष संस्वीकृति साक्ष्य नहीं है जब तक इसे बरामदगी/अन्य संपुष्टिकारक सामग्रियों द्वारा सिद्ध नहीं किया जाता है।

7. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री टी॰ एन॰ वर्मा ने निराशाजनक रूप से निवेदन किया कि केस डायरी से प्रतीत होता है कि अभिग्रहण सूचियों की प्रति अपीलार्थीगण बुधराम, राम एवं विजय सिंह को दी गयी थी। उन्होंने आगे निवेदन किया कि यद्यपि अ॰ सा॰ 1 और 2 ने अभिग्रहण सूची पर अपना हस्ताक्षर स्वीकार किया किंतु अज्ञात कारणों से वास्तविक अभिग्रहण/बरामदगी का समर्थन नहीं किया था।

8. अभियोजन ने आठ गवाहों का परीक्षण किया है।

अ॰ सा॰ 1 संजय कुमार मिश्रा अपीलार्थी बुधराम, राम के घर से अपराध में फँसानेवाली वस्तुओं के अभिकथित अभिग्रहण का गवाह है। किंतु उसने कहा कि बुधराम राम ने उसकी उपस्थिति में पुलिस

को संतोष टी॰ वी॰, रक्तरंजित छूरा, रक्तरंजित चाकू और जूती का जोड़ा सौंपा। अभिग्रहण सूची तैयार की गयी थी, जिस पर उसने हस्ताक्षर किया। अभिग्रहण सूची गवाह ने यह भी कहा कि पुलिस ने उसकी उपस्थिति में कोई वस्तु अभिग्रहित नहीं किया था और पुलिस थाना में कागज पर उससे हस्ताक्षर करवाया था और कि वह मामले के बारे में कुछ भी नहीं जानता है।

9. अ॰ सा॰ 2 प्रमोद राम अपीलार्थी बुधराम राम के घर से अभिकथित अभिग्रहण का एक अन्य गवाह है। उसने कहा कि एक टी॰ वी॰, एक रक्त रंजित छूरा, एक चाकू और जूती की जोड़ी पुलिस द्वारा बरामद की गयी थी जिसके लिए अभिग्रहण सूची तैयार की गयी थी। उसने अभिग्रहण सूची पर अपना हस्ताक्षर सिद्ध किया। किंतु प्रति-परीक्षण में इस गवाह ने कहा कि उसकी उपस्थिति में कोई वस्तु बरामद नहीं किया गया था और पुलिस थाना में लिखित कागज पर उसका हस्ताक्षर लिया गया था जिसे उसे पढ़ने के लिए नहीं दिया गया था और उसे मामले के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

10. इस प्रकार, अपीलार्थी-बुधराम, राम के घर से उक्त वस्तुओं का अभिग्रहण संदेहास्पद बन जाता है।

11. अ॰ सा॰ 3 बैद्यनाथ सिंह और अ॰ सा॰ 6 रविन्द्र कुमार, जो मृत्यु समीक्षा के गवाह हैं, पक्षद्रोही घोषित कर दिए गए हैं।

12. अ॰ सा॰ 8 आई॰ ओ॰ के अनुसार अपीलार्थी विजय सिंह की संस्वीकृति अ॰ सा॰ 3 और 8 की उपस्थिति में दर्ज की गयी थी किंतु इन अभियोजन साक्षियों ने अपनी उपस्थिति में अपीलार्थी विजय सिंह द्वारा की गयी किसी संस्वीकृति के बारे में कुछ भी नहीं कहा था। उन्होंने दुश्मनी के संबंध में पुलिस के समक्ष बयान, जैसा केस डायरी में दर्ज किया गया है, देने से भी इनकार किया है।

13. अ॰ सा॰ 4 भोला प्रसाद और अ॰ सा॰ 5 मनोज कुमार, उदय साव, जिसे विचारण के लिए नहीं भेजा गया है, के घर से अपराध में फँसाने वाली अभिकथित वस्तुओं के अभिग्रहण के गवाहगण हैं। अत: वे इस मामले में प्रासंगिक नहीं हैं।

14. अ॰ सा॰ 7 सूचक चौकीदार सोहराय पासवान है। इस गवाह को भी पक्षद्रोही घोषित किया गया था। उसने मृतक राजकुमार सिंह और अपीलार्थीगण गिरिवर सिंह और विजय सिंह अथवा अपीलार्थी हरेन्द्र सिंह के बीच दुश्मनी के संबंध में पुलिस के समक्ष कुछ भी कहने से इनकार किया। उसने यह भी कहा कि पुलिस थाना में सादे कागज पर उसका हस्ताक्षर लिया गया था।

15. अ॰ सा॰ 8 अरुण कुमार मामले का आई॰ ओ॰ है। अन्य बातों के साथ साथ उसने कहा कि बरामदगी अपीलार्थी बुधराम राम की संस्वीकृति के आधार पर की गयी थी, और कि समस्त अभियुक्तगण ने अपराध किया और लूटी गयी वस्तुओं को वितरित किया जिन्हें बुधराम, राम और विजय सिंह के घर से बरामद किया गया था। तत्पश्चात, अन्वेषण आमोद नारायण सिंह को सौंप दिया गया था जिसने आरोप-पत्र दाखिल किया। प्रति-परीक्षण में इस गवाह ने कहा कि गवाह उदय साहू की संस्वीकृति पर बुधराम राम के घर से बरामदगी की गयी थी। विजय सिंह की संस्वीकृति गाँववालों की उपस्थिति में और अ॰ सा॰ 3 और 6 की उपस्थिति में दर्ज की गयी थी और उसने आगे कहा कि रक्तरंजित वस्तुओं को परीक्षण के लिए न तो न्यायालयिक प्रयोगशाला भेजा गया था और न ही न्यायालय में प्रस्तुत किया गया था।

इस मामले में शव परीक्षण रिपोर्ट को भी सिद्ध नहीं किया गया है।

16. इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी बुधराम, राम के घर से अभिकथित अभिग्रहण पूर्णत: सिद्ध नहीं किया गया है और यह अभिनिर्धारित करना मुश्किल है कि अपीलार्थीगण बुधराम, राम और विजय सिंह की संस्वीकृति को उनकी संस्वीकृति के आधार पर अपराध में फँसाने वाली वस्तुओं की

बरामदगी/अभिग्रहण को सिद्ध करके अथवा किसी अन्य संपुष्टिकारक सामग्री द्वारा अभियोजन द्वारा सिद्ध किया गया था। जैसा ऊपर गौर किया गया है, अ॰ सा॰ 8 आई॰ ओ॰ ने कहा कि विजय सिंह ने पुलिस के समक्ष और अ॰ सा॰ 3 और 6 की उपस्थिति में संस्वीकृति किया किंतु अ॰ सा॰ 3 और 6 को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है और उन्होंने ऐसी संस्वीकृति के बारे में कुछ भी नहीं कहा था। विचारण न्यायालय ने मुख्यत: अभिकथित संस्वीकृति के आधार पर अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया है।

17. मंशा के संबंध में अभियोजन ने दो कहानियों को प्रक्षेपित किया है। एक कहानी यह है कि मृतक राजकुमार सिंह और उसकी पहली पत्नी के परिवार के सदस्यों के बीच भूमि और उपज के संबंध में विवाद था और इसलिए उनके द्वारा और उनके कहे जाने पर अपराध किया गया था। अभियोजन की दूसरी कहानी यह है कि चिंता देवी (मृतका) और अपीलार्थीगण विजय सिंह और गिरिवर सिंह के बीच विवाद था और इसलिए, उन्होंने अन्य की सहायता से अपराध किया है। किंतु अभियोजन इन कहानियों में से किसी को भी सिद्ध करने में बुरी तरह विफल रहा है।

18. न्यायालय के समक्ष सत्य को और वास्तविक अपराधियों को सामने लाने का कर्तव्य अभियोजन का है किंतु इस मामले में, जिसमें तीन व्यक्तियों के पूरे परिवार की क्रूरतापूर्वक हत्या कर दी गयी थी, अभियोजन ने न्याय प्रदान करने की प्रणाली का मखौल उड़ाया है। इसने मामले पर इस तरह विचार किया मानो यह रोटी चुराने का मामला हो। इस मामले का अन्वेषण पर्यवेक्षण और अभियोजन बिल्कुल लापरवाह तरीके से किया गया है।

19. घटना के लगभग 10 वर्षों बाद पुनर्विचारण/पुनर्अन्वेषण इस मामले में बेकार होगा। किंतु हम राज्य सरकार को इस मामले के अन्वेषण अधिकारीगण, पर्यवेक्षण अधिकारीगण और लोक अभियोजकगण के आचरण की जाँच करने का निर्देश देते हैं। यदि उन्हें दोषी पाया जाता है, विधि के अनुरुप और शीघ्रातिशीघ्र उनके विरुद्ध समुचित कार्रवाई की जाए, चाहे वे कहीं भी हो।

20. यह मामला एक ज्वलंत उदाहरण है। किंतु अनेक मामलों में देखा गया है कि अन्वेषण/पर्यवेक्षण/अभियोजन बिल्कुल लापरवाह तरीके से किया जाता है और राज्य अपना कर्तव्य निभाने में विफल हो रहा है। राज्य सरकार को विचार करना चाहिए कि क्या वह न्याय प्रदान करने की प्रणाली सुधारना चाहता है अथवा ईश्वरीय न्यायालय, यदि हो तो, पर इसे छोड़ देना चाहता है।

21. परिणामस्वरुप, हमारे पास अपीलार्थीगण को दोषमुक्त करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। तद्नुसार, आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण गिरिवर सिंह, जयमंगल दूबे, सोमेश्वर राम और हरेन्द्र सिंह जमानत पर हैं। उन्हें उनके जमानत बंधपत्रों के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है। अपीलार्थीगण विजय सिंह और बुधराम राम, जो जेल में हैं, को निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उनकी आवश्यकता नहीं है।

आवश्यक कार्रवाई के लिए इस आदेश की प्रति गृह सचिव, झारखंड राज्य को भेजी जाय।

---

ekuuh; çkkr dekj] U;k;efr

जूनस अमृत थियोफिल तिर्के

cuke

आनंदिनी टिग्गा एवं अन्य

AFOD No. 68 of 1996(R). Decided on 12th August, 2011.

प्रोबेट केस सं॰ 52 वर्ष 1991 में श्री अनंत प्रसाद श्रीवास्तव, न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 1 अक्टूबर, 1992 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध।

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925—धाराएँ 276 एवं 299—प्रोबेट मामला–दिनांक 3.5.1913 की अधिसूचना सं॰ 550 सह-पठित दिनांक 8.12.1931 की अधिसूचना सं॰ 2563J में उल्लिखित ओराँव एवं अन्य आदिवासी उत्तराधिकार अधिनियम से मुक्त हैं–ओराँव के मामले में धाराओं 276 और 299 की कोई प्रयोज्यता नहीं है–प्रोबेट मामला पोषणीय नहीं है। (पैरा 10)

निर्णयज विधि.–1990 (2) PLJR 649—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Shekhar Prasad Sinha, For the Appellants; Mr. A.K. Sahani, For the Respondents.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.–भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 299 के अधीन यह अपील प्रोबेट केस सं॰ 52 वर्ष 1991 में न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 1.10.1992 के निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा उन्होंने मूल प्रत्यर्थी सं॰ 1 के पक्ष में प्रोबेट प्रदान किया था।

2. यह प्रतीत होता है कि मूल प्रत्यर्थी सं॰ 1 ने रोजलिन टिग्गा (अपीलार्थी की पत्नी) द्वारा निष्पादित दिनांक 3.9.1990 के विल के संदर्भ में प्रोबेट प्रदान करने के लिए आवेदन दाखिल किया। यह कथन किया गया है कि रोजलिन टिग्गा मूल प्रत्यर्थी सं॰ 1 की पुत्री थी और अपीलार्थी के साथ विवाहित थी। आगे कथन किया गया है कि तारा नर्सिंग होम, सरायकेला, धनबाद में संदेहास्पद स्थिति में दिनांक 16.12.1990 को रोजलिन टिग्गा की मृत्यु हो गयी। तब कथन किया गया है कि उक्त रोजलिन टिग्गा ने अपनी समस्त चल और अचल संपत्ति के संबंध में अपने पिता के पक्ष में दिनांक 3.9.1990 को अपना अंतिम विल निष्पादित किया। आगे कथन किया गया है कि गवाहों सुखदेव ओराँव, एश कुमार सिंह और आर्नंदिनी टिग्गा की उपस्थिति में उसके द्वारा उक्त विल निष्पादित किया गया था। आगे कथन किया गया है कि मूल प्रत्यर्थी सं॰ 1 विल का निष्पादक है, अत: वह प्रोबेट का हकदार है। आगे कथन किया गया है कि आवेदक ने तात्विक तथ्यों को दबाते हुए उत्तराधिकार मामला सं॰ 30/1991 के तहत रोजलिन टिग्गा द्वारा छोड़ी गयी संपत्तियों, कर्ज और प्रतिभूतियों के संबंध में उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्रदान किए जाने के लिए आवेदन दाखिल किया। आगे कथन किया गया है कि वह उत्तराधिकार प्रमाणपत्र पाने में सफल हुआ। किंतु मूल प्रत्यर्थी सं॰ 1 ने विविध केस सं॰ 44 वर्ष 1991 के तहत विविध मामला दाखिल किया और इसे उसके पक्ष में निपटाया गया था और उत्तराधिकार प्रमाण पत्र अपास्त कर दिया गया था।

3. दूसरी ओर, अपीलार्थी (ओ॰ पी॰ सं॰ 1) ने प्रोबेट केस का प्रतिवाद किया और प्रतिवाद किया कि आवेदन पोषणीय नहीं है। यह कथन किया गया है कि पक्षगण ओराँव, अनुसूचित जनजाति हैं और अपने रुढ़िजन्य विधि द्वारा शासित हैं। आगे निवेदन किया गया है कि गृह विभाग, भारत सरकार द्वारा जारी दिनांक 2.5.1913 की अधिसूचना सं॰ 550 के मुताबिक बिहार और उड़ीसा के प्रांत में वास करती अनुसूचित जनजातियाँ, मुख्यत: मुंडा, ओराँव, संथाल, हो, भूमिज, आदि उत्तराधिकार और विरासत के अपने रुढ़िजन्य नियमों द्वारा शासित होंगी और उनके मामलों पर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम प्रयोज्य नहीं होगा। यह कथन किया गया है कि पूर्वोक्त विधिक अवस्था की दृष्टि में वर्तमान प्रोबेट आवेदन पोषणीय नहीं है। आगे कथन किया गया है कि प्रश्नगत विल पर रोजलिन टिग्गा का हस्ताक्षर वास्तविक नहीं है। यह कथन भी किया गया है कि उसने गवाहों की उपस्थिति में उक्त विल पर हस्ताक्षर नहीं किया है जैसा मूल प्रत्यर्थी सं॰ 1 द्वारा दावा किया गया है। कथन किया गया है कि रोजलिन टिग्गा मानसिक अवसाद से पीड़ित थी जिसके लिए वह दिनांक 18.12.1989 से दिनांक 22.10.1990 तक डॉ॰ एस॰ कुमार के

इलाज में थी। तद्नुसार, कथन किया गया है कि उसने पूरे होश हवास में विल निष्पादित नहीं किया है। तद्नुसार, प्रार्थना की गयी है कि प्रोबेट केस खारिज कर दिया जाय।

4. यह प्रतीत होता है कि विद्वान अवर न्यायालय में पक्षों ने अपने मामलों के समर्थन में मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दाखिल किया। यह प्रतीत होता है कि विद्वान अवर न्यायालय ने अपीलार्थी के मामले पर अविश्वास करते हुए प्रोबेट केस अनुज्ञात किया और आक्षेपित निर्णय द्वारा मूल प्रत्यर्थी सं॰ 1 के पक्ष में प्रोबेट प्रदान किया जिसके विरुद्ध अपील किया गया है।

5. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री शेखर प्रसाद सिन्हा ने निवेदन किया है कि दिनांक 3.5.1913 की अधिसूचना सं॰ 550 के मुताबिक गवर्नर जेनरल इल काउन्सिल ने बिहार और उड़ीसा प्रांत में वास करने वाले समस्त मुंडा, ओराँव, संथाल, हो, भूमिज, खरिया, घासी, गोंड, कांध, कोरवा, कुर्मी, माले सौरिया और पान को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के प्रावधानों के प्रवर्तन से मुक्त कर दिया। अतः, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 276 के अधीन दाखिल प्रोबेट केस पोषणीय नहीं है क्योंकि रोजलिन टिग्गा ओराँव, अनुसूचित जनजाति की थी।

6. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ साहनी निवेदन करते हैं कि दिनांक 3.5.1913 की अधिसूचना सं॰ 550 भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1865 के अधीन जारी की गयी थी। निवेदन किया गया है कि उक्त अधिनियम भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 द्वारा निरस्त कर दिया गया था, अतः, उक्त अधिसूचना ने अपना बल खो दिया था। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि प्रोबेट केस पोषणीय है। यह निवेदन भी किया गया है कि राँची जिला अनुसूचित क्षेत्र विनियमन अधिनियम के अधीन आता है। यह निवेदन किया गया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 244 (1) के मुताबिक भारत के संविधान की पाँचवीं अनुसूची में संगणित प्रावधान लागू होंगे। निवेदन किया गया है कि अनुसूचित क्षेत्र में विधि के किसी प्रावधान की प्रयोज्यता और/अथवा अप्रयोज्यता के लिए राज्यपाल का आदेश आवश्यक है। निवेदन किया गया है कि यह घोषित करते हुए कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम राँची जिला में लागू नहीं होगा, राज्य के राज्यपाल द्वारा जारी कोई अधिसूचना नहीं है। उक्त परिस्थिति के अधीन भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 प्रयोज्य है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि प्रोबेट केस पोषणीय है।

7. निवेदन को सुनने पर, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि विद्वान अवर न्यायालय ने पोषणीयता के विवाद्यक पर पक्षों के अधिवक्ता के प्रतिवाद पर चर्चा करने के बाद पैराग्राफ 18 पर कथन किया है:–

> *^^e ;g vfHkfuèkkfjr dju dk bPNd ugh g fd xg foHkkx] Hkkjr ljdkj }kjk tkjh fnukd 2.5.1913 dh vfèklpuk l0 550 dk nf"V e j[kr g, çkcV dl ik"k.kh; ugh gA e ;g vfHkfuèkkfjr dju dk bPNd g fd çkcV dl ik"k.kh; gA ç'uxr foy d lnHk e çkcV çnku dju dh ;kph dh çkFkuk vuKkr dh tk,xh ;fn ;g vfHkfuèkkfjr fd;k tkrk g fd ç'uxr foy okLrfod nLrkot gA e ckn d ijkxkQk e foy dh okLrfodrk ij ppk d#xkA***

विद्वान अवर न्यायालय ने कोई कारण नहीं दिया था कि दिनांक 3.5.1913 की अधिसूचना सं॰ 550 इस मामले पर प्रयोज्य क्यों नहीं है।

8. यह प्रतीत होता है कि विद्वान अपीलीय न्यायालय का पूर्वोक्त निष्कर्ष **जूसिया तिर्के बनाम जोसेफ एक्का,** 1990(2) PLJR 649, में प्रकाशित पटना उच्च न्यायालय, राँची पीठ द्वारा दिए गए निर्णय के विरुद्ध है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि दिनांक 3.5.1913 की अधिसूचना सं॰ 550

द्वारा उक्त अधिनियम के प्रवर्तन से मुक्त अनुसूचित जनजाति द्वारा दाखिल प्रोबेट केस पोषणीय नहीं है और विद्वान अवर न्यायालय को ओराँव द्वारा निष्पादित किसी विल के संबंध में प्रोबेट प्रदान करने की अधिकारिता नहीं है। उक्त निर्णय में, माननीय पटना उच्च न्यायालय, राँची पीठ ने इस प्रतिवाद को अस्वीकार कर दिया कि दिनांक 3.5.1913 की अधिसूचना ने भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के प्रभाव में आने के बाद अपना बल खो दिया था और अभिनिर्धारित किया कि सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 ने पूर्वोक्त अधिसूचना को व्यावृत्त किया था, अत: भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1865 के निरस्त होने के बावजूद पूर्वोक्त अधिसूचना को प्रवर्तित समझा जाएगा।

9. इस संबंध में, यह उल्लेखनीय है कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के प्रभाव में आने के बाद भी, एक अन्य अधिसूचना अधिसूचना सं॰ 2563J दिनांक 8.12.1931 जारी की गयी थी जिसे दिनांक 16.12.1931 को बिहार और उड़ीसा गजट में प्रकाशित किया गया था जिसमें भी बिहार और उड़ीसा के प्रांत में वास करने वाले ओराँव और अन्य जनजातियों को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धाराओं 5 से 49, 58 से 191, 212, 213 और 215 से 369 के प्रावधानों से मुक्त किया गया है। अत:, आक्षेपित निर्णय की तिथि पर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के प्रवर्तन से ओराँव जनजाति को मुक्त करती भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के अधीन अधिसूचना का अस्तित्व है और यह घोषित किया गया था कि वे उत्तराधिकार और विरासत के अपने रुढ़िजन्य नियमों द्वारा शासित होंगे। इस प्रकार, पश्चातवर्ती अधिसूचना की दृष्टि में, विद्वान अवर न्यायालय को ओराँव जनजाति द्वारा निष्पादित विल के संबंध में प्रोबेट प्रदान करने की अधिकारिता नहीं है।

10. श्री ए॰ के॰ साहनी द्वारा उठाया गया अगला प्रतिवाद कि यह निर्देश देते हुए कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 राँची जिला में प्रयोज्य नहीं होगा, भारत के संविधान की पाँचवीं अनुसूची के अधीन राज्यपाल द्वारा जारी अधिसूचना भ्रामक प्रतीत होती है। भारत के संविधान की पाँचवीं अनुसूची के खंड 5(1) के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधान का पठन निम्नलिखित है:–

> *5. **vuqlwfpr {k=k ij ç;kT; fofèk-**&(1) bl lfoèkku e fdlh ph d ckotn jkT;iky lkotfud vfèklpuk }kjk fun'k n ldrk g fd , l vioknk vkj ifjoruk d vè;èkhu tlk og vfèklpuk e fofufn"V dj ldrk g] lln vFkok jkT; d foèkkueMy dk dkb vfèkfu;e fo'k"k jkT; e vulfpr {k= vFkok mld fdlh Hkkx ij ykx ugh gkxk vFkok jkT; e vulfpr {k= vFkok mld fdlh Hkkx ij ykx gkxk vkj bl mi ijkxkQ d vèkhu fn;k x;k dkb fun'k fn;k tk ldrk g ftldk Hkry{kh çHkko gkA*

पूर्वोक्त प्रावधान के सादे पठन से, स्पष्ट है कि राज्य का राज्यपाल सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा निर्देश दे सकता है कि कोई अधिनियम, जो पहले से ही अनुसूचित क्षेत्र में प्रवर्तन में है, लागू नहीं होगा अथवा कोई अधिनियम, जो अनुसूचित क्षेत्र में प्रयोज्य नहीं था, अधिसूचना की तिथि से लागू होगा। अत:, यदि भारत के संविधान के आरंभ होने के पहले किसी अनुसूचित क्षेत्र में किसी अधिनियम के कतिपय प्रावधान प्रयोज्य नहीं है तब यह भारत के संविधान के प्रारम्भ के उपरान्त भी प्रयोज्य नहीं होगा जब तक यह निर्देश देते हुए कि उक्त अधिनियम अब से अनुसूचित क्षेत्र में लागू होगा, राज्यपाल द्वारा अधिसूचना जारी नहीं की जाती है। वर्तमान मामले में, जैसा ऊपर गौर किया गया है, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 3 के अधीन जारी अधिसूचना द्वारा ओराँव और अन्य जनजातियों को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के कतिपय प्रावधानों से मुक्त किया गया है, अत: जब तक भारत के संविधान की पाँचवीं अनुसूची के खंड 5 (1) के अधीन अथवा भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 3 के अधीन राज्यपाल द्वारा एक अन्य अधिसूचना जारी नहीं किया जाता है, यह अनुसूचित क्षेत्र अर्थात् राँची

जिला में लागू नहीं होगा। यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं लाया गया है कि एकीकृत बिहार के राज्यपाल और/अथवा झारखंड के राज्यपाल ने यह निर्देश देते हुए कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के प्रावधान अब से राँची जिला में ओराँव एवं अन्य जनजातियों पर लागू होंगे, भारत के संविधान की पाँचवी अनुसूची के खंड 5(1) के अधीन अथवा भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 3 के अधीन किसी अधिसूचना को जारी किया था। अत: मैं अभिनिर्धारित करता हूँ कि दिनांक 3.5.1913 की अधिसूचना सं॰ 550 सह-पठित दिनांक 8.12.1931 की अधिसूचना सं॰ 2563J में उल्लिखित ओराँव एवं अन्य जनजातियाँ भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम से मुक्त है। अत: भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धाराओं 276 और 299 की ओराँव के मामले के प्रति कोई प्रयोज्यता नहीं है। तद्नुसार, यह प्रोबेट मामला पोषणीय नहीं है।

11. चूँकि, मैं इस निष्कर्ष पर आया हूँ कि मूल प्रत्यर्थी सं॰ 1 द्वारा दाखिल प्रोबेट केस पोषणीय नहीं है, अत:, मैं इस मामले में अंतर्ग्रस्त अन्य विवाद्यकों पर चर्चा नहीं कर रहा हूँ क्योंकि इनका मामले के परिणाम पर कोई प्रभाव नहीं है।

12. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, यह अपील अनुज्ञात की जाती है। आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है। किंतु, पक्षगण अपना व्यय स्वयं वहन करेंगे।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efrx.k

कृष्णा पूर्ति उर्फ किशुन पूर्ति

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal D.B. No. 731 of 2003. Decided on 3rd August, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 31 वर्ष 2000 में अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट सं॰ 1, चाईबासा द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 27.5.2003 और 28.5.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–अपीलार्थी ने अपनी पहली पत्नी की जलाकर हत्या कर दी–अभियोजन मामला चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा समर्थित–मृतक बयान देने में सक्षम थी और ऐसा बयान अभियोजन साक्षियों द्वारा पूर्णत: सिद्ध और संपुष्ट किया गया था–अभियोजन मामला अन्वेषण अधिकारी के वस्तुपरक निष्कर्षों द्वारा भी समर्थित–अपीलार्थी और मृतका के बीच विवाद और झगड़ा था–जलाए जाने के ऐसे मामलों में मृत्यु सामान्यत: उपचार के दौरान होती है–मामला भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304 के अधीन नहीं आता है–अपील खारिज। (पैराएँ 13 से 15)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajesh Kumar, For the Appellant; APP, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 31 वर्ष 2000 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट सं॰ 1, चाईबासा द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 27.5.2003 और दिनांक 28.5.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश से उद्भूत होती है जिसमें अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और आजीवन कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था और 4000/- रुपयों के जुर्माना का भुगतान करने और व्यतिक्रम में छह माह का कठोर कारावास अधिरोपित किया गया था।

2. अभियोजन मामला जेमा पूर्ति (अपीलार्थी की मृतका-पत्नी) के मृत्युकालिक कथन पर आधारित है। उसने शकुन्तला देवी, पुलिस सब-इंसपेक्टर, सदर थाना (न्यायालय गवाह-1) के समक्ष दिनांक 11.9.1999 को रात्रि लगभग 10 बजे अस्पताल के महिला वार्ड में इस प्रभाव का उक्त बयान दिया कि

अपीलार्थी की दो पत्नियाँ थी। पहली पत्नी जीवित थी। अपीलार्थी वन विभाग में चपरासी के रूप में कार्यरत था। वह उसे खर्च नहीं दिया करता था, जिसके लिए उस दिन उन दोनों के बीच सुबह में झगड़ा हुआ था। अपीलार्थी ने मृतका को किसी वन अधिकारी (के॰ के॰ चटर्जी) के बंगला में बुलाया जहाँ वह सायं लगभग 6 बजे पहुँची। अधिकारी उपस्थित नहीं था। बरामदा में, जहाँ अपीलार्थी रहा करता था, वह उससे पुनः झगड़ा करने लगा। अपीलार्थी क्रोधित हो गया और उसने उसके शरीर पर किरासन तेल छिड़का और आग लगा दिया जिससे वह जलने लगी। उसके चिल्लाने पर, अ॰ सा॰ 1 और 2 वहाँ पहुँचे और अपीलार्थी के साथ मृतका को उपचार के लिए अस्पताल ले गए।

3. पुलिस ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A और 307 के अधीन मामला दर्ज किया। मृतका जेमा पूर्ति की उपचार के दौरान चार दिन बाद अर्थात् दिनांक 14.1.1999 को मृत्यु हो गयी। आई॰ ओ॰ ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304B जोड़ा और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304B के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया गया था जिस पर संज्ञान लिया गया था। किंतु, विचारण न्यायालय ने पक्षों को सुनने के बाद आरोप भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन परिवर्तित कर दिया। तद्नुसार, आरोप विरचित किया गया था।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि मृत्युकालिक कथन विश्वसनीय नहीं है। यदि मृतका को 90% जलने की उपहति हुई थी, वह अपने फर्दबयान पर अपना हस्ताक्षर नहीं कर सकती थी। उन्होंने आगे निवेदन किया कि यह सिद्ध करने के लिए कि मृतका बयान देने की दशा में थी, इस मामले में डॉक्टर का परीक्षण नहीं किया गया है। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि अभियोजन मामले के मुताबिक भी अभिकथित घटना आवेग में झगड़ा के दौरान हुई और इसलिए अपीलार्थी को अधिकाधिक भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग I या भाग II के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता था।

5. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री वर्मा ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

6. बचाव यह था कि मृतका उसकी पत्नी नहीं थी। उसके पास आमदनी का स्वतंत्र स्रोत था और इसलिए अभिकथित घटनास्थल पर उसे बुलाने का प्रश्न नहीं था और कि प्राथमिकी विलंबित चरण पर दर्ज की गयी थी और कि अपीलार्थी को इस मामले में झूठा आलिप्त किया गया है।

7. अभियोजन ने सात गवाहों का परीक्षण कराया। अ॰ सा॰ 1 पांडे राम सरदार, वन रक्षक और अ॰ सा॰ 2 रघु हो, वन विभाग का चपरासी प्राथमिकी में नामित व्यक्ति हैं। उन्होंने इस प्रभाव के अभियोजन मामले का समर्थन किया कि वे मृतका की चीख सुनकर घटनास्थल पर आए। अपीलार्थी भी उपस्थित था। मृतका जल रही थी। अपीलार्थी सहित इन दोनों अभियोजन साक्षियों ने कपड़ों से आग बुझाया। अस्पताल में पुलिस आयी और इन गवाहों की उपस्थिति में मृतका ने अपना बयान दिया। पुलिस ने इन गवाहों का भी बयान लिया। इन दोनों गवाहों ने पुलिस के समक्ष मृतका द्वारा दिए गए बयान को संपुष्ट किया। यहाँ यह गौर किया जा सकता है कि आरोप के संशोधन के बाद, जब अ॰ सा॰ 2 का आगे प्रति परीक्षण किया गया था, उसने कहा कि मृतका बेहोश हो गयी और अस्पताल में दाखिल किए जाने के समय पर बेहोश रही और कि वह यह बताने की दशा में नहीं था कि उसे कब होश आया। किंतु, मृतका के बयान/मृत्युकालिक कथन को पूर्णतः संपुष्ट करते हुए अभिलेख पर उपलब्ध अन्य सामग्रियों की दृष्टि में अ॰ सा॰ 2 का ऐसा बयान अभियोजन मामले के लिए घातक नहीं है।

8. अ॰ सा॰ 3 फूलमनि मुंदरी सदर अस्पताल, चाईबासा की नर्स है। उसने विनिर्दिष्टत: कहा कि मृतका ने उसकी उपस्थिति में पुलिस के समक्ष बयान दिया था। उसने उसके द्वारा दिए गए बयान को संपुष्ट किया और फर्दबयान पर अपना हस्ताक्षर और मृतका का हस्ताक्षर सिद्ध किया। आरोप के संशोधन के बाद, इस गवाह का प्रति परीक्षण किया गया था। उसने विनिर्दिष्टत: कहा कि जब मृतका को अस्पताल लाया गया था, वह होश में थी और सही तरीके से बोल रही थी और पुलिस के समक्ष अपना बयान देते समय उसकी जबान लड़खड़ा नहीं रही थी और यह गवाह भी उपस्थित थी।

9. अ॰ सा॰ 4 मधुसूदन गगराय, वन विभाग के जीप का ड्राईवर है। उसके जीप में मृतका को अस्पताल ले जाया गया था। वह किरासन तेल की गंधयुक्त खाली बोतल और जली हुई माचिस की तीली के अभिग्रहण का गवाह है।

10. अ॰ सा॰ 5 सुखराम मुंडा वन विभाग में चपरासी है और अनुश्रुत गवाह है।

11. अ॰ सा॰ 6 डॉ॰ ललित मिंज चिकित्सा अधिकारी है जिसने शव परीक्षण संचालित किया और पाया कि तीस वर्षीय मृतका के सारे शरीर को अंतर्ग्रस्त करती लगभग 90% गहरी थर्मल बर्न उपहति हुई थी। एक्सिला, प्यूबिक क्षेत्र और नासिका के बाल जल गए थे। डॉक्टर ने मृतका के शरीर पर किसी अन्य उपहति को नहीं पाया था। उसने मत दिया कि मृत्यु का कारण रक्त का अत्यधिक बहना था और उसने आगे कहा कि यह सत्य नहीं है कि उपचार की कमी के कारण मृतका की मृत्यु हुई थी।

12. अ॰ सा॰ 7 सुनील बिहारी शरण मामले का अन्वेषण अधिकारी है। उसने अभियोजन मामले का समर्थन किया। उसने अन्य बातों के साथ कहा कि उसने घटनास्थल की जमीन पर काला निशान पाया था।

13. शकुन्तला सिंह, पुलिस की सहायक सब-इंसपेक्टर (न्यायालय गवाह-1) ने अन्य बातों के साथ साथ कहा कि उसे सूचक (मृतका) का फर्दबयान दर्ज करने के लिए भेजा गया था क्योंकि वह उस समय ड्यूटी पर थी। उसने अपने समक्ष मृतका द्वारा दिए गए बयान को संपुष्ट किया। उसने यह भी कहा कि मृतका होश में थी और वह प्रश्न समझने में सक्षम थी और सही तरीके से बोल रही थी। इस गवाह ने फर्दबयान पर अपना हस्ताक्षर सिद्ध किया। इस गवाह ने यह भी कहा कि बयान दर्ज किए जाते समय, डॉक्टर अस्पताल में उपलब्ध नहीं था और उसने फर्दबयान दर्ज करने के लिए और बयान देने की सूचक की क्षमता किसी डॉक्टर से अनुमति नहीं लिया था।

14. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन स्वीकार्य नहीं हैं। यह पूरी तरह स्पष्ट है कि मृतका बयान देने में सक्षम थी और ऐसा बयान अभियोजन गवाहों जैसे अ॰ सा॰ 1, 2, 3 और 7 और न्यायालय गवाह 1 द्वारा पूरी तरह सिद्ध और संपुष्ट किया गया है। आई॰ ओ॰ ने भी घटनास्थल पर जमीन पर काला निशान और किरासन तेल की गंधयुक्त बोतल और माचिस की जली तीलियों को पाया था। इन चीजों का अभिग्रहण भी पूरी तरह सिद्ध किया गया है। प्रतीत होता है कि मृतका और अपीलार्थी के बीच विवाद और झगड़ा था। उसे अपीलार्थी द्वारा उस स्थान पर बुलाया गया था जहाँ वह रह रहा था। वह वहाँ सायं लगभग 7 बजे पहुँची। अधिकारी बंगला में उपस्थित नहीं था। यह सत्य है कि झगड़ा हुआ था और अपीलार्थी क्रोधित हो गया था किंतु उस स्थिति में भी, यह उम्मीद नहीं की जाती थी कि वह मृतका पर किरासन तेल छिड़केगा और उसके शरीर में आग लगा देगा। जलने के ऐसे मामलों में मृत्यु सामान्यत: उपचार के दौरान होती है। डॉक्टर ने इससे इनकार किया कि मृतका की मृत्यु उपचार की कमी के कारण

हुई। सी॰ डब्ल्यू॰ 1 ने स्पष्टत: कहा कि साक्ष्य दर्ज किए जाते समय डॉक्टर अस्पताल में उपलब्ध नहीं था। अभियोजन गवाहों पर विश्वास नहीं करने का कोई कारण नहीं है। मामला भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304 के अधीन नहीं आता है।

15. पक्षों को सुनने और सावधानीपूर्वक अभिलेख का परिशीलन करने के बाद, हम आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं। तद्नुसार, इसे संपुष्ट किया जाता है। अपील खारिज की जाती है।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

भादे मुंडा एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 2530 of 2010. Decided on 15th July, 2011.

सेवा विधि–प्रोन्नति–बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 73—फंक्शनल मैनेजर के पद से उद्योग महाप्रबंधक/उपनिदेशक के पद पर प्रोन्नति का दावा–याचीगण, जिन्होंने मई, 2005 में झारखंड कैडर ज्वाइन किया था, को प्रोन्नति प्रदान नहीं किया गया था क्योंकि उनका बिहार कैडर अस्तित्वहीन हो गया था–नियत दिन के तुरन्त पहले प्रयोज्य सेवा शर्तें अधिकारी के अलाभ के लिए भिन्न नहीं की जा सकती है–याचीगण को उनके अधिकारपूर्ण दावे से वंचित नहीं किया जा सकता है–याचीगण के साथ उनके सहयोगियों, जिन्हें बिहार कैडर आवंटित किया गया था, की तुलना में भेदभाव नहीं किया जा सकता है–प्राधिकारी को मामले पर विचार करने का निर्देश। (पैराएँ 11 से 14)

निर्णयज विधि.–2005 (4) JLJR 292; 2008 (1) JLJR 154; 2011 (2) JLJR 149—Applied.

अधिवक्तागण.–Mr. Sumeet Gadodia, For the Petitioners; M/s Shamim Akhtar, Bhopal Prasad, S.P. Sinha, For the Respondents.

आदेश

याचीगण और प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित अधिवक्ता को सुना गया। प्रति और प्रत्युत्तर शपथपत्रों का आदान-प्रदान किया गया है। रिट याचिका अंतिम रूप से विनिश्चित की जा रही है।

2. वर्तमान रिट याचिका में याचीगण ने अनेक प्रार्थनायें की है किंतु याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने अपना तर्क प्रार्थना सं॰ (iii) तक सीमित रखा है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *^^;kphx.k dh lok'krk] tk fu;r fnu d rjUr igy fo|eku Fkh] dk mud vfgr d fy,] D;kfd ;g fcgkj iuxBu vfèkfu;e] 2000 dh èkkjk 73 d çkoèkkuk dk mYy?ku djrk g] ifjofrr@fHkUUk ugh dju d fy, çR;Fkx.k dk fun'k nr g, bl ekuuh; U;k;ky; l ijekn'k fjV lfgr vfrfjDr lefpr fjV@vkn'k@fun'k tkjh dju d fy,A***

3. याची सं॰ 1 और याची सं॰ 2 दोनों तत्कालीन बिहार राज्य के उद्योग विभाग के अधीन फंक्शनल मैनेजर के पद पर कार्यरत थे याची सं॰ 1 ने दिनांक 1.6.1990 को पदग्रहण किया है और याची सं॰ 2

ने दिनांक 1 अगस्त, 1990 को फंक्शनल मैनेजर का पदग्रहण किया है। कुछ अन्य के साथ याचीगण का उद्योग के महाप्रबंधक/उपनिदेशक के पद पर प्रोन्नति का दावा तब प्रोद्भूत हुआ जब बिहार और झारखंड राज्य को द्विभाजित नहीं किया गया था। चूँकि कुछ अन्य के साथ वर्तमान दो याचीगण की प्रोन्नति पर तत्कालीन बिहार राज्य द्वारा विचार नहीं किया जा रहा था, रिट याचिका सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 115 वर्ष 2004 दाखिल की गयी थी। दिनांक 30 अप्रिल, 2004 को अंतत: इस संप्रेक्षण के साथ रिट याचिका विनिश्चित की गयी थी कि वर्ष 1999 से ही कैबिनेट सचिवालय से अनुमोदन की प्रतीक्षा की जा रही थी और एक अथवा अन्य बहाने मामला विलंबित किया जा रहा था। अंतत: आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर याचीगण की प्रोन्नति से संबंधित अंतिम निर्णय लेने के लिए राज्य सरकार को निर्देश देते हुए रिट याचिका निपटायी गयी थी। याचीगण मई, 2005 तक संयुक्त कैडर में काम करते रहे और केवल पूर्वोक्त तिथि के बाद ही वर्तमान याचीगण का कैडर झारखंड राज्य के रूप में नियत किया गया था।

4. याचीगण की शिकायत यह है कि बिहार राज्य में याचीगण के साथ अन्य दावेदारों को प्रोन्नति प्रदान की गयी है किंतु याचीगण के दावे पर अभी तक अनुपालन नहीं किया गया है।

5. प्रतिवाद कर रहे प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता के अनुसार दावा विचाराधीन है। राज्य के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि ग्रेडेशन सूची तैयार की गयी है, आपत्तियाँ आमंत्रित की गयी हैं और सरकार जल्द ही निर्णय लेने जा रही है।

6. राज्य का यह प्रतिवाद याचीगण द्वारा विवादित किया गया है। ग्रेडेशन सूची तैयार की गयी है और इसे अनेक अन्य याचीगण द्वारा चुनौती दी गयी है।

7. इन परिस्थितियों में याचीगण की ओर से दिया गया तर्क यह है कि बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 73 का परंतुक कथन करता है कि ''किसी व्यक्ति के मामले में, जिसे धारा 72 के अधीन बिहार राज्य को अथवा झारखंड राज्य को आवंटित किया गया समझा गया है, नियत दिन के तुरन्त पहले प्रयोज्य सेवा की शर्तों को केंद्र सरकार के पूर्वानुमोदन को छोड़कर उसके अहित के लिए बदला नहीं जाएगा।''

8. इस परिस्थिति में, जोरदार तर्क यह है कि चूँकि याचीगण पहले बिहार और झारखंड के संयुक्त राज्य के लिए कार्यरत थे और नियत दिन पर वे बिहार राज्य में बने हुए थे किंतु उनका कैडर केवल वर्ष 2005 में नियत किया गया था जब उन्होंने प्रोन्नति के अपने अधिकार को पहले ही पुख्ता कर लिया था, उन्हें किसी अहित के अध्यधीन नहीं किया जाना चाहिए जैसा बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 73 में प्रावधानित है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन पर जोर देने के लिए अनेक निर्णयों पर विश्वास किया है कि चूँकि उनको बहुमूल्य अधिकार तब प्रोद्भूत हुआ था जब उनका कैडर नियत नहीं किया गया था, अत: ऐसा अधिकार केवल इसलिए वापस नहीं लिया जा सकता है क्योंकि उन्हें झारखंड कैडर आवंटित किया गया है। **श्याम बहादुर सिन्हा बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य,** (2008)1 JLJR 154, मामले में निर्णय का पैराग्राफ 5 नीचे उद्धृत किया जा रहा है:–

> *^^;kphx.k dh vkj l mifLFkr fo}ku vfèkoDrk] Jh vkj0 e[kkikè;k; u fuonu fd;k fd u, jkT; d l tu d ckn >kj[kM ljdkj jkT; d f}Hkkt u d vfHkopu ij dkb vfèkdkj okil ugh y ldrh g ft l depkjh e fufgr fd;k x;k gA fo}ku vfèkoDrk u fuonu fd;k fd mud fofgr vfèkdkj l ;kphx.k dk*

*ofpr dju okyk vk{kfir vkn'k euekuk g vkj i.kr% vfèkdkfjrkfoghu gA fo}ku vfèkoDrk u vkx fuonu fd;k fd leku ekey] jkt efu frokjh cuke >kj[kM jkT; ,o vU;] 2007 (3) JLJR 514, e bl U;k;ky; u vfHkfuèkkfjr fd;k g fd ;|fi ljdkj u;k uhfrxr fu.k; yu d fy, l'kDr g] fdr igy l gh fufgr fdlh vfèkdkj dk okil yu vFkok depkjh dk bll ofpr dju dk çkfèkdkj ljdkj dk ugh gA og uhfrxr fu.k;] tk ;kphx.k d cgeY; vfèkdkj dk okil yrk g] Hkry{kh çHkko l fØ;kfUor ugh fd;k tk ldrk gA vk{kfir i= fcgkj iuxBu vfèkfu;e dh èkkjk 73 d fo#) gA***

10. बिहार पुनर्गठन अधिनियम की धाराओं 72 और 73 के मुकाबले किसी कर्मचारी के लाभ से संबंधित एक अन्य मामला **सुखदेव ओराँव एवं लाल बहादुर मिश्रा बनाम झारखंड राज्य,** (2005)4 JLJR 292 है और तीसरा मामला **तपेश्वर चौधरी बनाम झारखंड राज्य,** (2011)2 JLJR 149 है जिन्हें याचीगण के प्रतिवाद के समर्थन में उद्धृत किया गया है।

11. समस्त तीनों मामलों में विचारार्थ समरुप प्रश्न उद्भूत हुआ और वह दावा, जो कैडर के आवंटन के पहले याचीगण को प्रोद्भूत हुआ था, को संबंधित नियोक्ता के साथ बने रहने का निर्देश दिया गया था क्योंकि आवंटित राज्य द्वारा ऐसा कुछ भी नहीं किया जा सकता है जो सम्बन्धित अधिकारीगण को क्षति पहुँचाए। ऐसे सात अधिकारीगण थे जो बिहार में फंक्शनल मैनेजर के रूप में कार्यरत थे और उन्होंने उच्चतर पद पर अपनी प्रोन्नति का दावा किया और रिट याचिकाओं को दाखिल किया। याचिकाओं को अनुज्ञात किए जाने के बाद, वे कैडर के नियतिकरण की तिथि तक फंक्शनल मैनेजर के रूप में बने रहे। अन्य चार अधिकारीगण, जो बिहार में बने रहे, को रिट याचिका के आदेश तथा बिहार सरकार द्वारा लिए गए पारिणामिक निर्णय के अनुसरण में पहले ही प्रोन्नति प्रदान की जा चुकी है। याचीगण, जिन्होंने मई, 2005 में झारखंड कैडर ज्वाइन किया, को प्रोन्नति नहीं दी गयी थी क्योंकि उनका बिहार कैडर अस्तित्वहीन हो गया था।

12. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद पूर्णत: न्यायोचित प्रतीत होता है और विश्वास किए गए निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूरी तरह प्रयोज्य हैं। स्पष्टत: बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 73 के प्रावधान अनुबंधित करते हैं कि किसी अधिकारी, जिसे बिहार राज्य अथवा झारखंड राज्य आवंटित किया गया है, के मामले में नियत दिन के तुरन्त पहले प्रयोज्य सेवा की शर्तों को उसके अहित में बदला नहीं जाएगा। अत: याचीगण को उनके सही दावे से वंचित नहीं किया जा सकता है।

13. इस परिस्थिति में, मैं इस निर्देश के साथ रिट याचिका निपटाती हूँ कि संबंधित प्राधिकारी अपने समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से छह सप्ताह की अवधि के भीतर मामले पर विचार करेगा और शर्तों, जो उनके कैडर नियत किए जाने की तिथि पर उनको प्रोद्भूत हुए थे, के अनुकूल आदेश पारित करेगा। यह स्पष्ट किया जाता है कि याचीगण के साथ उनके सहकर्मियों, जिन्हें बिहार कैडर आवंटित किया गया था, के विरुद्ध भेदभाव नहीं किया जा सकता है।

तद्नुसार, रिट याचिका निपटायी जाती है।

14. यह स्पष्ट किया जाता है कि याचीगण को किसी अतिरिक्त अहित के अध्यधीन करने के लिए राज्य सरकार इस निर्णय के अनुरुप समुचित आदेश पारित करने में विफल नहीं होगी।

ekuuh; çdk'k rkfr;k] dk;dkjh e[; U;k;kèkh'k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efr

सरजू प्रसाद मेहता

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 564 of 2009. Decided on 1st August, 2011.

बिहार एवं उड़ीसा लोक मांग वसूली अधिनियम, 1914—धारा 3—बिहार लघु खनिज रियायत नियमावली, 1972—नियम 37 एवं 40—वर्ष 1972 की नियमावली के अधीन खनिज का निष्कर्षण लोक मांग के रूप में सांविधिकत: घोषित किया गया है और यह वसूल किए जाने योग्य है—किराया, रॉयल्टी अथवा पेनाल्टी की राशियाँ लोक मांग के रूप में वसूल किए जाने योग्य है—याची विधि के प्रश्न पर कोई मामला नहीं है—याची ने नोटिसों को स्वीकार करने से इनकार किया और तत्पश्चात मांग की गयी थी—अन्यथा भी, रिट याचिका 16 वर्षों के विलंब के बाद दाखिल की गयी थी—खनिजों को गैर कानूनी रूप से निकालने के लिए व्यय, दंड और प्रभार की वसूली के लिए भिन्न प्रक्रिया नहीं है—अपील खारिज। (पैराएँ 5, 7 से 9)

निर्णयज विधि.—ILR 1956 Cuttack 365; AIR 1981 Patna 149; 1987 PLJR 47 (FB)—Distinguished.

अधिवक्तागण.—M/s M.K. Habib, Om Prakash, For the Appellant; JC to Advocate General, For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.—पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची की रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3695 वर्ष 2009 दिनांक 13 नवंबर, 2009 के आदेश के तहत खारिज कर दी गयी है। अपीलार्थी की लेटर्स पेटेन्ट अपील न केवल इस आधार पर खारिज किए जाने की दायी है कि रिट याची इस अभिवचन के साथ कि रिट याची पर नोटिस तामील किए बिना लोक मांग उठायी गयी है और इसलिए रिट याची को उक्त मांग का प्रतिवाद करने का अवसर नहीं मिल सका था और उसको इसकी कोई जानकारी नहीं थी, अत: उसे वर्ष 1993 की कार्यवाही को चुनौती नहीं देने के लिए वाद रहित नहीं किया जा सकता है, वर्ष 2009 में रिट याचिका दाखिल करके, जो लगभग 16 वर्षों के विलंब के बाद दाखिल किया गया है, बिहार एवं उड़ीसा लोक मांग वसूली अधिनियम, 1914 के सांविधिक प्रावधानों के अधीन वर्ष 1993 में की गयी कार्यवाही को चुनौती दे रहा है।

3. विलंब के लिए दिया गया स्पष्टीकरण इस सादे और सरल कारण से खारिज किए जाने का दायी है कि ऑर्डर शीट, जिसे रिट याची-अपीलार्थी द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है, स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि रिट याची पर नोटिसों को तामील करने के लिए अनेक प्रयास किए गए थे और दिनांक 2 नवम्बर, 1993 के आर्डर शीट में यह स्पष्टत: ध्यान में लिया गया है कि याची ने नोटिसों को स्वीकार करने से इनकार किया और तत्पश्चात् 3,33,741/- रुपयों के लिए याची के विरुद्ध मांग उठाते हुए आदेश पारित किया गया था।

4. तर्क के ख्याल से यह उपधारित करते हुए भी कि रिट याची पर नोटिस समुचित रूप से तामील नहीं किया गया था, तब भी याची ने स्वीकृत रूप से इसी प्राधिकारी के समक्ष नोटिस के तामीले को चुनौती देना नहीं चुना था जब उसे उसके विरुद्ध उठायी गयी मांग की जानकारी मिली थी। अभिलेख पर प्रस्तुत कार्यवाही की प्रति स्पष्टत: उपदर्शित करती है कि कार्यवाही वर्ष 1993 से वर्ष 2007 तक जारी रही। ऑर्डर

शीट में दर्ज तथ्यों के मुताबिक, यह प्रतीत होता है कि अनेक आदेशिकाएँ जारी की गयी थीं और, इसलिए, यह स्पष्ट करने का भार रिट याची पर है कि उसने संबंधित प्राधिकारी द्वारा जारी नोटिसों को प्राप्त नहीं किया है और रिट अधिकारिता वह अधिकारिता नहीं है जहाँ ऐसा प्रश्न कि क्या याची पर नोटिस तामील किया गया था या नहीं, विनिश्चित किया जा सकता था।

5. चाहे जो भी हो, हम गुणागुण से भी पाते हैं कि याची का विधि के प्रश्न पर कोई भी मामला नहीं है। याची–अपीलार्थी के अधिवक्ता ने हमारा ध्यान लोक मांग की परिभाषा की ओर आकृष्ट किया है जैसा इसे धारा 3 की उपधारा (6) में परिभाषित किया गया है, जो कहती है कि ''लोक मांग'' का अर्थ है अनुसूची–I में उल्लिखित अथवा निर्दिष्ट कोई बकाया अथवा धन और जो किसी ब्याज जो विधि द्वारा उस पर उस तिथि, जिस पर भाग–II के अधीन प्रमाण पत्र हस्ताक्षरित किया गया है, पर प्रभार योग्य हो सकता है।

अनुसूची–I खंड 4 के अधीन उपखंड (i) अंतर्विष्ट करती है जो कहती है कि कोई धन, जो तत्समय प्रवर्तित किसी अधिनियम द्वारा मांग अथवा लोक मांग घोषित किया गया है, वर्ष 1914 के अधिनियम के प्रावधानों के अधीन वसूल किए जाने योग्य है। बिहार लघु खनिज रियायत नियमावली, 1972 का नियम 37 स्पष्टत: घोषित करता है कि इस नियमावली के अधीन भुगतान योग्य किराया, रॉयल्टी अथवा दंड की राशियाँ बिहार लोक मांग वसूली अधिनियम, 1914 के अधीन लोक मांग के रूप में वसूल किए जाने योग्य होंगी। इसका नियम 40 लघु खनिजों के अप्राधिकृत निष्कर्षण और हटाए जाने के लिए दंड विहित करता है और इस नियमावली के अधीन संपूर्ण प्रक्रिया दी गयी है कि लघु खनिजों के अप्राधिकृत निष्कर्षण एवं हटाए जाने के लिए क्या कार्रवाई की जा सकती है और नियम 40 का उपनियम (8) कहता है कि इस नियमावली से भिन्न प्रकार से वैध पट्टा/परमिट के बिना जो कोई भी लघु खनिज हटाता है अथवा जिसकी ओर से, चाहे वह एजेंट, प्रबंधक, ठेकेदार अथवा उप–पट्टाधारी हो, हटाया जाता है, उसे लघु खनिजों को गैर कानूनी रूप से हटाने वाला पक्ष उपधारित किया जाएगा और वह इसकी कीमत का भुगतान करने का दायी होगा और सरकार ऐसे व्यक्ति से किराया, रॉयल्टी, कर, जैसा भी मामला हो, वसूल कर सकती है। अत: वर्ष 1972 की नियमावली के अधीन खनिज के किसी निष्कर्षण को लोक मांग के रूप में सांविधिकत: घोषित किया गया है और इसलिए यह वसूल किए जाने योग्य है।

6. उक्त कारणों की दृष्टि में, **राम चंद्र सिंह बनाम झारखंड राज्य,** 1987 PLJR 47 (FB) मामले में दिया गया पूर्णपीठ का निर्णय, और **निरोद बरन बनर्जी बनाम बिहार राज्य, AIR 1981 Patna 149,** में स्थिति और एक अन्य मामले **ILR 1956 कटक 365 (सौदामिनि वर्क्स बनाम उड़ीसा राज्य)** जिस निर्णय की प्रति नहीं दी गयी है और जिसके एक अंश को बिहार एवं उड़ीसा लोक मांग वसूली अधिनियम, 1914 की किताब में पृष्ठ 3 पर उद्धृत किया गया है, में स्थिति, जिस पर याची–अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने विश्वास किया है, प्रयोज्य नहीं है क्योंकि उनमें ऐसी नियमावली विचाराधीन नहीं थी।

7. याची–अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस चरण पर निवेदन किया कि प्रश्नगत वस्तु/माल लघु खनिज नहीं बल्कि मुख्य खनिज था।

यदि ऐसा है, तब भी खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 3 के उपखंड (a) में दी गयी खनिज की परिभाषा स्पष्टत: प्रदर्शित करती है कि वर्ष 1957 का अधिनियम समस्त खनिजों और न कि केवल लघु खनिजों, को आच्छादित करती है और मुख्य खनिज को भी सम्मिलित करती है।

8. चाहे जो भी हो, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता खनिजों के गैर कानूनी निष्कर्षण के लिए व्यय, दंड और प्रभारों की वसूली के लिए कोई भिन्न प्रक्रिया दर्शा नहीं सके थे।

9. उक्त कारणों की दृष्टि में, हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए कारणों के अतिरिक्त कारणों से इस लेटर्स पेटेन्ट अपील में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं। तद्नुसार, लेटर्स पेटेन्ट अपील खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] dk;dkjh e[; U;k;kèkh'k ,o t;k jk;] U;k;efr

मेसर्स सत्यम एसोसिएट्स

cuke

केनरा बैंक एवं एक अन्य

L.P.A. No. 175 of 2011. Decided on 23rd August, 2011.

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण तथा पुनर्गठन एवं प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002—धाराएँ 13 एवं 14—प्रतिभूतिकरण के अधीन कार्यवाही के लिए डी॰ आर॰ टी॰ द्वारा राशि का अवधारण पूर्व शर्त नहीं है–धारा 13 के अधीन कार्यवाही के लिए अधिकरण का आदेश आवश्यक नहीं है–वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 17 के अधीन डी॰ आर॰ टी॰ के समक्ष अपील के उपचार का लाभ लेने की स्वतंत्रता के साथ अपील खारिज।

(पैराएँ 7 से 11)

निर्णयज विधि.–(2008)1 SCC 125; 2009 (3) JLJR 448—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Ramawtar Chamaria, For the Appellant; None, For the Respondents.

आदेश

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. अपीलार्थी अपनी रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 5184 वर्ष 2009 को दिनांक 29.3.2011 के आदेश द्वारा खारिज किए जाने से व्यथित है।

3. याची–अपीलार्थी का प्रतिवाद यह है कि प्रत्यर्थी–बैंक ने वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण तथा पुनर्गठन एवं प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (इसमें इसके बाद ''वर्ष 2002 का अधिनियम'' के रूप में निर्दिष्ट) के अधीन कार्रवाई आरंभ किया है, रिट याची–अपीलार्थी के दायित्व को विनिश्चित नहीं किया है और न ही इसकी धारा 14 के अधीन प्रक्रिया का अनुसरण किया है और इसलिए वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 के अधीन प्रक्रिया के उल्लंघन की दृष्टि में प्रत्यर्थी–बैंक द्वारा याची की इकाई के अधिग्रहण को मान्यता नहीं दिया जा सकता है। यह निवेदन भी किया गया है कि रिट याचिका दाखिल किए जाते समय प्रत्यर्थी–बैंक ने कर्ज वसूली अधिकरण के समक्ष आवेदन तक नहीं दिया था, डी॰ आर॰ टी॰ द्वारा याची के दायित्व के अवधारण की तो बात ही दूर, और कर्ज वसूली अधिकरण के समक्ष पश्चातवर्ती आवेदन प्रासंगिक नहीं है। यह प्रतिवाद भी किया गया है कि याची ने अपने खाते को एन॰ पी॰ ए॰ के रूप में घोषित किए जाने पर आपत्ति दर्ज किया था किंतु इस पर विचार नहीं किया गया है और बैंक द्वारा इसे अस्वीकार कर दिया गया है। अत:, याची की संपत्ति पर काबिज होने के लिए बैंक वर्ष 2002 के अधिनियम की धाराओं 13 और 14 के अधीन अग्रसर नहीं हो सकता था।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **पंजाब एण्ड सिंध बैंक एवं अन्य बनाम मेसर्स स्टैन कॉमोडिटिज प्रा॰ लि॰,** 2009 (3) JLJR 448, में इस न्यायालय की खंड पीठ द्वारा दिए गए निर्णय पर विश्वास किया और निवेदन किया कि उक्त निर्णय में इस न्यायालय की खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि जब तक कर्ज वसूली अधिकरण द्वारा दायित्व विनिश्चित नहीं किया जाता है, वर्ष 2002 के अधिनियम के अधीन कार्यवाही आरंभ नहीं की जा सकती है।

5. हमने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और मामले के तथ्यों का परिशीलन किया है।

6. याची–अपीलार्थी का स्वीकृत मामला यह है कि बैंक वर्ष 2002 के अधिनियम के अधीन एकदम से अग्रसर हुआ तथा रिट याचिका दाखिल किए जाते समय, ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष कोई भी मामला लम्बित नहीं था। 2002 का अधिनियम एक पृथक और स्वतंत्र अधिनियम है और यह बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को कर्ज बकाया वसूली अधिनियम, 1993 पर निर्भर नहीं है और बैंक कर्ज वसूली अधिकरण के समक्ष गए बिना वर्ष 2002 के अधिनियम के अधीन अग्रसर हो सकता था। प्रतिभूति हित का प्रवर्तन प्रावधानित करते हुए वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 13 अध्याय III में है और इसकी उपधारा (1) प्रावधानित करती है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 69A में अंतर्विष्ट किसी चीज के बावजूद इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुकूल ऐसे देनदार द्वारा न्यायालय अथवा अधिकरण के मध्यक्षेप के बिना किसी प्रतिभूत देनदार के पक्ष में सृजित कोई प्रतिभूति हित प्रवर्तित किया जा सकता है। अतः, सर्वोपरि खंड से आरंभ होते हुए इस धारा 13(1) से स्पष्ट है कि वित्तीय संस्थान न्यायालय अथवा अधिकरण के मध्यक्षेप के बिना संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 69 और 69A के प्रावधानों को दरकिनार करते हुए प्रतिभूत राशि की वसूली प्रवर्तित कर सकते हैं। वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (2) प्रावधानित करती है कि जहाँ कोई लेनदार, जो प्रतिभूति करार के अधीन किसी प्रतिभूत देनदार के दायित्व के अधीन है, प्रतिभूत कर्ज अथवा इसके किसी किश्त के पुनर्भुगतान में व्यतिक्रम करता है और ऐसे कर्ज के संबंध में प्रतिभूत देनदार द्वारा उसके खाता को नॉन परफॉर्मिंग आस्ति के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, तब प्रतिभूत देनदार लेनदार से नोटिस की तिथि से साठ दिनों के भीतर प्रतिभूत देनदार को लिखित में नोटिस द्वारा अपने दायित्वों के पूर्ण निर्वहन की अपेक्षा कर सकता है जिसमें विफल होने पर प्रतिभूत देनदार धारा 13 की उपधारा (4) के अधीन अधिकारों में से समस्त अथवा किसी एक का प्रयोग करने का हकदार होगा। धारा 13(4) का खंड (a) देनदार को लेनदार की प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने के लिए सशक्त बनाता है। जैसा हमने पहले ध्यान में लिया है, धारा 13 की उपधारा (1) के अधीन कर्जदार की आस्तियों का कब्जा लेने के लिए वित्तीय संस्थान को किसी न्यायालय अथवा अधिकरण से डिक्री अथवा आदेश प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। वित्तीय संस्थान द्वारा कब्जा लेने की प्रक्रिया वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 में दी गयी है।

7. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता हमारा ध्यान प्रावधानों में से किसी के ओर आकृष्ट नहीं कर सके थे जो प्रावधानित करता हो कि धारा 13(3) के अधीन कार्रवाई करने के लिए कर्ज वसूली अधिकरण से आदेश प्राप्त करने की पूर्वापेक्षित शर्त है और अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क धारा 13 (1) के प्रावधानों के बिल्कुल विपरीत है जो स्पष्टतः प्रावधानित करता है कि प्रतिभूत देनदार अधिकरण के मध्यक्षेप के बिना और न्यायालय के मध्यक्षेप के बिना अपने अधिकारों को प्रवर्तित कर सकते हैं। **पंजाब एण्ड सिंध बैंक एवं अन्य (ऊपर)** के मामले में दिया गया निर्णय, जिस पर अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने विश्वास किया है, कहीं नहीं कहता है कि कर्ज वसूली अधिकरण द्वारा राशि का अवधारण प्रतिभूतिकरण अधिनियम के अधीन कार्यवाही की पूर्व शर्त है और यह निर्णय संक्षिप्त निर्णय है जिसमें वर्ष 2002 के अधिनियम के अधीन की गयी अपीलार्थी–बैंक की कार्रवाई को अभिखंडित और अपास्त करता हुआ विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्देश भी स्थगित कर दिया गया था और **ट्रासकोर बनाम भारत संघ एवं एक अन्य, (2008)1 SCC 125,** में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास करने के बाद यह ध्यान में लिया गया है कि उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्टतः अभिनिर्धारित किया है कि कर्ज वसूली अधिकरण अधिनियम के अधीन कार्यवाही एन॰ पी॰ ए॰ ऐक्ट का सहारा लेने के लिए पूर्वशर्त नहीं है और प्रतिभूतिकरण अधिनियम, 2002 की धारा 13 से स्पष्ट है कि वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 13 के अधीन कार्यवाही के लिए अधिकरण का आदेश आवश्यक नहीं है।

8. इस चरण पर, यहाँ यह उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा कि धारा 13(2) के अधीन अपीलार्थी-याची पर सम्यक रूप से नोटिस तामील किया गया था जिसके लिए रिट याची-अपीलार्थी ने अपना अभ्यावेदन दाखिल किया था और यह प्रतिवाद किया गया है कि याची के अभ्यावेदन पर विचार नहीं किया गया है और यदि ऐसा है, तब यह वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 17(1) के प्रावधानों के मुताबिक विधि के अनुकूल प्रत्यर्थी-बैंक की कार्रवाई को चुनौती देने का आधार हो सकता है। यह विनिर्दिष्टत: प्रावधानित किया गया है कि धारा 13(2) में निर्दिष्ट कोई व्यक्ति ऐसी स्थिति में वित्तीय संस्थान की कार्रवाई के विरुद्ध कर्ज वसूली अधिकरण के समक्ष कोई अपील दाखिल कर सकता है।

9. उक्त कारणों की दृष्टि में भी, विद्वान एकल न्यायाधीश यह अभिनिर्धारित करने में न्यायोचित थे कि यदि याची प्रत्यर्थी-बैंक की कार्रवाई से व्यथित था, वह वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 17 के अधीन अपील दाखिल कर सकता था।

10. उक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए, हमारा सुविचारित मत है कि इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है। तद्नुसार इस अपील को खारिज किया जाता है।

11. इस चरण पर, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अपीलार्थी को वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 17 के अधीन कर्ज वसूली अधिकरण के समक्ष अपील के उपचार का लाभ लेने की अनुमति दी जा सकती है। यदि अपीलार्थी इसका सहारा लेना चाहता है, वह ऐसा करने के लिए स्वतंत्र है। यदि अपीलार्थी परिसीमा आवेदन के साथ वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 17 के अधीन अपील दाखिल करता है, कर्ज वसूली अधिकरण समस्त परिस्थितियों को विचार में लेने के बाद समुचित आदेश पारित कर सकता है।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

अर्जुन यादव

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 482 of 2011. Decided on 10th August, 2011.

सरकारी संविदा–निविदा–करार का रद्दकरण–नोटिस अथवा सुनवाई के अवसर के बिना एकपक्षीय रूप से करार रद्द किया गया–यह एक अकारण आदेश है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध है–प्रति शपथ पत्र में पहली बार कारणों को प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है–याची को बहुमूल्य अधिकार से वंचित किया गया जो उसे करार के निष्पादन के बाद प्रोद्भूत हुआ–राज्य की कार्रवाई तर्कपूर्ण और पारदर्शी होना होगा–आक्षेपित आदेश अभिखंडित। (पैराएँ 7 से 11)

निर्णयज विधि.–(1978)1 SCC 405—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Ananda Sen, For the Petitioners; J.C. to A.G., For the Respondents; Mr. P.K. Prasad, For the Intervenor.

आदेश

आई॰ ए॰ सं॰ 2065 वर्ष 2011

मेसर्स बी॰ के॰ इंटरप्राइजेज के स्वत्वधारी श्री बी॰ के॰ यादव की ओर से मध्यक्षेप आवेदन आई॰ ए॰ सं॰ 2065 वर्ष 2011 दाखिल किया गया है।

मध्यक्षेप आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। वर्तमान रिट याचिका में आवेदक को प्रत्यर्थी सं॰ 5 के रूप में जोड़ा जाय।

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 482 वर्ष 2011

याची और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया। मध्यक्षेपी के लिए वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ प्रसाद उपस्थित हुए और अपना तर्क दिया।

2. वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित आदेश दिनांक 17.1.2011 का परिशिष्ट–4 है जिसके द्वारा करार सं॰ 02F2/10-11 रद्द कर दिया गया था। दिनांक 17 जनवरी, 2011 का पत्र केवल सूचना है कि याची की ओर से करार रद्द कर दिया गया है।

3. याची की ओर से प्रतिवाद यह है कि दिनांक 19.9.2010 के प्रकाशन के तहत चलकुसा प्रखंड कार्यालय, अंचल कार्यालय और आवासीय गृहों के निर्माण के लिए निविदा आमंत्रित की गयी थी। उक्त विज्ञापन के अनुसरण में याची के फर्म मेसर्स ज्योति इंटरप्राइजेज ने आवेदन दिया था और उसकी बोली स्वीकार की गयी थी। इसके परिणामस्वरुप, याची ने दिनांक 2.12.2010 को करार किया और 6,95,000/- रुपया जमा करने के बाद उसे काम दे दिया गया था। इसके पहले 4,65,000/- रुपयों का अग्रिम धन भी जमा किया गया था। इन ताथ्यिक पहलूओं को परिशिष्ट–3 द्वारा प्रकट किया गया था जो रिट याचिका में संलग्न दिनांक 2.12.2010 का पत्र संख्या 1663 है। दिनांक 2.12.2010 को ही काम शुरू करने के लिए पत्र सं॰ 1664 के तहत एक अन्य पत्र जारी किया गया था।

4. याची की ओर से प्रतिवाद यह है कि उसने 5,00,000/- रुपयों का निवेश किया और ठेका मजदूरों को अग्रिम दिया गया था ताकि 18 माह की समय सीमा के भीतर उसको आवंटित काम पूरा किया जा सके। यह प्रतिवाद भी किया गया है कि साइट पर 20 लाख रुपए मूल्य की सामग्री खरीदी गयी थी और याची द्वारा इसे इकट्ठा किया गया था जिसका अर्थ था कि याची ने प्रत्यर्थीगण द्वारा उसको आवंटित काम की ओर विपुल राशि का निवेश किया था।

5. याची की शिकायत यह है कि जब एक बार उसकी निविदा स्वीकार कर ली गयी थी, करार निष्पादित कर दिया गया था और उसे काम शुरू करने के लिए कहा गया था, धन की विपुल राशि के निवेश के बाद करार नोटिस अथवा सुनवाई के अवसर के बिना एकपक्षीय रूप से एक पत्र द्वारा रद्द नहीं किया जा सकता था जैसा वर्तमान मामले में किया गया है।

6. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय के ध्यान में यह लाने का प्रयास किया है कि मुख्य अभियंता द्वारा पारित आदेश और परिणामस्वरुप निष्पादित करार अधिकारितावहीन था क्योंकि वह ऐसा करने के लिए प्राधिकृत नहीं था और, इसलिए, याची के पक्ष में आवंटन रद्द कर दिया गया था।

7. यह स्पष्टीकरण पहली बार रिट याचिका में प्रति शपथ पत्र में दिया गया है किंतु याची को उसकी निविदा के रद्दकरण के पहले ऐसे तथ्यों अथवा परिस्थितियों के बारे में नहीं बताया गया था। यह प्रकटत: एक अकारण आदेश है और इसलिए नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों और निष्पक्षता के विरुद्ध है। प्रति शपथ पत्र में पहली बार कारणों को प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है। यह सिद्धांत काफी पहले वर्ष 1978 में **मोहिंदर सिंह गिल बनाम मुख्य निर्वाचन आयुक्त, 1978 (1) SCC 405,** में अधिकथित किया जा चुका है।

8. इस न्यायालय द्वारा पहले दिए गए निर्देशानुसार सचिव, भवन निर्माण विभाग और सचिव, ग्राम विकास विभाग द्वारा शपथ पत्रों को दाखिल किया गया है और, इस प्रकार, दिनांक 15.6.2011 के आदेश का पूर्ण अनुपालन किया गया है।

9. इन तथ्यों और परिस्थितियों में यह स्पष्ट है कि याची के अधिकार को काफी हद तक परिसंकट में डाला गया है और उसे बहुमूल्य अधिकार से वंचित किया गया है जो करार के निष्पादन के बाद और काम शुरू करने के लिए प्रत्यर्थीगण से निर्देश के बाद उसे प्रोद्भूत हुआ था किंतु कोई कारण दिए बिना गैरकानूनी रूप से उसे रोक दिया गया है जो नहीं किया जा सकता है क्योंकि राज्य की कार्रवाई को तर्कपूर्ण और पारदर्शी होना होगा जो स्पष्टत: आक्षेपित आदेश में गायब है और, इसलिए, मेरे दृष्टिकोण में दिनांक 17.1.2011 का आदेश अभिखंडित किए जाने का दायी है।

10. मेरे ध्यान में यह भी लाया गया है कि बाद में दिनांक 22.1.2011 को पश्चातवर्ती निविदा आमंत्रित की गयी थी और नयी निविदा के अनुसरण में, तृतीय पक्ष को आवंटन दिया गया है। यह काम याची के करार को रद्द करने के तुरन्त बाद किया गया था जिसे वैधतापूर्वक नहीं किया जा सकता था।

11. उपर जो कुछ कहा गया है उसकी दृष्टि में दिनांक 17.1.2011 का आक्षेपित आदेश एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efrx.k

निरंजन गोरैन

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (DB) No. 167 of 2002. Decided on 18th August, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 205 वर्ष 2000 में द्वितीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा पारित दिनांक 18 मार्च, 2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—पत्नी की हत्या–आजीवन कारावास–अपीलार्थी घटना के बाद फरार नहीं हुआ–यह आचरण अभिकथित अपराध में उसकी भूमिका के बारे में संदेह सृजित करता है–किसी वस्तु अथवा हथियार का अभिग्रहण मेमो अभिलेख पर नहीं लाया गया–अभियोजन द्वारा बनायी गयी कहानी संदेहास्पद प्रतीत होती है–गवाहों के साक्ष्य में तात्विक विरोधाभास पाया गया–अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिए जाने की आवश्यकता–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 9 से 11)

अधिवक्तागण.–M/s A. K. Kashyap, Ravi Prakash, For the Appellant; Mr. T. N. Verma, For the State.

पी॰ पी॰ भट्ट, न्यायमूर्ति.–वर्तमान अपील सत्र विचारण सं॰ 205 वर्ष 2000 में द्वितीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा पारित दिनांक 18 मार्च, 2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया है और उसको आजीवन कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक की लगभग 25 वर्षीय पुत्री बसंती गोरेन का विवाह भादूडीह ग्राम के निरंजन गोरेन के साथ हुआ था। अपीलार्थी उसको घरेलू काम करने के लिए मजबूर करने के लिए सदैव उस पर प्रहार किया करता था और इसलिए, लगभग तीन वर्ष पहले उसकी पुत्री ने अपना दांपत्य गृह छोड़ दिया था और अपने पैतृक गृह चली आयी थी और लगभग दो वर्ष तक रहने

के बाद वह लगभग एक वर्ष पहले अपने दांपत्य गृह लौट गयी थी। इस बीच सूचक ने बैंक ऑफ इंडिया, चांडिल शाखा में अपनी पुत्री बसंती गोरेन के नाम पर 5000/- रुपया जमा करवाया था। आगे अभिकथित किया गया है कि अपीलार्थी द्वारा लगातार शारीरिक और मानसिक यातना दिए जाने के कारण सूचक की पुत्री ने पुनः अपना दांपत्य गृह छोड़ दिया और लगभग तीन माह पहले अपने पैतृक गृह आ गयी थी। दिनांक 9.3.2000 को सायं लगभग 6 बजे अपीलार्थी बरकाकाना पैसेंजर ट्रेन से उसके घर आया और उसकी पुत्री को अपने घर चलने को कहा किंतु उसने इनकार कर दिया और उससे कहा कि वह बाद में आएगी। तत्पश्चात, रात्रि लगभग 8 बजे खाना खाने के बाद अपीलार्थी ने बसंती देवी को बैंक से 5000/- रुपया निकालने को कहा किंतु उसने इंकार कर दिया और कहा कि वह इस राशि को अपने पुत्री के विवाह के समय पर निकालेगी। इस कारण उन दोनों के बीच झगड़ा हुआ और तब अपीलार्थी ने बसन्ती देवी पर चाकू से प्रहार करके उसकी गर्दन पर उपहति कारित किया जिसका परिणाम उसकी मृत्यु में हुआ।

3. फर्दबयान के अनुसार, जो मृतक महिला बसंती का पिता होने के नाते अ॰ सा॰ 5 द्वारा दिनांक 10 मार्च, 2000 को दिया गया था, घटना की तिथि दिनांक 9.3.2000 को सायं लगभग 8 बजे है और घटनास्थल पुलिस थाना से 45 कि॰ मी॰ दूर है।

4. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने मुख्यतः निम्नलिखित आधार पर आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश का विरोध किया:–

(i) fd fo}ku fopkj.k U;k;ky; u fdlh Hkh i{k }kjk vfHky[k ij yk, x, lk{; ij lefpr :i l fopkj ugh fd;k g vkj vk{kfir fu.k; ikfjr dju e xyrh dh gA

(ii) fd fdlh Lor= xokg dk ijh{k.k vfHk;kstu }kjk ugh fd;k x;k g ;|fi o miyCèk FkA

(iii) fd lk{; vfHk;kstu ekeyk vR;Ur fgrc) xokgk xkdy xkju (v0 lk0 5) vkj 'kkfr xkju (v0 lk0 6) tk vkj dkb ugh cfYd Øe'k% erdk d firk ,o ekrk g] d ifjlk{; ij vkèkkfjr gA

(iv) fd nkuk vR;r fgrc) xokgk d lk{; dk l{e loh{k.k n'kk,xk fd mUgkus ekey d rkfRod igy ij fojkèkkHkklh c;ku fn;k g] ftl vU; rkfRod lk{;k }kjk li"V ugh fd;k x;k gA

(v) fd v0 lk0 5 xkdy xkju u Lo; dk i.kr% vfo'oluh; cuk fn;k D;kfd og eku jgk vkj vUo"k.k vfèkdkjh }kjk viuk Qnc;ku nt fd, tku rd yxHkx 12 ?kV rd ?kVuk l lcfèkr rF;k dk fdlh dk çdV ugh fd;kA ijk 6 e v0 lk0 5 u Li"V :i l dFku fd;k fd mlu lpuk nu d fy, f'kojke (v0 lk0 2) dk ifyl Fkkuk Hktk Fkk tgk ifyl u mldk c;ku fy;k FkkA bl fcn ij Lo; mldh iRuh v0 lk0 6 'kkfr xkju }kjk v0 lk0 5 dk çR;{kr% >Bk lkfcr fd;k x;k g ftlu ijk 3 e dFku fd;k mldk ifr vkj noj ?kVuk d ckj e fjikV nt dju jkr e ifyl Fkkuk x, Fk vkj ifyl mlh jkr mud ?kj vk;h Fkh vkj ml le; xko oky mld ?kj e mifLFkr FkA

(vi) fuonu fd;k x;k g fd v0 lk0 7u viu vfHkLk{; e v0 lk0 5 vkj 6 nkuk dk [kfMr fd;k gA ;g fuonu Hkh fd;k x;k g fd v0 lk0 5 d NkV Hkkb f'kojke xkju dk ijh{k.k v0 lk0 2 d :i e fd;k x;k g fdr mlu gR;k e vihykFkh dh vrxLrrk d ckj e dN Hkh ugh dgk Fkk vkj mlu viu ekf[kd lk{; e dFku fd;k g fd ?kVuk d ckj e ml tkudkjh ugh gA

(vii) vihykFkh d fo}ku vfèkoDrk u vkx fuonu fd;k g fd ?kVuk dh frfFk] le; vkj LFkku d ckj e v0 lk0 5 vkj 6 d ifjlk{; e fojkèkkHkklh fooj.k gA vihykFkh d fo}ku vfèkoDrk u fuonu fd;k g fd v0 lk0 5 dk p'enhn xokg d :i e ugh ekuk tk ldrk g D;kfd mlu okLrfod ?kVuk dk ugh n[kk g vkj mDr rF; Lo; v0 lk0 5 d lk{; l çdV gkrk gA blh çdkj] v0 lk0 6 'kkfr xkju dk Hkh p'enhn xokg d :i e ugh ekuk tk ldrk g D;kfd mlu viu çfr ijh{k.k e bl rF; dk Lohdkj fd;k gA vihykFkh d fo}ku vfèkoDrk u vkx fuonu fd;k g fd vihykFkh 'kkjhfjd :i l fodykx Fkk D;kfd og ikfy;k l ihfMr Fkk vkj blfy,] og Hkkx tku dh n'kk e ugh FkkA fuonu fd;k x;k g fd v0 lk0 5 }kjk viu vfHkLk{; e mDr rF; Lohdkj fd;k x;k gA vkx fuonu fd;k x;k g fd v0 lk0 6 d vulkj mlu vihykFkh&vfHk;Dr dk idM fy;k Fkk fdr og Hkkx x;kA fdr vihykFkh dh 'kkjhfjd fodykxrk dk n[kr g, mld fy, Hkkx tkuk lHko ugh gk ldrk Fkk vkj ifjokj d vU; lnL; vkj iMklh vkj xkooky vklkuh l ml idM ldr Fk tc og ?kVukLFky l Hkkxu dk ç;kl dj jgk FkkA vr% vfHk;ktu dk ekeyk vfèklHkkO; ugh gA

(viii) vkx fuonu fd;k x;k g fd vfHk;ktu gr LFkkfir dju e foQy jgk g vkj ml igy ij dkb lk{; vfHky[k ij ugh yk;k x;k gA fuonu fd;k x;k g fd v0 lk0 5 d vulkj] pfd mlu cd e dkb èku tek ugh fd;k Fkk] vr%] ?kVuk d ihN dkb e'kk ugh FkkA vihykFkh d fo}ku vfèkoDrk u vkx fuonu fd;k g fd vUo"k.k vfèkdkjh u Hkh dkb vUo"k.k ugh fd;k g fd D;k erdk d uke ij dkb cd [kkrk Fkk vkj D;k lpd u mld cd [kkrk e dkb èku tek fd;k FkkA

(ix) vr e] vihykFkh d fo}ku vfèkoDrk }kjk fuonu fd;k x;k g fd fo}ku fopkj.k U;k;ky; ekey d iokDr e[; igyvk dk vfèkeY;u dju e foQy jgk g vkj nk"kflf) dk fu.k; vkj vkthou dBkj dkjkokl d nMkn'k dk vkn'k ikfjr dju e xyrh fd;k gA

5. इसके विरुद्ध, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान द्वितीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया है और निवेदन किया है कि अभियोजन ने समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध किया है। राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने अ० सा० 5 और 6, जो अभियोजन मामले के अनुसार चश्मदीद गवाह हैं, के मौखिक साक्ष्य को निर्दिष्ट किया है और इस पर विश्वास किया है। राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया है कि इन दोनों गवाहों द्वारा दिए गए मौखिक साक्ष्य से हेतु भी स्थापित होता है और अपीलार्थी की उपस्थिति और उसकी पुत्री के प्रति उसका आचरण और व्यवहार अ० सा० 6 के मौखिक साक्ष्य से संपुष्टि पाता है। चिकित्सीय साक्ष्य ने भी मृतका के शरीर पर पायी गयी उपहतियों के प्रकार को स्थापित किया। राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन भी किया गया है कि अ० सा० 8 डॉक्टर ने मत

दिया है कि उक्त उपहतियाँ शवपूर्व प्रकृति की थी और तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित की गयी थी और मृत्यु गला काटे जाने के कारण हुई थी। विद्वान अधिवक्ता ने अ॰ सा॰ 1 और 2, जो मृत्यु समीक्षा गवाह हैं, और अ॰ सा॰ 7 अन्वेषण अधिकारी और अ॰ सा॰ 8 डॉक्टर जिसने शव–परीक्षण किया, के मौखिक साक्ष्य को निर्दिष्ट किया है और इस पर विश्वास किया है। तर्क को समाप्त करते हुए राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अभियोजन ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे स्थापित किया है और विद्वान विचारण न्यायालय ने सही प्रकार से और समुचित रूप से अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का अधिमूल्यन किया और अपीलार्थी के विरुद्ध दोषसिद्धि का निर्णय और आजीवन कारावास का दंडादेश पारित किया और इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा पारित उक्त निर्णय और आदेश द्वारा सम्पोषित और संपुष्ट किया जा सकता है और अपील खारिज किया जा सकता है।

6. परस्पर विरोधी पूर्वोक्त निवेदनों पर विचार करते हुए और निर्णय, अभिलेख एवं कार्यवाही के परिशीलन पर हम अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों में सार पाते हैं।

7. अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध करने के लिए आठ गवाहों का परीक्षण किया:–

v0 lk0 1 : **jljkt egrk-**&mlds ijh{k.k eR; leh{kk xokg d :i e fd;k x;k gA mlu viu çfr ijh{k.k e ijkxkQ 2 ij dFku fd;k g fd xke HkknMhg l xke glkyx igpu d fy, doy ,d jyxkMh g tk glkyx lk; yxHkx 6 ct igprh gA

v0 lk0 2 : **f'kojke xkju-**&erdk dk pkpk g vkj eR; leh{kk xokg d :i e mldk ijh{k.k fd;k x;k gA

viu lk{; d ijkxkQ 3 ij]mlu dFku fd;k g fd og ugh tkurk Fkk fd ?kVuk D;k gb Fkh vkj fdlu vijkèk fd;k FkkA

v0 lk0 3 : **jfoykpu xkju-**&bl xokg u vfHk;ktu ekey dk leFku ugh fd;k Fkk vkj ml vfHk;ktu }kjk i{knkgh ?kkf"kr dj fn;k x;k FkkA

v0 lk0 4 : **cdB ukFk egrk-**&og vuJr xokg g vkj mlu dB?kj e vihykFkh dk ugh igpkuk FkkA

v0 lk0 5 : **xkdy xkju-**&okn erdk dk firk vkj bl ekey dk lpd gA

viu lk{; d ijkxkQ 1 ij] mlu dFku fd;k g fd ?kVuk fnukd 10.3.2000 dk jkf= 10.30 ct gb FkhA

viu lk{; d ijkxkQ 3 ij] mlu Qnc;ku e fn, x, viu c;ku dk lèkkjk g vkj dFku fd;k g fd [kkuk [kku d ckn vihykFkh jyo LV'ku pyk x;k Fkk tk mld ?kj l yxHkx 500 xt nj g vkj mlu ;g dFku Hkh fd;k fd vihykFkh vdyk x;k FkkA

vkx mlu dFku fd;k g fd mld ?kj vkj jyo LV'ku d chp vud ?kj fLFkr gA

blh ijkxkQ e bl xokg u vkx dFku fd;k g fd fdlh u vihykFkh dk Hkkxr ugh n[kk FkkA

viu lk{; d ijkxkQ 4 ij] mlu dFku fd;k g fd mlu çgkj ugh n[kk Fkk fdr mlu vihykFkh dk Hkkxr n[kk Fkk vkj fd mlu mldk idMu dk ç;kl ugh fd;k FkkA

mlu vkx dFku fd;k fd gYyk djus ij ykx vk, Fks fdr mlu mudk ugh crk;k Fkk fd vihykFkh u mldh i=h dh gR;k dj nh FkhA

viu lk{; d ijkxkQ 5 ij] bl xokg u dFku fd;k g fd ;g rF; g fd mlu cd e èku tek ugh fd;k FkkA vkx] mlu dFku fd;k g fd ;g Hkh rF; g fd vihykFkh Bhd rjhd l py ugh ldrk Fkk D;kfd ikfy;k u mld ,d ij dk çHkkfor fd;k FkkA

viu lk{; d ijkxkQ 6 ij] mlu Li"V :i l dFku fd;k g fd mlu f'kojke (v0 lk0 2) dk lpuk nu d fy, ifyl Fkkuk Hk tk FkkA

v0 lk0 6 : **'kkfr xkju**&og e`rdk dh ekrk g fdr çkFkfedh e ml xokg d :i e ukfer ugh fd;k x;k gA

viu lk{; d ijkxkQ 1 ij] mlu dFku fd;k g fd ?kVuk d le; mldk ifr vkj i= fdlh vU; ?kj e FkA

viu çfr ijh{k.k d ijkxkQ 2 ij] mlu dFku fd;k g fd mld }kjk gYyk fd, tku ij mldk ifr vkj f'kojke (noj) vk,A mlu ;g dFku Hkh fd;k fd mlu xko okyk dk ugh crk;k fd mlu vihykFkh dk idM fy;k FkkA

viu lk{; d ijkxkQ 3 ij] mlu dFku fd;k g fd mlu viu ifr] noj vkj xkookyk dk ugh crk;k Fkk fd vihykFkh fdl fn'kk dh vkj Hkkxk FkkA

vkx mlu dFku fd;k g fd mldk ifr vkj noj jkr e gh lpuk nu x, Fk] ftld ckn ifyl mlh jkr vk;h Fkh vkj ml le; xko oky mld ?kj e mifLFkr FkA

v0 lk0 7 : **j.kèkhj dekj**&bl ekey dk vUo"k.k vfèkdkjh gA mlu viu lk{; e ijkxkQ 3 ij dFku fd;k g fd ;|fi mlu eR; leh{kk fjikV r;kj fd;k Fkk fdr u rk bldh ey çfr vFkok dkcu dkih mld ikl miyCèk FkhA

ijkxkQ 6 ij mlu dFku fd;k Fkk fd eR; leh{kk fjikV dh çfr dl Mk;jh e Hkh miyCèk ugh FkhA mlu vkx dFku fd;k fd mlu jDrjftr feVVh dk jklk;fud ijh{k.k d fy, ugh Hk tk FkkA

ijkxkQ 8 ij mlu dFku fd;k Fkk fd og ?kVukLFky l vFkok vihykFkh d ?kj l pkd cjken ugh dj ldk FkkA mlu vkx vfHkLk{; fn;k fd mlu gR;k l tkM tku d fy, vihykFkh d ?kj l dN Hkh ugh cjken fd;k FkkA

mlu vkx dFku fd;k g fd mlu bldk ydj dkb vUo"k.k ugh fd;k Fkk fd èku cd e tek fd;k x;k Fkk ;k ughA

ijkxkQ 10 ij mlu dFku fd;k g fd 'kkfr noh u mld le{k dFku ugh fd;k Fkk fd tc og x;h Fkh] mlu viu nkekn dk viuh i=h dh xnu ij pkd l çgkj djd mldh gR;k dkfjr djr n[kk FkkA

mlu ;g dFku Hkh ugh fd;k Fkk fd mlu vihykFkh dk idM fy;k FkkA

v0 lk0 8 : **MkO vf[ky'k dekj pkèkjh**&og ,d MkDVj g] ftUgku fnukd 11 ekp] 2000 dk çkr% 11 ct 'ko ijh{k.k fd;k FkkA mud lk{; d vulkj eR; d ckn l 0;rhr le; 18 ?kV l 24 ?kV d Hkhrj FkkA mUgku pkd tl rt èkkj oky gfFk;kj }kjk dkfjr xnu ij nk dV t[ek dk ik;kA

8. बचाव पक्ष ने भी पाँच गवाहों का परीक्षण किया जो राम किस्टो (ब॰ सा॰ 1), कमल हालदार (ब॰ सा॰ 2), भारत महतो (ब॰ सा॰ 3), नील कंठ तंतुबाई (ब॰ सा॰ 4) और जयंत कुमार महंती (ब॰ सा॰ 5) है।

9. यह प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने मुख्यत: अ॰ सा॰ 5 और 6 को चश्मदीद गवाह के रूप में मानते हुए और अ॰ सा॰ 7 और 8 अर्थात डॉक्टर और अन्वेषण अधिकारी के मौखिक साक्ष्य को विचार में लेते हुए उनके साक्ष्य के आधार पर निर्णय और आदेश पारित किया है। किंतु अ॰ सा॰ 5 और 6 के मौखिक साक्ष्य के सूक्ष्म परीक्षण से पता चलता है कि उनमें से किसी को चश्मदीद गवाह के रूप में नहीं माना जा सकता है और यह तथ्य स्वयं अ॰ सा॰ 5 और 6 के अभिसाक्ष्य से, विशेषत: प्रति परीक्षण में, प्रकट होता है। अ॰ सा॰ 5 और 6 ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उन्होंने वास्तविक घटना को नहीं देखा था। इसके अतिरिक्त, घटना की तिथि, समय और स्थान के संबंध में अ॰ सा॰ 5 और 6 के मौखिक साक्ष्य में तात्विक विरोधाभास है। अ॰ सा॰ 5 ने कथन किया है कि वह घर में उपलब्ध नहीं था जहाँ घटना घटित हुई थी बल्कि वह अन्य घर में था जबकि अ॰ सा॰ 6 ने कथन किया है कि वे एक ही घर में थे और उसका पति अर्थात् अ॰ सा॰ 5 उससे 4-5 फीट की दूरी पर सोया हुआ था।

10. अभियोजन द्वारा बनायी गयी कहानी कि उसकी पुत्री का शोर सुनकर अ॰ सा॰ 6 तुरन्त घटनास्थल की ओर दौड़ी जहाँ उसने अपनी पुत्री को मृत पड़ा पाया और उसने अपीलार्थी को भागते देखा और उसने तुरन्त उसको पकड़ने का प्रयास किया किंतु वह भाग गया, पर इस कारण से विश्वास नहीं किया जा सकता है कि यदि परिवार के अन्य सदस्य उसके इर्द-गिर्द थे अथवा तुरन्त उसके पीछे आए थे, तब अपीलार्थी-अभियुक्त, जो शारीरिक रूप से विकलांग था, घटना स्थल से भाग जाने की अवस्था में नहीं होगा और परिवार के अन्य सदस्य अथवा पड़ोसी अथवा गाँववाले, जो अभियोजन गवाहों के अनुसार, घटना के बाद वहाँ एकत्रित हुए थे, अपीलार्थी-अभियुक्त को भागने नहीं देते। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से, यह भी स्वीकृत अवस्था है कि अगले दिन सुबह तक कोई रेलगाड़ी उपलब्ध नहीं थी और इसलिए, अभियोजन द्वारा बनायी गयी कहानी अनधिसंभाव्य प्रतीत होती है। यह भी प्रतीत होता है कि अपीलार्थी-अभियुक्त को उसके गाँव में उसके घर से तीन दिन बाद पकड़ा गया था, तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि वह फरार नहीं हुआ था। यह आचरण भी अभिकथित अपराध में उसकी भूमिका के बारे में संदेह सृजित करता है। अ॰ सा॰ 5 और 6 जिन्हें वर्तमान मामले में मुख्य गवाह माना जाता है, ने अपने मौखिक साक्ष्य में स्वयं स्वीकार किया है कि उन्होंने वास्तविक घटना को नहीं देखा है। अ॰ सा॰ 7 अर्थात् अन्वेषण अधिकारी के मौखिक साक्ष्य से प्रतीत होता है कि किसी वस्तु अथवा हथियार का अभिग्रहण नहीं किया गया है। बल्कि, अभिलेख पर कोई अभिग्रहण मेमो नहीं है। दूसरी ओर, बचाव गवाहों ने उसके गाँव में अपीलार्थी-अभियुक्त की उपस्थिति के बारे में कथन किया है। इसके अतिरिक्त, इन दो गवाहों के मौखिक साक्ष्य में तात्विक विरोधाभास है, जो अपीलार्थी की अंतर्ग्रस्तता के बारे में संदेह सृजित करता है। दांडिक विधि शास्त्र का मूल सिद्धांत यह है कि यदि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर अपराध में अभियुक्त की अंतर्ग्रस्तता के बारे में संदेह सृजित होता है, तब उस स्थिति में, अपीलार्थी-अभियुक्त को संदेह का लाभ दिए जाने की आवश्यकता होती है।

11. हमने अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का सावधानीपूर्वक परीक्षण किया है और अपीलार्थी एवं राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना है। अभिलेख और कार्यवाही और खास कर अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के सावधानीपूर्वक परीक्षण के बाद, हमारा मत है कि यह एक सुयोग्य मामला है जिसमें संदेह का लाभ दिए जाने की आवश्यकता है। वर्तमान मामले में, अभियोजन युक्तियुक्त

संदेह के परे अपना मामला सिद्ध करने में बुरी तरह विफल रहा और इसलिए सत्र विचारण सं॰ 205 वर्ष 2000 में द्वितीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा पारित दिनांक 18 मार्च, 2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश को अभिखंडित और अपास्त किया जाता है। यह अपील अनुज्ञात की जाती है। अपीलार्थी, जो जेल में है, को तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है।

आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

ब्रिज पाल सिंह उर्फ बी॰ पी॰ सिंह (1642 में)

द्वारिका दास (1638 में)

फारूक खुर्शीद अहमद (1640 में)

पृथ्वी बर्धन मिश्रा उर्फ पी॰ बी॰ मिश्रा (1643 में)

cuke

झारखंड राज्य, सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से (सभी में)

Cr. M.P. No. 1642, 1638, 1640 and 1643 of 2007. Decided on 3rd August, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 409 एवं 420 सह-पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराएँ 13(2) एवं 3(1) (c) एवं (d)—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—आपराधिक न्यास भंग और लोक सेवक द्वारा छल–अन्वेषण के दौरान सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा संग्रहित सामग्रियाँ अपराध किए जाने को प्रथम दृष्टया प्रकट कर रही हैं–याचीगण यह बचाव ले रहे हैं कि परिवाहकों को धनीय लाभ सुकर बनाते हुए बिटुमिन ढोए जाने से संबंधित प्रक्रिया में कोई अपघर्षण अनाशयित था–विचारण के दौरान इन पहलूओं पर परिचर्चा करने की आवश्यकता है–इस चरण पर ऐसा कोई निष्कर्ष कि परिवाहकों को धनीय लाभ पहुँचाने का आशय याचीगण का था या नहीं, अनपेक्षणीय होगा–जहाँ पहले ही अपराध का संज्ञान लिया जा चुका है, प्राथमिकी को अभिखंडित करना वांछनीय नहीं होगा–आवेदन खारिज।

(पैराएँ 21 से 25)

निर्णयज विधि.–(2009)4 SCC 439—Relied on; (1996)9 SCC 1; (2005)1 SCC 568; (2008)14 SCC 1; (2009)1 SCC 516—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s U.U. Lalit, B. Mukherjee, A.K. Jha, for the Petitioner; Md. Mokhtar Khan, For the C.B.I.

आदेश

एक ही मामले आर॰ सी॰ 9(A)/97(D) से उद्भूत होने वाले पूर्वोक्त चारों आवेदनों को चूँकि एक साथ सुना गया था, इन्हें एक ही आदेश द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. इन आवेदनों को उद्भूत करने वाले तथ्य ये हैं कि, एन॰ एच॰ डिविजन, बरही के तत्कालीन कार्यपालक अभियंता, ने उसमें अभिकथन करते हुए यह मामला दर्ज किया कि तत्कालीन मुख्य अभियंता-सह-अपर

आयुक्त–सह–विशेष सचिव, पथ निर्माण विभाग, बिहार ने एन॰ एच॰ डिविजन, बरही, हजारीबाग को 500 एम॰ टी॰ बिटुमिन की आपूर्ति के लिए दिनांक 17.5.1995 को भारत पेट्रोलियम कॉरपोरेशन लिमिटेड (संक्षेप में बी॰ पी॰ सी॰ एल॰), हल्दिया को आपूर्ति आदेश सं॰ 1757 (E) दिया। उस आदेश के प्रत्युत्तर में परिवाहक विनय कुमार सिन्हा ने हल्दिया से 496.7 एम॰ टी॰ बिटुमिन उठाया किंतु एन॰ एच॰ डिविजन, बरही को केवल 171.49 एम॰ टी॰ बिटुमिन की आपूर्ति किया। इस प्रकार, उसने 325.21 एम॰ टी॰ बिटुमिन का दुर्विनियोग किया जिसके परिणामस्वरुप राजकीय कोष को 18.50/- लाख रुपयों की सीमा तक नुकसान हुआ।

3. उक्त लिखित रिपोर्ट पर, उक्त विनय कुमार सिन्हा के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता (संक्षेप में भा॰ दं॰ सं॰) की धाराओं 409 और 420 के अधीन दिनांक 7.9.1996 को बरही पी॰ एस॰ केस सं॰ 159 वर्ष 1996 दर्ज किया गया था। तत्पश्चात, बरही पुलिस थाना ने मामले का अन्वेषण शुरू किया। इस बीच, सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 10417 वर्ष 1996 में पटना उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 20.2.1997 को आदेश पारित किया गया था जिसके द्वारा सी॰ बी॰ आई॰ को मामले का अन्वेषण अपने हाथ में लेने का निर्देश दिया गया था। सी॰ बी॰ आई॰ ने मामला लिया और उक्त विनय कुमार सिन्हा और पथ निर्माण विभाग, राष्ट्रीय राजमार्ग डिविजन और अन्य विभाग के कुछ अज्ञात अधिकारियों के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 406, 407, 409, 420 और 120B के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 13(2) सह–पठित धाराओं 13(1)(c) और (d) के अधीन भी आर॰ सी॰ 9(A)/97(D) मामला दर्ज किया।

4. सी॰ बी॰ आई॰ ने मामले का अन्वेषण करने के बाद इन चारो याचीगण, जो बी॰ पी॰ सी॰ एल॰ के पदधारीगण है, के विरुद्ध और बिहार सरकार के पदधारीगण के विरुद्ध भी आरोप–पत्र दाखिल किया और उसमें प्रकट किया कि पथ निर्माण विभाग, बिहार सरकार और तेल कंपनी के बीच व्यवस्था के मुताबिक प्रोडक्ट डिस्पैच नोट (पी॰ डी॰ एन॰) के अधीन स्टॉक ट्रांसफर के जरिए बरौनी ले जाने के लिए हल्दिया तेल रिफाइनरी स्थित बी॰ पी॰ सी॰ एल॰ से परिवाहक द्वारा बल्क बिटुमिन संग्रहित किया जाना था। तत्पश्चात्, परेषिती की आवश्यकतानुसार, इसे पथ निर्माण विभाग, एन॰ एच॰ डिविजन के विभिन्न लोकेशनों पर परिवहित किया जाना था किंतु, वस्तुतः, बिटुमिन टैंकर्स बरौनी कभी नहीं आया करते थे बल्कि बिटुमिन ले जाने वाले टैंकर्स हल्दिया से सीधे बरही जाया करते थे। इसके बावजूद, बी॰ पी॰ सी॰ एल॰ के पदधारीगण डी॰ जी॰ एस॰ एंड डी॰ इन्भ्वायास और सी॰ आर॰ सी॰ जैसे झूठे दस्तावेज बरौनी में तैयार किया करते थे।

5. आगे प्रकट किया गया था कि दिनांक 17.5.1995 के ऑर्डर सं॰ 1757 (E) के अधीन ऑर्डर दिए जाने पर परिवाहक विनय कुमार सिन्हा ने अपने प्रतिनिधि के माध्यम से 495.84 एम॰ टी॰ बिटुमिन हल्दिया तेल रिफाइनरी से उठाया और इसका मुख्य भाग कोलकाता में बेच दिया और बल्क बिटुमिन को बरौनी रिफाइनरी ले जाए बिना केवल 160.22 एम॰ टी॰ बिटुमिन बरही में आपूर्ति किया। बरही में, पथ निर्माण विभाग के पदधारीगण ने 495.84 एच॰ टी॰ बल्क बिटुमिन की प्राप्ति दर्शाते हुए रसीद प्रदान किया। इस प्रकार, शेष 335.62 (326.28) एम॰ टी॰ बिटुमिन के मूल्य के प्रति 15.37 लाख रुपए की सीमा तक बिहार राज्य को नुकसान कारित किया। इसके अतिरिक्त, यद्यपि परिवाहक ने हल्दिया से बरौनी तक और तब बरौनी से बरही तक बल्क बिटुमिन कभी नहीं परिवहित किया था, फिर भी उसे संपूर्ण दूरी के लिए लगभग 4.8 लाख रुपया ढुलाई शुल्क/प्रभार का भुगतान किया गया था।

6. अभिकथित रूप से याची बी॰ पी॰ सिंह, तत्कालीन उप–महाप्रबंधक, बी॰ पी॰ सी॰ एल॰ कोलकाता, द्वारा निभायी गयी भूमिका यह हैं कि यद्यपि उसे ज्ञात था कि हल्दिया से बिटुमिन उठाने के बाद टैंकर्स बरौनी रिपोर्ट नहीं कर रहे है बल्कि इसे सीधे बरही ले जा रहे हैं, उसने किसी डी॰ सी॰ सरकार को बरौनी से बरही तक टैंकरों का आवागमन दर्शाते हुए सी॰ सी॰ डी॰ ए॰ और सी॰ आर॰ सी॰ तैयार करने

के लिए दस्तावेजीकरण करने का काम करने के लिए नियुक्त किया क्योंकि बरौनी में किए जा रहे दस्तावेजीकरण का विशाल बैकलॉग था। यह अभिकथित रूप से हल्दिया से बरौनी तक का कैरेज चार्ज प्राप्त करने के लिए परिवाहक को समंजित करने के लिए किया गया था।

7. याची–फारुक खुर्शीद अहमद के विरुद्ध अभिकथन यह है कि वह भी इस तथ्य से पूरी तरह अवगत था कि हल्दिया तेल रिफाइनरी से बिटुमिन लेकर जाने वाले टैंकर बरौनी कभी रिपोर्ट नहीं कर रहे हैं, फिर भी हल्दिया से बरौनी तक और तब बरौनी से बरही तक टैंकरों का आवागमन दर्शाने के लिए बरौनी में सी॰ सी॰ डी॰ ए॰, सी॰ आर॰ सी॰ और डी॰ जी॰ एस॰ एंड डी॰ तैयार करने के लिए झूठे दस्तावेजीकरण का काम किया जा रहा था। आगे अभिकथित किया गया है कि उसने बरौनी में झूठे दस्तावेजों को निकालने के लिए आदेश भी पारित किया।

8. जहाँ तक याची पी॰ बी॰ मिश्रा, वरीय ऑपरेशन अधिकारी, बरौनी के विरुद्ध अभिकथन का संबंध है, यह अभिकथित किया गया है कि उसने सी॰ आर॰ सी॰ के ऊपर हस्ताक्षर करके बरौनी से बरही तक टैंकरों के आवागमन को अभिस्वीकृत किया यद्यपि वस्तुत: टैंकर बरौनी में कभी रिपोर्ट नहीं किया करते थे और तद्द्वारा उसने हल्दिया से बरौनी तक परिवहन प्रभार की ओर भुगतान का दावा करने के लिए परिवाहक को सुकर किया। इसी प्रकार से, याची द्वारिका दास, वरीय ऑपरेशन अधिकारी, बरौनी के विरुद्ध अभिकथित किया गया है कि उसने भी हल्दिया से बरौनी तक बल्क बिटुमिन का ढोया जाना दर्शाते हुए पी॰ डी॰ एन॰ के ऊपर हस्ताक्षर किया।

9. इन अभिकथनों पर सी॰ बी॰ आई॰ ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधानों के अधीन याचीगण के अभियोजन की मंजूरी देने के लिए आदेश पारित करने का अनुरोध प्राधिकारी से किया। जब आदेश की प्रतीक्षा की जा रही थी, सी॰ बी॰ आई॰ ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 406, 407, 409, 420 और 120B के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया। आरोप–पत्र दाखिल किए जाने पर, विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰ ने याचीगण के विरुद्ध अपराधों का संज्ञान लिया। उस आदेश को याचीगण अर्थात् बी॰ पी॰ सिंह, फारुख खुर्शीद अहमद और द्वारिका दास द्वारा दांडिक विविध याचिका सं॰ 345 वर्ष 2003 के तहत चुनौती दी गयी थी। किंतु न्यायालय ने दिनांक 7.5.2003 के अपने आदेश के तहत यह अभिनिर्धारित करने के बाद कि याचीगण के विरुद्ध अपराधों का संज्ञान लेने में कोई अवैधता नहीं है, उक्त आवेदन को अस्वीकार कर दिया।

10. इसके काफी बाद, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन प्राथमिकी को अभिखंडित करने के लिए इन आवेदनों को दाखिल किया गया है।

11. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री यू॰ यू॰ ललित निवेदन करते हैं कि नवंबर, 1993 के पहले स्वयं हल्दिया तेल रिफाइनरी से परेषिती को बिटुमिन की आपूर्ति की जा रही थी और उस प्रक्रिया में, बिहार सरकार को बिक्री कर का नुकसान हो रहा था और, इसलिए, बिहार सरकार और तेल कंपनियों के बीच समझौता हुआ कि मूल्यांकन बिंदु हल्दिया तेल रिफाइनरी के बजाय बरौनी होगा और तद्द्वारा बिटुमिन का स्टॉक ट्रांसफर हल्दिया से बरौनी तक किया जाना था और तब दस्तावेजीकरण, जिसे बरौनी में किया जा रहा था, के अधीन बरौनी तेल रिफाइनरी से परेषिती के विभिन्न बिंदुओं तक किया जाना था। यह व्यवस्था केवल इस कारण से की गयी थी कि बिहार राज्य पहले हल्दिया से की जा रही बिक्री के कारण बिक्री कर का नुकसान झेल रहा था।

12. विद्वान अधिवक्ता निष्पक्षत: निवेदन करते हैं कि चूँकि बरही हल्दिया और बरौनी के बीच कहीं पर अवस्थित है, परिवाहक बरौनी जाने और तब बरही आने के बजाय सीधे हल्दिया से बरही बिटुमिन ढोया करते थे। समस्त अन्य कंपनियों द्वारा भी ऐसी ही व्यवस्था अपनायी गयी थी। अन्य कंपनियाँ भी बिहार राज्य द्वारा प्राधिकृत परिवाहक के माध्यम से हल्दिया से बरही तक बिटुमिन ढोया करती थीं। चूँकि अन्य

तेल कंपनियों ने भी इस व्यवस्था को अपनाया था, अत: बी॰ पी॰ सी॰ एल॰ के पास भी इसी व्यवस्था को अपनाने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था अन्यथा यह बिजनेस खो बैठता। इस स्थिति के अधीन हल्दिया से बरौनी तक स्टॉक ट्रांसफर दर्शाते हुए पी॰ डी॰ एन॰ के अधीन बिटुमिन ढोया जा रहा था जबकि वस्तुत:, बिटुमिन कभी ढोया नहीं जा रहा था क्योंकि आउटलेट के पास बिटुमिन का भंडारण करने की सुविधा नहीं थी और इस प्रकार, बिटुमिन सीधे हल्दिया से बरही तक ढोया जा रहा था। चूँकि करार के अधीन बिटुमिन हल्दिया से बरौनी तक और तब बरौनी से परेषण के बिंदु तक ढोया जाना था, बरौनी से परेषिती के स्थान तक बिटुमिन का ढोया जाना दर्शाने के लिए दस्तावेजीकरण का काम जैसे सी॰ सी॰ डी॰ ए॰ और सी॰ आर॰ सी॰ तैयार करने का काम बरौनी में किया जाता था। इस प्रकार, हल्दिया से बरौनी तक और तब बरौनी से परेषिती के स्थान तक बिटुमिन ले जाने के लिए परिवाहक पर जोर नहीं देने में बी॰ पी॰ सी॰ एल॰ के पदधारीगण की ओर से कोई दुर्भावना नहीं था।

13. अत:, इन स्थितियों के अधीन, जब सी॰ बी॰ आई॰ ने याचीगण को अभियोजित करने के लिए मंजूरी का आदेश इप्सित किया, विभाग इस बात से आश्वस्त होने के कारण कि याचीगण की ओर से कुछ भी गलत नहीं किया जा रहा है बल्कि अन्य तेल कंपनियों के साथ प्रतिस्पर्धा में टिके रहने के लिए याचीगण ने वही किया जो अन्य तेल कंपनियाँ कर रही थी, सुतार्किक आदेश द्वारा याचीगण के अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इनकार कर दिया।

14. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि जब सी॰ बी॰ आई॰ ने स्थिति, जिसके अधीन व्यवसाय किया जा रहा था, को समझा, इसने आर॰ सी॰ 12(A) वर्ष 1997 (D) के रूप में दर्ज एक अन्य मामले में उनको अभियोजित करने के लिए बी॰ पी॰ सी॰ एल॰ के पदधारीगण को कभी नहीं इप्सित किया।

15. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि जहाँ तक याची बी॰ पी॰ सिंह का संबंध है, वह प्रासंगिक समय पर हल्दिया में उप महाप्रबंधक के रूप में पदस्थापित था जिसे इस अभिकथन पर अभियोजित करने के लिए इप्सित किया जा रहा है कि उसने बरौनी में दस्तावेजीकरण का काम करने के लिए किसी डी॰ सी॰ सरकार को नियुक्त किया था किंतु कतिपय दस्तावेज दर्शाएँगे कि डी॰ सी॰ सरकार को नियुक्त करने का निर्णय कोलकाता स्थित कंपनी के उच्चतर प्राधिकारी का था ताकि बरौनी में दस्तावेजीकरण के काम का बैकलॉग पूरा किया जा सके। इसलिए, कूटरचना अथवा दुर्विनियोग का अपराध करने के लिए अन्य अभियुक्तगण, विशेषत: परिवाहक और बिहार सरकार के पदधारीगण के साथ याची बी॰ पी॰ सिंह की साँठ-गाँठ दर्शाने वाले किसी सामग्री की अनुपस्थिति में उसे भारतीय दंड संहिता के अधीन कोई अपराध करता हुआ नहीं कहा जा सकता है।

16. यही स्थिति याची फारुख खुर्शीद अहमद की भी है, जो प्रासंगिक समय पर पटना में पदस्थापित था, जिसकी अधिकारिता निश्चित तौर पर बरही में नहीं थी, बल्कि यह उस व्यक्ति की अधिकारिता के अंतर्गत थी जो राँची में पदस्थापित था और, इसलिए, उस पर कूटरचना अथवा दुर्विनियोग का अपराध करने के किसी अभिकथन का लांछन नहीं लगाया जा सकता था यद्यपि उसे जानकारी थी कि टैंकर बरौनी में रिपोर्ट नहीं कर रहे थे और इसके बावजूद दस्तावेजीकरण का कार्य बरौनी में किया जा रहा था।

17. इसी प्रकार की स्थिति अन्य याचीगण-पी॰ बी॰ मिश्रा और द्वारिका दास के साथ भी है जो वरीय ऑपरेशन अधिकारीगण हैं और प्रासंगिक समय पर बरौनी में पदस्थापित थे और उन्हें बरौनी में दस्तावेजीकरण का काम न्यस्त किया गया था किंतु चूँकि इसे कंपनी के स्वीकृत सन्नियमों के अधीन किया जा रहा था, उन्हें भी कूटरचना अथवा दुर्विनियोग और छल के अभिकथित अपराध में किसी भी तरीके से अंतर्ग्रस्त नहीं कहा जा सकता है।

18. इसके अतिरिक्त, याचीगण की ओर से दिया गया तर्क यह है कि याचीगण द्वारा जो कोई भी कृत्य किया गया था, वह कंपनी के व्यावसायिक हित में किया गया था और, इसलिए, याचीगण को अभियोजित करने के लिए कंपनी के सक्षम प्राधिकारी द्वारा मंजूरी का आदेश कभी नहीं दिया गया और यदि मंजूरी देने से इनकार करने वाले आदेश को इस न्यायालय द्वारा विचार में लिया जाता है, परिस्थितियाँ सामने आएँगी जिसके अधीन याचीगण द्वारा कंपनी के व्यावसायिक हित को देखते हुए सद्विश्वास में कृत्य किया गया था। चूँकि मंजूरी देने से इनकार करता आदेश सर्वोत्तम गुणवता का अनधिक्षेपणीय दस्तावेज है, **उड़ीसा राज्य बनाम देवेन्द्र नाथ पाधी [(2005)1 SCC 568]** के मामले में दिए गए निर्णय की दृष्टि में विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन शक्ति के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा सदैव ध्यान में लिया जा सकता है। ऐसा ही दृष्टिकोण **रुक्मिणि नरवेकर बनाम विजय सतरदेकर एवं अन्य [(2008)14 SCC 1]** के मामले में प्रतिपादित किया गया है जिसके द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाधी के मामले पर विश्वास करते हुए अभिनिर्धारित किया कि यह एक आत्यंतिक प्रतिपादना नहीं है कि किसी भी परिस्थिति के अधीन आरोपों को विरचित किए जाने के समय पर न्यायालय बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत सामग्री का परिशीलन नहीं कर सकता है यद्यपि अत्यन्त विरल मामलों में ऐसा किया जाना चाहिए अर्थात् जहाँ बचाव पक्ष ऐसी सामग्री प्रस्तुत करता है जो विश्वासोत्पादक रूप में प्रदर्शित करता है कि संपूर्ण अभियोजन मामला पूर्णत: बेतुका अथवा मनगढ़ंत है।

19. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि उन्हीं आरोप/अभिकथन पर, जिस पर सी॰ बी॰ आई॰ ने अपना मामला बनाया है, याचीगण के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही की गयी थी, जिसके द्वारा उन सबों को विमुक्त किया गया था और, इसलिए, **पी॰ एस॰ राज्य बनाम बिहार राज्य [(1996)9 SCC 1]** के मामले में अधिकथित निर्णयाधार की दृष्टि में याचीगण को विचारण की कठोरताओं का सामना करने की अनुमति देना वांछनीय नहीं होगा क्योंकि जब याचीगण को विभागीय कार्यवाही में विमुक्त कर दिया गया है जहाँ दोष स्थापित करने के लिए प्रमाण का स्तर दांडिक आरोप सिद्ध करने के लिए अपेक्षित स्तर की तुलना में काफी कम है, अत: दोषमुक्ति में मामला के समाप्त होने की संभावना सदैव होगी।

20. इसके विरुद्ध, सी॰ बी॰ आई॰ के विद्वान अधिवक्ता, श्री मोख्तार खान निवेदन करते हैं कि अन्वेषण के दौरान सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा संग्रहित सामग्री के मुताबिक, सब याचीगण जानते थे कि बिटुमिन ढोने वाले परिवाहक बरौनी में रिपोर्ट नहीं कर रहे थे, बल्कि वे बिटुमिन सीधे हल्दिया से बरही ले जा रहे थे, फिर भी हल्दिया से बरौनी और तब बरौनी से बरही तक बिटुमिन का परिवहन दर्शाते हुए बरौनी में दस्तावेजों को तैयार किया गया था तद्द्वारा अभियुक्तों ने एक दूसरे के साथ सांठ–गांठ करके परिवाहकों को हल्दिया से बरौनी और फिर बरौनी से बरही ले जाने दिया जिससे राजकीय कोष को नुकसान पहुँचाया गया था और, जब प्रथम दृष्टया मामला मौजूद है, तब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन शक्ति के प्रयोग में न्यायालय प्राथमिकी अभिखंडित करने का अनिच्छुक होगा। यह निवेदन भी किया गया है कि मंजूरी देने से इनकार करने वाले आदेश में जो कोई भी सामग्री आयी है जो अभियुक्तगण के बचाव में है जिसका परिशीलन इस चरण पर नहीं किया जा सकता है जब याचीगण प्राथमिकी अभिखंडित करवाने इस न्यायालय के पास आए हैं और इन स्थितियों के अधीन समस्त आवेदन इस न्यायालय द्वारा खारिज किए जाने योग्य है।

21. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, यह वस्तुत: प्रतीत होता है कि अभियोजन और याचीगण के मुताबिक भी मामला संक्षेप में यह है कि बी॰ पी॰ सी॰ एल॰ द्वारा अधिकथित कतिपय मार्गदर्शक सिद्धांत/सन्नियम हैं जिनके अधीन परेषिती को बिटुमिन की आपूर्ति की जानी थी किंतु उन

सन्नियमों का पालन नहीं किया गया था और याचीगण के मुताबिक कंपनी के व्यावसायिक हित में इसका पालन नहीं किया जा सका था। किंतु उस प्रक्रिया, जिसे बिटुमिन को गंतव्य स्थान पर पहुँचाने के लिए अपनाया गया था, का परिणाम बिटुमिन ढोने में परिवाहकों द्वारा कम दूरी तय करने में हुआ किंतु परिवाहकों को उस दूरी, जो उन्होंने तय नहीं की थी, का भुगतान करने की अनुमति परिवाहकों को दी गयी थी। किंतु, याचीगण की ओर से दिए गए तर्क के मुताबिक कि यद्यपि प्रक्रिया से विपथन समस्त याचीगण की जानकारी में था किंतु उन्होंने किसी दुर्भावना के बिना इसकी अनुमति दी थी बल्कि कंपनी के सर्वोत्तम हित में इसकी अनुमति दी थी जैसा अभियोजन की मंजूरी देने के संबंध में मामले पर विचार करते हुए प्राधिकारी द्वारा पाया गया था और विभागीय कार्यवाही संचालित करने वाले प्राधिकारी द्वारा भी याचीगण को निर्दोष पाया गया था। किंतु तथ्य बना रहता है कि परिवाहकों द्वारा संपूर्ण दूरी अर्थात् हल्दिया से बरौनी तक और तब बरौनी से बरही तक की दूरी तय नहीं की गयी थी और इसके बावजूद, परिवाहकों को अभिकथित रूप से पूरी दूरी के परिवहन शुल्क का भुगतान किया गया था और अभियोजन के मामले के अनुसार, याचीगण ने परिवाहकों को परिवहन शुल्क प्राप्त करने के लिए सुकर बनाया जिसके वे हकदार नहीं थे। किंतु, याचीगण के मामले के मुताबिक, किसी हेतु, बिना उन्हें ऐसा करने की अनुमति दी गयी थी। ऐसी स्थिति में प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या प्राथमिकी को अभिखंडित करने की अपेक्षा की जा सकती है?

22. प्राथमिकी/दांडिक कार्यवाही को अभिखंडित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा शक्ति का प्रयोग प्रावधानित सिद्धांत सुज्ञात है। न्यायालय अन्य बातों के साथ साथ उक्त अधिकारिता का प्रयोग सामान्यत: उस स्थिति में करेगा जब प्राथमिकी अथवा परिवाद याचिका में अंतर्विष्ट अभिकथन, यदि उन्हें संपूर्ण तौर पर सही माना भी जाय, किसी अपराध का किया जाना प्रकट नहीं करते हैं। यह सुनिश्चित है कि अत्यंत आपवादिक मामलों के सिवाय न्यायालय अभियुक्त द्वारा अपने बचाव के समर्थन में विश्वास किए गए किसी दस्तावेज का परिशीलन नहीं करेगा। **आर॰ कल्याणी बनाम जनक सी॰ मेहता, (2009)1 SCC 516** के, मामले में विधि की निम्नलिखित प्रतिपादनाएँ अधिकथित की गयी है:–

> *(i) mPp U;k;ky; lkekU; r% nkfMd dk;okgh vkj fo'k"kr% çkFkfedh vfHk[kfMr dju d fy, viuh vrfufgr vfèkdkfjrk dk ç;kx rc rd ugh djxk tc rd mle vrfo"V vfHkdFku] li.k rkj ij fy, tku vkj viuh li.krk e lR; ik, tku ij Hkh dkb lK; vijkèk çdV ugh djrk gA*
>
> *(ii) mDr ç;ktu l vR;Ur vkiokfnd ifjfLFkfr;k d flok; U;k;ky; cpko }kjk fo'okl fd, x, fdlh nLrkot dk ifj'khyu ugh djxkA*
>
> *(iii) , lh 'kfDr dk ç;kx ;nk&dnk fd;k tk,xk] ;fn çkFkfedh e fd, x, vfHkdFku vijkèk fd;k tkuk çdV djr g] U;k;ky; bld ij ugh tk,xk vkj vkijkfèkd eu%fLFkfr vFkok vkijkfèkd dk; dh vuifLFkfr vfHkfuèkkfjr dju d fy, vfHk;Dr d i{k e vkn'k ikfjr ugh djxkA*

23. वर्तमान मामले में, आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के लिए सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा संग्रहित सामग्री प्रथम दृष्टया अभिकथित अपराध का अन्वेषण किया जाना प्रकट करती है किंतु याचीगण के मुताबिक, परिवाहकों को धनीय लाभ पहुँचाना सुकर बनाते हुए बिटुमिन को ढोने से संबंधित प्रक्रिया में कोई अपघर्षण अनाशयित था जो स्पष्टत: मंजूरी देने से इनकार करते हुए दस्तावेजों और याचीगण को आरोपों से विमुक्त करते रिपोर्टों से स्पष्ट है किंतु ऊपर निर्दिष्ट निर्णय के मुताबिक इस चरण पर दर्ज कोई निष्कर्ष कि क्या परिवाहकों को धनीय लाभ पहुँचाने का आशय याचीगण का था या नहीं अनपेक्षित होगा, बल्कि विचारण

के दौरान ही इनको सुलझाए जाने की आवश्यकता है। अत:, ऊपर कथित कारणों से और इन कारणों से भी कि पहले जब विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा तीनों याचीगण के विरुद्ध अपराधों का संज्ञान लिया गया था, दांडिक विविध याचिका सं॰ 345 वर्ष 2003 में संज्ञान लेने वाले आदेश को चुनौती दी गयी थी जिसे खारिज कर दिया गया था, प्राथमिकी अभिखंडित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करने के लिए मैं इसे सुयोग्य मामला नहीं पाता हूँ।

24. आगे अभिलिखित किया जाय कि जहाँ अपराध का संज्ञान पहले ही लिया जा चुका है, **महेश चौधरी बनाम राजस्थान राज्य, (2009)4 SCC 439,** मामले में किए गए संप्रेक्षण की दृष्टि में प्राथमिकी अभिखंडित करना वांछनीय नहीं होगा।

25. अत:, मैं इन आवेदनों में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ और इसलिए, इन आवेदनों को खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy] U;k;efr

मेसर्स शिवम आयरन एंड स्टील कं॰ लि॰

cuke

भारत संघ एवं अन्य

W.P. (C) No. 5256 of 2010 with I.A. No. 3797 of 2010. Decided on 1st August, 2011.

सरकारी संविदा–कोल लिंकेज–कोयला आपूर्ति लिंकेज का अंतरण–एक अन्य कंपनी द्वारा वाणिज्यिक इकाई को खरीदने में कोई अवैधता नहीं है–याची की कंपनी को दांडिक मामले में क्षमा दी गयी है–नए खरीदार (याची) को आपूर्ति किए जाने वाले कोयला के प्रस्तावित दुरुपयोग के बारे में कोई अभिकथन नहीं है–केवल इस आधार पर कि कोई सी॰ बी॰ आई॰ मामला लंबित है, याची को कोयला की आपूर्ति नहीं करने का भारत संघ के पास कोई कारण नहीं है–समुचित सत्यापन के बाद याची को कोयला की आपूर्ति करने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 4 से 10)

निर्णयज विधि.–(2010)10 SCC 395—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Sumeet Gadodia, N. K. Pasari, P.P. Roy, For the Petitioner; M/s. Anoop Kr. Mehta, Apresh Kumar, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान याचिका मुख्यत: इन कारणों से दाखिल की गयी है कि याची मेसर्स लक्ष्मी इस्पात जो मेसर्स राज गंगा ट्रेडर्स प्रा॰ लि॰ का एकमात्र स्वत्वधारी है, की संपत्तियों का खरीदार है। फरवरी, 2010 के महीने में मेसर्स लक्ष्मी इस्पात की संपत्तियों को याची द्वारा खरीदा गया है और नए खरीदार अर्थात् वर्तमान याची जो मेसर्स शिवम आयरन एंड स्टील कं॰ लि॰ है, को अब कोयला आपूर्ति लिंकेज का अंतरण किया जाना है। इस प्रकार का वाणिज्यिक संव्यवहार वाणिज्यिक जगत में अज्ञात नहीं है। विकासशील देशों में एकमात्र स्वत्वधारिता की खरीद-बिक्री नियमित परिघटना है। इस याची ने स्वत्वधारी अर्थात् मेसर्स राज गंगा ट्रेडर्स प्रा॰ लि॰ से मेसर्स लक्ष्मी इस्पात की संपत्तियों को विधिपूर्वक खरीदा है। कोयला लिंकेज के लिए नाम के परिवर्तन के लिए कोयला मंत्रालय के समक्ष दिनांक 5.3.2010 को आवश्यक आवेदनों को दिया गया था। याची के अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि तत्पश्चात पत्राचारों और

स्पष्टीकरणों की श्रृंखला इप्सित की गयी थी और न केवल याची अर्थात् खरीदार पक्ष द्वारा बल्कि हक पूर्वाधिकारी अर्थात् मेसर्स लक्ष्मी इस्पात द्वारा भी इन्हें (इस रिट याचिका के मेमो का परिशिष्ट सं॰ 5, 7, 8 और 9) दिया गया था और अंतत: दिनांक 18.8.2010 को इन शर्तों के अध्यधीन कि प्रोजेक्ट, जिसके लिए दीर्घकालीन कोयला लिंकेज (आश्वासन पत्र) दिया गया है, अपरिवर्तित बना रहेगा और संपत्तियों के खरीदार (अर्थात् याची) द्वारा इसका लोकेशन परिवर्तित नहीं किया जाएगा और द्वितीयत: इस शर्त पर कि शर्तों के अधीन दिया गया दीर्घकालीन कोयला लिंकेज (आश्वासन पत्र) अपरिवर्तित बना रहेगा, कोयला लिंकेज/कोयला आवंटन के प्रयोजन से मेसर्स शिवम आयरन एंड स्टील कं॰ लि॰ (स्पाँज एंड पावर डिविजन) से कंपनी के नाम के परिवर्तन की अनुमति देते हुए भारत सरकार के अवर सचिव द्वारा परिशष्ट–13 पर आदेश पारित किया गया था। वे शर्त जिन पर हक पूर्वाधिकारी अर्थात् मेसर्स लक्ष्मी इस्पात को कोयला आपूर्ति करने की अनुमति दी गयी थी, नए खरीदार के लिए भी बने रहेंगे। याची के अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि भारत संघ द्वारा सब कुछ स्वीकार किया गया था। दिनांक 23.8.2010 को कोयला मंत्रालय, केंद्र सरकार के कार्यालयों पर सी॰ बी॰ आई॰ अधिकारियों द्वारा छापा मारा गया था और कोयला मंत्रालय और वाणिज्य मंत्रालय के कुछ उच्च श्रेणी के अधिकारियों को सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा रंगे हाथों पकड़ा गया था और अब मामला आर॰ सी॰ केस सं॰ S-18/2010-E-0005 विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम), सी॰ बी॰ आई॰ II, पटियाला हाऊस, नयी दिल्ली के समक्ष है। इस मामले से याची को कोई मतलब नहीं है क्योंकि याची मेसर्स लक्ष्मी इस्पात की संपत्तियों का खरीदार है। मेसर्स लक्ष्मी इस्पात द्वारा दिनांक 1.4.2010 का 'अनापत्ति प्रमाण पत्र' भी दिया गया है जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट–8 पर है और अनावश्यकत: याची को अभियुक्त के रूप में संयोजित किया गया है और सक्षम विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 307 सह–पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(2) के अधीन याची को पहले ही क्षमा प्रदान किया है। इस प्रकार, भारत संघ के कोयला मंत्रालय और वाणिज्य मंत्रालय के अधिकारियों के विरुद्ध लंबित मामले में मुख्य गवाह होने के सिवाय याची का दांडिक मामले के साथ कोई सरोकार नहीं है, और इसलिए, कोयला लिंकेज करार के मुताबिक याची को कोयला की आपूर्ति की जा सकती है और प्रत्यर्थीगण द्वारा दिनांक 26.8.2010 को पारित आदेश, जिसे आई॰ ए॰ सं॰ 3979 वर्ष 2010 के साथ संलग्न किया गया है, को अभिखंडित और अपास्त किया जा सकता है और याची कोयला की आपूर्ति का दुरुपयोग करने नहीं जा रहा है और कोयला की आपूर्ति के दुरुपयोग के लिए याची के विरुद्ध कोई अभिकथन नहीं किया गया है। प्रत्यर्थी–भारत संघ के अधिवक्ता ने भारत सरकार के अवर सचिव द्वारा लिखा गया दिनांक 13.7.2011 का पत्र भी इस न्यायालय को दिया है जिसमें कथन किया गया है कि कोयला के दुरुपयोग के संबंध में दुरुपयोग का कोई रिपोर्ट नहीं है। इस प्रकार, **कोल इंडिया लिमिटेड एवं अन्य बनाम कोल कंज्यूमर ऐसोसिएशन एवं अन्य, (2010)10 Supreme Court Cases 395** में प्रकाशित (इसका पैरा 13 और 14) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की दृष्टि में, भारत संघ को आश्वासन पत्र जैसे कतिपय विवरणों को देकर आवश्यक प्रक्रियाओं को परिपूर्ण करने के बाद कोयला लिंकेज के मुताबिक याची को कोयला की आपूर्ति करने का आदेश दिया जा सकता है। यह प्रतीत होता है कि किसी प्राईवेट लिमिटेड कंपनी द्वारा संपत्तियों की खरीद–बिक्री के वाणिज्यिक संव्यवहार के बारे में, जो वाणिज्यिक जगत में अज्ञात नहीं है, किंतु भारत संघ के अधिकारियों में से कुछ को इसकी जानकारी नहीं हो सकती है, भारत संघ को कुछ गलतफहमी होने के कारण संपूर्ण विवाद उद्भूत हुआ है। एक अन्य कंपनी द्वारा वाणिज्यिक इकाई की खरीद में कोई

अवैधता नहीं है। कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन ऐसे संव्यवहार सुज्ञात हैं, और इसलिए, समामेलन इत्यादि के लिए प्रावधान है। मात्र इसलिए कि कोयला मंत्रालय और वाणिज्य मंत्रालय में छापा मारा गया था, याची को कोयला की आपूर्ति नहीं करने का कारण यह नहीं हो सकता है। अत:, कोयला लिंकेज के मुताबिक कोयला की आपूर्ति के लिए भारत संघ को परमादेश जारी किया जाय।

2. मैंने भारत संघ के अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने निवेदन किया है कि यह सत्य है कि कोयला के दुरुपयोग के लिए याची के विरुद्ध कोई अभिकथन नहीं है। याची के अधिवक्ता ने भारत सरकार के अवर सचिव से दिनांक 13.7.2011 का पत्र प्राप्त किया है। इसकी एक प्रति इस न्यायालय को दी गयी है और पत्र के पैराग्राफ 2 में कथन किया गया है कि याची द्वारा वाणिज्यिक संव्यवहार के दुरुपयोग का कोई रिपोर्ट नहीं है। प्रत्यर्थी–भारत संघ के अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि यह सत्य है कि भारत सरकार के अवर सचिव द्वारा दिनांक 18.8.2010 को पत्र लिखा गया था जिसके द्वारा उस पत्र में कथित शर्तों के अध्यधीन मेसर्स लक्ष्मी इस्पात से मेसर्स शिवम आयरन एंड स्टील कं॰ लि॰ (स्पाँज एंड पावर डिविजन) में नाम के परिवर्तन को भारत संघ द्वारा स्वीकार किया गया था, उक्त पत्र याचिका के मेमो के परिशिष्ट–13 पर है। इसके क्रियान्वयन के पहले दिनांक 23.8.2010 को कोयला मंत्रालय और वाणिज्य मंत्रालय में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा छापा मारा गया था और कतिपय उच्च श्रेणी के अधिकारियों को अभियुक्त बनाया गया था। सक्षम विचारण न्यायालय अर्थात् विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम) सी॰ बी॰ आई॰ II, पटियाला हाऊस, नयी दिल्ली द्वारा याची को 'क्षमा' प्रदान किया गया था, और इसलिए, याची उक्त दांडिक मामले में मुख्य गवाह होगा किंतु तथ्य बना रहता है कि सी॰ बी॰ आई॰ की इस छापेमारी के कारण दिनांक 18.8.2010 के पूर्व आदेश को प्रास्थगित रखने के लिए भारत संघ द्वारा दिनांक 26.8.2010 का एक अन्य पत्र जारी किया गया था, उक्त पत्र अंतर्वर्ती आवेदन के साथ संलग्न है जिसे पहले ही अनुज्ञात किया जा चुका है और मुख्य रिट याचिका में संशोधन पहले ही किया जा चुका है, यह पत्र परिशिष्ट–14 पर है।

3. प्रत्यर्थी सं॰ 2 और 3 के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि कोयला लिंकेज करार के अधीन कोयला की आपूर्ति के लिए नाम परिवर्तन की औपचारिकताओं को भारत संघ द्वारा पूरा किए जाने के बाद ही प्रत्यर्थी सं॰ 2 और 3 की भूमिका शुरू होगी। प्रत्यर्थी सं॰ 2 और 3 कुछ औपचारिकताओं को पूरा करेंगे और तत्पश्चात वे कोयला लिंकेज करार के मुताबिक कोयला की आपूर्ति करेंगे। अत:, यदि यह न्यायालय मेसर्स लक्ष्मी इस्पात से वर्तमान याची के नाम में कंपनी के नाम के परिवर्तन को स्वीकार करने के लिए भारत संघ को निर्देश देता है, तब प्रत्यर्थी सं॰ 2 और 3 की भूमिका शुरू होगी।

4. दोनों पक्षों के अधिवक्ता को सुनने पर और मामले के तथ्यों को देखते हुए प्रतीत होता है:–

(i) fd ey dk;yk fydt djkj çR;Fkh&Hkkjr l?k vkj ell y{eh bLikr (ell jkt xxk VMl çk0 fy0 ell y{eh bLikr dk ,dek= LoRoèkkjh g) d chp gvk FkkA ;kph u Qjojh] 2010 e ell y{eh bLikr dh lifÙk;k dk [kjhnk g ell y{eh bLikr d ikl dk;yk fydt djkj Fkk] vkj blfy,] vc vko';d vkipkfjdrkvk dk ijk djd oreku ;kph dk bldk vrj.k dju dh vko';drk gA

(ii) ekey d rF;k vkj ifjfLFkfr;k l vkx çrhr gkrk g fd ;kph u fnukd 5.3.2010 dk e l l y{eh bLikr l oreku ;kph d uke e uke d ifjoru d fy, vkonu fn;k gA çR;Fkh&Hkkjr l?k }kjk vud ç'uk dk iNk x;k Fkk vkj ;kph dk ckj&ckj çR;Fkh&Hkkjr l?k dk dfri; rF;k dh vkifr dh vko';drk vkj ekx dk ijk djuk iMrk g ft ldk ifj.kke i{kk d chp yc i=kpkj e gvk ftue l dN i=k dk ifjf'k"V&5, 7, 8 vkj 9 ij fufn"V fd;k x;k gA

(iii) ;g çrhr gkrk g fd vud ç'uk vkj ;kph ,o e l l y{eh bLikr }kjk mÙkj fn, tku ij çR;Fkh&Hkkjr l?k l r"V gvk Fkk vkj Hkkjr l jdkj d voj lfpo }kjk fnukd 18.8.2010 dk i= (;kfpdk d eek dk ifjf'k"V&13) fy[kk x;k Fkk fd mÙgku e l l y{eh bLikr l oreku ;kph vFkkr e l l f'koe vk;ju ,M LVhy d0 ik0 fy0 d uke e uke d ifjoru dk bu 'krk d vè;ekhu Lohdkj fd;k g fd ykd'ku e dkb ifjoru ugh fd;k tk,xk vkj çktDV ft ld fy, dk;yk dh vkifr dh tkuh g] vifjofrr cuk jgxk vkj nljh 'kr tk vfèkjkfir dh x;h Fkh ;g Fkh fd 'krk ftu ij e l l y{eh bLikr dk dk;yk dh vkifr dh tkuh Fkh] u, [kjhnnkj vFkkr e l l f'koe vk;ju ,M LVhy d0 çk0 fy0 d fy, Hkh ugh cuh jgxhA ;kph u bu nkuk 'krk dk Lohdkj fd;k gA

(iv) ;g çrhr gkrk g fd dk;yk e=ky; d mPp J.kh d vfèkdkfj;k }kjk voèk ifjrk"k.k dh ekx dh x;h Fkh] vkj b l fy,] lh0 ch0 vkb0 d vfèkdkfj;k }kjk Nkik ekjk x;k Fkk vkj vkj0 lh0 d l l0 S-18/2000-E-0005 lh0 ch0 vkb0 }kjk nt fd;k x;k Fkk vkj ;g fo'k"k U;k;kèkh'k (Hk"Vkpkj fuokj.k vfèkfu;e) lh0 ch0 vkb0 II, ifV;kyk gkÅl] u;h fnYyh d le{k yfcr g] ft le] ;kph dh diuh d fun'kdk e l ,d vFkkr fcukn dekj vxoky dk vfHk;Dr d :i e l ;kftr fd;k x;k Fkk fdr fnukd 9.6.2011 d vkn'k }kjk nM çfØ;k lfgrk dh èkkjk 307 lg&ifBr Hk"Vkpkj fuokj.k vfèkfu;e] 1988 dh èkkjk 5 (2) d vèkhu ^{kek* çnku fd;k x;k gA vr%] çrhr gkrk g fd l{ke fopkj.k U;k;ky; d le{k ml nkfMd ekey e ;kph e[; xokg gk ldrk gA

(v) ekey d rF;k l ;g çrhr gkrk g fd ;kph u e l l jkt xxk VMl çk0 fy0 d LokfeRo okyh e l l y{eh bLikr dh lifÙk;k dk [kjhn fy;k g vkj fnukd 1.4.2010 d i=] tk ;kfpdk d eek d ifjf'k"V&8 ij g] d rgr e l l y{eh bLikr }kjk igy gh ^vukifr çek.k i=* fn;k tk pdk g vkj ek= b l fy, fd vc lh0 ch0 vkb0 }kjk Nkik ekjk x;k g] ;kph dk dk;yk dh vkifr ugh dh tk jgh g vkj fnukd 18.8.2010 dk i=] tk ifjf'k"V&13 ij g] dk fdlh dkj.k d fcuk ifjf'k"V&14 ij ektn fnukd 26.8.2010 d i= }kjk çkLFkfxr j[kk x;k gA nM çfØ;k lfgrk dh èkkjk 307 d vèkhu ;kph dk igy gh {kek çnku fd;k tk pdk gA vc og vfHk;ktu dk e[; xokg gkxkA e l l y{eh bLikr l ;kph }kjk lifÙk dh [kjhnxh voèk ugh g(b l n'k e lno b l çdkj d okf.kfT;d l0;ogkj gk jg gA ;g Hkkjr l?k d dN vfèkdkfj;k d fy, u;k gk ldrk gA diuh vfèkfu;e d vèkhu lekeyu d fy, Hkh çkoèkku gA Hkkjr l?k d vfèkdkfj;k dk oc&gkfYMx dh voèkkj.kk dh tkudkjh ugh gk ldrh gA bl rF;

dk ifjf'k"V&11 e dfFkr fd;k x;k gA ;kph }kjk oc&gkfYMx dh voèkkj.kk dk igy gh Li"V fd;k tk pdk g] vkj bl d vfrfjDr] u, [kjhnkj vFkkr ;kph dk vkifr fd, tku oky dk;y d çLrkfor n#i;kx d ckj e Hkkjr l?k }kjk dkb vfHkdFku ugh fd;k x;k gA ;kph d vfèkoDrk vkj çR;Fkh&Hkkjr l?k d vfèkoDrk u Hkkjr l?k dk fnukd 13.7.2011 dk i= çkIr fd;k g ftld h çfr vfHky[k ij g vkj ijkxkQ&2 e dFku fd;k x;k g fd ;kph }kjk okf.kfT;d l0;ogkj d n#i;kx dk dkb fjikV ugh gA mDr i= d ijkxkQ&2 dk uhp mnèkr fd;k tk jgk g%

"2. okf.kfT;d l0;ogkj e n#i;kx l lcfèkr fcn l0 (1) d lcèk e lfpr fd;k tkrk g fd gekj ikl miyCèk vfHky[k d erkfcd ;kph }kjk okf.kfT;d l0;ogkj e n#i;kx dk fjikV ugh gA"

5. कोल इंडिया लिमिटेड एवं अन्य बनाम कोल कंज्यूमर एशोसिएशन एवं अन्य, (2010)10 SCC 395 में प्रकाशित मामले के पैराग्राफ सं॰ 13, 14 और 15 पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

"13. geu vkt dky bfM;k fy0 cuke vkykd ¶;,y (çk0) fy0 e vkj l'khyk dfedYl (çk0) fy0 cuke Hkkjr dkfdx dky fy0 e Hkh fu.k; fn;k g ftle geu vfHkfuèkkfjr fd;k g fd ;kph 2 dk dk;yk d [kjhnkj dk dk;yk dh vkifr fuyfcr dju dk vfèkdkj g tgk lng g fd [kjhnkj vkofVr dk;yk dk n#i;kx dj ldrk g vFkok [ky cktkj e bl cp ldrk g D;kfd ,Q0 ,l0 ,0 d [kM 4.4 vkj u;h dk;yk forj.k uhfr l Li"V Fkk fd ,Q0 ,l0 ,0 vkj ljdkj d uhfrxr fu.k; dk mí'; mud lykVk e mi;kx d fy, [kjhnkj dk dk;yk vkofVr djuk g vkj u fd fdlh vU; ç;ktu lA

14. vkt fn, x, nkuk fu.k;k e] geu ;g Hkh vfHkfuèkkfjr fd;k g fd lh0 ch0 vkb0 tk dn ljdkj dh e[;re vUo"k.k ,tlh g] }kjk nt çkFkfedh u xHkhj lng lftr fd;k fd [kjhnkj d lykVk e mi;kx fd, tku d ctk; vkofVr dk;y dk foiFku fd;k tk ldrk g vFkok [ky cktkj e cpk tk ldrk g vkj blfy, lefpr dk;okfg;k e bu lngk dk nj fd, tku rd bu ekeyk e ;kph 2 [kjhnkj dk dk;yk dh vkifr dk fuyfcr dju e viu vfèkdkjk d vrxr FkkA

15. fdr] bu ekeyk d rF;k e] ge ikr g fd ;g vfHkdFku djr g, fd 45 vk|kfxd miHkkDrkvk dk dh x;h dk;yk dh vkifr dk mi;kx mud viu&viu vk|kfxd bdkb;k e ugh fd;k x;k g] lh0 ch0 vkb0 }kjk dkb çkFkfedh nt ugh dh x;h gA bld vfrfjDr] dk;yk e=ky;] Hkkjr ljdkj dh fnukd 18.10.2007 dh u;h dk;yk forj.k uhfr dk ijk 3.1 Li"Vr% dfFkr djrk g fd jkT; ljdkj okLrfod mi;kx dk eY;kdu dju d fy, lefpr dne mBk ldrh g vkj èkvkjfgr ¶;,y] bV HkVVh] dkd vkou bdkb vkfn tl y?k vkj eè;e lDVj e bdkb;k dk vkifr dh xb dk;yk d mi;kx dk ekfuVj dj ldrh gA"

6. <u>पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में भी, जब एक बार याची को आपूर्ति किए गए कोयले के दुरुपयोग का अभिकथन नहीं है और याची द्वारा कोयला के दुरुपयोग के लिए सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा कोई प्राथमिकी दाखिल नहीं की गयी है और याची ने मेसर्स लक्ष्मी इस्पात की संपत्तियों को खरीद लिया है और भारत संघ द्वारा पारित दिनांक 18.8.2010 के आदेश, परिशिष्ट–13, को देखते हुए भारत संघ के लिए याची को कोयला की आपूर्ति इस आधार पर नहीं करने का कोई कारण नहीं है</u> कि कोई सी॰ बी॰ आई॰ मामला

लंबित पड़ा है और कोयला मंत्रालय और वाणिज्य मंत्रालय के कुछ उच्च श्रेणी के अधिकारियों को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अभियुक्त बनाया गया था। अतः, मैं एतद् द्वारा भारत सरकार के अवर सचिव द्वारा जारी दिनांक 26.8.2010 के पत्र, जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-14 पर है (अंतर्वर्ती आवेदन का परिशिष्ट-14) को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ, और मैं एतद् द्वारा भारत संघ को दिनांक 18.8.2010 के पत्र में निर्दिष्ट शर्तों के अध्यधीन कोयला लिंकेज/कोयला आवंटन के आपूर्ति के प्रयोजन से मेसर्स लक्ष्मी इस्पात से मेसर्स शिवम आयरन एंड स्टील कं॰ लि॰ (स्पाँज एंड पावर डिविजन) के नाम में नाम के परिवर्तन को स्वीकार करने का निर्देश देता हूँ। याची के विद्वान अधिवक्ता दिनांक 18.8.2010 के पत्र (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-13) में निर्दिष्ट दो शर्तों के साथ सहमत है। याची आश्वासन देता है कि वह पूर्व कंपनी अर्थात् मेसर्स लक्ष्मी इस्पात के कारखाना परिसर को नहीं बदलेगा और न ही उस प्रयोजन को बदलेगा जिसके लिए मेसर्स लक्ष्मी इस्पात को कोयला की आपूर्ति की जानी थी। याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

7. चूँकि इस न्यायालय ने पहले ही भारत संघ द्वारा जारी दिनांक 26.8.2010 के पत्र को अभिखंडित कर दिया है, मैं प्रत्यर्थी सं॰ 2 और 3 अर्थात् क्रमशः कोल इंडिया लिमिटेड और महानदी कोलफील्ड्स लिमिटेड को आपूर्ति करार द्वारा अनुसरित आश्वासन पत्र देने जैसी आवश्यक औपचारिकताओं और कोयला लिंकेज करार के मुताबिक कोयला की आपूर्ति के लिए ऐसी अन्य आवश्यकताओं, जो मेसर्स लक्ष्मी इस्पात के साथ विद्यमान थी, को पूरा करने का निर्देश देता हूँ।

8. इस न्यायालय के आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर याची को कोयला की आपूर्ति करने के लिए आवश्यक औपचारिकताओं को पूरा करने का निर्देश इस रिट याचिका में पक्षों को दिया जाता है।

9. यह सत्यापित करने के लिए कि आपूर्ति किए गए कोयले का उपयोग समुचित रूप से किया गया है या नहीं, याची के परिसरों की जाँच करने की स्वतंत्रता भारत संघ को दी जाती है। जाँच के युक्तियुक्त व्यय का भुगतान याची द्वारा किया जाएगा। एक वर्ष की आरंभिक अवधि के दौरान ऐसी जाँच कुछ अधिक निरंतरता के साथ की जा सकती है। याची के अधिवक्ता भारत संघ के पदाभिहित अधिकारी के पास अथवा प्रत्यर्थीगण द्वारा दिए गए निर्देश के मुताबिक जाँच का युक्तियुक्त व्यय जमा करने के लिए सहमत हैं।

10. तद्नुसार, याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है और पूर्वोक्त अंतर्वर्ती आवेदन भी निपटाया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] dk;dkjh e[; U;k;kèkh'k ,o ,p lh feJk] U;k;efr

शैलेन्द्र कुमार झा

cuke

क्षेत्रीय निदेशक, डी॰ ए॰ वी॰ पब्लिक स्कूल एवं एक अन्य

L.P.A. No. 141 of 2010. Decided on 26th July, 2011.

(क) सेवा विधि–सेवा समाप्ति–पुनर्बहाली–याची दांडिक मामले में अपने पक्ष में दिए गए दोषमुक्ति के आदेश का लाभ लेने का प्रयास कर रहा है जिसका याची की सेवा की समाप्ति के साथ कोई संबंध नहीं है–याची दांडिक मामले में अपनी दोषमुक्ति के कारण सेवा में पुनर्बहाली का दावा नहीं कर सकता है। (पैरा 7)

(ख) झारखंड शिक्षा अधिकरण अधिनियम, 2005—धारा 10(2)—सेवा में पुनर्बहाली के लिए आवेदन की अस्वीकृति–दांडिक मामले से स्वतंत्र वाद हेतु याची को वर्ष 1993 में प्रोद्भूत हुआ–याची ने स्वयं अपने विरुद्ध दांडिक मामले के भय के अधीन कर्तव्य के लिए रिपोर्ट नहीं किया था–याची को एक ऐसे आधार, जिसका उसकी सेवाओं की समाप्ति के साथ कोई संबंध नहीं है, पर अनुतोष के लिए अधिकरण के पास जाकर मुकदमा लंबित रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है–अपील खारिज। (पैराएँ 8 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. Pandey Niraj Roy, For the Appellant; Mr. Ananda Sen, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के अधिवक्ताओं को सुना गया।

2. याची नियोजन में था और उसने दिनांक 17.11.1991 को परमार विद्यावती सुरजीत सिंह डी॰ ए॰ वी॰ पब्लिक स्कूल, झूमरी तिलैया में पदग्रहण किया। याची के अनुसार उसे लिपिक के पद पर प्रोन्नत किया गया था। किंतु वर्ष 1993 में भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 408, 468, 477A, 379 के अधीन याची के विरुद्ध एक दांडिक मामला दर्ज किया गया था और याची का प्रतिवाद यह है कि दांडिक मामला दर्ज किए जाने और विचारण का सामना करने के कारण प्रत्यर्थी–नियोक्ता ने उसे कर्तव्य ग्रहण करने की अनुमति नहीं दी थी। याची को दिनांक 21.8.2006 को उक्त दांडिक मामले में दोषमुक्त कर दिया गया था। तब याची अपनी पुनर्बहाली इप्सित करते हुए प्रबंधन के पास गया किंतु प्रबंधन ने याची–अपीलार्थी को अनुमति नहीं दिया। अंतत: याची–अपीलार्थी ने दिनांक 5.11.2007 को प्रत्यर्थी–प्रबंधन पर नोटिस तामील किया जिसका प्रत्यर्थी–प्रबंधन द्वारा उत्तर नहीं दिया गया था। तब याची–अपीलार्थी झारखंड शिक्षा अधिकरण के पास गया जिसने याची के ओ॰ ए॰ को झारखंड शिक्षा अधिकरण अधिनियम, 2005 की धारा 10(2) के प्रावधानों के अधीन समय द्वारा वर्जित होने के कारण अस्वीकार कर दिया। याची–अपीलार्थी ने अधिकरण के आदेश को इस आधार पर चुनौती देते हुए रिट याचिका ए॰ सी॰ (एस॰ बी॰) सं॰ 5 वर्ष 2009 दाखिल किया कि अधिकरण परिसीमा की आपत्ति को आरंभिक विवाद्यक के रूप में विनिश्चित नहीं कर सकता था और तब याची–अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया था कि वर्ष 2005 के अधिनियम की धारा 10 की उपधारा 2 के अधीन अंतर्विष्ट वर्जना प्रयोज्य नहीं है क्योंकि यह वर्जना उन मामलों पर लागू होती है जहाँ शिक्षा संस्थान द्वारा पारित किसी आदेश को चुनौती दी जाती है और याची का मामला यह है कि उसके विरुद्ध कोई आदेश पारित नहीं किया गया था बल्कि उसे कर्तव्य ग्रहण करने नहीं दिया गया था और अधिकरण में न केवल शैक्षणिक संस्थान द्वारा पारित आदेश को दी गयी चुनौती को सुनने और विनिश्चित करने की अधिकारिता निहित है बल्कि किसी शैक्षणिक संस्थान के कर्मचारी की शिकायत दूर करने के लिए आदेश पारित करने की शक्ति भी निहित है जबकि यह केवल निष्क्रियता का एक मामला है जिसके लिए कोई आदेश पारित नहीं किया गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी–प्रबंधन के प्रतिवाद को अस्वीकार कर दिया है और अभिनिर्धारित किया है कि जहाँ प्रबंधन द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया गया है, तब भी शैक्षणिक संस्थान के कर्मचारी द्वारा ओ॰ ए॰ दाखिल किया जा सकता है। अत: अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि याची–अपीलार्थी ने उस अवधि के अवसान के बाद अधिकरण के समक्ष आवेदन दाखिल किया था जैसा वर्ष 2005 के अधिनियम की धारा 10 की उपधारा 2 के अधीन प्रावधानित है और वह भी विलंब माफ करने के लिए कोई आवेदन दाखिल किए बिना, अत: यह समय वर्जित है और याची का आवेदन अस्वीकार कर दिया।

3. अपीलार्थी–याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्ष 2005 के अधिनियम की धारा 10 की उपधारा 2 केवल उन मामलों में लागू होती है जहाँ कोई ''आदेश'' पारित किया गया हो और

इसे चुनौती दी गयी हो, तब शैक्षणिक संस्थान द्वारा आदेश पारित करने की तिथि से छह माह की अवधि के भीतर अधिकरण में कार्रवाई आरंभ की जा सकती है। निवेदन किया गया है कि याचिका ग्रहण करने की अधिकारिता उस मामले तक सीमित नहीं है जहाँ शैक्षणिक संस्थान ने ''आदेश'' पारित किया है बल्कि यह व्यापक है और शैक्षणिक संस्थान के विरुद्ध उसकी ''शिकायत'' के संबंध में किसी व्यथित व्यक्ति द्वारा दाखिल कोई आवेदन पोषणीय है। यह अधिकारिता वर्ष 2005 की धारा 9 के अधीन दी गयी है जो ''शिकायतों'' को आच्छादित करते हुए व्यापक है और शैक्षणिक संस्थान द्वारा पारित किसी आदेश को चुनौती दिए जाने तक निर्बंधित नहीं है। अत:, जहाँ तक कर्मचारी की शिकायत दूर करने के लिए अनुतोष प्रदान करने के लिए अधिकरण की अधिकारिता का संबंध है, कोई परिसीमा विहित नहीं की गयी है और परिसीमा उन मामलों पर प्रयोज्य बनायी गयी है जहाँ संस्थान द्वारा कोई ''आदेश'' पारित किया जाता है और चुनौती दी जाती है। अत:, परिसीमा की वर्जना याची के मामले पर प्रयोज्य नहीं है और विलंब माफ करने के लिए याची को कोई आवेदन दाखिल करने की आवश्यकता नहीं थी। यह निवेदन भी किया गया है कि जब धारा 10(2) की कोई प्रयोज्यता नहीं है, अधिकाधिक भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1963 के प्रावधानों को लागू किया जा सकता है जो वह प्रावधान करता है कि जहाँ किसी आवेदन/वाद के लिए परिसीमा प्रावधानित नहीं की गयी है, वहाँ आवेदन के लिए परिसीमा की अवधि तीन वर्ष होगी, और इसलिए, अधिकरण के समक्ष याची का आवेदन तीन वर्षों की अवधि के भीतर था, और इस प्रकार, परिसीमा की अवधि के भीतर था। विकल्प में, निवेदन किया गया है कि विलंब माफ करने के लिए आवेदन दाखिल करने की अनुमति याची को दी जा सकती है यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर आता है कि याची का आवेदन परिसीमा की अवधि के भीतर होना चाहिए था जैसा वर्ष 2005 के अधिनियम की धारा 10 की उपधारा 2 के अधीन विहित है।

4. याची-अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थी-प्रबंधन का प्रतिवाद कि याची ने कर्तव्य के लिए रिपोर्ट नहीं किया था, पूर्णत: तथ्य का गलत कथन है और वस्तुत: याची को कर्तव्य का निर्वहन करने से रोका गया था। किंतु, यदि याची के इस प्रतिवाद को स्वीकार किया जाता है जैसा यह है, तब भी स्वीकृत रूप से याची को वाद हेतुक तब प्रोद्भूत हुआ जब उसे कर्तव्य ग्रहण करने से इनकार किया गया था और वह वर्ष 1993 में हुआ था और याची ने वर्ष 2008 में अधिकरण के समक्ष इस आवेदन को दाखिल किया है, तब 14 वर्षों से अधिक के अत्यधिक विलंब की दृष्टि में याची का आवेदन खारिज किए जाने के लिए दायी था और वस्तुत: याची का आवेदन इस आधार पर खारिज किए जाने का दायी था जो उन कारणों से स्पष्ट होगा जो हम नीचे दे रहे हैं।

5. प्रत्यर्थी-प्रबंधन के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि प्रथमत:, याची की सेवाओं को समाप्त करते हुए अथवा कर्तव्य ग्रहण करने से उसको मना करते हुए प्रत्यर्थी-प्रबंधन द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया गया है, और इसलिए, रिट याची का आवेदन ग्रहण करने की अधिकारिता अधिकरण को नहीं है। तब, यह निवेदन किया गया है कि याची स्थापित करने में विफल रहा कि उक्त दांडिक मामले के कारण उसे काम देने से मना किया गया था अथवा उसे काम करने की अनुमति नहीं दी गयी थी और उसकी सेवा समाप्त कर दी गयी है ताकि दाण्डिक मामले में दोषमुक्ति के कारण पुनर्बहाली के किसी अनुतोष का दावा किया जा सके। आगे निवेदन किया गया है कि याची के विरुद्ध दांडिक मामला दर्ज किए जाने के पहले भी याची काम करने के लिए उपस्थित नहीं हुआ और निवेदन किया गया है कि याची ने दिनांक 21.1.1993 को काम छोड़ दिया और प्राथमिकी दिनांक 10.2.1993 को दर्ज की गयी थी।

यह निवेदन भी किया गया है कि यदि याची का प्रतिवाद स्वीकार किया भी जाता है कि उसे अपने पद पर वर्ष 1993 से काम करने की अनुमति नहीं दी गयी थी, तब वर्ष 1993 में याची को वाद हेतुक प्रोद्भूत हुआ था। याची वर्ष 2008 में अधिकरण के समक्ष आया। अत:, इस अत्यधिक विलंब के कारण याची का दावा प्रथमत: वर्ष 2005 के अधिनियम की धारा 10 की उपधारा 2 के अधीन परिसीमा की अवधि द्वारा वर्जित था और द्वितीयत:, यदि भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1963 से भी परिसीमा ली जाती है, तब भी यह वर्जित था।

6. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और मामले के तथ्यों का परिशीलन किया है।

7. स्वयं याची का स्वीकृत मामला है कि प्रबंधन ने उसके विरुद्ध दांडिक मामला दर्ज किए जाने अथवा विचारण के लम्बित रहने के कारण उसकी सेवाओं को समाप्त करने के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया गया था, और द्वितीयत:, किसी अन्य कारण से समय के किसी बिंदु पर उसकी सेवाओं को समाप्त करते हुए याची के विरुद्ध कोई आदेश पारित नहीं किया गया है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रतीत होता है कि याची, जिसने वर्ष 1993 से कर्तव्य के लिए रिपोर्ट नहीं किया था, ने उक्त दांडिक मामले में अपने पक्ष में दिए गए दोषमुक्ति के आदेश की सहायता लेकर मामले को विकसित करने का प्रयास किया जिसका याची की सेवा समाप्त किए जाने के साथ कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संबंध नहीं था जिसके लिए प्रत्यर्थी-प्रबंधन द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया गया है। चूँकि यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ दांडिक मामले के कारण याची की सेवा समाप्त कर दी गयी थी ताकि उक्त दांडिक मामले में दोषमुक्ति के बाद वह दावा कर सके कि प्रत्यर्थी को याची के विरुद्ध दांडिक मामला दर्ज किए जाने के कारण पारित सेवा समाप्ति के आदेश का प्रतिसंहरण कर देना चाहिए। अत:, मामले के तथ्यों में याची दांडिक मामले में अपनी दोषमुक्ति के कारण सेवा में पुनर्बहाली का दावा नहीं कर सकता है।

8. उक्त तथ्यों की दृष्टि में, याची को जो कोई भी वाद हेतुक प्रोद्भूत हुआ, वह उस दिन प्रोद्भूत हुआ जब उसे पद पर काम करने से मना किया गया था जो याची के अनुसार वर्ष 1993 में हुआ था, और इसलिए, दांडिक मामले से स्वतंत्र वाद हेतुक याची को वर्ष 1993 में प्रोद्भूत हुआ और कारण यह हो सकता है कि स्वयं याची ने उक्त दांडिक मामले के भय से कर्तव्य के लिए रिपोर्ट नहीं किया।

9. उक्त कथित कारणों से हम ऐसे आधार, जिसका याची की सेवाओं की समाप्ति के साथ कोई संबंध नहीं है, पर अनुतोष के लिए अधिकरण के पास जाकर मुकदमा को लंबित रखने के लिए याची को अनुमति देने का कोई न्यायोचित कारण नहीं पाते हैं।

10. उक्त कारणों की दृष्टि में, हम एल॰ पी॰ ए॰ में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं और ऊपर उल्लिखित कारणों से, और इसके अतिरिक्त विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में दिए गए कारणों से जिसमें सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया गया है कि शिक्षा अधिकरण द्वारा पारित किसी विनिर्दिष्ट आदेश के बिना व्यथित पक्ष की शिकायत को शिक्षा अधिकरण द्वारा दूर किया जा सकता था और याची-अपीलार्थी द्वारा उठाया गया परिसीमा के प्रश्न की इस तथ्य की दृष्टि में कोई प्रासंगिकता नहीं है कि याची को वाद हेतुक वर्ष 1993 में प्रोद्भूत हुआ है।

11. तद्नुसार, एल॰ पी॰ ए॰ खारिज किया जाता है।

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

राम अनुग्रह प्रसाद

cuke

भारत संघ एवं अन्य

W.P. (S) No. 2716 of 2008. Decided on 27th July, 2011.

सेवा विधि–बर्खास्तगी–चोरी का आरोप–भविष्य में सरकारी नियोजन के लिए अनर्हता के साथ सेवा से बर्खास्तगी–इसी प्रकार की स्थिति वाले अपचारी को अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड अधिनिर्णीत–यह तर्क कि याची भी इसी दंड का हकदार है, सराहणीय नहीं है क्योंकि यह वैसा मामला नहीं है जहाँ गवाहों के एक ही समूह को परीक्षित किया गया था और साक्ष्य की प्रकृति समरुप थी–कुछ समरुपता हो सकती है किंतु दो जाँचों को एक ही प्लेटफॉर्म पर लाया नहीं जा सकता है–कर्मचारी, जो सी॰ आई॰ एस॰ एफ॰ में कांस्टेबल के रूप में कार्यरत है, सेवा में नहीं बना रह सकता है जब चोरी का विनिर्दिष्ट अभिकथन है और उसे घटनास्थल पर गिरफ्तार किया गया था–याचिका खारिज। (पैराएँ 11 से 14)

निर्णयज विधि.–1983 Lab I.C. 662; 2008 Lab I.C. 1102; (2010)2 SCC 236; (2010)3 SCC 463—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s Ram Kishore Prasad, Praful Jojo, For the Petitioner; Mr. Faizur Rahman, For the Respondents.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और भारत संघ की ओर से उपस्थित अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका दिनांक 4 फरवरी, 2008 के आदेश को और दिनांक 11 अप्रिल, 2008 के अपीलीय आदेश, इस रिट याचिका का क्रमशः परिशिष्ट–1 और 2, को चुनौती देते हुए दाखिल की गयी है। सेवा से बर्खास्तगी का आदेश सरकार के अधीन भविष्य के नियोजन के लिए निरर्हता का है।

3. याची को सी॰ आई॰ एस॰ एफ॰ के अधीन दिनांक 12 अक्टूबर, 1984 को नियुक्त किया गया था और वर्ष 1985 से जून 1981 *(sic ?)* तक विशाखापत्तनम में पदस्थापित किया गया था। तत्पश्चात, उसे जून 1995 से वर्ष 1997 तक ई॰ सी॰ एल॰ शीतलपुर में और अंततः बी॰ सी॰ सी॰ एल॰, धनबाद में पदस्थापित किया गया था। उस समय जब याची को आरोप–पत्रित किया गया था, वह हेड कांस्टेबल, सी॰ आई॰ एस॰ एफ॰ के रूप में एच॰ ई॰ सी॰, धुर्वा इकाई, राँची के अधीन पदस्थापित था। आगे प्रतिवाद किया गया है कि उसने अपनी अच्छी सेवा के लिए 36 पुरस्कार प्राप्त किया था।

4. याची के विरूद्ध अभिकथन यह है कि दिनांक 25 मई, 2007 को रात्रि लगभग 8.30 बजे उसे चोरी करने के आशय के साथ एच॰ एम॰ बी॰ पी॰ के भंडार सं॰ 63 में प्रवेश करते हुए गिरफ्तार किया गया था। सूचना प्राप्त की गयी थी और उसे गिरफ्तार किया गया था। प्राथमिकी दर्ज की गयी थी और विभागीय कार्यवाही भी आरंभ की गयी थी। उसके विरुद्ध बर्खास्तगी का अंतिम आदेश पारित किया गया था जिसे अपील में संपुष्ट किया गया था।

5. याची के अनेक तर्क हैं। उसका पहला तर्क यह है कि एक अन्य कर्मचारी के संबंध में एक अन्य मामले में, उसे चोरी के आरोप में गिरफ्तार किया गया था, दिनांक 9 अप्रिल, 2009 को उसे आरोप–पत्रित किया गया था, किंतु उसे केवल अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड अधिनिर्णीत किया गया था,

जबकि याची पर दिनांक 4 फरवरी, 2008 को आरोप-पत्र तामील किया गया था और विभागीय कार्यवाही के परिणामस्वरुप उसे सेवा से बर्खास्तगी का दंड अधिनिर्णीत किया गया है और, इस प्रकार, याची के साथ भेदभाव किया गया है।

6. अगला तर्क यह है कि प्रासंगिक गवाहों का परीक्षण नहीं किया गया है और, इस प्रकार, याची पर प्रतिकूलता कारित हुई है। यह निवेदन भी किया गया है कि जाँच अधिकारी पूर्वाग्रहग्रस्त था। याची द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण यह है कि वह किसी आर॰ सिंह से मिलने गया था, जिसने याची से कुछ धन उधार लिया था और उसके कहने पर, वह उससे पैसा लेने गया था, किंतु उसके अनुरोध के बावजूद गवाह के रूप में श्री आर॰ सिंह का परीक्षण नहीं किया गया था।

7. याची की अगली शिकायत यह है कि जाँच के दौरान आरोप के कथन की प्रति प्रस्तुत नहीं की गयी थी और, इस प्रकार, वह यथोचित उत्तर देने में समर्थ नहीं था और अंतत:, जाँच समाप्त कर दिया गया था। अंत में याची का निवेदन है कि अधिनिर्णीत दंड अपचार के कृत्य के अननुपातिक है और कम किए जाने का दायी है।

8. भारत संघ की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने संपूर्ण अपीलीय आदेश को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनका प्रतिवाद है कि प्रत्येक पहलू को विचार में लिया गया है। भारत संघ की ओर से उपस्थित होने वाले अधिवक्ता द्वारा आदेश प्रस्तुत किया गया है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों को उद्धृत किया है जो अधिनिर्णीत दंड की अननुपातिक मात्रा के प्रश्न से संबंधित है। ये उद्धरण हैं : **उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम रामदरस यादव, (2010)2 SCC 236; अंगद दास बनाम भारत संघ एवं अन्य; (2010)3 SCC 463; म॰ प्र॰ राज्य एवं अन्य बनाम हजारीलाल, 2008 LAB IC 1102;** एवं **भगत राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य एवं अन्य, 1983 LAB IC 662.** इन समस्त निर्णयों में, विनिश्चित निर्णयाधार यह है कि चूँकि जाँच अधिकारी प्रत्यर्थीगण के अभिकथन की सत्यता का परीक्षण करने में सक्षम नहीं हुआ था और निश्चित निष्कर्ष की अनुपस्थिति में अधिनिर्णीत बर्खास्तगी के दंड को अननुपातिक अभिनिर्धारित किया गया था और बर्खास्तगी के बजाय दो वेतनवृद्धियों को रोका गया था और प्रत्यर्थीगण को सेवा में पुनर्बहाल किया गया था। वस्तुत: अननुपातिक दंड का यह आदेश इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया था और उक्त आदेश को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी थी और सर्वोच्च न्यायालय ने अपेक्षाकृत कम दंड अधिनिर्णीत करने वाले उच्च न्यायालय के निर्णय को स्वीकार किया है।

10. याची के अधिवक्ता ने **भगत राम (ऊपर)** के पैराग्राफ 15 पर विश्वास किया जिसका पठन निम्नलिखित है:-

> *^^ç'u g fd tc ge ,d ckj vkn'k vfHk[kfMr dj nr g] D;k ge dkb fun'k nu dh NV g tk u;h tkp dju dh vuefr ugh nxk\ vkf[kjdkj] u;h tkp dju dk ç;ktu D;k g\ Li"Vr%] bl dN nM vfèkjkfir dju d fy, djuk gkxkA ;g Hkh leku :i l lR; g fd vfèkjkfir nM vopkj dh xHkhjrk d vu:i gkuk gh pkfg,] vkj fd vipkj dh xHkhjrk d vuuikfrd dkb nM lfoèkku d vuPNn 14 dk mYy?ku gkxkA bu leLr çklfxd fopkjk l çHkkfor gkr g, gekjk er g fd u;h tkp l dkb ç;ktu fl) ugh gkxkA lefpr ekx dju d fy, vuPNn 136 d vèkhu gekjh vfèkdkfjrk d ç;kx e gekj fy, dku*

*lk fodYi g ftl ge vfèkdkfjrk d ckj e vlE;d :i l Vdfudy g, fcuk rjr y?k nM dk vkn'k ikfjr djA ge fgnLrku LVhy fy0] jkmjdyk cuke ,0 d0 jk;] (1970)3 SCR 343 : 1970 LAB IC 1166, e bl U;k;ky; d fu.k; }kjk bl nf"Vdk.k d fy, cy feyk g tgk ;g U;k;ky; iucgkyh dk vkn'k vfHk[kfMr dju d ckn ;g ijh{k.k dju d fy, vxlj gvk fd D;k vkx mipkj dk vulj.k dju d fy, i{kdkj dk NkM fn;k tkuk pkfg,A ,d vU; fodYi ;g Fkk fd vk|kfxd fookn gku d ukr ekey dk bl vfèkdj.k d ikl okil Hkt fn;k tk;A ;g lHko g fd ,l ,d fjekM ij] bl U;k;ky; u vkx lçf{kr fd;k] fd vfèkdj.k lefpr vkn'k ikfjr dj ldrk g] fdr bldk vFk fookn dk vkj yck [kpuk gkxk tk 'kk;n gh i{kk d fgr d fy, lefpr vFkok vudy gkxkA ,lh ifjfLFkfr e ;g U;k;ky; evkotk vfèkfu.kr djd lefpr vkn'k ikfjr dju d fy, vxlj gvkA ge Hkh ;gh jo;k vf[r;kj dj ldr gA vopkj dh çÑfr] vkjki dh xHkhjrk vkj ikfj.kkfed udlkufoghurk dk nf"V e j[kr g, vkx d çHkko d lkFk mldh oruof) jkdu dk nM U;k; d mí'; dk çkIr djxkA rnulkj] Hkfo"; d çHkko d lkFk vihykFkh dh nk oruof) ;k jkdh tk, vkj lok lekfIr dh frfFk l iucgkyh dh frfFk rd cdk;k d 50% dk Hkxrku ml fd;k tk,A***

11. संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों एवं तर्कों के परिशीलन के बाद, संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन में भेदभाव के प्रश्न को असंतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। चूँकि याची के अधिवक्ता ने वर्ष 2009 में संचालित एक अन्य जाँच के संबंध में अधिनिर्णीत दंड का विरोध करने का प्रयास किया है, जबकि शायद अभिकथन के समान समूह पर वर्तमान जाँच वर्ष 2008 के जाँच से संबंधित है। मैं याची की ओर से दिए गए तर्क के साथ सहमत नहीं हूँ भले ही दो भिन्न जाँचों के अभिकथन में कुछ समरुपता हो सकती है। यह वैसा मामला नहीं है जहाँ गवाहों के एक ही समूह का परीक्षण किया गया था, साक्ष्य की प्रकृति सदृश थी, स्पष्टत: जाँच अधिकारी भिन्न था, दंड का आदेश पारित करते हुए अनुशासनिक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी के पास तथ्यों और साक्ष्य के बिल्कुल भिन्न समूह थे, और इसलिए यह तर्क कि याची उसी दंड का हकदार था, सराहनीय नहीं है। एक जाँच वर्ष 2008 में की गयी थी और दूसरी जाँच भिन्न घटनास्थल पर वर्ष 2009 में की गयी थी, और इसलिए, यह तर्क कि एक ही मापदंड प्रयोज्य बनाना चाहिए था, विचार में नहीं लिया जा सकता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि दोनों, अपचारी कर्मचारीगण के बीच भेदभाव किया गया था और तद्द्वारा अनुच्छेद 14 का उल्लंघन किया गया था। कुछ समरुपता हो सकती है किंतु कॉमन प्लेटफॉर्म पर दोनों जाँचों को समतुल्य नहीं बनाया जा सकता है। अत: तर्कों में कोई सार नहीं है।

12. जहाँ तक प्रासंगिक गवाहों के परीक्षण किए जाने और आर॰ सिंह का परीक्षण नहीं किए जाने और कथन की प्रति की अनापूर्ति के प्रश्न का संबंध है, अपीलीय प्राधिकारी ने मामले के प्रत्येक पहलू और अपील में उठायी गयी आपत्ति को विचार में लिया है, अत:, मेरा दृष्टिकोण यह है कि वर्तमान रिट याचिका में उठायी गयी आपत्ति निराधार है। याची द्वारा उठायी गयी आपत्ति पर अपीलीय चरण पर अच्छी तरह विचार किया गया है और आदेश किसी हस्तक्षेप के लिए नहीं कहता है। जाँच अधिकारी को नाम लेकर पक्ष नहीं बनाया गया है और पूर्वाग्रह का कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन उसके विरुद्ध नहीं किया गया है और, इसलिए, जाँच अधिकारी के पूर्वाग्रह के संबंध में तर्क विचार की गुंजाइश के परे है।

13. अननुपातिक दंड का प्रश्न भी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रयोज्य नहीं है। याची के विरुद्ध चोरी का अभिकथन किया गया था किंतु यह उपधारित करते हुए भी कि याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता है अथवा नहीं किया जा सकता है। कर्मचारी, जो सी॰ आई॰ एस॰ एफ॰ में कांस्टेबल के रूप में कार्यरत है, सेवा में नहीं बना रह सकता है क्योंकि चोरी का विनिर्दिष्ट अभिकथन है और उसे घटनास्थल पर गिरफ्तार किया गया था। याची द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण भी आधा-अधूरा है और इसे जाँच अधिकारी अथवा अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है।

14. रिट याचिका गुणागुण रहित है और, तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है। किंतु, कोई व्यय नहीं।

---

ekuuh; çkr dekj] U;k;efr

राम लाल पंजियार

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

WP(C) No. 6905 of 2006. Decided on 29th July, 2011.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949—धाराएँ 5 एवं 6—संथाल परगना अभिधृति (पूरक) नियमावली, 1950—नियम 5—प्रधान के पद पर नियुक्ति–यदि कोई प्रधान घोर अवचार के लिए बर्खास्त किया जाता है, तब उसके उत्तराधिकारियों का प्रधान के पद पर कोई दावा नहीं होगा–प्रत्यर्थी के पिता को अवचार के आधार पर प्रधान के पद से बर्खास्त किया गया था–प्रत्यर्थी ग्राम प्रधान के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए पात्र नहीं है–आक्षेपित आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Durga Charan Mishra, For the Petitioner; Mr. Srijit Choudhary, For the Respondent Nos. 1 to 5; Mr. Ranjan Kumar Singh, For the Respondent No. 6.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.–इस रिट आवेदन में याची ने क्रमशः प्रत्यर्थी सं॰ 2, 3 और 4 द्वारा आर॰ एम॰ आर॰ सं॰ 03/2002-03 में पारित दिनांक 14.8.2006 के आदेश, आर॰ एम॰ ए॰ सं॰ 27/1997-98 में पारित दिनांक 3.4.2002 के आदेश और प्रधानी नियुक्ति केस सं॰ 59 वर्ष 1996-97 में पारित दिनांक 7.8.1997 के आदेश के अभिखंडन के लिए प्रार्थना किया है।

2. यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं॰ 6 ने संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949 (इसमें इसके बाद ''पूर्वोक्त अधिनियम'' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 6 के अधीन परिशिष्ट-1 श्रृंखला के तहत वंशानुगत आधार पर मौजा बाँसजोरा के प्रधान के पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन दाखिल किया। तब यह प्रतीत होता है कि याची ने भी पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 5 के अधीन प्रधान के पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन दिया। उक्त याचिका में, यह कथन किया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 6 के पिता को उपायुक्त, दुमका द्वारा अवचार के आधार पर प्रधान के पद से बर्खास्त कर दिया गया था, अतः उसका पुत्र (प्रत्यर्थी सं॰ 6) प्रधान के रूप में नियुक्त किए जाने का पात्र नहीं है। तब यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने दिनांक 3.3.1997 के आदेश (परिशिष्ट-5) के तहत याची की आपत्ति पर

विचार किया था और विनिश्चित किया कि मौजा बाँसजोरा के प्रधान की नियुक्ति पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 5 के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधान के मुताबिक की जाएगी। तद्नुसार, उसने आपत्ति आमंत्रित करते हुए मूल रैयतों को नोटिस जारी किया। आगे यह प्रतीत होता है कि दिनांक 7.8.1997 के आदेश के तहत प्रत्यर्थी सं॰ 6 को रैयतों के मतों के बहुमत के आधार पर मौजा बाँसजोरा के प्रधान के पद पर नियुक्त किया गया था। तत्पश्चात याची ने उपायुक्त के समक्ष आर॰ एम॰ ए॰ सं॰ 27 वर्ष 97-98 के तहत अपील दाखिल किया जिसे दिनांक 3.4.2002 के आदेश (परिशिष्ट–6) द्वारा खारिज कर दिया गया था। उस आदेश के विरुद्ध, याची ने आर॰ एम॰ आर॰ सं॰ 3 वर्ष 2002-2003 के तहत आयुक्त, संथाल परगना डिविजन, दुमका के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल किया किंतु उक्त पुनरीक्षण भी दिनांक 14.8.2006 के आदेश (परिशिष्ट–8) के तहत खारिज कर दिया गया था। पूर्वोक्त आदेशों के विरुद्ध वर्तमान रिट आवेदन दाखिल किया गया है।

3. यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं॰ 1 से 5 ने प्रति शपथ पत्र दाखिल किया था जिसमें उन्होंने कथन किया कि प्रत्यर्थी सं॰ 2, 3 और 4 द्वारा पारित आदेश वैध है और विधि के अनुरूप है। पूर्वोक्त प्रत्यर्थीगण ने आगे कथन किया कि मुख्य विवाद याची और प्रत्यर्थी सं॰ 6 के बीच है। यह उल्लेखनीय है कि प्रत्यर्थी सं॰ 6 एवं 7 को नोटिसें निर्गत की गई थी एवं उक्त नोटिस उन पर वैध रूप से तामील की गई थी। प्रत्यर्थी सं॰ 6 अधिवक्ता रंजन कुमार सिंह के माध्यम से उपस्थित हुआ। किंतु, उसकी ओर से कोई प्रति शपथ पत्र दाखिल नहीं किया गया था। प्रत्यर्थी सं॰ 7 उपस्थित नहीं हुआ था।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री दुर्गा चरण मिश्रा द्वारा निवेदन किया गया है कि पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 5 के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधानों के अनुसार प्रत्यर्थी सं॰ 6 को प्रधान के रूप में नियुक्त किया गया था। यह निवेदन किया गया है कि पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 5 के मुताबिक प्रधान के पद पर नियुक्ति के लिए रैयत और/अथवा भूस्वामी द्वारा आवेदन दाखिल करना अनिवार्य है और केवल तब उसके आवेदन पर गाँव के जमाबंदी रैयत के दो–तिहाई की सहमति अभिनिश्चित की जा सकती है। निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 6 ने पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 5 के अधीन गाँव के प्रधान के रूप में नियुक्ति के लिए आवेदन नहीं दिया था। यह निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 6 ने वंशानुगत आधार पर ग्राम प्रधान के पद पर अपनी नियुक्ति के लिए पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 6 के अधीन आवेदन दिया था। निवेदन किया गया है कि चूँकि प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने याची द्वारा उठायी गयी आपत्ति पर विचार करने के बाद विनिश्चित किया कि ग्राम बाँसजोरा के प्रधान का पद पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 5 के अनुसार भरा जाएगा, अत: उन्होंने विवक्षित रूप से पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 6 के अधीन दाखिल प्रत्यर्थी सं॰ 6 के आवेदन को अस्वीकार कर दिया। यह निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 6 ने पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 5 के अधीन ग्राम बाँसजोरा के प्रधान के पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन नहीं दिया था, अत: ग्राम प्रधान के रूप में प्रत्यर्थी सं॰ 6 को नियुक्त करने की प्रत्यर्थी सं॰ 4 की कार्रवाई पूर्णत: गैरकानूनी और पूर्वोक्त अधिनियम के प्रावधानों के विरुद्ध था। आगे यह भी निवेदन किया गया है कि विहित नियमावली के मुताबिक यदि अवचार के आधार पर ग्राम प्रधान को बर्खास्त किया जाता है, उसके उत्तराधिकारियों को इसी पद पर नियुक्ति से वंचित हो जाते हैं। यह भी निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 6 के पिता अर्थात् बसंत पंजियार को उपायुक्त, दुमका द्वारा बर्खास्त कर दिया गया था और बर्खास्तगी का उक्त आदेश बाद में डिविजनल आयुक्त, संथाल परगना, दुमका द्वारा परिशिष्ट–7 द्वारा संपुष्ट किया गया था। उक्त परिस्थिति के अधीन, प्रत्यर्थी सं॰ 6 ग्राम प्रधान के रूप में नियुक्त किए जाने का पात्र नहीं है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि इस आधार पर भी प्रत्यर्थी सं॰ 6 की नियुक्ति को संपोषित नहीं किया जा सकता है।

5. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं॰ 1 से 5 के सरकारी अधिवक्ता और प्रत्यर्थी सं॰ 6 के विद्वान अधिवक्ता, श्री रंजन कुमार सिंह ने प्रतिवाद किया कि प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने प्रत्यर्थी सं॰ 6 के आवेदन को पूर्वोक्त अधिनियम

की धारा 5 के अधीन याचिका के रूप में माना था, अत: ग्राम बाँसजोरा के प्रधान के पद पर याची की और प्रत्यर्थी सं॰ 6 की नियुक्ति के विरुद्ध उनकी आपत्तियों को आमंत्रित करते हुए जमाबंदी रैयतों को नोटिस जारी किया जाना वैध है। निवेदन किया गया है कि 42 जमाबंदी रैयतों (जो दिनांक 7.8.1997 को प्रत्यर्थी सं॰ 4 के समक्ष उपस्थित थे) में से 41 ने प्रत्यर्थी सं॰ 6 के पक्ष में अपना मत दिया था जबकि केवल 2 ने याची के पक्ष में मत दिया था। निवेदन किया गया है कि ग्राम बाँसजोरा के कुल जमाबंदी रैयतों (63) की दो-तिहाई ने प्रत्यर्थी सं॰ 6 के पक्ष में मत दिया था, अत:, प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने प्रत्यर्थी सं॰ 6 को ग्राम प्रधान के रूप में नियुक्त किया। आगे निवेदन किया गया है कि यह सत्य है कि बर्खास्त प्रधान के उत्तराधिकारी को वंशानुगत आधार पर ग्राम प्रधान के रूप में नियुक्त किए जाने से वंचित किया जाता है किंतु वर्तमान मामले में चूँकि प्रत्यर्थी सं॰ 6 को पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 6 के अधीन नियुक्त नहीं किया गया है, याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया प्रतिवाद अस्वीकार किए जाने का दायी है। निवेदन किया गया है कि इस मामले में, प्रत्यर्थी सं॰ 6 को पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 5 के अधीन ग्राम बाँसजोरा के दो-तिहाई जमाबंदी रैयतों की सहमति के आधार पर नियुक्त किया गया है, अत: उसकी नियुक्ति में कोई अवैधता नहीं है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि रिट आवेदन गुणागुण रहित होने के कारण खारिज किए जाने का दायी है।

6. निवेदन सुनकर, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। यह विवाद में नहीं है कि प्रत्यर्थी सं॰ 6 ने पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 6 के प्रावधान के अधीन ग्राम बाँसजोरा के प्रधान के पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन दाखिल किया था। यह भी प्रतीत होता है कि याची ने प्रत्यर्थी सं॰ 6 के उक्त आवेदन के विरुद्ध आपत्ति दाखिल किया था जिसमें उसने स्पष्ट रूप से कथन किया कि प्रत्यर्थी सं॰ 6 के पिता को अवचार के आधार पर उपायुक्त द्वारा बर्खास्त किया गया था, अत:, प्रत्यर्थी सं॰ 6 प्रधान के पद पर नियुक्त किए जाने का पात्र नहीं है। दिनांक 3.3.1997 के आदेश, परिशिष्ट-5, के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि याची की आपत्ति पर विचार करने के बाद प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 5 के अनुसार प्रधान के पद पर नियुक्ति करने का निर्णय लिया। अत:, मैं पाता हूँ कि विवक्षा द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 6 का आवेदन प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। अभिलेख के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि तत्पश्चात, प्रत्यर्थी सं॰ 6 ने पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 5 के अधीन ग्राम प्रधान की नियुक्ति के लिए कोई आवेदन नहीं दिया था। पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 5 का पठन निम्नलिखित है:-

> *"5.* ***[kkl xke d xke çèkku dh fu;fDr-****&[kkl xke d fdlh j;r vFkok HkkLokeh d vkonu ij vkj fofgr rjhd l vfHkfuf'pr xke d tekcnh j;rk dh de l de nk frgkb dh lgefr l mik;Dr ?kk"k.kk dj ldrk g fd xke d fy, çèkku fu;Dr fd;k tk,xk vkj rc fofgr rjhd l fu;fDr dju d fy, vxlj gkxkA***

इसके परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि किसी रैयत अथवा भूस्वामी, जिसने उक्त प्रयोजन से आवेदन दिया है, की ग्राम प्रधान के रूप में नियुक्ति पर ग्राम के जमाबंदी रैयतों के दो-तिहाई की सहमति अभिनिश्चित करने की आवश्यकता उपायुक्त को है। अत: यदि किसी खास गाँव का रैयत अथवा भूस्वामी ग्राम प्रधान की नियुक्ति के लिए आवेदन देता है, केवल तब उपायुक्त उसकी नियुक्ति पर जमाबंदी रैयतों के दृष्टिकोण को अभिनिश्चित कर सकता है। दूसरे शब्दों में, यदि ग्राम प्रधान के रूप में नियुक्ति के लिए किसी रैयत अथवा भूस्वामी द्वारा कोई आवेदन दाखिल नहीं किया जाता है, तब उक्त ग्राम के जमाबंदी रैयतों का दृष्टिकोण अभिनिश्चित करने का प्रश्न ही उद्भूत नहीं होता है। जैसा ऊपर गौर किया गया है,

वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी सं॰ 6 ने पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 5 के अधीन आवेदन नहीं दिया था और पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 6 के अधीन दाखिल उसका आवेदन दिनांक 3.3.1997 के आदेश के तहत विवक्षित रूप से अस्वीकार कर दिया गया था। उक्त परिस्थिति के अधीन, प्रत्यर्थी सं॰ 6 की नियुक्ति पर आपत्ति आमंत्रित करने की प्रत्यर्थी सं॰ 4 की कार्रवाई गैरकानूनी और पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 5 के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधान के विरुद्ध है।

7. संथाल परगना अभिधृति (पूरक) नियमावली, 1950 का नियम 5 प्रावधानित करता है कि पूर्वोक्त अधिनियम की धाराएँ 5 अथवा 6 के अधीन प्रधान की नियुक्ति करते हुए उपायुक्त, जहाँ तक संभव हो, अनुसूची 5 में विहित नियमों का अनुसरण करेगा सिवाय जहाँ ये नियम अभिव्यक्त रूप से अथवा आवश्यक विवक्षा द्वारा अन्यथा प्रावधानित करते हैं। अतः, पूर्वोक्त नियम 5 के मुताबिक अनुसूची 5 के प्रावधान पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 5 के अधीन और धारा 6 के अधीन भी प्रधान की नियुक्ति के लिए प्रयोज्य है। अनुसूची 5 जो प्रधान की नियुक्ति पर विचार करता है, के परिशीलन से स्पष्ट है कि यदि प्रधान घोर अवचार के लिए बर्खास्त किया जाता है, तब उसके उत्तराधिकारियों का प्रधान के पद पर कोई दावा नहीं होगा। वर्तमान मामले में, आक्षेपित आदेशों को पारित किए जाने के पहले, प्रत्यर्थी सं॰ 6 का पिता अर्थात् बसंत पंजियार प्रधानी बर्खास्तगी केस सं॰ 52/1985-86 में दिनांक 15.7.1989 के आदेश के तहत अवचार के आधार पर उपायुक्त, दुमका द्वारा ग्राम बाँसजोरा के ग्राम प्रधान के पद से बर्खास्त किया गया था। यह प्रतीत होता है कि यद्यपि दिनांक 7.8.1997 के आक्षेपित आदेशों को पारित किए जाने के समय पर प्रत्यर्थी सं॰ 2 के समक्ष अपील लंबित था किंतु इसे परिशिष्ट-7 द्वारा खारिज कर दिया गया था। उक्त परिस्थिति के अधीन, संथाल परगना अभिधृति (पूरक) नियमावली, 1950 की अनुसूची 5 में अंतर्विष्ट प्रावधान के मुताबिक, प्रत्यर्थी सं॰ 6 ग्राम प्रधान के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए पात्र नहीं है। अतः इस आधार पर भी, प्रत्यर्थी सं॰ 6 की नियुक्ति संपोषित नहीं की जा सकती है।

8. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में आक्षेपित आदेशों को संपोषित नहीं किया जा सकता है। तद्नुसार, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। प्रत्यर्थी सं॰ 4, 3 और 2 द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 7.8.1997 (परिशिष्ट-5), दिनांक 3.4.2002 (परिशिष्ट-6) और दिनांक 14.8.2006 (परिशिष्ट-8), के आक्षेपित आदेशों को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। किंतु पक्षगण अपना व्यय स्वयं वहन करेंगे।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

अरुण कुमार सिन्हा (1127 में)

श्रीमती मुन्ना देवी (1692 में)

cuke

झारखंड राज्य आवासीय बोर्ड एवं अन्य (दोनों में)

W.P. (C) No. 1127 with 1692 of 2010. Decided on 21st July, 2011.

बिहार राज्य आवास बोर्ड अधिनियम, 1982—धारा 59—घर का आवंटन—30 दिनों की अनुबंधित अवधि के भीतर करार के गैर-निष्पादन के लिए ब्याज की मांग—करार के गैर-निष्पादन को बकाया राशि के रूप में माना नहीं जा सकता है—समय के किसी बिंदु पर ऐसा अनुबंध नहीं है और याची को व्यतिक्रमी नहीं कहा जा सकता है—ब्याज केवल बकाया राशि पर आरोपित किया जाता है किंतु याची के और आवासीय बोर्ड की ओर से करार निष्पादित नहीं किए जाने

के लिए नहीं–बोर्ड ने किश्त स्वीकार करने की कार्यवाही की और 20 वर्षों बाद अत्यधिक मांग किया–आक्षेपित पत्र अभिखंडित। (पैराएँ 22 से 25)

निर्णयज विधि.–2003 (3) JLJR 306; 2004 (2) JLJR 441; 2001 (1) JLJR 144; 1992 (1) BLJR 367; 2010 (1) JCR 22 (Jhr);—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s Siddhartha Ranjan, A.K. Pathak, Ayush Aditya, S. Singh, For the Petitioners; M/s S. Choudhary, S. Mishra, S. Kumar, For the State; Mr. Sachin Kumar, For the Housing Board.

आदेश

इन दोनों रिट याचिकाओं को एक ही निर्णय द्वारा विनिश्चित किया जा रहा है क्योंकि दोनों रिट याचिकाओं में अंतर्ग्रस्त प्रश्न भी एक ही है।

2. याची की ओर से अधिवक्ता, श्री सिद्धार्थ रंजन और आवासीय बोर्ड की ओर से अधिवक्ता, श्री सचिन कुमार को सुना गया।

3. राजस्व अधिकारी, झारखंड राज्य आवास बोर्ड (मुख्यालय) द्वारा जारी पत्र सं॰ 05/AA/3255/05/2781/AA दिनांक 29.12.2006 (परिशिष्ट–7) जिसके द्वारा आवासीय बोर्ड ने दिनांक 31.1.2007 तक 2,86,940/- रुपयों की राशि की मांग की है, आक्षेपित है और याची तथा आवासीय बोर्ड के बीच दिनांक 27.11.1987 के करार के अनुसरण में स्थायी पट्टाधृति के आधार पर घर के संबंध में याची के पक्ष में हस्तांतरण विलेख के निष्पादन के लिए निर्देश दिए जाने के लिए प्रार्थना भी की गयी है।

4. प्रत्याशित आवंटितीयों से आवेदन आमंत्रित करते हुए आदित्यपुर मध्य आय समूह में घरों के आवंटन के लिए आवासीय बोर्ड ने एक योजना शुरू की। दिनांक 24.9.1983 के आवंटन पत्र (रिट याचिका का परिशिष्ट–1) में दिए गए निबंधनों और शर्तों पर, याची के पक्ष में उक्त योजना के अधीन आवंटन किया गया था। आवंटन के निबंधनों और शर्तों के परिशीलन पर पता चलता है कि दिनांक 30.9.1983 को घर का मूल्य लगभग 78,500/- रुपया पर निर्धारित किया गया था। किंतु आवंटन पत्र का पैराग्राफ 3 उल्लिखित करता है कि भूमि की कीमत में बढ़ोत्तरी की स्थिति में मूल्य बढ़ाया जा सकता है, अतः अंतिम मूल्य पूर्ण मूल्यांकन के बाद तय किया जाना था। मूल्य और सुरक्षा जमा का ब्रेक–अप पैराग्राफ–4 में वर्णित किया गया था जिसे नीचे संगणित किया जा रहा है:–

jkf'k	*lqj{kk tek*
(a) ?kj ,o vFkok Hkfe d vufre eY; dk 20%	*15,700/-#i;k*
(b) fofèkd ,o nLrkot hdj.k çHkkj	*150/-#i;k*
(c) dy vkjfHkd ekx dh jkf'k (A vkj B)	*15,850/-#i;k*
(d) vkond }kjk tek dh x;h jkf'k (&)	*6,500/-#i;k*
(e) tek dh tku okyh dy jkf'k (C vkj D)	*9,350/-#i;k*

5. आवंटन पत्र याची/आवंटिती से अग्रिम जमा, जो 6500/- रुपया था, को घटाकर सुरक्षा जमा, विधिक एवं दस्तावेजीकरण प्रभारों के रूप में 9,350 रु॰ जमा करने की अपेक्षा करता था। याची ने दिनांक 10.5.1975 को 6,500/- रु॰ जमा किया। अर्नंतिम मूल्य लगभग 78,500/- रुपया था। याची से (सुरक्षा जमा काटने के बाद, 120 किश्तों में) 62,800/- रुपया जमा करने की अपेक्षा थी। किश्तों के भुगतान के व्यतिक्रम की स्थिति में, आवंटिती प्रत्येक माह ब्याज का भुगतान करने का दायी था। आवंटन आदेश

के बाद, केवल दिनांक 27.11.1987 को करार किया गया था, यद्यपि पक्षों के बीच अनुबंधित किया गया था कि करार एक माह की अवधि के भीतर निष्पादित किया जाएगा, किंतु हायर परचेज करार केवल दिनांक 27.11.1987 को निष्पादित किया गया था। उक्त करार का खंड 3 कथन करता है कि परिनिर्धारिति आवास बोर्ड द्वारा किसी मांग की प्रतीक्षा किए बिना बोर्ड को भुगतान करने का दायी होगा, मासिक किश्त का भुगतान दिसंबर, 1987 के प्रथम माह से शुरू होना था और 865/- रुपए के 120 मासिक बराबर किश्त में उस माह के भीतर पूरा जमा किया जाना था।

6. याची को दिसंबर, 1987 में कब्जा दिया गया था और आवास बोर्ड द्वारा कब्जा दिए जाने के समय से याची उक्त घर में निवास कर रहा था। मांग के आक्षेपित पत्र ने उक्त पत्र के क्रमांक 9 पर उल्लिखित मांग के संबंध में विवाद उठाया जो कथन करता है कि करार के निष्पादन में विलंब के कारण 25,560.20/- रुपयों की राशि भुगतान योग्य थी। वस्तुत:, 9 वर्ष 7 माह की अवधि के लिए 8.50% की दर पर ब्याज की गणना के बाद उक्त राशि 55,961.55/- रुपए तक बढ़ गयी। पत्र में एक चार्ट भी संलग्न है जो दर्शाता है कि समस्त किश्तों अर्थात् 120 किश्तों का भुगतान जुलाई, 1997 में पूरा कर दिया गया था और, इसलिए, आवंटिती द्वारा भुगतान किए जाने के लिए अपेक्षित किश्त की कोई राशि देय नहीं थी, चार्ट में दर्शाया गया बैलेंस 'शून्य' है। विवाद जुलाई, 1997 से ब्याज के रूप में संगणित 55,961.55/- रुपयों की राशि के इर्द-गिर्द है। यह राशि करार, जो आवंटन के आदेश के एक माह के भीतर निष्पादित किए जाने का दायी था, के गैर-निष्पादन के कारण आए ब्याज के लिए है। करार के गैर-निष्पादन के लिए ब्याज की दर अगले माह से अर्थात् दिनांक 1.11.1983 से संगणित की गयी थी जो 25,560.20/- रुपया थी और तत्पश्चात, 8.50% प्रतिमाह की दर पर ब्याज जोड़ कर इसे 55,961.55/- रुपया तक बढ़ा दिया गया था। बाद में, चार्ट दर्शाता है कि संगणित ब्याज की राशि 2,86,940/- रुपया थी जो चुनौती के अधीन है। अत:, संपूर्ण विवाद इस प्रश्न पर है कि क्या याची 30 दिनों की अनुबंधित अवधि के भीतर करार के गैर-निष्पादन के लिए ब्याज जमा करने का दायी है या नहीं? जहाँ तक घर के मूल्य के किश्त के भुगतान का संबंध है, इस पर कोई विवाद नहीं है क्योंकि संपूर्ण मूल्य का भुगतान कर दिया गया है किंतु जब याची ने घर के अंतरण विलेख के निष्पादन के लिए अनुरोध करना शुरू किया, प्रत्यर्थीगण ने आवंटन की तिथि से 30 दिनों की अनुबंधित अवधि के भीतर करार के गैर-निष्पादन के कारण ब्याज के भुगतान के लिए जोर दिया। चार्ट के साथ आक्षेपित पत्र जारी किया गया था। करार के गैर-निष्पादन के लिए ब्याज के मद में दर्शायी गयी संगणना 1,24,074.83/- रुपया थी और चार्ट के नीचे घर का पुनर्मूल्यांकन 1,62,865/- रुपया दर्शाया गया था। इस प्रकार, मांगी गयी कुल राशि 2,86,067/- रुपया थी।

7. याची की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि करार के निष्पादन में विलंब के कारण ब्याज प्रभारित करने के लिए पक्षों के बीच कोई अनुबंध नहीं था। करार के निष्पादन के लिए कोई नोटिस नहीं दिया गया था और न ही करार के गैर-निष्पादन को याची की ओर से कोई ''बकाया'' कहा जा सकता है। स्वीकृत रूप से, करार के गैर-निष्पादन को ''बकाया के भुगतान में व्यतिक्रम'' नहीं कहा जा सकता है जिस पर कोई ब्याज प्रभारित किया जा सकता था और, इसलिए, मांग अंतरण विलेख के गैर-निष्पादन के लिए प्रत्यर्थीगण की ओर से केवल एक मनमाना कृत्य है।

8. विद्वान अधिवक्ता ने मूल्य में अंतर की ओर 1,62,865/- रुपयों की राशि को भी चुनौती दिया है जिसे पहली बार मांग पत्र में उल्लिखित किया गया है। कोई ब्रेक-अप नहीं दिया गया है कि कैसे और

कब मूल्य बढ़ गया था और वह भी 20 वर्ष बीत जाने के बाद। मूल्य में वृद्धि का यह एकपक्षीय नियतिकरण प्रभारित नहीं किया जा सकता है, विशेषत: जब आवंटन पत्र स्पष्टत: उल्लिखित करता है कि मूल्य में बढ़ोत्तरी की जा सकती है यदि भूमि की कीमत में वृद्धि होती है। निर्माण–मूल्य में कोई वृद्धि नहीं हो सकती है क्योंकि वर्ष 1987 में कब्जा सौंप दिया गया था और पहली बार, आक्षेपित पत्र ने उल्लिखित किया कि वर्ष 2007 में मूल्य में वृद्धि हुई है। स्पष्टत: किश्तों अथवा किसी भी बकाया के भुगतान में कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ है और, इसलिए, याची ने अतिरिक्त मूल्य की मांग पर भी जोरदार आपत्ति किया है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी इंगित किया है कि करार का खंड 3(a), जिसे पहले ही उपर वर्णित किया गया है, दर्शाता है कि करार यह है कि 865/- रुपयों की किश्त का भुगतान दिसंबर, 1987 से आरंभ किया जाना था और 120 किश्तों में याची द्वारा इसका भुगतान किया जाना था। आक्षेपित पत्र में संलग्न चार्ट यह भी दर्शाता है कि दिसंबर, 1987 से आरंभ करते हुए जुलाई, 1997 तक प्रत्येक माह की किश्त का भुगतान किया गया था और 'शून्य' बैलेंस दर्शाता है कि कोई बकाया नहीं था, कोई व्यतिक्रम नहीं था, और इसलिए जुलाई, 1997 तक 55,961.55/- रुपयों के ब्याज का प्रभार और तत्पश्चात जनवरी, 2007 तक चक्रवृद्धि ब्याज परेशान करने वाला है और अभिखंडित किए जाने का दायी है।

10. सहदेव मिस्त्री एवं एक अन्य बनाम झारखंड राज्य आवास बोर्ड, राँची एवं अन्य, 2003 (3) JLJR 306 के मामले में, इस न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया गया है। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मात्र इसलिए कि केवल कुछ किश्तों को विलंबित किया गया था, हस्तांतरण के अंतिम विलेख के निष्पादन के लिए आवास बोर्ड द्वारा मांग किया गया था और, इसलिए, बोर्ड द्वारा की गयी अत्यधिक मांग को अभिखंडित कर दिया गया था। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि समय पर भुगतान नहीं की गयी राशि को पूंजीकृत करके आवंटिती पर ऐसी अत्यधिक मांग लादी नहीं जा सकती है। इस निर्णय को एल॰ पी॰ ए॰ में मान्य ठहराया गया था जिसे झारखंड राज्य आवास बोर्ड द्वारा दाखिल किया गया था और 2004 (2) JLJR 441में प्रकाशित किया गया था। किंतु आवास बोर्ड के असद्भाव के संबंध में कतिपय संप्रेक्षणों को अभिखंडित कर दिया गया है।

11. विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किया गया अगला निर्णय **मंजू सिंह बनाम बिहार राज्य आवास बोर्ड एवं अन्य,** 2001 (1) PLJR 144, है। **सिटिजन कॉज बनाम बिहार राज्य आवास बोर्ड, (1992)1 BLJR 367,** में प्रकाशित एक अन्य मामले में खंडपीठ के निर्णय का अनुसरण करते हुए न्यायालय ने इस तथ्य को ध्यान में लिया कि कब्जा दिए जाने के लगभग 17 वर्षों और 15 वर्षों के बीत जाने के बाद अत्यधिक रूप से बढ़ाए गए मूल्य का अवक्षय कर दिया गया था।

12. वर्तमान मामले में निवेदन यह है कि 20 वर्ष पहले कब्जा सौंप दिया गया था।

13. आवास बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने याची की ओर से दिए गए प्रत्येक तर्क का जोरदार विरोध किया है। वह निवेदन करते हैं कि याची करार के निष्पादन में विलंब के लिए भुगतान करने का दायी है। उन्होंने स्वीकार किया कि 25,560.20/- रुपयों का भुगतान, जिसे 8.50% प्रति माह ब्याज की पूंजीकृत दर जोड़ने के बाद 55,961.55/- रुपयों तक बढ़ा दिया गया था, बिल्कुल सही है। उन्होंने इंगित किया कि करार का खंड 8 जो कथन करता है कि प्रीमियम किश्त अथवा व्यतिक्रम की अवधि के लिए किराया के संबंध में समस्त बकायों पर 1% (एक प्रतिशत) प्रतिमाह की दर पर ब्याज प्रभारित किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक व्यतिक्रम की स्थिति में निम्नलिखित प्रशासनिक और वित्तीय प्रभारों को उद्ग्रहित किया जाएगा:–

(a) ,e0 vkb0 th0 %kj@¶yV d fy, 10/-#i;k ifr 0;frØe

(b) ,y0 vkb0 th0 %kj@¶yV d fy, 5/-#i;k çfr 0;frØe

(c) b0 MCY;0 ,l0 %kj@¶yV d fy, 2/-#i;k çfr 0;frØe

14. इस प्रकार, विद्वान अधिवक्ता ने पूंजीकृत मूल्य पर 1% (एक प्रतिशत) प्रतिमाह ब्याज का उद्ग्रहण न्यायोचित ठहराया है।

15. अगला निवेदन यह है कि किश्तें आवंटन की तिथि के अगले माह से ही भुगतान किए जाने की दायी थी। याची वर्ष 1987 में करार के निष्पादन तक किश्त जमा करने में विफल रहा, अतः, वह व्यतिक्रमी है और नियत दर पर ब्याज का भुगतान करने का दायी है।

16. तीसरा निवेदन यह है कि चूँकि करार माध्यस्थम खंड के बारे में कथन करता है, जैसा करार के खंड-25 में प्रावधानित किया गया है, अतः, रिट याचिका पोषणीय नहीं है। मामला मध्यस्थ को निर्दिष्ट किए जाने का दायी है जो करार के अनुसार प्रबंध निदेशक है, न कि कोई और। अतः मात्र वैकल्पिक उपचार के आधार पर रिट याचिका खारिज किए जाने की दायी है।

17. चौथा निवेदन यह है कि मूल्य की वृद्धि के लिए मांग सदैव आवास बोर्ड द्वारा सुरक्षित रखी गयी थी और, इसलिए, मूल्य में बढ़ी दर की मांग को अपास्त नहीं किया जा सकता है और यह भी कि जब तक संपूर्ण भुगतान नहीं किया जाता है, अंतरण विलेख निष्पादित नहीं किया जा सकता है।

18. अंत में, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि निबंधनों और शर्तों को नियत करने का अनन्य अधिकार आवास बोर्ड को है और इसे याची के कहे जाने पर अथवा न्यायालय के हस्तक्षेप द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता है जब तक इसे असंवैधानिक अभिनिर्धारित नहीं किया जाता है।

19. वैकल्पिक उपचार के आधार पर विद्वान अधिवक्ता ने **डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 1935 वर्ष 2009** में **मोहन लाल सारोगी बनाम झारखंड राज्य आवास बोर्ड, अपने प्रबंध निदेशक के माध्यम से एवं अन्य** के मामले में, दिनांक 13.1.2010 को विनिश्चित, इस न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसे एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 73 वर्ष 2010 में दिनांक 12.3.2010 को खंडपीठ द्वारा मान्य ठहराया गया था।

20. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इसे अप्रवर्तनीय बताते हुए वैकल्पिक उपचार के आधार पर विवाद किया है, क्योंकि प्रबंध निदेशक सक्षम प्राधिकारी नहीं है और निर्णय लेने के लिए उसके पास सांविधिक शक्ति नहीं है। यह केवल बोर्ड है जैसा बिहार राज्य आवास बोर्ड अधिनियम और नियमावली की धारा 115 में प्रावधानित किया गया है जो बोर्ड को विनियमन बनाने के लिए सशक्त बनाती है जो अधिनियम के साथ असंगत नहीं हो। इस प्रकार जोर **प्रिया नंदन सहाय बनाम झारखंड राज्य आवास बोर्ड, राँची एवं अन्य,** 2010 (1) JCR 22 (Jhr) के मामले में एक अन्य निर्णय पर है।

21. मैंने प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और अनेक निर्णयों का परिशीलन किया है। मामले के गुणागुण पर निर्णय करने के लिए अग्रसर होने से पहले, पोषणीयता के संबंध में आरंभिक आपत्ति को विनिश्चित किया जाता है। प्रथमतः, निःसंदेह करार में माध्यस्थम खंड का अस्तित्व है और एकमात्र मध्यस्थ के रूप में प्रबंध निदेशक पर सहमति है, मेरे मत में प्रबंध निदेशक बोर्ड के घटकों में से एक है, जैसा अधिनियम की धारा 4 के अधीन प्रावधानित किया गया है और वह याची को मांग पत्र जारी करने वाला उत्तरदायी व्यक्ति है। इसके अतिरिक्त, स्वीकृत

रूप से, याची निम्न मध्य आय समूह से आने वाला व्यक्ति है, जो किसी तरह वर्ष 1983 में घर खरीदने में सफल रहा। समय पर संपूर्ण धन का भुगतान किया गया था और याची विगत 20 वर्षों से घर में निवास कर रहा है। यदि उसे रिट याचिका के संस्थापन और प्रति तथा प्रत्युत्तर शपथ पत्रों के विनिमय के बाद माध्यस्थम कार्यवाही की ओर ले जाया जाता है, याची का अधिकार काफी हद तक परिसंकटमय हो जाएगा। माध्यस्थम का वैकल्पिक उपचार कल्पना के किसी विस्तार तक 'प्रभावकारी उपचार' नहीं कहा जा सकता है और, इसलिए, मेरे दृष्टिकोण में, इस चरण पर माध्यस्थम द्वारा वैकल्पिक उपचार की आपत्ति पर विचार नहीं किया जा सकता है और रिट याची को मध्यस्थ के पास भेजा जाय।

22. मैंने यह भी ध्यान में लिया है कि आक्षेपित पत्र की प्राप्ति के बाद दिनांक 30.3.2007 को अभ्यावेदन दिया गया था किंतु उक्त अभ्यावेदन का कोई परिणाम नहीं हुआ, अत:, मैं गुणागुण पर, तर्कों का परीक्षण करने के लिए अग्रसर होता हूँ। आवास बोर्ड और याची के बीच निष्पादित करार स्पष्टत: अनुबंधित करता है कि 865/- रुपया प्रतिमाह की दर से किश्तों का भुगतान दिसंबर, 1987 से आरंभ होता है जिसे स्वीकृत रूप से जमा किया गया है और आक्षेपित पत्र के साथ संलग्न चार्ट इस तथ्य को सिद्ध करता है, अत:, स्वीकृत रूप से सहमत किश्तों के भुगतान में कोई विलंब अथवा व्यतिक्रम नहीं है। मैं प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता के इन निवेदनों को स्वीकार करने का इच्छुक नहीं हूँ कि आवंटन पत्र जारी किए जाने के बाद अगले माह से ही किश्तों का भुगतान किया जाना था, इस कारण से कि करार इस तथ्य के प्रति वाग्मय है कि आवास बोर्ड और याची असंदिग्ध रूप से सहमत हुए कि किश्तों को दिसंबर, 1987 से जमा किया जाना था जब कब्जा सौंप दिया गया था। आक्षेपित पत्र स्वयं दर्शाता है कि 25,560.20/- रुपयों की राशि दिनांक 1.11.1983 से दिनांक 30.11.1987 तक के बीच करार के निष्पादन में समय के अंतर के लिए थी जबकि करार आवंटन की तिथि से एक माह के भीतर निष्पादित किया जाना चाहिए था। मैं इस तर्क को स्वीकार करने का इच्छुक नहीं हूँ कि करार के गैर-निष्पादन को ''बकाया राशि'' के रूप में माना जा सकता है। समय के किसी बिंदु पर ऐसा अनुबंध नहीं है और, इसलिए, याची को व्यतिक्रमी नहीं कहा जा सकता है। ब्याज केवल बकाया राशि पर उद्ग्रहित किया जाता है, बल्कि न कि करार निष्पादित नहीं किए जाने में याची की ओर से आवास बोर्ड की निष्क्रियता को लिए। यह ब्याज उद्ग्रहित करने का कारण नहीं हो सकता है जो 9 वर्ष 7 माह की अवधि के लिए 8.50% की दर पर 55,961.55/- रुपया हो गया जैसा आक्षेपित पत्र में उल्लिखित किया गया है और चार्ट में प्रदर्शित किया गया है। करार के निष्पादन में विलंब को कल्पना के किसी विस्तार तक ''बकाया'' राशि नहीं कहा जा सकता है और, इस विलंब के लिए कोई ब्याज प्रभार योग्य नहीं है। करार के गैर-निष्पादन के कारण के लिए करार को रद्द करने की छूट आवास बोर्ड को थी किंतु इसके विपरीत वह बिना किसी आपत्ति के आगे बढ़ा और वर्ष 1987 में करार निष्पादित किया। केवल यही नहीं, करार के परिणामस्वरुप कब्जा सौंपा गया था और करार के निबंधनानुसार किश्तों को स्वीकार किया गया था, अत: आवास बोर्ड इस कारण से अंतरण विलेख के निष्पादन से इनकार करने का हकदार नहीं है।

23. विचारार्थ अगला प्रश्न बीस वर्ष बाद मूल्य की बढ़ोतरी का है जिसे पुन: कीमत की बढ़ोत्तरी के कारण याची को बताए बिना किया गया है। स्वीकृत रूप से, करार के निष्पादन के समय निर्माण कार्य पूरा हो चुका था, कब्जा सौंप दिया गया था और करार के निबंधनों और शर्तों के परिशीलन पर यह पता नहीं चलता है कि मूल्य वृद्धि के संबंध में कोई अनुबंध था। इसके विपरीत, हायर-परचेज करार था और

हायर–परचेज अवधि के लिए परिनिर्धारिती को किराएदार के रूप में माना जाना था। करार का खंड 9 भी स्पष्टत: उल्लिखित करता है कि पूर्ण भुगतान के बाद, स्थायी पट्टा धृत आधार पर परिसर के अंतरण के संबंध में परिनिर्धारिती के पक्ष में पट्टा विलेख निष्पादित किया जाएगा। करार का खंड 9 नीचे उद्धृत किया गया है:–

> *^^fd i.k Hkxrku fd, tku d ckn vkj leLr cdk;k dk [kRe dju d ckn vkj ;fn bl djkj d fdlh fucèku vFkok 'kr vFkok bl lcèk e ckM d fofu;euk dk dkb mYy?ku ugh g] iokDr ifjlj d vrj.k d lcèk e LFkk;h iVVk èkr vkèkkj ij ifjfuèkkfjrh d i{k e iVVk foy[k fu"ikfnr fd;k tk,xkA***

24. वस्तुत:, इस व्यवस्थापन की दृष्टि में, आवास बोर्ड ने प्रश्नगत घर को अंतरित नहीं करने में अपनी ओर से व्यतिक्रम किया है जबकि जुलाई, 2007 तक संपूर्ण भुगतान प्राप्त कर लिया गया है। बीस वर्ष बीतने के बाद मूल्य वृद्धि याची पर दबाव बनाने के लिए आवास बोर्ड का मनमाना कृत्य है ताकि कुछ अतिरिक्त भुगतान प्राप्त किए जाने तक अंतरण विलेख के निष्पादन से बचा जा सके। याची भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय के पास आया है जो साम्यापूर्ण अधिकारिता है और मेरा सुविचारित मत है कि याची प्रत्यर्थीगण द्वारा तुरन्त निष्पादित किए जाने वाले हस्तांतरण विलेख का हकदार है। ऐसे विलंबित चरण पर कुछ समय के लिए करार के गैर निष्पादन की मांग तुच्छ है। यदि करार के गैर निष्पादन के लिए याची के विरुद्ध कार्रवाई किया जाना दायी थी, इसे आरंभ में ही किया जाना चाहिए था अथवा वर्ष 1983-87 के मध्यक्षेपी अवधि में सम्यक सूचना दी जानी चाहिए थी और आवास बोर्ड को वर्ष 1987 में करार का विलेख निष्पादित करने से अथवा कब्जा सौंपने से इनकार कर देना चाहिए था। केवल यही नहीं, बोर्ड किश्तों को स्वीकार करने के लिए अग्रसर हुआ और बीस वर्ष बीतने के बाद तथाकथित मूल्य वृद्धि के अत्यधिक मांग के साथ सामने आया और वह भी यह वर्णित किए बिना कि 27 वर्षों बाद मूल्य किस प्रकार बढ़ गया जबकि बोर्ड ने घर में कुछ भी नहीं किया है जो सौंपे जाने के बाद याची के अधिभोग में है।

25. ऊपर कहे गए कारणों से याची की शिकायत बिल्कुल न्यायोचित है। मैं आवास बोर्ड के अधिवक्ता द्वारा किए गए निवेदनों के साथ सहमत नहीं हूँ। रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। राजस्व अधिकारी, झारखंड राज्य आवास बोर्ड, राँची (मुख्यालय) द्वारा जारी आक्षेपित पत्र सं॰ 05/AA/3255/05/2781/AA दिनांक 29.12.2006 (परिशिष्ट–7) के फलस्वरूप की गयी मांग अभिखंडित की जाती है। आज के दिन से तीन माह की अवधि के भीतर हस्तांतरण विलेख को निष्पादित करने का निर्देश आवास बोर्ड को दिया जाता है।

पूर्वोक्त संप्रेक्षणों/निर्देशों के साथ दोनों रिट याचिकाओं को अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k] U;k;efr

सुरेन्दर महथा एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal No. 686 of 2002. Decided on 14th September, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 82 वर्ष 1993/टी॰ आर॰ सं॰ 92 वर्ष 2002 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट सं॰ 4, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 21.9.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 148/324/307/149— हत्या का प्रयास और घोर उपहति–दोषसिद्धि–पक्षगण परिवार के सदस्य हैं–दोनों परिवारों के महिला सदस्यों के बीच झगड़े के कारण घटना हुई–यह अचानक उकसावा था–समस्त तीन घायलों में प्रत्येक एकल उपहति से पीड़ित हुआ था–पक्षों के बीच मामला और प्रति मामला है–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अवयव निर्मित नहीं होते हैं–धारा 307 के अधीन दोषसिद्धि–धाराएँ 148/149/324 के अधीन दोषसिद्धि संपोषित की गयी–अपीलार्थीगण की वृद्धावस्था की दृष्टि में कारावास दंडादेश जुर्माना द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। (पैराएँ 3 से 7)

निर्णयज विधि.–AIR 1988 SC 569—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. R.N. Sahay, For the Appellants; Mr. D.K. Prasad, For the State.

निर्णय

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 82 वर्ष 1993/ टी॰ आर॰ सं॰ 92 वर्ष 2002 में अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 148/324/307/149 के अधीन दोषसिद्धि करते हुए और भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 148 और 324 के अधीन प्रत्येक को एक वर्ष का सामान्य कारावास और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन तीन वर्षों का सामान्य कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट सं॰ 4, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 21.9.2002 के निर्णय से उद्भूत होती है। किंतु समस्त दंडादेशों को साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक बिरंची महथा (अ॰ सा॰ 6) ने यह कथन करते हुए फर्दबयान दर्ज किया कि उसके परिवार के सदस्य और अभियुक्तगण के परिवार के सदस्य एक ही पूर्वज के संतति हैं और पिछली शाम नदी से जल लाने को लेकर दोनों परिवारों के महिला सदस्यों के बीच विवाद हुआ था। जब सूचक को महिला सदस्यों के बीच झगड़ा का पता चला, वह अपने भाई के साथ मुखिया के पास गया और उसको लिखित में झगड़े की सूचना दी। मुखिया ने जाँच के लिए गाँव आने का आश्वासन उनको दिया। सूचक और उसका भाई अपने घर लौट गए और अपने परिवार के महिला सदस्यों को अभियुक्तगण के महिला सदस्यों के साथ झगड़ा नहीं करने की चेतावनी दी। अगली सुबह लगभग 6 बजे सूचक और उसके भाइयों शरद महथा (अ॰ सा॰ 1) और कालिपद महथा ने अभियुक्तगण को बुलाया और उनसे दोनों परिवारों के महिला सदस्यों के बीच विवाद के बारे में पूछा जिस पर अभियुक्तगण अर्थात् सुरेन्द्र महथा अपने घर के अंदर गया और फरसा लेकर आया और उसके मस्तक पर रक्त बहती उपहति कारित करते हुए कालिपद महथा पर फरसा का वार किया। सूचक और उसके भाई शरद महथा ने अपने भाई कालिपद महथा को बचाने का प्रयास किया किंतु इस बीच अभियुक्तगण नरेंद्र महथा, बिरेन्द्र महथा ने अपने भाई कालिपद महथा को बचाने का प्रयास किया किंतु इस बीच अभियुक्तगण नरेंद्र महथा, बिरेन्द्र महथा, हरेन्द्र महथा और धीरेन्द्र महथा टांगी, रॉड और लाठी लेकर आ गए। नरेन्द्र महथा ने रक्त बहती उपहति कारित करते हुए सूचक के मस्तक पर टांगी का वार किया। अभियुक्त बिरेन्द्र महथा ने शरद महथा के मस्तक पर टांगी से वार किया और उसके दाएँ हाथ पर फ्रैक्चर की उपहति कारित किया जब उसने स्वयं को बचाने का प्रयास किया। वह भी जमीन पर गिर गया। हरेन्द्र और धीरेन्द्र ने तीनों भाइयों पर लाठी से वार किया और सूचक और उसके भाइयों पर गंभीर उपहतियाँ कारित की। घटना सूचक के घर के दरवाजा के निकट हुई थी। सूचक और उसके भाइयों द्वारा हल्ला करने पर गवाहगण घटनास्थल पर आए। घायलों को अस्पताल ले जाया गया जहाँ उनका फर्दबयान दर्ज किया गया था।

3. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि एक ही घटना के लिए मामला और प्रति मामला था; और कि पक्षगण संबंधी थे; और कि हत्या कारित करने का आशय नहीं था; और कि घटना दोनों परिवार के महिला सदस्यों के बीच झगड़ा के कारण और पक्षों के बीच गाली–गलौज के दौरान हुई थी, यद्यपि वह घटना पर गंभीरतापूर्वक विवाद नहीं कर रहे हैं। उन्होंने आगे निवेदन किया कि घटना अचानक उकसावा के कारण हुई थी और इसलिए, अभियुक्तगण को अधिकाधिक भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 334 और 335 के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता था। उन्होंने **AIR 1988 Supreme Court 569 (पटोरी देवी एवं एक अन्य बनाम अमरनाथ एवं अन्य** के साथ **हरियाणा राज्य बनाम अमरनाथ एवं अन्य** और **जयनारायण एवं अन्य)** पर विश्वास किया। अंत में, उन्होंने निवेदन किया कि अब तक अपीलार्थीगण काफी उम्र के हो गए हैं और शेष दंडादेश भुगतने के लिए उनको जेल में वापस भेजना समुचित नहीं होगा। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि यद्यपि अपीलार्थीगण केवल सोलह दिन कारा में रहे हैं किंतु उन्होंने वर्ष 1988 से अभियोजन का सामना किया है।

4. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री डी॰ के॰ प्रसाद ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया और निवेदन किया कि बिरंची महथा सूचक (अ॰ सा॰ 6) ने अपने खोपड़ी पर विदीर्ण उपहति प्राप्त किया था, यद्यपि डॉक्टर द्वारा इसे सामान्य प्रकृति का पाया गया था; और कि शरद महथा ने अपने हाथ पर घोर फ्रैक्चर की उपहति प्राप्त किया था जबकि कालिपद महथा ने तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित अपनी खोपड़ी पर घोर उपहति प्राप्त किया था जो डॉक्टर के मत के मुताबिक जीवन के लिए खतरनाक थी।

5. पक्षों को सुनने के बाद और सावधानीपूर्वक अभिलेख का परिशीलन करने के बाद यह प्रतीत होता है कि घटना पक्षों के परिवारों के महिला सदस्यों के बीच झगड़े के कारण हुई थी। पक्षगण संबंधी और पड़ोसी हैं। मैं संतुष्ट नहीं हूँ कि अपीलार्थीगण के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अवयव निर्मित हुए हैं। समस्त तीनों घायलों ने एकल उपहति प्राप्त किया था और वह भी पक्षों के बीच बहस के दौरान।

सूचक पक्ष द्वारा प्राप्त उपहतियाँ, यदि हो, को अभिलेख पर नहीं लाया गया है, यद्यपि यह प्रतीत होता है कि पक्षों के बीच मामला और प्रति मामला है।

6. अपीलार्थीगण को यह दर्शाने की आवश्यकता थी कि भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 334 और 335 आकृष्ट होते हैं, किंतु यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि घायल व्यक्तियों द्वारा अचानक और गंभीर उकसावा हुआ था। इन परिस्थितियों में, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन दोषसिद्धि अपास्त की जाती है और भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 148/149/324 के अधीन दोषसिद्धि संपोषित की जाती है। किंतु, मेरा मत है कि दंडादेश की शेष अवधि भुगतने के लिए अपीलार्थीगण को कारा वापस भेजने से कोई लाभदायी प्रयोजन पूरा नहीं होगा। पक्षों ने वर्ष 1988 से इस मुकदमें को झेला है। वे संबंधी और पड़ोसी हैं। घटना उनके परिवार के सदस्यों के बीच झगड़े के कारण हुई थी। अपीलार्थी सुरेन्द्र महथा लगभग 70 वर्ष का हो चुका है, बिरेन्द्र महथा की उम्र 55 वर्ष, धीरेन्द्र महथा की आयु 60 वर्ष, नरेन्द्र महथा की आयु लगभग 75 वर्ष और हरेन्द्र महथा की आयु लगभग 80 वर्ष हो चुकी है। कारावास के बदले जुर्माना अधिरोपित करके न्याय का उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है।

7. तद्नुसार, कारागार में अपीलार्थी द्वारा पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक के लिए दंडादेश को परिवर्तित किया जाता है। उनमें से प्रत्येक को विचारण न्यायालय में छह सप्ताह के भीतर 4,000/- रुपया का जुर्माना जमा करने का निर्देश दिया जाता है। यदि कोई या अन्य अपीलार्थीगण जुर्माना राशि जमा करने में विफल रहता है, उसे तीन माह की अवधी के लिए सामान्य कारावास भुगतना होगा।

किंतु, जिस अपीलार्थी द्वारा जुर्माना राशि को जमा किया जाता है, विद्वान विचारण न्यायालय उसे जमानत बंधपत्र से उन्मोचित करेगा और सूचक/उसके परिवार के सदस्यों को नोटिस जारी करेगा जिन्हें जुर्माना राशि निकालने की स्वतंत्रता होगी।

8. दोषसिद्धि और दंडादेश में इस परिवर्तन के साथ, यह अपील अंशत: अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; vkjï dï ejkfB;k] U;k;efr

सुशील गोप

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (SJ) No. 687 of 2002. Decided on 15th September, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 69 वर्ष 1998 में श्री अरुण कुमार राय, तृतीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 23.9.2002 और 24.9.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 304B—दहेज हत्या–दोषसिद्धि–10,000/- रुपयों की मांग–यातना के कारण मृतका ने जहर खा ली और उसकी मृत्यु हो गयी–मृतका के संबंधियों ने दहेज मांग के लिए यातना के अभिकथन का समर्थन किया–अभियोजन मामला चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा समर्थित–अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध किया कि दहेज के लिए यातना के कारण मृतका ने जहर खाया–दोषसिद्धि मान्य ठहरायी गयी–किंतु, दंडादेश पहले ही भुगत ली गयी अवधि (छह वर्ष) तक घटाया गया। (पैराएँ 5 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Indrajeet Sinha, For the Appellant; Miss. Anita Sinha, For the Respondent.

निर्णय

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 69 वर्ष 1998 में तृतीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा क्रमश: दिनांक 23.9.2002 और दिनांक 24.9.2002 को पारित दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है, जिसके द्वारा एकमात्र अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन अपराध करने के लिए दोषी पाया गया है और तद्द्वारा उसे दस वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि दिनांक 30.3.1997 को सूचक परमेश्वर गोप (अ॰ सा॰ 8) ने चौधरी नर्सिंग होम, कतरास में इस प्रभाव का फर्दबयान दर्ज किया कि उसकी भतीजी लक्ष्मी देवी का विवाह याची के साथ हुआ था और उसे दहेज के रूप में 10,000/- (दस हजार) रुपया लाने के लिए यातना दी जा रही थी। अंतत:, उसने ऐसी यातना के कारण जहर खा लिया और जान दे दिया।

3. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अधिकाधिक अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता था, और न कि भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन; और कि वह लगभग छह वर्षों तक कारा अभिरक्षा में बना हुआ है।

4. दूसरी ओर, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰, सुश्री अनिता सिन्हा ने दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय और दंडादेश का समर्थन किया।

5. अ॰ सा॰ 1 डॉक्टर है। उन्होंने मृतका के पेट में जहरीला पदार्थ पाया था किंतु वह यह कहने की दशा में नहीं थे कि मृत्यु आत्मघाती थी अथवा मानव वध। अ॰ सा॰ 2, 3, 4 और 6 पक्षद्रोही हो गए हैं। अ॰ सा॰ 5 मृतका का भाई है जिसने कहा है कि उसे सूचना मिली थी कि उसकी बहन ने जहर खा लिया था। अ॰ सा॰ 7 बिजेंद्र गाप अनुश्रुत गवाह है। अ॰ सा॰ 8 परमेश्वर गोप सूचक है। अ॰ सा॰ 9 शालू देवी मृतका की माता है जिसने अ॰ सा॰ 5 (मृतका का भाई) के साथ दहेज मांग के लिए यातना के अभिकथन का समर्थन किया है। किंतु यह गवाह भी यह कहने की दशा में नहीं है कि उसकी पुत्री की मृत्यु कैसे हुई। अ॰ सा॰ 10 अन्वेषण अधिकारी है।

6. पक्षों को सुनने के बाद और अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर, मैं दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाता हूँ। श्री सिन्हा का निवेदन कि दोषसिद्धि अधिकाधिक भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अधीन की जा सकती थी, स्वीकार्य नहीं है क्योंकि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304B भी प्रयोज्य है यदि सामान्य परिस्थितियों को छोड़कर अन्यथा मृत्यु हुई हो। अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध किया है कि दहेज की यातना के कारण मृतका ने जहर खायी थी।

7. इन परिस्थितियों में, मैं भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन दोषसिद्धि मान्य ठहराने का इच्छुक हूँ।

8. किंतु, जहाँ तक दंडादेश का संबंध है, यह प्रतीत होता है कि वर्ष 1997 से अभियोजन का सामना करने के अतिरिक्त अपीलार्थी छह वर्षों तक कारा अभिरक्षा में बना हुआ है। अत: उसका दंडादेश उसके द्वारा पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक घटाया जाता है। अपीलार्थी, जो जमानत पर है, को उसके जमानत बंधपत्र के दायित्वों से उन्मोचित किया जाता है।

दंडादेश में इस परिवर्तन के साथ, यह अपील खारिज की जाती है।

---

ekuuh; çkr dekj] U;k;efr

काली चरण सिंघानिया

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1017 of 2006. Decided on 12th September, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 414—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—चुरायी गयी संपत्ति का कब्जा—संज्ञान—पुलिस के समक्ष सह-अभियुक्त के इकबालिया बयान के आधार पर याची को अभियुक्त बनाया गया—याची के कब्जे से कुछ भी सामने नहीं आया—चूँकि याची के कब्जे से कोई चुरायी गयी वस्तु बरामद नहीं की गयी थी, अत: भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 414 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है—साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 से बाधित होने के कारण पुलिस के समक्ष दिया गया सह-अभियुक्त और याची का इकबालिया बयान साक्ष्य नहीं है—आक्षेपित आदेश अभिखंडित। (पैराएँ 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.—M/s R.S.P. Sinha, R.K. Sinha, For the Petitioner; Mr. P.K. Sahay, For the State; M/s Ananda Sen, Nagmani Tiwari, For the O.P. No. 2.

आदेश

यह आवेदन साकची पी० एस० केस सं० 265 वर्ष 2005, जी० आर० केस सं० 2481 वर्ष 2005 के तत्सम, में विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 8.2.2006 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा उन्होंने भा० दं० सं० की धारा 414 के अधीन याची के विरुद्ध संज्ञान लिया था।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री आर० एस० पी० सिन्हा द्वारा निवेदन किया गया है कि प्राथमिकी और आरोप-पत्र के परिशीलन से स्पष्ट होगा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 414 के अधीन संज्ञान लेने के लिए विधिक साक्ष्य नहीं है। निवेदन किया गया है कि याची को इस मामले में सह-अभियुक्त सुरेश अग्रवाल, जिसके कब्जे से अभिकथित कलश जर्दा के 14 पैकेटों को बरामद किया गया था, के इकबालिया बयान के आधार पर अभियुक्त बनाया गया है। तब निवेदन किया गया है कि पुलिस के समक्ष दिए गए सुरेश अग्रवाल के इकबालिया बयान के अतिरिक्त, याची के विरुद्ध अन्य सामग्रियाँ स्वयं उसका पुलिस के समक्ष दिया गया इकबालिया बयान है। यह निवेदन किया गया है कि दोनों इकबालिया बयान साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 की दृष्टि में ग्राह्य साक्ष्य नहीं है। यह भी निवेदन किया गया है कि स्वीकृत रूप से सुरेश अग्रवाल के कब्जा से कलश जर्दा के 14 पैकेटों को बरामद किया गया था और विद्वान अवर न्यायालय द्वारा उक्त सुरेश अग्रवाल को उन्मोचित कर दिया गया है, किंतु याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 414 के अधीन संज्ञान लिया गया है, यद्यपि उसके कब्जे से कुछ भी बरामद नहीं किया गया था। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि आक्षेपित आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है।

3. विद्वान अपर पी० पी०, श्री पी० के० सहाय और विपक्षी पक्षकार सं० 2 के विद्वान अधिवक्ता, श्री नागमणी तिवारी ने प्राथमिकी और आरोप-पत्र के परिशीलन के बाद पूर्वोक्त ताथ्यिक दशा को विवादित नहीं किया है।

4. निवेदन सुनने पर, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। स्वीकृत रूप से, याची को प्राथमिकी में नामित नहीं किया गया है। किंतु परिशिष्ट-2 (आरोप-पत्र) के परिशीलन से मैं पाता हूँ कि याची को पुलिस के समक्ष दिए गए इकबालिया बयान के आधार पर इस मामले में अभियुक्त बनाया गया है। उसके अतिरिक्त याची के विरुद्ध एक अन्य सामग्री स्वयं उसका पुलिस के समक्ष दिया गया इकबालिया बयान है। आरोप-पत्र आगे प्रकट करता है कि याची के कब्जे से कुछ भी बरामद नहीं किया गया था। बल्कि बरामदगी सह-अभियुक्त मो० जमाल उर्फ गुड्डु और सह-अभियुक्त सुरेश अग्रवाल के कब्जा से की गयी थी। विचित्र रूप से दोनों पूर्वोक्त अभियुक्तगण को आरोप-पत्र में संदिग्ध व्यक्ति के रूप में दर्शाया गया था और भारतीय दंड संहिता की धारा 414 के अधीन याची के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। यह प्रतीत होता है कि संज्ञान लेते हुए विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने आरोप-पत्र में कथित तथ्यों पर अपने विवेक का इस्तेमाल नहीं किया था। चूँकि याची के कब्जे से चुरायी गयी कोई वस्तु बरामद नहीं की गयी थी, अत: मेरे दृष्टिकोण में भारतीय दंड संहिता की धारा 414 के अधीन उसके विरुद्ध कोई अपराध नहीं बनता है। इसके अतिरिक्त, पुलिस के समक्ष दिया गया सह-अभियुक्त और याची का इकबालिया बयान साक्ष्य नहीं है क्योंकि ये साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 द्वारा बाधित होते हैं।

5. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मैं पाता हूँ कि आक्षेपित आदेश गंभीर अवैधता से पीड़ित है, अत: इसे संपोषित नहीं किया जा सकता है। परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है और आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया जाता है।

ekuuh; çkkr dekj] U;k;efr

ठाकुर महतो एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1001 of 2006. Decided on 12th September, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 419, 420, 467, 468, 471 एवं 120B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल एवं कूटरचना–संज्ञान–हस्ताक्षर में कूटरचना–याचीगण ने प्रतिरुपण और कूटरचना का अपराध करके अपने पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करवाया–धारा 467 के अधीन अपराध के लिए महत्तम दंड 10 वर्ष है–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 468 के अधीन कोई परिसीमा विहित नहीं की गयी है–दांडिक मामला सिविल मामला के साथ-साथ चल सकता है–आवेदन खारिज। (पैराएँ 4 से 6)

अधिवक्तागण.–M/s Prakash Kishore Prasad, Debolina Sen, For the Petitioners; Mr. B.B. Sinha, For the State; Mr. R.A. Chaubey, For the O.P. No.-2.

आदेश

यह आवेदन परिवाद केस सं॰ 1205 वर्ष 2005, टी॰ आर॰ सं॰ 1417 वर्ष 2006 के तत्सम, में विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 24.3.2006 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा उन्होंने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 419, 420, 467, 468, 471 और 120B के अधीन अपराधों का संज्ञान लिया।

2. निवेदन किया गया है कि परिवाद याचिका में अभिकथित किया गया है कि याचीगण ने वर्ष 1980 में परिवादी का हस्ताक्षर कूटरचित किया और ऐसा करके उन्होंने परिवादी की भूमि को अपने नामों में अंतरित करवा लिया। यह निवेदन किया गया है कि अभिकथित अपराध 25 वर्ष पहले किया गया था। अभिकथन से यह प्रतीत होता है कि पक्षों के बीच विवाद शुद्धतः सिविल प्रकृति का है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि आक्षेपित आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है।

3. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री आर॰ ए॰ चौबे निवेदन करते हैं कि परिवाद याचिका के पैराग्राफों 12 और 13 में किए गए अभिकथनों से छल और कूटरचना का अपराध बनता है, अतः आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

4. निवेदनों को सुनने पर, मैंने अभिलेख का परिशीलन किया है। परिवाद याचिका और सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर परिवादी के बयान के परिशीलन से मैं पाता हूँ कि परिवादी ने स्पष्ट तौर पर कथन किया कि प्रतिरुपण और कूटरचना का अपराध करके याचीगण ने अपने पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करवाया था। इस प्रकार, मैं पाता हूँ कि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 419, 420, 467, 468, 471 सह-पठित धारा 120B के अधीन प्रथम दृष्टया अपराध निर्मित हुए हैं। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद कि परिवाद 25 वर्षों के बाद दाखिल किया गया है, अतः याचीगण के विरुद्ध संज्ञान नहीं लिया जा सकता है, भ्रामक प्रतीत होता है क्योंकि धारा 467 के अधीन अपराध के लिए महत्तम दंड 10 वर्ष है, अतः दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 468 के अधीन कोई परिसीमा विहित नहीं की गयी है।

5. यह सुनिश्चित है कि दांडिक मामला सिविल मामला के साथ-साथ चल सकता है क्योंकि दोनों कार्यवाहियों की प्रकृति भिन्न है।

6. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मैं इस आवेदन में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है।

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k] U;k;efr

सूरजदेव सिंह (654 में)

समय लाल जायसवाल (799 में)

cuke

झारखंड राज्य (दोनों में)

Cr. Appeal Nos. 654 with 799 of 2002. Decided on 13th September, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 300/90 में विद्वान दशम अपर सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 3.10.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 363, 365 एवं 366A—अवयस्क बालिका का अपहरण–दोषसिद्धि–साक्ष्य में बलात्कार की कहानी विकसित की गयी–अपीलार्थी और पीड़िता के बीच प्रेम प्रसंग–पीड़ित बालिका के साक्ष्य में मुख्य विरोधाभास पाये गए–अपीलार्थीगण संदेह के लाभ के योग्य हैं क्योंकि अभियोजन ने समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध नहीं किया है–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 5 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. J.K. Pasari (in 654), For the Appellant; Mr. B.K. Jha (in 799), For the Appellant; Mr. Tapas Rai, For the State.

न्यायालय द्वारा.–इन दोनों अपीलों को सत्र विचारण सं॰ 300/90 में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 363, 365 और 366A के अधीन अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करते हुए और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 363 के अधीन चार वर्षों का; भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 365 के अधीन पाँच वर्षों का तथा भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 366-A के अधीन पाँच वर्षों का कठोर कारावास, यद्यपि समस्त दंडादेशों को साथ-साथ चलना था, भुगतने के लिए दंडादेशित करते हुए विद्वान दशम अपर सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 3.10.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है।

2. संक्षेप में अभियोजन का मामला यह है कि सूचक श्याम लाल ने दिनांक 23.9.1988 को पुलिस के समक्ष अन्य बातों के साथ साथ यह अभिकथन करते हुए फर्दबयान दर्ज किया कि उसकी 15 वर्षीय पुत्री जानकी कुमारी (अ॰ सा॰ 7) दिनांक 17.9.1988 को मेला देखने गयी किंतु वापस नहीं लौटी और तब से वह और उसके परिवार के सदस्य उसको खोज रहे थे, जिसके दौरान उन्हें पता चला कि अपीलार्थीगण श्याम लाल जयसवारा, सूर्यदेव सिंह और अभियुक्त इंदुराय, जो उसी कोलियरी में कार्यरत थे, ने बुरे इरादों से जानकी का अपहरण कर लिया है और उसे बंद रखा जा रहा है। यह भी पता चला कि अपीलार्थीगण का जानकी के साथ प्रेम प्रसंग था और अभियुक्त इंदु राय ने उनकी मदद की थी। अपीलार्थीगण अपने कर्तव्य से फरार थे।

3. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया। यह निवेदन किया गया है कि स्वतंत्र गवाह पक्षद्रोही हो गए हैं और दोषसिद्धि हितबद्ध गवाहों पर आधारित है और कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन दंडाधिकारी और न्यायालय के समक्ष दिए गए जानकी के बयान में मुख्य विरोधाभास हैं और कि अपीलार्थीगण वर्ष 1988 से अभियोजन झेल रहे हैं। आगे निवेदन किया गया है कि विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर समुचित रूप से विचार नहीं किया है।

4. दूसरी ओर, दोनों मामलों में राज्य के विद्वान अधिवक्ता, श्री तपस राज ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

5. स्वयं प्राथमिकी से यह प्रतीत होता है कि सूचक, जानकी के पिता, को उसके और अपीलार्थी समय लाल जायसवाल के बीच प्रेम-प्रसंग का संदेह था। जानकी को दिनांक 26.9.1988 अर्थात् 9 दिनों बाद समय लाल जायसवाल के घर से बरामद किया गया था। उसने दंडाधिकारी के समक्ष दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन बयान दिया और अन्य बातों के साथ साथ कहा कि अभियुक्तगण उसके घर आए थे और उसे किसी अन्य स्थान पर ले गए थे और विगत रात्रि तक उन्होंने उसे वहाँ रखा था जहाँ अपीलार्थी समय लाल जायसवाल रूका रहा और अपीलार्थी सूरजदेव सिंह चला गया। अपीलार्थी समय लाल वहाँ पर पहले से रह रहा था और वह उससे विवाह करना चाहता था। वह विगत दो वर्षों से उसे जानती थी। अपीलार्थी सूरजदेव सिंह और इंदु राय ने झूठे बहाने पर उसका अपहरण किया। वह उनके साथ रहना नहीं चाहती थी। समय लाल उसे विवाह के लिए देवघर चलने को कहता था। उसने उसे अच्छे से रखा। यह गौर करना महत्वपूर्ण है कि जब इस मामले में अ॰ सा॰ 7 के रूप में जानकी का परीक्षण किया गया था, उसने अपने पूर्वोक्त बयान का महत्वपूर्ण खंडन किया। उसने अन्य बातों के साथ साथ कहा कि जब वह नित्य कर्म से निबटने जंगल की ओर गयी थी, समस्त अभियुक्तगण उपस्थित थे। अपीलार्थी सूरजदेव सिंह और अभियुक्त इंदु राय ने उसका मुँह बंद कर दिया और यह कहते हुए उसे उठा लिया कि अपीलार्थी समय लाल के साथ उसका विवाह किया जाएगा। उसे गंभीर परिणामों की धमकी दी गयी थी। उसे रेलवे स्टेशन ले जाया गया था। उसे दिनांक 17 से 26 सितंबर, 1988 तक समय लाल के घर में रखा गया था जहाँ अपीलार्थी समय लाल उसके साथ बलात्संग करता था। यहाँ गौर किया जा सकता है कि बलात्संग का यह भाग साक्ष्य में विकसित किया गया था। उसने आगे कहा कि अपीलार्थी समय लाल उसे मंदिर ले गया और उसके माथे पर सिंदूर लगाया। इस मामले में दंडाधिकारी का परीक्षण नहीं किया गया है।

6. विद्वान विचारण न्यायालय ने यह भी संप्रेक्षित किया कि अ॰ सा॰ 7 के रूप में दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन जानकी के बयान में और न्यायालय में उसके बयान में तात्विक विरोधाभास थे। इस मामले में आई॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया है। जानकी ने यह नहीं कहा था कि क्या उसने अभियुक्तगण के चंगुल से भागने का प्रयास किया था जब उसे उनके द्वारा रेलवे स्टेशन और तब अपीलार्थी समय लाल के घर ले जाया गया था और जब उसे लगभग 9 दिनों तक बंद रखा गया था। जानकी के पिता (अ॰ सा॰ 1) के मुताबिक भी, अपीलार्थी समय लाल और जानकी के बीच प्रेम-प्रसंग था।

7. पक्षों को सुनने और अभिलेख का सावधानीपूर्वक परीक्षण करने के बाद, मेरे मत में अपीलार्थीगण संदेह का लाभ पाने योग्य हैं क्योंकि अभियोजन ने समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध नहीं किया है।

8. परिणामस्वरुप, इन अपीलों को अनुज्ञात किया जाता है। सत्र विचारण केस सं॰ 300/90 में विद्वान दशम अपर सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 3.10.2002 के दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय और दंडादेश को अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण को उनके जमानत बंधपत्रों से उन्मोचित किया जाता है।

---

ekuuh; vkjï dï ejkfB;k] U;k;efr

लियो फर्नांडीस

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (SJ) No. 619 of 2002. Decided on 14th September, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 299 वर्ष 1990 में श्री अखिलेश्वर झा, अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ सं॰ II, जमशेदपुर, पूर्वी सिंहभूम द्वारा क्रमशः दिनांक 7 सितंबर, 2002 और दिनांक 11 सितंबर, 2002 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 382 एवं 411—चोरी–चुरायी गयी संपत्ति पर कब्जा–दोषसिद्धि–चुरायी गयी वस्तु को अभिकथित तौर पर स्कूटर पर ले जाया जा रहा था–अभियोजन कारखाना परिसर में स्कूटर के प्रवेश को सिद्ध नहीं कर सका था–स्कूटर का स्वामित्व भी सत्यापित नहीं किया गया–सुरक्षाकर्मियों पर अपीलार्थी और अन्य द्वारा गोली चलाने का अभिकथन सिद्ध नहीं किया गया–अपीलार्थी ने वर्ष 1986 से अभियोजन झेला है और दो माह से अधिक तक कारा अभिरक्षा में रहा है–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त।

(पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Das, For the Appellant; Mr. Shekhar Sinha, For the Respondent.

निर्णय

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 299 वर्ष 1990 में श्री अखिलेश्वर झा, अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ II, जमशेदपुर, पूर्वी सिंहभूम द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 7 सितंबर, 2002 और 11 सितंबर, 2002 के दोषसिद्धि और दंडादेश के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा एकमात्र अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 382 और 411 के अधीन अपराध करने के लिए दोषी पाया गया है और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 382 के अधीन अपराध के लिए तीन वर्षों का सामान्य कारावास भुगतने और 1000/- रुपया का जुर्माना का भुगतान करने और व्यतिक्रम में दो माह का सामान्य कारावास भुगतने और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 411 के अधीन अपराध के लिए तीन वर्षों का सामान्य कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था। किंतु दोनों दंडादेशों को साथ-साथ चलना था।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि टिस्को के सुरक्षाकर्मी अ॰ सा॰ 2 सूचक मुकुल सुंडी ने पुलिस के समक्ष लिखित रिपोर्ट दर्ज कराया कि जब उसने रात्रि लगभग 9.50 बजे दिनांक 1.9.1986 को अपने 'सी॰' शिफ्ट ड्यूटी पर जाने के लिए अपने स्कूटर पर टिस्को परिसर में प्रवेश किया, उसने किसी आदमी (अपीलार्थी) को स्कूटर रजिस्ट्रेशन सं॰ बी॰ आर॰ एक्स॰ 4850 पर सवार दाएँ-बाएँ देखते हुए मद्धिम गति के साथ जाते देखा। सूचक को संदेह हुआ। अपने स्कूटर की गति बढ़ाने के बाद सूचक उस आदमी के निकट पहुँचा और पाया कि उक्त आदमी पेशेवर चोर लियो फर्नांडीस (अपीलार्थी) था। स्कूटर के फुटमैट पर एक झोले में कुछ रखा हुआ था और एक अन्य झोला में भी कुछ सामग्रियाँ रखी हुई थी। सूचक ने अपीलार्थी का हाथ पकड़ना चाहा। इस प्रक्रिया में, दोनों स्कूटरों का संतुलन गड़बड़ा गया और दोनों गिर गए। तत्पश्चात, अपीलार्थी ने अपना हैलमेट सूचक पर फेंका किंतु सूचक ने स्वयं को बचा लिया। इसके बाद, अपीलार्थी अपना स्कूटर और झोले की सामग्री छोड़ कर ब्लास्ट फरनेस की ओर अंधेरे में भाग गया। सूचक ने हल्ला करते हुए अपीलार्थी का पीछा किया। अपीलार्थी ने अपनी कमर से चाकू निकाला और वार करना चाहा किंतु सूचक ने स्वयं को बचा लिया। हल्ला सुनने पर, विभाग का चालक बाँके बिहारी (अ॰ सा॰ 1) भानु प्रताप सिंह (अ॰ सा॰ 3), हरि शंकर सिंह और रंग बहादुर सिंह (अ॰ सा॰ 4) के साथ गश्ती जीप पर उसकी मदद के लिए आए। उन्होंने भी अपीलार्थी को झोला लिए भागते हुए देखा किंतु अंधकार का लाभ लेते हुए वह भाग गया। उन्होंने देखा कि चार व्यक्ति एक जगह जमा हुए थे और अपीलार्थी उनसे मिला था। उनमें से एक ने सूचक दल की ओर दो चक्र गोली चलायी

लेकिन यह उनको नहीं लगी। इस पर अ॰ सा॰ 3 भानु प्रताप सिंह ने एक राउंड दागा जो एक व्यक्ति को लगा और उसे पकड़ लिया गया जिसने अपना नाम द्वारका नाथ प्रसाद बताया (जिसका विचारण पृथक रूप से किया गया)। चोरों की पहचान मानगो के बाबूलाल, आदित्यपुर के अनु उर्फ मोनाबर खान और मोहर राव के रूप में की गयी थी (सबों को दोषमुक्त कर दिया गया है)। झोला, जो स्कूटर के निकट पड़ा था, में 1350/- रुपयों के मूल्य के दो इस्पात ब्लॉक थे। चूँकि अपीलार्थी पूर्व कर्मचारी था, वह कंपनी के तौर तरीकों से परिचित था और इसलिए वह इसका लाभ लेते हुए वहाँ से भागने में सफल हुआ जब सुरक्षा कर्मियों द्वारा उसका पीछा किया गया था।

आगे अभिकथित किया गया था कि पहले भी अपीलार्थी को विभिन्न वाहनों के साथ चार बार पकड़ा गया था जिसके लिए अन्य मामले दर्ज किए गए थे। आगे अभिकथित किया गया था कि चुरायी गयी सामग्रियाँ साकची टैंक मार्केट के दिलावर खान को बेच दी गयी थी जहाँ से पहले चुरायी गयी टिस्को की सामग्रियों को बरामद किया गया था। सूचक ने उक्त स्कूटर और चुरायी गयी सामग्रियों को प्रभारी–अधिकारी को सौंप दिया।

3. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ दास ने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया। उन्होंने निवेदन किया कि साक्ष्य में महत्वपूर्ण विरोधाभास है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अपीलार्थी वर्ष 1972 से सेवा में था और वर्ष 1984 तक उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं था, जब उसे चोरी के अभिकथन पर सेवा से निकाल दिया गया था किंतु, अंततः, श्रम न्यायालय के आदेशों के अधीन उसे पुनर्बहाल कर दिया गया था। तत्पश्चात्, वह समरुप अभिकथनों पर समरुप प्रकृति के अनेक दांडिक मामलों में झूठे रूप से अंतर्ग्रस्त था। किंतु, उन सबों में उसे दोषमुक्त कर दिया गया था। यह निवेदन भी किया गया है कि यह मामला भी अपीलार्थी को सेवा से दूर रखने के लिए दर्ज किया गया था। उन्होंने अंत में निवेदन किया कि अभियोजन अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध करने में विफल रहा था।

4. दूसरी ओर, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰, श्री शेखर सिन्हा ने दोषसिद्धि और दंडादेश के आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

5. निम्नलिखित अवस्थाएँ अभियोजन मामले के बारे में गंभीर संदेह सृजित करती हैं:–

(i) Lo; çkFkfedh d erkfcd LdVj] ftl ij vihykFkh dk pjk;h x;h lkefx;k dk y tkrk vfHkdfFkr fd;k x;k g dk ifyl dk lki fn;k x;k FkkA bld vfrfjDr] Lo; lpd v0 lk0 2u ijk 5e dgk fd LdVj vkj pjk;h x;h oLr, ifyl }kjk tCr dh x;h FkhA fdr ijk 11e mlu dgk fd og U;k;ky; d le{k pjk;h x;h lkefx;k çLrr dj jgk FkkA ;g Kkr ugh g fd fdl çdkj lpd U;k;ky; d le{k pjk;h x;h oLrvk dk çLrr dj ldrk Fkk ;fn ifyl }kjk bUg tCr fd;k x;k FkkA

(ii) lk{; e vk;k g fd xV ikl çkIr fd, fcuk dkb okgu dkj[kkuk ifjlj e ço'k ugh dj ldrk g fdr vfHk;ktu u fl) ugh fd;k g fd mDr LdVj dkj[kkuk ifjlj e ço'k fd;k Fkk ;k ugh\ LdVj d Lokfeªo dk Hkh lR;kfir ugh fd;k x;k gA

(iii) v0 lk0 5 Mk0 d0 t0 ikfj[k g ftUgku fnukd 1.5.1986 dk }kjdk ukFk dk ijh{k.k fd;k FkkA mUgku mld 'kjhj ij ikp [kjkp vkj vud ipj t[e ik;k Fkk fdr vkXu;kL= l gb migfr ugh ik;h Fkh tlk vfHk;ktu }kjk vfHkdfFkr fd;k x;k gA

(iv) tgk rd ?kVuk d rjhd dk lcèk g] v0 lk0 3 vkj 4 dh ryuk e v0 lk0 1 vkj 2 d lk{; e egRoi.k fojkèkkHkk l gA

(v) vfHkdFku g fd vihykFkh vkj vU; u lj{kkdfe;k ij xkyh pyk;h Fkh fdr ,l vfHkdFku d leFku e ifyl }kjk dN Hkh cjken ugh fd;k x;k gA

(vi) Lo; v0 lkO 2 lpd dk lk{; Hkh fojkèkkHkkl h gA mlu dgk fd vihykFkh Hkkx x;k vkj ihNk fd, tku ij Hkh idMk ugh tk ldk Fkk fdr nljh vkj mlu dgk fd mlu vihykFkh dk ifyl d gkFkk lki fn;k FkkA

6. पक्षों को सुनने और अभिलेखों का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के बाद मैं संतुष्ट हूँ कि अपीलार्थी संदेह का लाभ पाने योग्य है क्योंकि अभियोजन अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध नहीं कर सका है। किसी भी स्थिति में, उसने वर्ष 1986 से अभियोजन झेला है और दो माह से अधिक तक कारा की अभिरक्षा में रहा है।

7. परिणामस्वरुप, यह अपील अनुज्ञात की जाती है। अपीलार्थी के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और दंडादेश का आक्षेपित निर्णय एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी, जो जमानत पर है, को उसके जमानत बंधपत्र के दायित्वों से उन्मोचित किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] dk;dkjh e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

नाथू राम एवं एक अन्य

cuke

बिहार राज्य (झारखंड) एवं अन्य

L.P.A. No. 6 of 2007. Decided on 15th September, 2011.

सेवा विधि–नियमितीकरण–अपीलार्थीगण कमांडेंट, होम गार्ड्स द्वारा जारी पत्र के आधार पर अपना दावा आधारित कर रहे हैं, जिसमें यह संसूचित किया गया था कि वे व्यक्ति जिन्होंने 180 दिनों से अधिक की सेवा दी है, उनकी सेवाओं को नियमित कर दिया जाएगा–व्यक्तियों की सेवाएँ, यदि नियमावली द्वारा शासित होती है, तब इस प्रकार की संसूचना द्वारा नियमावली संशोधित नहीं होती है–अपील खारिज। (पैराएँ 3 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. H.K. Shikarwar, For the Appellants; J.C. to G.P.-I, For the Respondents.

आदेश

अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. अपीलार्थीगण का प्रतिवाद यह है कि उन्हें आरंभ में होमगार्ड के पद पर नियुक्त किया गया था और दिनांक 1.7.1991 के आदेश (परिशिष्ट–4) द्वारा उन्हें टंकक के पद पर नियुक्त किया गया था और उन्होंने दस वर्षों से अधिक की सेवा दी है, और इसलिए, प्रत्यर्थीगण द्वारा उनकी सेवाओं को नियमित कर दिया जाना चाहिए।

3. विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 26.9.2006 के आक्षेपित आदेश में मामले के समस्त पहलूओं पर विचार किया और अभिनिर्धारित किया कि सेवा में नियमितीकरण के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया है और अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता किसी नियमावली की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट नहीं कर सके थे जिसके द्वारा होम गार्ड के पद पर नियुक्त व्यक्तियों को टंकक के पद पर नियुक्त किया जा सकता था।

4. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि जिला कमांडेंट, बिहार होम गार्ड्स, हजारीबाग द्वारा एक पत्र जारी किया गया था जिसमें संसूचित किया गया था कि उन व्यक्तियों, जिन्होंने 180 दिनों से अधिक की सेवा दी है, की सेवाएँ नियमित कर दी जाएगी।

5. हम इस तथ्य की दृष्टि में ऐसा प्रतिवाद स्वीकार करने में अक्षम हैं कि यदि व्यक्तियों की सेवाएँ नियमावली द्वारा शासित होती है, तब इस प्रकार की संसूचना द्वारा नियमावली संशोधित नहीं होती है।

6. उक्त कारणों की दृष्टि में, हम इस एल॰ पी॰ ए॰ में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं। अतः एल॰ पी॰ ए॰ खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o iñ iññ HkVV] U;k;efrx.k

लखिन्द्र सबर उर्फ केकरा

cuke

झारखंड राज्य

Criminal (Jail) Appeal (DB) No. 298 of 2011. Decided on 29th August, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 77 वर्ष 2008 में अपर सत्र न्यायाधीश, घाटशिला द्वारा पारित दिनांक 4.2.2011 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 9.2.2011 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–धन की मांग पूरी नहीं करने के कारण माता की हत्या–झगड़े के दौरान अपीलार्थी ने मृतका पर कुल्हाड़ी के पिछले हिस्से से प्रहार किया–कोई पूर्व चिंतन नहीं है–अपीलार्थी ने केवल एक वार किया–मामला भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 300 के अपवाद 4 के अधीन आता है–दोषसिद्धि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग II में परिवर्तित की गयी–दंडादेश चार वर्षों तक घटा दिया गया। (पैराएँ 8 एवं 10)

अधिवक्तागण.–Mrs. Chaitali C. Sinha, *Amicus Curiae,* For the Appellant; Mr. A.B. Mahata, For the State.

न्यायालय द्वारा.–पक्षों को गुणागुणों पर सुना गया।

2. यह अपील सत्र विचारण सं॰ 77 वर्ष 2008 में अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए और आजीवन कठोर कारावास भुगतने के लिए दंडादेशित करते हुए अपर सत्र न्यायाधीश, घाटशिला द्वारा पारित दिनांक 4.2.2011 के दोषसिद्धि के निर्णय और 9.2.2011 के दंडादेश से उद्भूत होती है। अपीलार्थी को 5,000/- रुपयों के जुर्माने का भुगतान करने का दंडादेश भी दिया गया था और भुगतान के व्यतिक्रम में उसे छह माह का सामान्य कारावास भुगतने का निर्देश दिया गया था।

3. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि दिनांक 25.9.2007 को सूचक दीपक सबर (अ॰ सा॰ 7) ने रात्रि लगभग 8 बजे सूचित किया कि उसकी दादी मुगोली सबर (अपीलार्थी की माता) खाना पकाने की तैयारी कर रही थी। इस बीच, अपीलार्थी बाहर से घर आया और 'इंदिरा मेला' देखने के लिए पैसा मांगने लगा जिसे देने से मृतका ने इनकार कर दिया। तत्पश्चात्, अपीलार्थी मृतका से झगड़ा करने लगा। मृतका कमरे से बाहर आयी। अपीलार्थी ने उसका हाथ पकड़ कर उसे घर के बरामदे तक खींचा। अपीलार्थी ने कुल्हाड़ी उठायी, जो बरामदा में रखी हुई थी और कुल्हाड़ी के पिछले हिस्से से कान के निकट उसके मस्तक के दाएँ हिस्से पर मृतका पर प्रहार किया जिसके परिणामस्वरुप वह गिर गयी और अचेत हो गयी।

4. अभियोजन ने आठ गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 से 6 तक पक्षद्रोही गवाह हैं। अ॰ सा॰ 7 बारह वर्षीय सूचक है जो अपीलार्थी का भतीजा है। उसने अभियोजन मामले का समर्थन किया।

अन्य बातों के साथ साथ उसने कहा कि अपीलार्थी ने मदिरा सेवन के लिए मृतका से पैसा मांगा था। जब उसने इनकार किया, अपीलार्थी ने 'टांगी' के पिछले हिस्से से उसके मस्तक पर प्रहार किया, जिस कारण उसकी मृत्यु हो गयी और अपीलार्थी भाग गया। प्रति-परीक्षण में उसने कहा कि पहले भी लगभग रोज मृतका और अपीलार्थी के बीच झगड़ा होता था।

5. अ॰ सा॰ 8 डॉक्टर है। उन्होंने मत दिया कि उपहतियाँ कठोर भोथरे हथियार द्वारा कारित की गयी थी। उनके मत में, मृत्यु मस्तक और चेहरे पर उपहति के कारण हुई थी।

6. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान न्यायमित्र, श्रीमती सिन्हा ने निवेदन किया कि अधिकाधिक अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग II के अधीन, और न कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता था।

7. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

8. हम श्रीमती सिन्हा के निवेदन में बल पाते हैं कि मामला भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 300 के अपवाद 4 के अधीन आता है। स्वीकृत रूप से, घटना मृतका (माता) और अपीलार्थी (पुत्र) के बीच झगड़े के दौरान हुई जब उसने मदिरा सेवन/ इंदिरा मेला भ्रमण के लिए अपीलार्थी को धन देने से इनकार कर दिया। कोई पूर्वचिंतन नहीं है। झगड़ा के दौरान अपीलार्थी ने घर के बरामदे में पड़ी 'टांगी' के पिछले हिस्से से मृतका पर प्रहार किया। सूचक (अ॰ सा॰ 7) ने प्राथमिकी में और अपने साक्ष्य में कहा कि अपीलार्थी ने केवल एक वार किया था। विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि अन्य उपहतियाँ गिरने के कारण हो सकती है। प्राथमिकी में कहा गया था कि अपीलार्थी ने मृतका को बरामदे तक घसीटा था। यह सब उपहतियों को स्पष्ट करता है।

9. इसपर गौर किया जा सकता है कि इस मामले में आई॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया है।

10. परिस्थितियों में, दोषसिद्धि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग II के अधीन परिवर्तित की जाती है। जहाँ तक दंडादेश का संबंध है, श्रीमती सिन्हा ने निवेदन किया कि अपीलार्थी अबतक लगभग तीन वर्ष 11 माह तक कारागार में रहा है। इन परिस्थितियों में, अपीलार्थी को चार वर्षों के लिए कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, चार वर्ष पूरा कर लेने के बाद उसे निर्मुक्त कर दिया जाएगा।

11. दोषसिद्धि और दंडादेश में इस परिवर्तन के साथ अपील निपटायी जाती है।

---

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड

cuke

साऊथ इस्टर्न रोडवेज, जमशेदपुर एवं एक अन्य

F.A. No. 143 of 1992(R). Decided on 18th August, 2011.

धन वाद सं॰ 132 वर्ष 1983 में श्री एस॰ एन॰ सिंह, उप-न्यायाधीश-III, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 21 मई, 1992 के निर्णय और डिक्री (डिक्री दिनांक 4 जून, 1992 को हस्ताक्षरित) के विरुद्ध।

(क) परिसीमा अधिनियम, 1963—अनुच्छेद 11 एवं 91—माल विक्रय अधिनियम, 1930—धारा 39—धन वाद का खारिज किया जाना—भुगतान के बावजूद वस्तुओं की आपूर्ति में

विफलता–परिसीमा के आधार सहित अनेक आधारों पर वाद खारिज किया गया–मालों को स्वामित्व के अधीन परिवहित किया गया था और भुगतान करने के बाद बैंक से परेषिती को जी॰ आर॰ रसीद प्राप्त करना था–यह दर्शाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि वादी-अपीलार्थी ने डिलीवरी लेने का प्रयास किया था–अनुच्छेद 11 के अधीन भी वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है–वर्तमान मामले में अनुच्छेद 91(a) अथवा 91(b) आकृष्ट नहीं होता है–अपील खारिज।

(पैराएँ 32, 34, 36, 37, 47, 52 एवं 53)

(ख) संविदा अधिनियम, 1872—धाराएँ 148 एवं 152—उपनिधान–उपनिहिती को उपनिधाता के निर्देशों के अनुसार मालों को निपटाना होगा–चूँकि वादी उपनिधाता नहीं है, परेषित परिमाण को उपनिधान नहीं कहा जा सकता है। **(पैराएँ 42 से 44)**

निर्णयज विधि.–AIR 1960 Mysore 283—Distinguished; AIR 1962 SC 1716; AIR 1965 Patna 373; AIR 1969 Patna 154; AIR 2002 Gauhati 1—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. G.M. Mishra, For the Appellant; None, For the Respondents.

नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति.–यह अपील धन वाद सं॰ 132 वर्ष 1983 में उपन्यायाधीश-III, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 21 मई, 1992 के निर्णय और डिक्री (डिक्री दिनांक 4 जून, 1992 को हस्ताक्षरित) के विरुद्ध है, जिसके द्वारा विद्वान अवर न्यायालय ने वादी के वाद को खारिज कर दिया है।

2. वादी-अपीलार्थी ने वाद दाखिल किए जाने की तिथि से वसूली तक प्रतिवादीगण से संयुक्त रूप से और अलग-अलग 6% वार्षिक ब्याज के साथ 5,72,009.20/- रुपया की वसूली के लिए उक्त वाद दाखिल किया था।

3. संक्षेप में, वादी का मामला यह है कि वादी ने 350/- रुपया प्रति किलोग्राम के सहमत दर पर फेरर मोलिब्डेनम के दस टनों की आपूर्ति के लिए प्रतिवादी सं॰ 2 को दिनांक 29 मार्च, 1979 का खरीद आदेश सं॰ S/968109/M/838 दिया था। वादी और प्रतिवादी सं॰ 2 के बीच सहमति हुई थी कि अप्रिल, 1979 से आरंभ होते हुए दो टन प्रतिमाह की दर पर आपूर्ति की जाएगी। वादी से भुगतान प्राप्त करने पर, प्रतिवादी सं॰ 2 ने दिनांक 31 मई, 1979 से 31 अक्टूबर, 1979 के बीच पाँच किश्तों में पाँच टन सामग्री की आपूर्ति किया था। वादी और प्रतिवादी सं॰ 2 के बीच सहमति हुई थी कि राशि का 98% बैंक के माध्यम से दस्तावेजों के विरुद्ध प्रतिवादी सं॰ 2 को भुगतान योग्य होगा और शेष राशि का भुगतान सामग्री प्राप्त करने के बाद एक माह के भीतर किया जाएगा। बाद में, प्रतिवादी सं॰ 2 ने वादी से कीमत 510/- रुपया प्रति किलोग्राम तक बढ़ाने का अनुरोध किया था और दिनांक 5 नवंबर, 1979 के परिवर्तित आदेश द्वारा उक्त वस्तु की कीमत केवल एक टन के लिए 510/- रुपया प्रति किलोग्राम पुनरीक्षित की गयी थी और शेष चार टनों का आदेश रद्द कर दिया गया था। उक्त परिवर्तित करार के बाद, प्रतिवादी सं॰ 2 ने वादी को सूचित किया कि प्रतिवादी सं॰ 1 के चालान सं॰ 3067 और जी॰ आर॰ सं॰ 696883 के मुताबिक प्रतिवादी सं॰ 1 के माध्यम से एक टन की सामग्री 10 (दस) ड्रमों में भेज दी गयी है। स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, जमशेदपुर से कीमत 5,82,379.20/- रुपया की सूचना पाने पर इसका 98% अर्थात् 5,72,009.20/- रुपया का भुगतान निबंधनानुसार वादी द्वारा चेक से किया गया था।

वादी का आगे मामला यह है कि प्रतिवादी सं॰ 1 के कैरेज के निबंधनों के मुताबिक, इसे कोई नोटिस दिए बिना माल पहुँचने के 48 घंटे बाद लावारिस पड़े नाशवान वस्तु को बेचने का अधिकार है और इसे परेषिती बैंक और हितबद्ध धारक को लिखित में सम्यक नोटिस देने के बाद माल पहुँचने के 30 दिन बाद अन्य मालों को बेचने का अधिकार है। किसी भी स्थिति में बैंक और धारक माल भाड़ा और

डेमरेज प्रभार कम करके आगम पाने के हकदार है। आगे कथन किया गया है कि प्रतिवादी सं॰ 1 ने वादी को किसी विक्रय अथवा निस्तारण की कोई सूचना नहीं भेजा था अथवा नोटिस तामील किया था। सितंबर, 1981 में वादी प्रतिवादी सं॰ 1 के पास गया किंतु वह एक या दूसरे बहाने इसे टालता रहा। तत्पश्चात्, वादी ने प्रतिवादी सं॰ 1 से सामग्रियों की डिलीवरी की मांग करते हुए दिनांक 18 सितंबर, 1981 को पत्र भेजा था। उक्त पत्र की प्राप्ति पर प्रतिवादी सं॰ 1 ने दिनांक 10 अक्टूबर, 1981 के पत्र द्वारा टाल–मटोल करते हुए पत्र भेजा और अपने केंद्रीय कार्यालय, बंगलोर से संपर्क करने को कहा, जहाँ प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा परेषण भेजा गया बताया गया था। तत्पश्चात, वादी ने अपना प्रतिनिधि बंगलोर भेजा किंतु, वहाँ भी प्रतिवादी सं॰ 1 वस्तु देने में विफल रहा। अत: वाद दाखिल किया गया।

4. प्रतिवादीगण ने अपना लिखित कथन दाखिल किया और वाद का प्रतिवाद किया।

5. प्रतिवादी सं॰ 1 साऊथ इस्टर्न रोडवेज ने वाद का प्रतिवाद किया और कथन किया कि वाद पोषणीय नहीं है और वादी के पास वैध वाद हेतुक नहीं है। वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है और यह पक्षों के असंयोजन के कारण दोषपूर्ण है। आगे कथन किया गया है कि प्रतिवादी को अपने कैरियर के माध्यम से उक्त परेषण की बुकिंग के बारे में कोई जानकारी नहीं थी क्योंकि कोई विनिर्दिष्ट तिथि नहीं है जब अभिकथित सामग्री को भेजा गया था। प्रतिवादी को सिंतबर, 1981 में अथवा किसी अन्य तिथि पर किसी विक्रय अथवा डिस्पैच की जानकारी नहीं थी। अभिकथित मालों की डिलीवरी के लिए वादी प्रतिवादी के पास कभी नहीं आया था। मालों की बुकिंग के दो वर्ष बाद वादी के प्रबंधक ने उक्त बुकिंग के बारे में प्रतिवादी सं॰ 1 को पत्र लिखा। प्रतिवादी सं॰ 1 ने उक्त पत्र का उत्तर दिया और कथन किया कि वादी अथवा प्रतिवादी सं॰ 2 ने उससे सामग्री का अनुरोध नहीं किया था अथवा इसे नहीं मांगा था। अत: वादी मुआवजे और उस ब्याज के लिए प्रतिवादी के विरुद्ध किसी डिक्री का हकदार नहीं है और इस प्रकार वाद खारिज किए जाने का दायी है।

6. प्रतिवादी सं॰ 2 ने भी वाद का प्रतिवाद किया। अन्य बातों के साथ साथ कथन किया गया है कि वाद अपने वर्तमान प्रारूप में पोषणीय नहीं है और वादी के पास कोई वाद हेतुक नहीं है। वाद परिसीमा द्वारा और संविदा अधिनियम, विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम और माल विक्रय अधिनियम के प्रावधानों के अधीन वर्जित है। वाद कैरियर्स अधिनियम की धारा 10 के आज्ञापक प्रावधान के अननुपालन के लिए भी दोषपूर्ण है। किंतु प्रतिवादी ने स्वीकार किया कि वादी ने दिनांक 15 नवंबर, 1979 के आदेश द्वारा 510/- रुपया प्रति किलोग्राम की दर पर मालों का खरीद आदेश दिया था और प्रतिवादी सं॰ 2 ने प्रतिवादी सं॰ 1 के माध्यम से दस ड्रमों में अमृतसर से टाटानगर तक उक्त मालों को डिस्पैच किया था। वादी को प्रतिवादी सं॰ 2 को 5,72,009.20/- रुपयों की राशि की कीमत देना था। परेषित मालों का बीजक बैंक के माध्यम से भेजा गया था और वादी ने सम्यक भुगतान के बाद इसे लौटा दिया था। परेषित सामग्री के संबंध में हक वादी के पक्ष में पारित किया गया था और परेषित सामग्री के संबंध में प्रतिवादी सं॰ 2 का दायित्व कीमत के भुगतान पर वादी द्वारा सामग्री को खरीद लिए जाने के साथ ही समाप्त हो गया था। तत्पश्चात्, प्रश्नगत परेषण सहित वर्ष 1979 के दौरान इसके द्वारा खरीदी गयी सामग्री के संबंध में वादी ने प्रतिवादी के पक्ष में फार्म–C जारी किया था। वादी और प्रतिवादी सं॰ 1 के बीच हुए पत्राचार से, यह स्पष्ट है कि परेषण सुरक्षित दशा में टाटानगर पहुँचा था। किंतु वादी की ओर से उपेक्षा के कारण वादी द्वारा परेषित

सामग्री की डिलीवरी प्राप्त नहीं की गयी थी और प्रतिवादी सं॰ 1 ने इसे गुम संपत्ति के रूप में घोषित कर दिया था और इसे अपने बंगलोर स्थित गोदाम में भेज दिया था। वादी की सहायता करने के लिए प्रतिवादी ने हर संभव सहायता दी, किंतु चूँकि उसने लंबे समय तक परेषण नहीं लिया था, इसे गुम संपत्ति के रूप में बंगलोर स्थित प्रतिवादी सं॰ 1 के गोदाम में भेज दिया गया था। अत: वादी प्रतिवादी सं॰ 2 के विरुद्ध किसी अनुतोष का हकदार नहीं है।

7. विद्वान विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित विवाद्यकों को विरचित किया:–

I. D;k okn] tlk fojfpr fd;k x;k g] ik"k.kh; g

II. D;k oknh d ikl okn grd vkj okn dju dk vfèkdkj g

III. D;k okn ifjlhek] lfonk vfèkfu;e] fofufn"V vurk"k vfèkfu;e] eky foØ; vfèkfu;e vkj okgd vfèkfu;e dh èkkjk 10 d çkoèkkuk d vèkhu ofttr g

IV. D;k oknh vfHkdfFkr ij"k.k ifjek.k d xj&fMyhojh d fy, çfroknhx.k d fo#) 5,72,009.20/- #i;k dh èku fMØh d gdnkj g

V. fdl vurk"k vFkok vurk"kk] ;fn gk d oknh gdnkj g

8. विचारण के क्रम में, पक्षों ने अपना–अपना मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दिया।

9. विद्वान विचारण न्यायालय ने तथ्यों, साक्ष्यों और विधि के प्रावधान के संपूर्ण आकलन पर लगभग समस्त विवाद्यकों को वादी के विरुद्ध विनिश्चित किया और वाद खारिज कर दिया।

10. विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया कि वाद हेतुक की तिथि से तीन वर्षों से अधिक के बाद वाद दाखिल किया गया था और यह परिसीमा द्वारा वर्जित है। उन्होंने आगे अभिनिर्धारित किया कि वाद पोषणीय नहीं है और वादी के पास वैध वाद हेतुक नहीं है।

11. अपीलार्थी ने इस आधार पर आक्षेपित निर्णय और डिक्री का विरोध किया है कि विद्वान अवर न्यायालय ने परिसीमा अधिनियम के प्रावधान को गलत रूप से लागू किया है। मामले के तथ्य परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 91 (b) आकृष्ट करते हैं। विद्वान विचारण न्यायालय ने परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 11 को गलत रूप से लागू किया है और गलत रूप से अभिनिर्धारित किया है कि वाद दाखिल करने की परिसीमा उस तिथि से तीन वर्ष थी जब मालों की डिलीवरी किया जाना चाहिए था। प्रतिवाद किया गया है कि वर्तमान वाद सामग्री के नुकसान, विध्वंस अथवा अवनति की वसूली के लिए नहीं है बल्कि वाद प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा परिवर्तन के लिए मुआवजा के लिए होने के कारण यह परिसीमा अधिनियम की धारा 91(b) द्वारा आच्छादित होता है और वाद के तीन वर्षों की अवधि वादी/अपीलार्थी द्वारा डिलीवरी के लिए मांग की तिथि अर्थात् सितंबर, 1981 से गिनी जानी होगी। वाद दिनांक 14 जुलाई, 1983 को दाखिल किया गया था और पूरी तरह परिसीमा की अवधि के अधीन था।

12. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री जी॰ एम॰ मिश्रा ने निवेदन किया कि विद्वान अवर न्यायालय ने गलत दृष्टिकोण अपनाया है और परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों का गलत अर्थ लगाते हुए वादी के वाद को खारिज करने में गंभीर गलती की है। उन्होंने निवेदन किया कि विद्वान अवर न्यायालय ने प्रदर्श–8 के मुख्य भाग को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया है और प्रदर्शों 6, 7, 8 और 9 की प्रासंगिकता का समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि प्रदर्श 8 स्पष्टत: स्थापित करता है कि सामग्रियाँ प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा अपने जमशेदपुर गोदाम पर प्राप्त की गयी थी और इन्हें दिनांक 15 मई, 1981 के प्रतिवादी सं॰ 1 के परेषण परिमाण नोट के अधीन बंगलोर पुन: भेज दिया गया था। दिनांक 20 अप्रिल, 1982 का प्रदर्श 8 सह–पठित प्रदर्श 6 और 7 सिद्ध करते हैं कि

प्रतिवादी सं॰ 1 परेषित सामग्री पर काबिज हुआ और तत्पश्चात्, इसे डिस्पैच किया गया था। विद्वान अवर न्यायालय ने अ॰ सा॰ 4 के साक्ष्य और वाद पत्र में स्वीकृत कथन को समुचित रूप से विचार में नहीं लिया है जो इस निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि प्रत्यर्थी सं॰ 1 ने परेषित संपत्ति को अपने उपयोग के लिए परिवर्तित कर दिया और परिवर्तन के लिए मुआवजा का भुगतान करने का दायी है। वाद अच्छी तरह से पोषणीय है और परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 91 के अधीन परिसीमा की विहित अवधि के अंतर्गत है।

13. विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अवर न्यायालय ने गलत रूप से **AIR 1969 Patna 154, AIR 1965 Patna 373** और **AIR 1962 SC 1716** में प्रकाशित निर्णयों पर विश्वास किया है। उन्होंने निवेदन किया कि **AIR 1960 Mysore 283** में प्रकाशित मैसूर उच्च न्यायालय का निर्णय ही केवल प्रासंगिक निर्णय है और वर्तमान मामला उक्त निर्णय द्वारा पूरी तरह आच्छादित होता है। विद्वान अवर न्यायालय का निर्णय और डिक्री साक्ष्यों और विधि के विहित प्रावधानों के विपरीत है और अपास्त किए जाने का दायी है और वादी का वाद डिक्री किए जाने योग्य है।

14. श्री मिश्रा ने माल विक्रय अधिनियम, 1930 की धारा 39 और संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 148 के प्रावधानों को निर्दिष्ट किया और आग्रह किया कि जब तक खरीददार द्वारा अन्यथा प्राधिकृत नहीं किया जाता है, विक्रेता मालों की प्रकृति और मामले की अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए खरीददार की ओर से वाहक अथवा घाटवाल के साथ ऐसी संविदा करेगा जो युक्तियुक्त हो सकती है। यदि विक्रेता ऐसा करने का लोप करता है, और माल ट्रांजिट के क्रम में अथवा घाटवाल की अभिरक्षा में रहते हुए खो जाता है अथवा नुकसानी होती है, खरीददार वाहक अथवा घाटवाल को की गयी डिलीवरी को स्वयं को की गयी डिलीवरी के रूप में मानने से इनकार कर सकता है अथवा नुकसानी के लिए विक्रेता को जिम्मेदार ठहरा सकता है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि प्रतिवादी सं॰ 1 को की गयी मालों की डिलीवरी उपनिधान की कोटि में आती है और उपनिहिती उपनिहित चीजों की हानि के लिए दायी है। उस दृष्टिकोण में, खरीददार मालों की हानि के लिए मुआवजा का हकदार है। अनुच्छेद 91 खो दी गयी किसी विनिर्दिष्ट चल संपत्ति को गलत रूप से लेने अथवा निरुद्ध करने के लिए अथवा किसी विनिर्दिष्ट चल संपत्ति को गलत रूप से लेने अथवा गलत रूप से निरुद्ध करने के लिए वाद दाखिल करने के लिए तीन वर्षों की अवधि विहित करता है। परिसीमा उस अवधि से आरंभ होती है जब संपत्ति का कब्जा रखने वाले व्यक्ति को पहली बार पता चला है कि यह किसके कब्जे में है।

15. विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्तमान वाद उस तिथि, जब वादी को पता चला कि परेषित परिमाण किसके कब्जे में रखा गया है, से तीन वर्षों के भीतर नुकसानी के लिए दाखिल किया गया है। वरीय भंडारण अधिकारी द्वारा दिनांक 20 अप्रिल, 1982 की रिपोर्ट, प्रदर्श 8, की प्रस्तुति के बाद वादी को इसके बारे में जानकारी हुई। वाद दिनांक 14 जुलाई, 1983 को दाखिल किया गया था जो पूरी तरह से परिसीमा अवधि के भीतर है जैसा परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 91 द्वारा विहित किया गया है। विद्वान अवर न्यायालय उक्त विधिक प्रावधानों को विचार में लेने में विफल रहा और यह अभिनिर्धारित करने में गंभीर गलती किया है कि वाद परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 11 में विहित अवधि की दृष्टि में परिसीमा द्वारा वर्जित है।

16. प्रत्यर्थीगण की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

17. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, मैंने अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और साक्ष्यों का विस्तारपूर्वक परीक्षण किया है और विधि के प्रासंगिक प्रावधानों और अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है।

18. तथ्यों और आधारों से निकाले जाने पर इस अपील में निम्नलिखित बिंदु निर्णय के लिए सामने आते हैं:–

(i) D;k fo}ku fopkj.k U;k;k;y; vfHky[k ij miyC/k rF;k vkj lk{;k dk lefpr :i l vfèkeY;u fd, fcuk xyr :i l fu"d"k ij vk;k g

(ii) D;k fo}ku voj U;k;k;y; u ;g vfHkfuèkkfjr djd fd okn ifjlhek }kjk oftr g vkj okn dk okn [kkfjt djd xyrh dh g

निष्कर्ष

<u>बिंदु सं॰ (i)</u>

19. अपीलार्थी ने आधार लिया है कि विद्वान अवर न्यायालय का निर्णय और डिक्री तथ्यों और साक्ष्यों पर समुचित परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किए जाने के कारण दूषित हो गया है और विद्वान अवर न्यायालय ने प्रदर्शों 7, 8 और 9 की प्रासंगिकता एवं अ॰ सा॰ 4 के साक्ष्य का समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया है।

20. वाद में वादी ने कुल 8 (आठ) गवाहों का परीक्षण किया है। उक्त गवाहों में से अ॰ सा॰ 1, 2, 3, 7 और 8 औपचारिक गवाह है। उन्होंने उन दस्तावेजों को सिद्ध किया है जिन्हें प्रदर्शित किया गया है।

21. अ॰ सा॰ 4 पी॰ जगदेव वादी कंपनी का परचेज एक्जीक्यूटिव है। उसके साक्ष्य के परिशीलन पर, मैं पाता हूँ कि उसने अपने मुख्य परीक्षण में वादी के मामले का समर्थन किया है। किंतु अपने प्रति परीक्षण में उसने कथन किया है कि उसे वह तिथि याद नहीं थी जिस पर वह वस्तुओं की डिलीवरी लेने प्रतिवादी सं॰ 1 के कार्यालय गया था। अ॰ सा॰ 5 और 6 ने भी अपने मुख्य परीक्षण में वादी के मामले का समर्थन किया है। किंतु अपने प्रति परीक्षण में अ॰ सा॰ 5 ने स्पष्टत: कथन किया है कि दिनांक 30 मार्च, 1982 के पहले उसे उक्त परेषित परिमाण के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। अ॰ सा॰ 6 पी॰ एन॰ सिंह ने कथन किया है कि वह खोयी संपत्ति के गोदाम में परेषित परिमाण के बारे में पता करने प्रतिवादी सं॰ 1 के बंगलोर स्थित कार्यालय में गया था किंतु उसने इसे गोदाम में नहीं पाया था। अपने प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया है कि उसे प्रतिवादी सं॰ 1 के खोयी संपत्ति में गोदाम में उक्त परेषित परिमाण को भेजे जाने के संबंध में कोई जानकारी नहीं है।

22. दस्तावेजी साक्ष्यों के तौर पर वादी ने दस दस्तावेजों को प्रदर्शित किया है। मामले के वाद पत्र को प्रदर्श-1 के रूप में प्रदर्शित किया गया है और वाद पत्र पर हस्ताक्षरों को प्रदर्श 1/1 और 1/2 के रूप में चिन्हित किया गया है। प्रदर्श 2 दिनांक 29 मार्च, 1979 का खरीद आदेश है। प्रदर्श 3 दिनांक 4 जून, 1979 का पत्र है। प्रदर्श 4 दिनांक 15 नवंबर, 1979 का परिवर्तित खरीद आदेश है। प्रदर्श 5 लेखा निदेशक, टिस्को को स्टेट बैंक ऑफ इंडिया द्वारा जारी दिनांक 15 फरवरी, 1983 का पत्र है जिसके द्वारा यह संसूचित किया गया था कि चालान सं॰ 3067 के साथ साऊथ इस्टर्न रोडवेज का दिनांक 1 दिसंबर, 1979 का जी॰ आर॰ सं॰ 696883 5,72,009.20/- रुपयों के भुगतान पर वादी को जारी किया गया था और उक्त जी॰ आर॰ द्वारा आच्छादित सामग्री की डिलीवरी लेने के लिए उनको प्राधिकृत किया गया था। प्रदर्श 6 साऊथ इस्टर्न रोडवेज को उनको स्थानीय गोदाम की सामग्री की डिलीवरी की व्यवस्था करने के लिए कहते हुए वादी के मैनेजर (खरीद) द्वारा लिखा गया पत्र है। प्रदर्श 7 यह सूचित करते हुए कि कंपनी की नीति के मुताबिक उन्हें केवल छह माह तक के लिए माल रखना है किंतु मैत्रीपूर्ण संबंध के कारण और व्यावसायिक दृष्टिकोण से इसे एक वर्ष तक रखा गया था, मैनेजर, परचेज, टिस्को को पथ परिवहन निगम द्वारा लिखा गया पत्र है। उक्त पत्र वादी को उनके बंगलोर स्थित केंद्रीय कार्यालय से संपर्क करने का विकल्प देता है। प्रदर्श 8 प्रबंधक (भंडार) का निष्कर्ष है, जिसमें नोट किया गया है कि दिनांक 29 मार्च, 1979 के ऑर्डर के मुताबिक फेरस मोली के दस ड्रमों को दिनांक 1 दिसंबर, 1979 के C नोट सं॰ 696883 के अधीन साऊथ इस्टर्न रोडवेज के माध्यम से मेहरा फेरस एलॉय द्वारा डिस्पैच किया गया

था। जमशेदपुर साऊथ इस्टर्न रोडवेज गोदाम का अभिलेख दर्शाता है कि परेषण परिमाण दिनांक 15 मई, 1981 को पुन: बंगलोर भेज दिया गया था। उसने निष्कर्ष निकाला है कि दिनांक 15 मई, 1981 का री-डिस्पैच सी॰ नोट की प्रति उपाप्त की जाय और परिवाहक के बंगलोर कार्यालय से इसे सत्यापित करवाया जाए कि क्या उन्होंने कभी ऐसा परेषण परिमाण प्राप्त किया था ताकि जमशेदपुर कार्यालय के बयान की सत्यता की परीक्षा की जा सके और आगे की कार्रवाई का फैसला लिया जा सके। प्रदर्श 9 किसी डी॰ डुन्ने, टिस्को का सहायक प्रबंधक का दिनांक 15 से 18 मार्च, 1982 तक का मद्रास-बंगलोर का यात्रा रिपोर्ट है। प्रदर्श 9 श्रृंखला विभिन्न तिथियों के पत्र हैं।

23. प्रतिवादी ने केवल एक गवाह अर्थात् ब॰ सा॰ 1 हरि शंकर पांडे का परीक्षण किया है जो साऊथ इस्टर्न रोडवेज, ए॰ सी॰ रोड, जो उसके अनुसार पथ परिवहन निगम का सिस्टर कन्सर्न है, का कर्मचारी है।

24. विद्वान विचारण न्यायालय ने पक्षों द्वारा दिए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर विस्तारपूर्वक चर्चा किया है। वादी के साक्ष्यों के समग्र अनुचिंतन पर उन्होंने पाया कि तात्विक साक्षी अ॰ सा॰ 4 पी॰ जगदेव ने अपने प्रति परीक्षण में स्पष्ट कथन किया है कि उसने वस्तुओं की डिलीवरी के लिए प्रतिवादी सं॰ 1 के कार्यालय में जी॰ आर॰ रसीद प्रस्तुत किया था किंतु उसे वह तिथि याद नहीं है जिस तिथि पर वह वस्तुओं की डिलीवरी लेने प्रतिवादी सं॰ 1 के कार्यालय गया था। किंतु, वादी ने उस रसीद को प्रस्तुत नहीं किया था जिसके माध्यम से वस्तुओं को परिवाहक-प्रतिवादी के माध्यम से अमृतसर से टाटानगर अभिकथित रूप से भेजा गया था। वादी ने जी॰ आर॰ रसीद की अप्रस्तुति के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है। गवाह वस्तुओं की डिलीवरी लेने के लिए प्रतिवादी सं॰ 1 के कार्यालय में जी॰ आर॰ रसीद की प्रस्तुति के संबंध में तिथि और अन्य विवरणों को देने में विफल रहा। विचारण न्यायालय ने उसका साक्ष्य विश्वसनीय एवं भरोसेमंद नहीं पाया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अ॰ सा॰ 5 और 6 के साक्ष्यों पर भी चर्चा किया है। उन्होंने पाया है कि अ॰ सा॰ 5 परेषित परिमाण के बिंदु पर अनुश्रुत गवाह है। अ॰ सा॰ 6 पी॰ एन॰ सिंह ने दावा किया है कि वह खोयी संपत्ति के गोदाम में परेषित परिमाण का पता लगाने के लिए प्रतिवादी सं॰ 1 के बंगलोर कार्यालय गया था किंतु अपने प्रति परीक्षण में उसने स्वीकार किया है कि उसे जानकारी नहीं है कि क्या उक्त वस्तु को प्रतिवादी सं॰ 1 के खोयी संपत्ति के गोदाम में भेज दिया गया था। उसके साक्ष्य से स्पष्ट नहीं है कि परेषण परिमाण प्रतिवादी सं॰ 1 के खोयी संपत्ति के गोदाम में भेज दिया गया था।

25. विद्वान अवर न्यायालय ने अ॰ सा॰ 7 के साक्ष्य पर चर्चा किया है और पाया है कि उसने यह दर्शाते हुए कि वादी ने स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के चेक के माध्यम से 5,72,009.20/- रुपए का भुगतान किया था और माल रसीद (जी॰ आर॰) प्राप्त किया था, दिनांक 15 फरवरी, 1983 के पत्र (प्रदर्श 5) को सिद्ध मात्र किया है।

26. विद्वान अवर न्यायालय ने दस्तावेजी साक्ष्यों पर विस्तारपूर्वक चर्चा किया है और पाया है कि प्रदर्श 2 दिनांक 29 मार्च, 1979 का खरीद आदेश है। प्रदर्श 3 खरीद आदेश को स्वीकार किए जाने को दर्शाता हुआ प्रतिवादी सं॰ 2 द्वारा जारी किया गया एक पत्र है। प्रदर्श 4 खरीद आदेश के संबंध में प्रतिवादी सं॰ 2 को टिस्को द्वारा जारी किया गया एक पत्र है जिसके द्वारा उसने स्वयं वस्तु का मूल्य 510/- रुपए प्रति किलोग्राम की दर पर स्वीकार किया था।

27. विद्वान विचारण न्यायालय ने संप्रेक्षित किया है कि उक्त पत्रों के बारे में विवाद नहीं है और इन पर आगे चर्चा करने का कोई लाभ नहीं है।

28. उन्होंने प्रबंधक, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया द्वारा वादी को जारी दिनांक 15 फरवरी, 1983 के पत्र (प्रदर्श 5) पर भी विचार किया है। प्रदर्श 6 प्रतिवादी सं॰ 1 साऊथ इस्टर्न रोडवेज को वादी द्वारा जारी दिनांक 18 सितंबर, 1981 का पत्र है। प्रदर्श 7 प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा दिया गया उक्त पत्र का उत्तर है।

29. अवर न्यायालय ने प्रदर्श-8 पर विस्तारपूर्वक चर्चा किया है जो वरीय भंडार अधिकारी पी॰ एन॰ सिंह द्वारा तैयार किया गया रिपोर्ट है, जिन्होंने प्रतिवादी सं॰ 1 के बंगलोर स्थित कार्यालय का निरीक्षण किया था। उक्त रिपोर्ट के अनुसार, वह दिनांक 5 अप्रिल, 1982 को बंगलोर स्थित साऊथ इस्टर्न रोडवेज के खोयी संपत्ति के गोदाम में गया था, किंतु वहाँ उपस्थित स्टाफ ने परेषित परिमाण के संबंध में कोई सूचना नहीं दिया था। निरीक्षण करने पर, उसने गोदाम में फेरो एल्वाय नहीं पाया था। उक्त की दृष्टि में, विद्वान अवर न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जमशेदपुर से बंगलोर तक वस्तुओं को भेजे जाने का दावा वादी द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सका था। उन्होंने प्रदर्श 8/a पर भी चर्चा किया है जो प्रबंधक (खरीद) टिस्को द्वारा जारी एक अन्य पत्र है और वस्तु की डिलीवरी नहीं दिए जाने के संबंध में श्री डी॰ डुन्ने का रिपोर्ट प्रदर्श 9 है। प्रदर्श 10 माल रसीद (जी॰ आर॰) के निबंधन और शर्त है और उन्होंने अभिनिर्धारित किया कि ये वादी का मामला सिद्ध नहीं करते हैं।

30. प्रतिवादीगण और वादी के बीच वाहक करार के निबंधनों और शर्तों के परिशीलन पर स्पष्ट है कि मालों को स्वामित्व के अधीन भेजा गया था और भुगतान करने के बाद बैंक से परेषिती द्वारा जी॰ आर॰ रसीद प्राप्त किया जाना था, जहाँ बैंक परेषिती के रूप में रसीद स्वीकार करने के लिए सहमत हुआ और अपने ग्राहकों को कर्ज देने के लिए और बिलों के संग्रह अथवा डिस्काउंट को पृष्ठांकित किया। उक्त जी॰ आर॰ रसीद की प्रस्तुति पर वाहक को परेषिती को माल डिलीवर करना था। विद्वान अवर न्यायालय ने वर्तमान मामले में पाया कि यह दर्शाने के लिए कोई ऐसा दस्तावेज नहीं है कि दिनांक 1 दिसंबर, 1979 को जब उक्त वस्तुओं को मेहरा फेरो एल्वाय द्वारा वादी को जमशेदपुर में प्रतिवादी सं॰ 1 के माध्यम से भेजा गया था, उन्होंने प्रतिवादी सं॰ 1 के कार्यालय में जी॰ आर॰ रसीद को प्रस्तुत करने के बाद प्रतिवादी सं॰ 1 से इसकी डिलीवरी लेने का कभी कोई प्रयास किया था।

31. विद्वान अवर न्यायालय ने इस तथ्य को भी ध्यान में लिया है कि वादी न्यायालय के समक्ष जी॰ आर॰ रसीद को नहीं लाया है। वादी यह सिद्ध करने में भी विफल रहा कि उसने दिसंबर माह की किस तिथि पर बैंक से जी॰ आर॰ रसीद लिया था और वस्तुओं की डिलीवरी लेने प्रतिवादी सं॰ 1 के कार्यालय गया था।

32. इस प्रकार, यह स्थापित करने के लिए अभिलेख पर कोई भी साक्ष्य नहीं है कि वादी वस्तुओं की डिलीवरी लेने प्रतिवादी सं॰ 1 के कार्यालय कभी गया था। वादी ने अपने वाद पत्र में उस तिथि अथवा माह को भी उल्लिखित नहीं किया है जिस पर वह जी॰ आर॰ रसीद के आधार पर वस्तुओं की डिलीवरी लेने प्रतिवादी सं॰ 1 के कार्यालय गया था। विद्वान अवर न्यायालय ने प्रदर्श 10 को निर्दिष्ट किया है और अभिनिर्धारित किया है कि स्पष्ट रूप से कहा गया था कि परेषिती के माल रसीद की प्रस्तुति पर ही वस्तुओं को डिलीवर किया जाएगा, किंतु वादी जी॰ आर॰ रसीद प्रस्तुत करने में विफल रहा और सिद्ध नहीं कर सका था कि वह वस्तुओं की डिलीवरी लेने प्रतिवादी के कार्यालय कभी भी गया था बल्कि प्रतिवादी सं॰ 1 की ओर से ढिलाई के कारण वस्तुएँ डिलीवरि नहीं की गयी थी।

33. विद्वान अवर न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया है कि वादी ने यह सिद्ध करने के लिए कि प्रतिवादी सं॰ 1 के माध्यम से दिनांक 1 दिसंबर, 1979 को वस्तुएँ बुक की गयी थी, प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा दिया गया कोई पेपर दाखिल नहीं किया है। वादी ने प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा जारी सं॰ 696883 वाला जी॰ आर॰ रसीद अथवा बैंक से जी॰ आर॰ रसीद दर्शाता कोई कागज प्रस्तुत नहीं किया है।

34. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि माल रसीद, जो वाद का आधार है, को वादी की ओर से प्रस्तुत नहीं किया गया है और माल रसीद के अप्रस्तुतीकरण के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है और कि वादी के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला गया है। वादी अपना दावा सिद्ध करने में विफल रहा है।

35. आक्षेपित निर्णय में निर्दिष्ट साक्ष्यों के संवीक्षण पर, मैं इसके अधिमूल्यन में कोई त्रुटि नहीं पाता हूँ। विद्वान अवर न्यायालय ने प्रासंगिक मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर समग्रता में विचार किया है और इसके निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के समुचित अनुचिंतन और अधिमूल्यन पर आधारित होने के कारण हस्तक्षेप के लिए नहीं कहते हैं। मैं अपीलार्थी के आधार में भी कोई सार नहीं पाता हूँ कि विद्वान विचारण न्यायालय साक्ष्यों विशेषत: प्रदर्शों 6, 7 और 8 का समुचित रूप से अधिमूल्यन करने में विफल रहा है। अवर न्यायालय ने उक्त दस्तावेजों पर पूरी तरह से और सही परिप्रेक्ष्य में विचार किया है।

36. अत: बिंदु सं॰ (i) का नकारात्मक उत्तर दिया जाता है और अभिनिर्धारित किया जाता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और सामग्री का समुचित रूप से अधिमूल्यन किया है और उनके निष्कर्ष में कोई त्रुटि नहीं है।

<u>बिंदु सं॰ (ii):</u>

37. आक्षेपित निर्णय का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि विद्वान अवर न्यायालय ने अन्य विवाद्यकों के पहले परिसीमा के विवाद्यक पर विचार किया है, क्योंकि प्रतिवादी ने वाद के परिसीमा द्वारा वर्जित होने पर जोरदार प्रतिवाद किया है। विद्वान अवर न्यायालय तथ्यों और विधि के प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर आया है कि वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है। विद्वान अवर न्यायालय ने पाया है कि प्रश्नगत परेषित परिमाण को दिनांक 1 दिसंबर, 1979 को प्रतिवादी सं॰ 1 के माध्यम से अमृतसर से टाटानगर तक बुक किया गया बताया गया है। वादी ने चेक के माध्यम से 5,72,009.20/- रुपया का भुगतान करने के बाद स्टेट बैंक ऑफ इंडिया से प्रतिवादी सं॰ 1 का माल रसीद (जी॰ आर॰) सं॰ 696883 प्राप्त करने का दावा किया है। वादी पहली बार परेषित परिमाण की डिलीवरी के लिए सितंबर, 1981 में प्रतिवादी सं॰ 1 के पास गया। विद्वान अवर न्यायालय ने संप्रेक्षित किया है कि वह कोई कारण नहीं पाते हैं कि क्यों परेषित परिमाण, जिसे वर्ष 1979 में भेजा गया था, की डिलीवरी लेने के लिए सितंबर, 1981 में प्रतिवादी सं॰ 1 के पास जाया गया था। विद्वान अवर न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि चूँकि माल दिनांक 1 दिसंबर, 1979 को भेजा गया था और डिलीवरी की अपेक्षित तिथि दिसंबर, 1979 थी, अत: परिसीमा की अवधि दिसंबर, 1979 से आरंभ होगी। वादी ने वाद हेतुक, जो दिसंबर, 1979 में उद्भूत हुआ, के लिए दिनांक 14 जुलाई, 1983 को वाद दाखिल किया और इस प्रकार परिसीमा अधिनियम की धारा 11 के प्रावधानों की दृष्टि में वादी का वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है।

38. विद्वान अवर न्यायालय ने **AIR 1969 Patna 154, AIR 1965 Patna 373** एवं **AIR 1962 SC 1716** में प्रकाशित निर्णयों पर चर्चा किया है और इस निष्कर्ष पर आया है कि सामान्यत: संविधि के शब्दों को उनका कठोर व्याकरणीय अर्थ देना होता है और साम्यापूर्ण अनुचिंतन का इसमें कोई स्थान नहीं है, विशेषत: परिसीमा की विधि के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए। विद्वान अवर न्यायालय ने **भारत संघ बनाम ए॰ फैजुलहुक्का पठान (ऊपर)** में मैसूर उच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विचार किया है और पाया है कि उक्त मामले के तथ्य और परिस्थितियां वर्तमान मामले के सदृश नहीं थी।

39. इस प्रकार विद्वान अवर न्यायालय ने निष्कर्षित किया कि तीन वर्षों की परिसीमा अवधि उस तिथि से आरंभ होती है जब माल को डिलीवर किया जाना चाहिए था और चूँकि माल की डिलीवरी की अपेक्षित तिथि दिसंबर, 1979 थी, जुलाई, 1983 में दाखिल वाद परिसीमा की विधि द्वारा वर्जित है।

40. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान विचारण न्यायालय के निष्कर्ष का मुख्यत: इस आधार पर विरोध किया है कि वर्तमान मामले के तथ्यों से परिवाहक की हैसियत 'उपनिहिती' की थी

और विक्रेता द्वारा माल की डिलीवरी 'उपनिधाता' द्वारा की गयी डिलीवरी थी और परेषित परिमाण उपनिधान था और परेषित परिमाण की नुकसानी के लिए वादी को क्षतिपूर्ति देने के लिए प्रतिवादी सं॰ 1 दायी है।

41. संविदा अधिनियम, 1872 का अध्याय IX 'उपनिधान' पर विचार करता है। उक्त अधिनियम की धारा 148 ''उपनिधान'', ''उपनिधाता'' और ''उपनिहिती'' को परिभाषित करता है जो निम्नलिखित है:–

> *^^148. **^^mifuèkku**] ^^mifuèkkrk** vkj ^^mifufgrh**-**& ^^mifuèkku** ,d 0;fDr }kjk nlj 0;fDr dk fdlh i;ktu d fy, bl lfonk ij eky dk ifjnku djuk g fd tc og i;ktu ijk gk tk; rc og ykVk fn;k tk;xk] ;k ml ifjnku dju oky 0;fDr d fun'kk d vulkj vU;Fkk 0;;fur dj fn;k tk;xkA eky dk ifjnku dju okyk 0;fDr ^^mifuèkkrk** dgykrk gA og 0;fDr] ftldk og ifjnÙk fd;k tkrk g ^^mifufgrh** dgykrk gA***

42. ''उपनिधान'' की परिभाषा के कोरे पठन पर यह स्पष्ट है कि ''उपनिधान'' केवल तब स्थापित होता है जब किसी संविदा कि उन्हें, प्रयोजन पूरा कर दिए जाने पर, मालों को डिलीवरी करने वाले व्यक्ति के निर्देश के अनुसार लौटा दिया जाएगा अथवा बेच दिया जाएगा, पर किसी प्रयोजन से एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को मालों की डिलीवरी दी जाती है। मामले के तथ्यों से स्पष्ट है कि यह संविदा अधिनियम के उक्त प्रावधान को आकृष्ट नहीं करता है।

43. तिलेन्द्र नाथ महंथा बनाम यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया, AIR 2002 Gau. 1, में अभिनिर्धारित किया गया है कि उपनिधाता के निर्देश के अनुसार मालों पर विचार करना उपनिहिति का कर्तव्य है।

44. चूँकि वादी उपनिधाता नहीं है, अत: प्रश्नगत परेषित परिमाण को उपनिधान नहीं कहा जा सकता है।

45. आगे, धारा 152 स्पष्टत: प्रावधानित करती है कि किसी विशेष संविदा की अनुपस्थिति में, 'उपनिहिती' उपनिहित चीज के नुकसान, विध्वंस अथवा क्षय के लिए जिम्मेदार नहीं है यदि उसने धारा 151 में वर्णित सावधानी बरता है।

46. वर्तमान मामले में तथ्य बिलकुल भिन्न होने के कारण इस मामले में परेषित परिमाण को उपनिधान नहीं कहा जा सकता है।

47. अत:, मैं विद्वान अधिवक्ता के निवेदन में कोई सार नहीं पाता हूँ कि परेषित परिमाण उपनिधान था और नुकसानी के लिए वाद परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 91(a) अथवा 91(b) के अधीन समय के भीतर समुचित रूप से दाखिल किया गया था। उक्त चर्चा की दृष्टि में, अभिनिर्धारित किया जाता है वर्तमान मामले में परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 91(a) अथवा 91 (b) आकृष्ट नहीं होता है।

48. तब अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता, श्री मिश्रा ने माल विक्रय अधिनियम की धारा 39 के प्रावधानों के संदर्भ में अपना बिंदु स्थापित करने का प्रयास किया।

49. माल विक्रय अधिनियम, 1930 की धारा 39 को नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> *^^39. **okgd ;k ?kkVoky dk ifjnku-**&(1) tgk fd foØ; dh lfonk d vulj.k e foØrk dk ;g ikfèkdkj g ;k mll ;g vif{kr g fd og Ørk dk eky Hkt] ogk ml eky dk] Ørk d ikl ikj"k.k dju d i;ktu l okgd dk ifjnku] pkg okgd Ørk }kjk ukfer gk ;k u gk] vFkok ?kkVoky dk ljf{kr vfHkj{kk d fy, ifjnku iFke n"V;k ml eky dk Ørk dk ifjnku le>k tkrk gA*

(2) tc rd fd Ørk }kjk foØrk vU;Fkk ikfèkÑr u gk] og Ørk dh vkj l okgd l ;k ?kkVoky l , lh lfonk djxk tk eky dh iÑfr vkj ekey dh vU; ifjfLFkfr;k dk è;ku e j[kr g, ;fDr;Dr gkA ;fn foØrk , lk dju dk yki djrk g vkj eky vfHkogu d vuØe e] vFkok ml le; tc og ?kkVoky dh vfHkj{kk e g] [kk tkrk g ;k udlkuxLr gk tkrk g] rk Ørk okgd ;k ?kkVoky dk fd;k x;k ifjnku viu dk fd;k x;k ifjnku ekuu l bUdkj dj ldxk ;k foØrk dk udlkuh d fy, mÙkjnk;h Bgjk ldxkA

*(3) tc rd vU;Fkk djkj u gk] tgk fd foØrk }kjk Ørk dk , l ekx l] ftle len&vfHkogu vUrofyr g] , lh ifjfLFkfr;k e eky Hktk tkrk g] ftue ik;% chek djk;k tkrk g] ogk Ørk dk foØrk , lh lpuk nxk ftl l Ørk ml d len&vfHkogu d nkjku d fy, ml dk chek djku dk leFk gk ld vkj ;fn foØrk , lk dju e vlQy jgrk g rk eky , l len&vfHkogu d nkjku e ml dh tkf[ke ij le>k tk;xkA***

50. स्वीकृत रूप से प्रतिवादी सं॰ 1 मालों का विक्रेता नहीं है। प्रावधान खरीददार और विक्रेता के बीच संविदा पर विचार करता है। यदि यह कहा भी जाता है कि ट्रांजिट के क्रम में मालों को खो दिया गया था अथवा इनका नुकसान हो गया था, खरीददार डिलीवरी लेने से इनकार कर सकता है और वह नुकसानी के लिए विक्रेता को जिम्मेदार ठहरा सकता है। उक्त धारा के प्रावधान भी वर्तमान मामले के तथ्यों के प्रति आकृष्ट नहीं होते हैं।

51. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **भारत संघ बनाम ए॰ फैजुलहुक्का पठान (ऊपर)** में मैसूर उच्च न्यायालय के निर्णय पर भारी विश्वास किया है। मैं पाता हूँ कि उक्त निर्णय बिलकुल भिन्न ताथ्यिक स्थिति पर दिया गया था और वर्तमान मामले के तथ्यों पर इसकी कोई प्रयोज्यता नहीं है।

52. उक्त निष्कर्षों की दृष्टि में, मैं विद्वान विचारण न्यायालय के साथ सहमत हूँ कि वादी का मामला परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 11 की परिधि में आता है और वर्तमान मामले में परिसीमा की अवधि विनिश्चित करने के लिए परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 91 की कोई प्रासंगिकता नहीं है।

53. अत:, मैं आक्षेपित निर्णय में दर्ज निष्कर्ष के साथ सहमत हूँ और अभिनिर्धारित करता हूँ कि विद्वान विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में कोई गलती नहीं किया है कि वाद परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 11 के प्रावधानों की दृष्टि में परिसीमा द्वारा वर्जित है। तद्नुसार बिंदु सं॰ (ii) विनिश्चित किया जाता है।

54. उक्त चर्चा और निष्कर्ष की दृष्टि में, मैं इस अपील में गुणागुण नहीं पाता हूँ और इसे खारिज किया जाता है।

55. किंतु, व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

---

ekuuh; ç'kkr dekj] U;k;efr

राजीव गुप्ता

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 140 of 2007. Decided on 2nd September, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420, 406 एवं 120B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल एवं षडयंत्र–संज्ञान–पक्षों के बीच वाणिज्यिक संव्यवहार-अग्रिम के रूप में

विशाल राशि प्राप्त करने के बाद साबुन की आपूर्ति करने का झूठा वादा याची द्वारा किया गया–यदि तथ्य सिविल दायित्व प्रकट भी करते हैं, उस कारण से दांडिक कार्यवाही अभिखंडित नहीं की जा सकती है–दोनों कार्यवाहियाँ साथ चल सकती हैं–आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता नहीं है। (पैराएँ 7 से 13)

निर्णयज विधि.–(1999)3 SCC 259—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. R.A. Sharma, For the Petitioner; None, For the Opp. Parties.

आदेश

यह आवेदन टी॰ आर॰ सं॰ 612 वर्ष 2006 में न्यायिक दंडाधिकारी, गिरिडीह द्वारा पारित दिनांक 11.2.2004 के आदेश जिसके द्वारा उन्होंने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 406, 420 और 120B के अधीन अपराध का संज्ञान लिया था, के अभिखंडन के लिए और दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 93 वर्ष 2006 में अपर सत्र न्यायाधीश–एफ॰ टी॰ सी॰–IV, गिरिडीह द्वारा पारित दिनांक 30.11.2006 के आदेश, जिसके द्वारा विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा पारित दिनांक 11.2.2004 के पूर्वोक्त आदेश को संपुष्ट किया गया था, के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है।

2. प्रतीत होता है कि विद्वान सी॰ जे॰ एम॰, गिरिडीह के न्यायालय में परिवाद याचिका दाखिल की गयी थी जिसमें कथन किया गया था कि याची कप्तान हाइजिन प्रोड्क्टस लिमिटेड का स्वत्वधारी और प्रबंधक है और परिवादी उक्त कंपनी का गिरिडीह में स्टॉकिस्ट था। आगे कथन किया गया है कि याची की कंपनी कपड़ा धोने का साबुन बनाती थी। अभिकथित किया गया है कि पूर्वोक्त कंपनी को परिवादी को 1,85,000/- रुपया बकाया देना है तब अभिकथित किया गया है कि अभियुक्त/याची ने परिवादी के साथ छल करने की दृष्टि से टेलीफोन किया और उसे माल के एक ट्रक के लिए अग्रिम धन के साथ उनके दिल्ली कार्यालय आने के लिए कहा। आगे कथन किया गया है कि उक्त वार्तालाप के दौरान अभियुक्त ने परिवादी के लंबित दावों को समाप्त करने का वादा किया। आगे कथन किया गया है कि परिवादी ने पूर्वोक्त दूरभाष वार्तालाप पर विश्वास किया और यूको बैंक, गिरिडीह से 1,80,000/- रुपयों का पाँच डिमांड ड्राफ्ट तैयार करवाया। तत्पश्चात, दिनांक 30.5.2002 को वह गवाह पवन कुमार पिलानिया के साथ अभियुक्तगण के दिल्ली कार्यालय गया। आगे कथन किया गया है कि अभियुक्तगणों ने परिवादी के दावा को अंशत: (83,750/- रुपयों की सीमा तक) सुलझाया और वादा किया कि शेष दावा बाद में सुलझा दिया जाएगा। आगे अभिकथन किया गया है कि स्वयं उसी दिन याची ने परिवादी को धन जमा करने के लिए कहा ताकि मालों का एक ट्रक परिवादी को भेजा जा सके। अभियुक्त/याची के वादा पर विश्वास करते हुए परिवादी ने पाँच बैंक ड्राफ्टों के माध्यम से 1,80,000/- रुपया सौंप दिया और उनका रसीद लिया। तब अभिकथित किया गया है कि परिवादी गिरिडीह लौट गया, किंतु परेषित परिमाण कभी नहीं पहुँचा। बाद में परिवादी को पता चला कि याची ने दिनांक 30.5.2002 के पहले ही अपना कारखाना बंद कर दिया था और इस तथ्य को परिवादी से छुपाया गया था। इस प्रकार, अभियुक्त/याची का आशय आरंभ से ही परिवादी को प्रबंचित करना था और ऐसा करके उन्होंने परिवादी के साथ छल किया और उससे 1,80,000/- रुपया ले लिया। तद्नुसार, अभिकथित किया गया है कि अभियुक्त/याची के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 420, 406 सह–पठित धारा 120B के अधीन अपराध बनाया गया है।

3. यह प्रतीत होता है कि परिवादी ने स्वयं का सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर परीक्षण कराया और अपने मामले के समर्थन में गवाहों का परीक्षण कराया। विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी सामग्रियों पर विचार करने के बाद प्रथम दृष्टया इस निष्कर्ष पर आए कि भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 420, 406 सह–पठित धारा 120B के अधीन अपराध बनता है और तद्नुसार दिनांक 11.2.2004 के आदेश के तहत अपराधों का संज्ञान लिया और अभियुक्त/याची के विरुद्ध आदेशिका जारी किया।

4. आगे यह प्रतीत होता है कि याची ने दांडिक पुनरीक्षण आवेदन अर्थात् दां० पु० सं० 93 वर्ष 2006 दाखिल करके दिनांक 11.2.2004 के पूर्वोक्त आदेश को चुनौती दी। उक्त दांडिक पुनरीक्षण में, अभियुक्त/याची ने न्यायिक दंडाधिकारी के दिनांक 11.2.2004 के आदेश का मुख्यत: इस आधार पर विरोध किया कि यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है कि याची ने परिवादी को 1,80,000/- रुपयों का भुगतान करने के लिए प्रेरित किया, अत: भा० दं० सं० की धाराओं 406 और 420 के अधीन अपराध नहीं बनता है। पुनरीक्षण न्यायालय में निवेदन किया गया है कि परिवाद याचिका में किए गए अभिकथनों से प्रतीत होता है कि पक्षों के बीच विवाद सिविल प्रकृति का है और इसलिए दांडिक कार्यवाही का आरंभ किया जाना अवैध और अन्यायोचित है। प्रतीत होता है कि विद्वान अपर जिला न्यायाधीश, एफ० टी० सी०–IV, गिरिडीह अभिलेख पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री पर विचार करने के बाद प्रथम दृष्टया इस निष्कर्ष पर आए थे कि याची के विरुद्ध भा० दं० सं० की धाराएँ 406, 420 सह–पठित धारा 120B के अधीन अपराध बनता है। तद्नुसार, उन्होंने पुनरीक्षण आवेदन खारिज कर दिया। पूर्वोक्त दोनों आदेशों के विरुद्ध वर्तमान आवेदन दाखिल किया गया है।

5. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री राम अवतार शर्मा द्वारा निवेदन किया गया है कि परिवाद याचिका में किए गए परिवादों को यदि ज्यों का त्यों सत्य मान लिया जाए, तो भी वे भा० दं० सं० की धाराओं 406, 420 के अधीन अपराध गठित नहीं करते हैं। निवेदन किया गया है कि ऐसा कोई अभिकथन नहीं है कि याची ने कपटपूर्वक और गैरईमानदारी से परिवादी को 1,80,000/- रुपयों का भुगतान करने के लिए प्रेरित किया। निवेदन किया गया है कि यह दर्शाने के लिए प्रकथन नहीं है कि अभ्यावेदन देने के समय याची का आशय बेईमानी भरा था। निवेदन किया गया है कि वस्तुत: परिवादी के विरुद्ध विपुल राशि बकाया थी और उसने पाँच डिमांड ड्राफ्टों द्वारा आंशिक भुगतान के रूप में 1,80,000/- रुपया जमा किया था और परिवादी के विरुद्ध 75,435/- रुपयों की राशि अभी भी बकाया है। निवेदन किया गया है कि पूर्वोक्त राशि को हड़पने की दृष्टि से द्वेषपूर्वक वर्तमान परिवाद दाखिल किया गया है। निवेदन किया गया है कि परिवाद याचिका में किए गए अभिकथन दर्शाते हैं कि पक्षों के बीच विवाद सिविल प्रकृति का है, अत: इसका समाधान सिविल न्यायालय द्वारा किया जा सकता है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि दांडिक कार्यवाही का आरंभ किया जाना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है, अत: इसे संपोषित नहीं किया जा सकता है।

6. निवेदनों को सुनने पर, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। परिवाद याचिका में अभिकथित किया गया है कि अभियुक्त सं० 2 द्वारा टेलीफोन पर बातचीत किए जाने पर परिवादी याची के दिल्ली कार्यालय गया। आगे प्रतीत होता है कि परिवादी ने पूर्वोक्त दूरभाष आश्वासन पर याची की कंपनी के नाम में 1,80,000/- रुपयों का पाँच ड्राफ्ट तैयार करवाया। आगे अभिकथित किया गया है कि याची और उसके सहभागी के आश्वासन पर परिवादी ने पूर्वोक्त पाँच बैंक ड्राफ्टों (कुल 1,80,000/- रुपयों का) को याची को सौंप दिया, जिसने इसकी अभिस्वीकृति में रसीद जारी किया। परिवाद याचिका में अभिकथित किया गया है कि उक्त धन गिरिडीह में परिवादी के पक्ष में कपड़ा धोने के साबुन के एक ट्रक की आपूर्ति के लिए याची और सह–अभियुक्त को दिया गया था। तब अभिकथित किया गया है कि याची और सह–अभियुक्त ने पूर्वोक्त कपड़ा धोने के साबुन की आपूर्ति नहीं की। आगे अभिकथित किया गया है कि बाद में परिवादी को पता चला कि याची का साबुन कारखाना दिनांक 30.5.2002 के पहले से ही बंद था जिस तिथि पर साबुन की आपूर्ति के लिए याची द्वारा आश्वासन दिया गया था।

7. इस प्रकार, परिवाद याचिका में अभिकथन है कि परिवादी ने इस आश्वासन पर कि याची कपड़ा धोने के साबुन के एक ट्रक की आपूर्ति करेगा, पाँच बैंक ड्राफ्टों के माध्यम से याची को 1,80,000/- रुपया सौंप दिया। अभिकथित किया गया है कि याची का कारखाना दिनांक 30.5.2002 के पहले से बंद था,

जो दर्शाता है कि पूर्वोक्त आश्वासन देने में याची का आशय गैरईमानदार था क्योंकि यदि कारखाना आश्वासन की तिथि के पहले से बंद था, तब साबुन की आपूर्ति संभव नहीं है और यह तथ्य याची को मालूम था। इस प्रकार, उसके द्वारा किया गया वादा गैर ईमानदार था। अत: विद्वान अवर न्यायालय सही प्रकार से इस निष्कर्ष पर आया कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन प्रथम दृष्टया अपराध बनता है।

8. अभिकथित किया गया है कि याची ने साबुन की आपूर्ति के लिए पाँच बैंक ड्राफ्टों के माध्यम से 1,80,000/- रुपया लिया, किंतु आपूर्ति नहीं किया और उक्त धन का इस्तेमाल स्वयं अपने प्रयोजन के लिए किया। अत: भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 406 के अधीन भी अपराध बनता है। यह प्रतीत होता है कि याची ने सह-अभियुक्त के साथ छल का षडयंत्र किया। तद्नुसार, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B के अधीन अपराध बनता है।

9. श्री शर्मा का यह प्रतिवाद कि पक्षों के बीच विवाद सिविल प्रकृति का है, अत: दांडिक कार्यवाही आरंभ नहीं की जा सकती है, भ्रामक प्रतीत होता है।

10. राजेश बजाज एवं अन्य बनाम दिल्ली राज्य का एन॰ सी॰ टी॰ एवं अन्य, (1999)3 SCC 259, में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि ''यह हो सकता है कि वर्तमान परिवाद में कथित तथ्य वाणिज्यिक अथवा धनीय संव्यवहार दर्शाएँगे। किंतु यह अभिनिर्धारित करने के लिए शायद ही कारण है कि ऐसे संव्यवहार से छल का अपराध बच निकलेगा। वस्तुत: वाणिज्यिक और धनीय संव्यवहारों के क्रम में अनेक छल किए गए थे।''

11. पूर्वोक्त निर्णयों की दृष्टि में, भले ही परिवाद याचिका में कथित तथ्य सिविल दायित्व भी प्रकट करते हों, उक्त कारणों से दांडिक कार्यवाही अभिखंडित नहीं की जा सकती है। दोनों कार्यवाहियाँ विभिन्न न्यायालयों में साथ-साथ चल सकती है, क्योंकि सिविल और दांडिक कार्यवाही में अपेक्षित प्रमाण की प्रकृति, विस्तार और स्तर भिन्न-भिन्न होती है।

12. उक्त की गयी चर्चा की दृष्टि में, मैं आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता एवं/या अनियमितता नहीं पाता हूँ, जिसमें इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

13. अत:, मैं इस आवेदन में गुणागुण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] dk;dkjh e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efrx.k

राम प्रवेश शर्मा

cuke

श्रीमती बिंदु देवी

F.A. No. 914 of 2006. Decided on 5th September, 2011.

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955—धारा 13—अधित्यजन और क्रूरता के आधार पर अपीलार्थी-पति द्वारा दाखिल तलाक याचिका की खारिजी–पक्षगण वर्ष 2001 से अलग-अलग रह रहे हैं और अपीलार्थी तथा उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध दांडिक मामला आरंभ किया गया–दूसरे विवाह का अभिकथन है–यह विवाह-विच्छेद का मामला है–अधित्यजन के आधार पर तलाक का मामला निर्मित हुआ–प्रत्यर्थी को किश्तों में भुगतान योग्य 2,50,000/- रुपयों के स्थायी निर्वाह भत्ता के साथ तलाक दिया गया–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 6 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. J. Ramhan, For the Appellant; M/s A.K. Pathak, For the Respondent.

आदेश

यह अपील वैवाहिक केस सं॰ 8 वर्ष 2004 में चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश, पलामू, डालटेनगंज के न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन पति–अपीलार्थी द्वारा दाखिल तलाक याचिका और विकल्प में न्यायिक पृथक्करण के लिए दाखिल याचिका खारिज कर दी गयी है। अपीलार्थी ने अधित्यजन और क्रूरता के आधार पर तलाक का डिक्री इप्सित किया।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अपीलार्थी का विवाह प्रत्यर्थी के साथ दिनांक 9 जुलाई, 2000 को संपन्न किया गया था और अपीलार्थी विवाह के समय बेरोजगार था और दिनांक 9 जुलाई, 2000 को विवाहोपरांत प्रत्यर्थी अपीलार्थी के घर दिनांक 10 जुलाई, 2000 को आयी और वहाँ 20 अगस्त, 2000 तक रही और तब अपने भाई कमलकांत शर्मा द्वारा अपने माएके वापस ले जायी गयी थी जहाँ वह अपनी विदाई तक दिनांक 22 नवंबर, 2000 तक रही। तत्पश्चात्, दिनांक 14 फरवरी, 2001 को उसके पिता द्वारा उसे वापस ले जाया गया था और वह अपने माता–पिता के साथ तीन माह रही और दिनांक 7 मई, 2001 को अपीलार्थी के घर वापस आयी और अंततः, दिनांक 22 मई, 2001 से प्रत्यर्थी अपीलार्थी के साथ नहीं रह रही है।

3. प्रत्यर्थी के विरुद्ध अभित्यजन और क्रूरता का अभिकथन किया गया है। प्रत्यर्थी ने लिखित कथन दाखिल किया और अभिकथनों का खंडन किया और उसने निवेदन किया कि वह निष्ठावान पत्नी है और अनुशासन, शालीनता और मर्यादा के सभी सन्नियमों का पालन करती है, किंतु, उसके ससुराल वालों द्वारा मारा–पीटा जाता था और गाली–गलौज किया जाता था और धन एवं कीमती वस्तुओं को मांगा जाता था। प्रत्यर्थी ने अभिकथित किया कि उसे जबरन अलग रहने के लिए मजबूर किया गया था। विचारण न्यायालय ने विवाद्यकों को विरचित किया और गवाहों का परीक्षण किया और पक्षों द्वारा प्रस्तुत गवाहों के बयानों पर विचार करने के बाद विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी के अभिकथनों को खारिज कर दिया और, दिनांक 3 जून, 2006 के आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा तलाक याचिका को खारिज कर दिया।

4. इस अपील के दौरान, सुलह का प्रयास किया गया था जो विफल रहा और दिनांक 15 मार्च, 2011 को प्रत्यर्थी–पत्नी ने यह अभिकथन करते हुए शपथपत्र दाखिल किया कि अपीलार्थी ने पहले ही किसी अन्य महिला के साथ विवाह कर लिया है जिसका नाम पूरे विवरण और पहचान के साथ दिया गया था। प्रत्यर्थी ने यह कथन भी किया कि उसने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम के प्रावधान के अधीन मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, पलामू के न्यायालय के समक्ष दांडिक परिवाद मामला सं॰ C-654/2009 दाखिल किया है। उसने यह कथन भी किया कि एक अन्य मामले में प्रत्यर्थी को 500/- रुपया प्रतिमाह का निर्वाह भत्ता अधिनिर्णीत किया गया है और इस न्यायालय के समक्ष डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1991 वर्ष 2005 में भरण–पोषण के आदेश को चुनौती दी गयी थी जिसे दिनांक 3 मई, 2005 को इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था। प्रत्यर्थी ने निवेदन किया कि अपीलार्थी द्वारा दूसरा विवाह किए जाने की दृष्टि में, प्रत्यर्थी भी अब विवाह–विच्छेद चाहती है और मामला सुलझाना चाहती है। उसने 10,00,000/- रुपयों के स्थायी निर्वाह भत्ता का दावा किया।

5. हमने भी सुलह अधिकारी द्वारा दाखिल रिपोर्ट का परिशीलन किया है।

6. अपीलार्थी ने दिनांक 25.8.2011 को दाखिल एक अन्य शपथपत्र में उसमें कथन करते हुए निवेदन किया है कि वह पैरा शिक्षक के पद पर कार्यरत है और प्रतिदिन 150/- रुपया पाता है जो अधिकतम 4500/- रुपया प्रतिमाह बनता है। उसके पास आय का अन्य स्रोत नहीं है और प्रत्यर्थी को भरण–पोषण राशि के भुगतान की समस्त संभावनाओं की छान–बीन करने के बाद, उसने पाया कि वह अक्टूबर, 2011 के प्रथम सप्ताह से आरंभ करते हुए 50,000/- रुपयों की पाँच बराबर किश्तों में 2,50,000/- रुपए का भुगतान कर सकता है।

7. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अपीलार्थी ने यह उपदर्शित करते हुए पहले ही शपथपत्र दाखिल किया है कि उसके अभिकथनों की दृष्टि में सुलह की कोई संभावना नहीं है। किंतु अपीलार्थी दूसरे विवाह के अभिकथन का खंडन कर रहा है।

8. चाहे जो भी हो, तथ्य स्पष्टत: प्रकट करते हैं कि पक्षों का विवाह वर्ष 2000 में, और वह भी जुलाई के महीने में हुआ था और वे मई, 2001 से स्वीकृत रूप से अलग-अलग रह रहे हैं। अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध क्रूरता का अभिकथन किया है जबकि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा क्रूरता का अभिकथन तलाक याचिका के उत्तर में किया है। दांडिक मामला भी पहले ही आरंभ किया जा चुका है और दूसरे विवाह का भी अभिकथन है जिसके बाद स्वयं प्रत्यर्थी ने शपथ पर कथन किया कि यह विवाह संबंध के पूर्ण विच्छेद का मामला है।

9. हमारा सुविचारित मत है कि इस समय तक यह विवाह के पूर्ण विच्छेद का मामला बन गया है। हम इस बात से अवगत हैं कि विवाह का असाध्य विच्छेद तलाक का आधार नहीं है क्योंकि तलाक की डिक्री प्रदान किए जाने के लिए ऐसा आधार हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन प्रावधानित नहीं किया गया है किंतु जब एक-दूसरे के विरुद्ध क्रूरता का अभिकथन है और पत्नी द्वारा दांडिक मामला दर्ज किया गया है और स्वीकृत रूप से पक्षगण विगत दस वर्षों से अलग रह रहे हैं, तब अभित्यजन के आधार पर तलाक का मामला बनता है जिसके आधार पर तलाक का डिक्री पारित किया जा सकता है और, इसलिए, हमारा सुविचारित मत है कि यह सुयोग्य मामला है जहाँ तलाक का डिक्री पारित किए जाने की आवश्यकता है जो दोनों पक्षों के अलग रहने की इच्छा को देखते हुए उनके पक्ष में होगा।

10. अत: जहाँ तक स्थायी निर्वाह भत्ता के अधिनिर्णय का संबंध है, प्रत्यर्थी को 500/- रुपया प्रतिमाह अधिनिर्णीत किया गया था किंतु यह तुच्छ राशि है और साथ ही अपीलार्थी भी केवल पैरा-शिक्षक है और उसके अनुसार वह प्रतिदिन 150/- रुपया वेतन पाता है जो 4500/- रुपया प्रतिमाह होता है और उसका अपना दायित्व भी है और प्रत्यर्थी अभिलेख पर कोई अन्य सामग्री प्रस्तुत नहीं कर सकी थी जो उपदर्शित कर सके कि अपीलार्थी के पास आय का अन्य स्रोत और संपत्ति है।

11. पक्षों की कुल हैसियत को देखते हुए हमारा सुविचारित मत है कि 2,50,000/- रुपयों की एकमुश्त राशि समुचित राशि होगी जो प्रत्यर्थी को एक बार में ही एक मुश्त दी जाने वाली राशि के रूप में पर्याप्त होगी। अत:, भरण-पोषण की डिक्री पारित करते हुए हम आदेश देते हैं कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी के जीवन निर्वाह के लिए 2,50,000/- रुपयों का भुगतान करेगा। किंतु अपीलार्थी की वित्तीय स्थिति को देखते हुए अपीलार्थी को 1 अक्टूबर, 2011 तक 2,50,000/- रुपयों के भरण-पोषण की राशि के विरुद्ध पहली किश्त के रूप में 75,000/- रुपयों का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है और शेष राशि चार बराबर मासिक किश्तों में 1 अक्टूबर, 2011 के बाद भुगतान योग्य होगा।

12. उक्त कारणों की दृष्टि में अपील अनुज्ञात की जाती है। दिनांक 3 जून, 2006 का आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी की तलाक याचिका अनुज्ञात की जाती है और आज के दिन से अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का विवाह एतद् द्वारा विघटित किया जाता है और अपीलार्थी भरण-पोषण राशि का भुगतान करेगा जैसा ऊपर अधिनिर्णीत किया गया है।

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy] U;k;efr

कोंडा प्रभाकर राव

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 2685 of 2011. Decided on 26th July, 2011.

सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860—धारा 23—बिहार सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण नियमावली, 1965—नियम 12 एवं 13—झारखंड बैडमिंटन एसोसियेशन के रजिस्ट्रेशन का रद्दकरण–रजिस्ट्रेशन के रद्दकरण के पहले सोसाइटी को कारण बताने का युक्तियुक्त अवसर दिया जाना चाहिए–याची को दिया गया नोटिस इतना अस्पष्ट और अयथार्थ था कि याची स्वयं का बचाव प्रभावकारी रूप से नहीं कर सका था–याची अपने विरुद्ध अभिकथन उपधारित नहीं कर सकता है–आक्षेपित आदेश नोटिस के विस्तार के परे गया और तद्नुसार अभिखंडित किया गया। (पैरा 6 एवं 7)

निर्णयज विधि.–(1973)3 SCC 149; AIR 1991 SC 271; (1980)3 SCC 1; (2001) 1 SCC 291;—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Rajiv Ranjan, S.K. Verma, For the Petitioner; J.C. to S.C.-I, For the State; Mr. Indrajit Sinha, For the Respondent Nos. 9 & 10.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता प्रत्यर्थी सं॰ 4, 6 और 8 का नाम विलोपित करने के लिए अनुमति इप्सित करते हैं।

2. प्रार्थनानुसार अनुमति प्रदान की जाती है।

3. दैनिक क्रम में लाल स्याही से रिट याचिका में संशोधन किया जाना चाहिए।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अधीन पंजीकृत झारखंड बैडमिंटन एसोसियेशन का सचिव है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा दिनांक 13 जनवरी, 2011 का एक पूर्ण अस्पष्ट नोटिस जारी किया गया था जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट–2 पर है। कारण बताओ नोटिस में इसको लेकर कुछ भी कथन नहीं किया गया है कि अनियमितता क्या थी। यह भवन निर्माण के बारे में हो सकती है अथवा झारखंड बैडमिंटन एसोसिएशन की सदस्यता के बारे में हो सकती है अथवा वित्तीय अनियमितता के बारे में अथवा ऐसे अन्य मामले के लिए हो सकती है। कारण बताओ नोटिस में इसको लेकर कुछ भी उल्लेखनीय कथित नहीं किया गया है। उन्होंने याची से किस उत्तर की उम्मीद की है, याची को यह बिल्कुल ज्ञात नहीं है। कारण बताओ नोटिस विवेक का बिल्कुल इस्तेमाल नहीं किया जाना परिलक्षित करता है और, इसलिए, याची दिनांक 2 फरवरी, 2011 को प्रत्यर्थीगण के पास गया था और इंगित किया था कि यदि प्रत्यर्थीगण ने कोई परिवाद प्राप्त किया था, इसकी प्रति याची को दी जानी चाहिए अथवा कारण बताओ नोटिस के लिए कारणों को दिया जा सकता है। इसी प्रकार से, यदि प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण द्वारा याची के विरुद्ध अभिकथन किए जाते हैं, ऐसे अभिकथनों से संबंधित आरोपों को एक–एक करके याची को लिखित में दिया जाना चाहिए था। चूँकि कारण बताओ नोटिस में कुछ भी कथित नहीं किया गया था, उक्त अस्पष्ट कारण बताओ नोटिस का उत्तर देने का प्रश्न ही नहीं था और अचानक दिनांक 2 फरवरी, 2011 के बाद किसी समुचित कारण बताओ नोटिस के बिना और सुनवाई के बिना दिनांक 15 जून, 2011 का आदेश

पारित किया गया है जिसमें याची के विरुद्ध अनेक अभिकथन किए गए हैं जो गुणागुण रहित हैं। आक्षेपित आदेश प्रति शपथपत्र के परिशिष्ट A पर है। जब याची ने प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन दिया, प्रत्यर्थीगण जानबूझकर इसकी प्रमाणित प्रति नहीं दे रहे हैं और, इसलिए, याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि आक्षेपित आदेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है और यदि प्रत्यर्थीगण कोई कार्रवाई करना चाहते भी हैं, वे विस्तारपूर्वक एक नया कारण बताओ नोटिस जारी कर सकते हैं ताकि याची के विरुद्ध किए गए अभिकथनों का विस्तारपूर्वक उत्तर दिया जा सके। स्वीकार किए बिना यह उपधारित करते हुए कि नोटिस विस्तारपूर्वक दिया गया था, तब भी याची के विरुद्ध किए गए अभिकथनों में कोई सार नहीं है क्योंकि याची एसोसिएशन द्वारा चुनाव बैडमिंटन एसोसिएशन ऑफ इंडिया की ओर से उपस्थित संप्रेक्षकों की उपस्थिति में किया गया था। याची द्वारा इन सारे विवरणों को संबंधित प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण को इंगित किया गया है। आदेश रजिस्ट्रीकरण महानिरीक्षक द्वारा पारित किया गया है। नोटिस जारी करने और सुनवाई की ऐसी सरल प्रक्रिया राज्य के उच्च श्रेणी के प्रशासनिक अधिकारी अर्थात् रजिस्ट्रीकरण महानिरीक्षक को ज्ञात नहीं थी और इसलिए आक्षेपित आदेश अभिखंडित और अपास्त किया जाय क्योंकि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन हुआ है।

5. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि कारण बताओ नोटिस अस्पष्ट है, अब याची ने सुनवाई में भाग लिया है और इसलिए याची को यह आधार उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त, दिनांक 15 जून, 2011 का आदेश विस्तारपूर्वक पारित किया जा चुका है जिसमें चुनाव में अनेक अनियमितताओं को इंगित किया गया है, उदाहरणस्वरुप, चुनाव सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण नियमावली, 1965 के प्रावधानों के अनुकूल नहीं था और, इसलिए, याचिका खारिज किए जाने योग्य है। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि जब एक बार याची सुनवाई में भाग ले रहा था, कारण बताओ नोटिस में अस्पष्टता का कोई भी प्रश्न उद्भूत नहीं होता है। कोई अभिवचन नहीं है कि अभिकथन की प्रति याची को कभी नहीं दी गयी थी और इसके अतिरिक्त, गुणागुण पर याचिका में कोई सार नहीं है और इसलिए आक्षेपित आदेश सत्य और सही है।

6. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मैं एतद् द्वारा दिनांक 15 जून, 2011 को प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा पारित आदेश, जो प्रति शपथपत्र के परिशिष्ट-A पर है, को मुख्यत: निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से अभिखंडित और अपास्त करता हूँ।

(i) यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति, जो वर्तमान प्रत्यर्थीगण में से एक है, के परिवाद पर याची को कारण बताओ नोटिस दिया गया था। परिवाद निजी प्रत्यर्थीगण द्वारा किया गया था, किंतु, उसकी प्रति याची अर्थात् झारखंड बैडमिंटन एसोसिएशन को कभी नहीं दी गयी थी। इसके अतिरिक्त, तथाकथित परिवाद के आधार पर दिनांक 13 जनवरी, 2011 को प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-2 पर है। परिशिष्ट-2 को देखते हुए प्रतीत होता है कि कारण बताओ नोटिस में कथित किया गया था कि कुछ परिवाद प्राप्त किया गया है जिसे विविध केस सं॰ ... वर्ष 2010 के रूप में दर्ज किया गया है और इन परिवादों के लिए दिनांक 2 फरवरी, 2011 को दोपहर 3.30 बजे सुनवाई नियत की गयी है और पक्षों को आवश्यक उत्तर के साथ उपस्थित होने का निर्देश दिया गया है।

याची को दिए गए इस कारण बताओ नोटिस को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि याची के विरुद्ध किसी चीज के लिए कोई अभिकथन नहीं किया गया है कि क्या कारण बताओ नोटिस भवन निर्माण के बारे में अथवा झारखंड बिल्डिंग एसोसिएशन की सदस्यता के लिए अथवा कुछ वित्तीय अनियमितता के लिए अथवा किसी अन्य चीज के लिए है। प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा याची को एक अत्यन्त अस्पष्ट नोटिस दिया गया था और सुनवाई 2 फरवरी, 2011 के लिए नियत की गयी थी।

(ii) प्रत्यर्थीगण ने इस तथ्य की अनदेखी की है कि किसी तिथि पर सुनवाई नहीं हो सकती है क्योंकि कारण बताओ नोटिस में कुछ भी उल्लिखित नहीं किया गया था। याची को ऐसे अस्पष्ट, अयथार्थ और अविनिर्दिष्ट नोटिस का उत्तर देना बिलकुल जरूरी नहीं था। अपना मामला रखने के लिए याची को पर्याप्त अवसर दिया जाना चाहिए था। याची स्वयं अपने विरुद्ध अभिकथन उपधारित नहीं कर सकता है। याची के विरुद्ध किए गए अभिकथनों, यदि हो, को कारण बताओ नोटिस में उल्लिखित किया जाना चाहिए था। इस प्रकार, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन हुआ है क्योंकि अभिकथन का खंडन करने के लिए याची को पर्याप्त अवसर कभी नहीं दिया गया था। याची को उसके विरुद्ध किए गए अभिकथनों के प्रति अंधकार में नहीं रखा जा सकता है।

(iii) दिनांक 2 फरवरी, 2011 को याची प्रत्यर्थी सं॰ 2 के समक्ष उपस्थित था। प्रत्यर्थीगण ने दस्तावेजों को मांगा था और वे उन दस्तावेजों को देखना चाहते थे जिसके द्वारा झारखंड बैडमिंटन एसोसिएशन के विरुद्ध अभिकथन किए गए थे। कथन किया गया है कि याची को कुछ भी दर्शाया नहीं गया था और न ही अभिकथनों के बारे में याची को कोई प्रति ही दी गयी थी और, इसलिए, याची ने उत्तर दाखिल नहीं किया था। आक्षेपित आदेश के आंतरिक पृष्ठ सं॰ 2 में इस तथ्य का कथन किया गया था कि यद्यपि प्रत्यर्थी सं॰ 1 से 3 (झारखंड बैडमिंटन एसोसिएशन) दिनांक 2 फरवरी, 2011 को उपस्थित थे, उन्होंने सुनवाई के समय कोई कथन नहीं किया था और तत्पश्चात आक्षेपित आदेश पारित किया गया है।

(iv) यह प्रतीत होता है कि वस्तुतः दिनांक 2 फरवरी, 2011 को कोई सुनवाई नहीं की गयी थी। परिशिष्ट-2 पर कारण बताओ नोटिस पूर्णतः अस्पष्ट कारण बताओ नोटिस है। दिनांक 2 फरवरी, 2011 को विधि की दृष्टि में कोई सुनवाई नहीं हुई है क्योंकि याची अपने विरुद्ध किए गए अभिकथनों की तलाश में प्रत्यर्थी सं॰ 2 के समक्ष गया है। अतः दिनांक 2 फरवरी, 2011 की तथाकथित सुनवाई विधि की दृष्टि में कोई सुनवाई नहीं है। दिनांक 2 फरवरी, 2011 के पूर्वोक्त तथाकथित सुनवाई के आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। आक्षेपित आदेश में अनेक तथ्यों का कथन किया गया है, जिनसे याची द्वारा इनकार किया गया है। आक्षेपित आदेश कारण बताओ नोटिस के परे नहीं जा सकता है। अतः, प्रथम दृष्टया प्रतीत होता है कि कोई सुनवाई नहीं हुई है और याची को वैध सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया है।

(v) सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 23 का पठन निम्नलिखित है:-

*"[23. **dfri; ekeyk e jftLV'ku dk jídj.k-**&bl vfèkfu;e e fdlh ckr d gkr g, Hkh] jftLVhdj.k egkfujh{kd bl vfèkfu;e d vèkhu i thÑr fdlh lklkbVh dk jftLV'ku fyf[kr vkn'k }kjk jí dj ldxk ftldk dk;ky; jkT;k d iuxBu d QyLo:i fcgkj jkT; e u jg x;k gk ;k bldk dk;ky; fcgkj jkT; l fdlh vU; jkT; e ifjofrr gk x;k gk ;k ftldh xfrfofèk;k lklkbVh d mí';k dk {kfr igpkrk gk(*

ijUrq ;g fd jftLVªhdj.k egkfujh{kd dks vkns'k ikfjr djus d igys ,lh tkp dj ldxk tlk og vko';d le>rk gk(

ijUrq ;g Hkh fd lkslkbVh d mís';k dk {kfr igpkus okyk gkus d ukr lkslkbVh dh xfrfofèk;k d vkèkkj ij lkslkbVh d jftLVª'ku d jídj.k dk dkb vkns'k ikfjr ugha fd;k tk;xk tc rd fd lkslkbVh dk bld lEcUèk e iLrkfor dkjokb d fo:) dkj.k iPNk dk ,d ;fDr;Dr volj u fn;k x;k gkA

(2) mi&èkkjk (1) d vèkhu fn, x, fdlh vkns'k d fo:) dkb vihy ,lh jhfr e] ,lh vofèk d Hkhrj ,o ,l ikfèkdkjh d le{k nkf[ky fd;k tk ldxk tk fofgr fd;k tk ldxk ,o ,l ikfèkdkjh ,lh vihyk ij fofgr jhfr e fopkj ,o fuLrkfjr djxkA

*(3) mi&èkkjk (2) d vèkhu vihyh; ikfèkdkjh dk fu.k; vfre gkxkA]***
(tkj Mkyk x;k)

इसी प्रकार से, सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 24 द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में अधिनियमित बिहार सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण नियमावली, 1965 के नियमों 12 और 13 का पठन निम्नलिखित है:–

"12. jftLVªhdj.k egkfujh{kd viu Lofoo d l fdlh ekey d lcèk e ,lh tkpk vFkok vUo"k.kk dk lLFkkfir dj ldrk g tk mld er e lkslkbVh d lefpr fØ;k&dyki vkj vfèkfu;e d ç'kklu d fy, vko';d gk ldr g fo'k"kr% tc lng gk fd lkslkbVh ,lh xfrfofèk;k e yxh g tk lkslkbVh d mís'; d fy, uk'kdkjh g vFkok fcgkj jkT; e fdlh jftLVM lkslkbVh dk dk;ky; vfLrRo e ugh jgk gA jftLVM lkslkbVh l ekx x;; fdlh ey nLrkot vFkok vU; dkxtkr dk jftLVªhdj.k egkfujh{kd vFkok jftLVªhdj.k egkfujh{kd }kjk çkfèkÑr fdlh vfèkdkjh d le{k lkslkbVh d dk;dyki dk fujh{k.k dju vFkok lkslkbVh d fo#) çkIr fdlh ifjokn dh tkp dju e mudk l{ke cuku d fy, çLrr fd;k tk,xkA

*13. ;fn jftLVªhdj.k egkfujh{kd lrq"V g fd bld jídj.k d fy, lkslkbVh d fo#) çFke n"V;k ekeyk curk g] og jftLVM doj e dkj.k crkvk ukfVl tkjh djxk vkj lkslkbVh dk ukfVl tkjh fd, tku dh frfFk l rhl fnuk d Hkhrj dkj.k crku d fy, dgxk fd D;k ugh lkslkbVh dk jftLVª'ku jí dj fn;k tkuk pkfg,A dkj.k crkvk ij fopkj dju d ckn vkj lrq"V gku ij fd vkjki iekf.kr gvk g] jftLVªhdj.k egkfujh{kd fyf[kr vkns'k }kjk èkkjk 23 d vèkhu lkslkbVh dk jftLVª'ku jí djxkA*** (tkj fn;k x;k)*

अधिनियम, 1860 और नियमावली, 1965 के पूर्वोक्त प्रावधानों की दृष्टि में प्रतीत होता है कि रजिस्ट्रीकरण के रद्दकरण के पहले प्रस्तावित कार्रवाई के विरुद्ध कारण बताने का युक्तियुक्त अवसर सोसाइटी को दिया जाना चाहिए। इस प्रकार, सुनवाई का अवसर दिया जाना आज्ञापक प्रकृति का है, जिसका वर्तमान मामले के तथ्यों में उल्लंघन किया गया है। अत: आक्षेपित आदेश अधिनियम की धारा 23 और नियमावली, 1965 का भी उल्लंघन करता है और, इसलिए, भी आक्षेपित आदेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है।

(vi) **बोर्ड ऑफ टेक्नीकल एडुकेशन, यू॰ पी॰ एवं अन्य बनाम धन्वंतरी कुमार एवं अन्य, AIR 1991 SC 271,** में पैराग्राफ 2 और 3 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

"2. geu vfHky[kk dk ifj'khyu fd;k g vkj nkuk i{kk d fo}ku vfèkoDrk dk luk gA bu ekeyk d fofp= rF;k vkj fo'k"k ifjfLFkfr;k e] gekjk nf"Vdk.k g fd mPp U;k;ky; bl fu"d"k ij vku e] ft l ij ;g vk;k] U;k;kfpr Fkk fd Nk=k ij rkehy dh x;h ukfVl bruh vLi"V vkj v;FkkFk Fkh fd o tkp e viuk cpko çHkkodkjh : i l ugh dj ldr FkA

*3. bu ifjfLFkfr;k e] ge vk{kfir vkn'kk e gLr{ki dju dk dkb dkj.k ugh n[kr gA rnulkj vihy vkj fo'k"k vuefr ;kfpdkvk dk [kkfjt fd;k tkrk gA 0;; dk ydj vkn'k ugh gA*** *(tkj fn;k x;k)*

इस प्रकार, याची को दिया गया नोटिस इतना अस्पष्ट और अयथार्थ था कि याची अपना बचाव प्रभावकारी रूप से नहीं कर सकता था और, इसलिए, भी आक्षेपित आदेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य था।

(vii) **श्री बी॰ डी॰ गुप्ता बनाम हरियाणा राज्य, (1973)3 SCC 149,** मामले में पैराग्राफों 10 और 15 पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

*"10. ge dgk x;k Fkk fd pfd vihykFkh vkjki l voxr Fkk vkj ml mÙkj l Hkh voxr Fkk tk mlu viu fo#) yxk, x, vkjkik d çfr fn;k Fkk] ljdkj d fy, mldk bruk Hkj dguk i;kIr Fkk fd mldk mÙkj v lrk"k tud FkkA rd fd;k x;k Fkk fd pfd ^^dkj.k crkvk ukfVl** u bl oLrq bfxr fd;k Fkk vkj mfYyf[kr fd;k Fkk] vihykFkh d vkpj.k ij funk dk ,d vR;Ur uje nMkn'k vfèkjkfir fd;k tk jgk Fkk] bld vkx dN Hkh ugh Fkk ft ld dju dh mEehn ljdkj l bl ekey e dh tk ldrh FkhA ge jkT; dh vkj l fd, x, bl çfrokn dk vLohdkj dju e dkb fgpfdpkgV ugh gA ;g lLi"Vr% Li"V g fd ^^dkj.k crkvk ukfVl** ;kph dk viuk cpko çHkkodkjh : i l dju dh vuefr nu d fy, vR;Ur vLi"V Fkk vkj fd ifj.kkeLo#i ml ij ikfjr funk dk vkn'k nk"ki.k g vkj gVk; tku dk nk;h gA*

*15. ge dkb lng ugh g fd bl ekey e U;k; vkj fu"i{krk ekx djr g fd ljdkj dk vihykFkh dk dkj.k crku dk ;fDr;Dr volj nuk pkfg, Fkk fd ml çfrdy ml oru vkj HkÙkk dk çHkkfor dju okyk vkn'k D;k ugh ikfjr fd;k tk,A*** *(tkj fn;k x;k)*

(viii) **नासिर अहमद बनाम सामान्य निष्क्रांत संपत्ति सहायक अभिरक्षक, यू॰ पी॰, लखनऊ एवं एक अन्य, (1980)3 SCC 1,** के पैराग्राफ 3 और 4 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

"3. Åij dfFkr rF; Li"Vr% n'kkr g fd ukfVl vkj bldk vulj.k djrh ?kk"k.kk nkuk voèk FkhA ukfVl u vihykFkh vkj ml Hkkb dk dkj.k crku d fy, dgk fd D;k ugh mUg vfèkfu;e dh èkkjk 2(d) d [kM (iii) d vèkhu fu"Økr ?kkf"kr dj fn;k tk, vkj ukfVl e mfYyf[kr vkèkkj Hkh ml h [kM ij vkèkkfjr Fkk] fQj Hkh lgk;d vfHkj{kd u ik;k fd o [kMk (i) vkj (ii) d vèkhu Hkh fu"Økr FkA çkfèkÑr mi vfHkj{kd u vfHkfuèkkfjr fd;k fd [kM (iii) ij vkèkkfjr ekey d leFku e ukfVl e fn;k x;k vkèkkj vLi"V Fkk vkj ukfVl =fVi.k Fkk tgk rd

mls vkèkkj dk lcèk Fkk fdrq ;g ,dek= ekeyk Fkk ftlls ij vihykFkh dk mÙkj nu d fy, dgk x;k FkkA èkkjk 7 d vèkhu dk;okgh dk vkèkkj oèk ukfVl g vkj tkp tk ukfVl dh ckè;rk d ijs tkrh g] vuuK; g vkj mls lhek rd vfèkdkfjrk d ijA vr% bl ?kk"k.kk fd vihykFkh vfèkfu;e dh èkkjk 2(d) d [kMk (i) vkj (ii) d vèkhu fu"Økr Fkk] dk voèk vfHkfuèkkfjr djuk gh gkxkA

*4. fu;e 6 d vèkhu èkkjk 7 d vèkhu ukfVl fofgr Qke e tkjh djuk gkxk vkj mu vkèkkjk dk vrfo"V djuk gkxk ftlls ij lifÙk fu"Økr lifÙk ?kkf"kr djuk bfllr fd;k x;k gA tls igy dFku fd;k x;k g] ukfVl ftl bl ekey e tkjh fd;k x;k Fkk] u mu fof'kf"V;k] ftu ij vihykFkh d fo#) ekeyk LFkkfir fd;k x;k Fkk] dk mfYyf[kr fd, fcuk Qke dk mnèkr ek= fd;k FkkA vihykFkh dk viu fo#) ekey dk mÙkj nu gr l{ke cuku d fy, fof'kf"V;k dk dFku djuk vko';d FkkA vr% Li"Vr% ukfVl u fu;e 6 dk vuikyu ugh fd;k Fkk vkj dk;okgh d fy, vkèkkj çnku ugh dj ldrk Fkk tk vulfjr gvkA***

(tkj fn;k x;k)

(ix) **भारतीय खाद्य निगम बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2001)1 SCC 291,** में पैराग्राफों 12 और 13 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

"12. io&mnèkr çkoèkkuk d iBu ij Li"V g fd çkdyu lph dk l'kkfèkr dju d fy, dfefV e 'kfDr fufgr djr g, foèkku eMy u ifjfLFkfr;k ftue vkj vkèkkjk ftu ij ,lk l'kkèku fd;k tk ldrk g dk fofufn"V dju dh lkoèkkuh cjrh g(blu mls rjhd dk Hkh vfèkdfFkr fd;k g ftue ,lk l'kkèku vFkok fuèkkj.k lph dk iujh{k.k fd;k tkuk gA dfeVh dk vkifÙk] ;fn gk] nu d fy, ,d ekg dk le; mls nr g, vkj mBk;h x;h vkifÙk;k d leFku e lu tku d volj dh vuefr mls nr g, mls 0;fDr]çLrkfor l'kkèku }kjk ftld çHkkfor gku dh lHkkouk g] dk ukfVl nu d fy, çkoèkku cuk dj ulfxd U;k; d fl)kr dk vuikyu fd, tku dh lkoèkkuh Hkh cjrh x;h gA èkkjk e vknf'kr çHkkfor 0;fDr dk ukfVl vkipkfjdrk ek= ugh g(blds mí'; ç;ktuo'k gA vLi"V vkj vfofufn"V ukfVl fn, x, 0;fDr dk dkj.kk@vkèkkjk] ftu ij fuèkkj.k lph dk l'kkèku fd;k tkuk çLrkfor g] dk lkeuk djr g, vkifÙk nkf[ky dju d fy, ;fDr;Dr volj çnku ugh djxkA ,l ukfVl dk lkfofèkd vko';drk dk vuikyu djrk ugh ekuk tk ldrk gA

13. fuxe dk tkjh ukfVl d ifj'khyu ij] tk vfHky[k ij g] ;g Li"V g fd ukfVl vLi"V g vkj ble fof'kf"V;k dh deh gA ;g u rk mu dkj.kk vkj u gh mu vkèkkjk dk dFku djrk g ftud fy, vkj ftu ij l'kkèku fd;k tkuk çLrkfor g vkj u gh ;g dkb lkexh minf'kr djrk g ftud vkèkkj ij iujh{k.k] tls ukfVl e dFkr g] fd;k tkuk çLrkfor gA ukfVl e dFku fd;k x;k g%&

*^^tcfd vkidh iokfYyf[kr lifÙk fuèkkj.k lph l xyr :i l NkM nh x;h g tcfd bl ble gkuk pkfg, FkkA tcfd vkidh bl lifÙk dk fuèkkj.k voèkkfud =fV diV vFkok vk'k; d dkj.k de fuèkkfjr fd;k x;k Fkk ftl e rn}kjk l'kkèku dh vko';drk gA***

*Li"V g fd dfefV fuf'pr ugh g fd fdl vkèkkj ij ;g fuèkkfjr lph l'kkfèkr dju d fy, vxlj gku dk çLrko djrh gA ,l ukfVl u doy lkfofèkd vko';drkvk dk vuikyu ugh djrk g] ;g lkfofèkd çkoèkkuk d ç;ktu dk Hkh ijkftr djrk gA*** *(tkj fn;k x;k)*

(x) इस प्रकार, वर्तमान मामले के तथ्यों में भी, प्रत्यर्थीगण द्वारा जारी कारण बताओ नोटिस में याची के विरुद्ध किए गए अभिकथनों के बारे में विशिष्टियों को नहीं दिया गया था, जो याचिका के परिशिष्ट–2 पर है। जब कारण बताओ नोटिस देने की सांविधिक आवश्यकता होती है, केवल तत्पश्चात ही, अधिनियम, 1860 की धारा 23 सह–पठित नियमावली, 1965 के नियम 12 और 13 के अधीन रजिस्ट्रीकरण के रद्दकरण का आदेश पारित किया जा सकता है। कारण बताओ नोटिस देना प्रत्यर्थीगण द्वारा पालन की जाने वाली औपचारिकता मात्र नहीं है। अस्पष्ट, अयथार्थ और अविनिर्दिष्ट नोटिस किए गए व्यक्ति को सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान नहीं करेगा।

(xi) जब एक बार नोटिस अस्पष्ट, अयथार्थ और अविनिर्दिष्ट है और जहाँ विशिष्टियों की कमी है, दिनांक 15 जून, 2011 का पारिणामिक आदेश, जो प्रति शपथ पत्र के मेमो के परिशिष्ट–A पर है, अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है क्योंकि आक्षेपित आदेश नोटिस के विस्तार के परे जा रहा है।

7. पूर्वोक्त तथ्यों, कारणों और न्यायिक उद्घोषणाओं के समेकित प्रभाव के कारण मैं एतद् द्वारा प्रति शपथ पत्र के मेमो के परिशिष्ट–A पर प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा पारित दिनांक 15 जून, 2011 के आक्षेपित आदेश को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ। याची के विरुद्ध किए गए समस्त अभिकथनों को वर्णित करते हुए नए और समुचित कारण बताओ नोटिस जारी करने की स्वतंत्रता प्रत्यर्थी–राज्य प्राधिकारीगण को दी जाती है, यदि वे ऐसा करना चुनते हैं, और याची को उत्तर देने के लिए पर्याप्त समय देना होगा और याची को सुने जाने का पर्याप्त अवसर दिए जाने के बाद विधि, नियमों, विनियमों, नीतियों के अनुरुप प्रत्यर्थी–राज्य प्राधिकारीगण द्वारा निर्णय किया जा सकता है।

8. यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] dk;dkjh e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efrx.k

कारू साह

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr. Revision No. 147 of 2004. Decided on 6th September, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–दोषमुक्ति–घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है–तथाकथित चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य का खंडन अन्वेषण अधिकारी द्वारा किया गया–सूचक द्वारा दिया गया आरंभिक बयान किसी विनिर्दिष्ट नाम को उपदर्शित नहीं करता था–सूचक ने बाद में अभियुक्तगण को आलिप्त करने का प्रयास किया जिनके विरुद्ध पुरानी दुश्मनी थी–अभियोजन परिस्थितियों की श्रृंखला स्थापित करने में अक्षम रहा जो युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध कर सकती थीं कि अभियुक्तगण मृत्यु के कारण के लिए जिम्मेदार हैं–अभियुक्तगण को सही प्रकार से संदेह का लाभ दिया गया–पुनरीक्षण आवेदन खारिज।
(पैराएँ 6 से 10)

अधिवक्तागण.–M/s Arvind Kumar Chowdhury, B.K. Roy, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. Kailash Prasad Deo, For the O.P. No. 2 to 4.

पी॰ पी॰ भट्ट, न्यायमूर्ति.–वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सत्र केस सं॰ 121 वर्ष 2000 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, देवघर द्वारा पारित दिनांक 20 दिसंबर, 2003 के निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होने के कारण याची (मूल सूचक) द्वारा दाखिल किया गया है जिसके द्वारा विद्वान सत्र न्यायाधीश ने देवघर पी॰ एस॰ केस सं॰ 16 वर्ष 2000, जी॰ आर॰ सं॰ 46 वर्ष 2000 के तत्सम, के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप के लिए वर्तमान विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 4 को दोषमुक्त कर दिया था।

2. फर्दबयान के अनुसार, दिनांक 15.1.2000 को सूचक (याची) तपोवन मेला गया था और जब सायं 4 बजे वह अपने घर लौटा, उसकी माता ने उसे वि॰ प॰ सं॰ 2 से 4 के साथ झगड़े के संबंध में उसे सूचित किया और तत्पश्चात् उसका भाई संजय साह (तब से मृत) शाम में टहलने गया था और सूचक टावर चौक की ओर जा रहा था जहाँ उसने सुना कि अभियुक्त सिद्धेश्वर (तब से मृत) के घर के सामने किसी लड़के की हत्या कर दी गयी थी और वहाँ पहुँचने पर सूचक ने अपने भाई संजय साह के मृत शरीर को पहचाना। अभिकथित किया गया था कि विगत 7-8 वर्षों से सूचक और उसके चाचा के परिवारों के बीच भूमि विवाद था। फर्दबयान के मुताबिक, सूचक और विपक्षी पक्षकारों के बीच झगड़ा हुआ था जिसके लिए सूचक ने दिनांक 15.1.2000 को सायं लगभग 6.45 बजे घटना स्थल पर पुलिस को अपना फर्दबयान दिया और तथ्यों का खुलासा किया और संदेह जाहिर किया कि अभियुक्त सिद्धेश्वर केसरी, लक्ष्मी साह, सूचक का चाचा, और सूचक के चचेरे भाइयों अर्थात् विक्रम शाह और शिव चरण साह ने षडयंत्र रचा था और उनके बीच पूर्वोल्लिखित दुश्मनी के कारण उसके भाई संजय साह की हत्या करवा दी थी। सूचक के फर्दबयान के आधार पर देवघर पी॰ एस॰ केस सं॰ 16 वर्ष 2000 दर्ज किया गया था और मामले का अन्वेषण किया गया था। अन्वेषण के बाद, पुलिस ने आरोप-पत्र दाखिल किया था। सत्र न्यायालय को सुपुर्द किए जाने के बाद, दिनांक 28.6.2000 को अभियुक्तगण के विरुद्ध आरोप विरचित किया गया था और अभियुक्तगण द्वारा निर्दोषिता का अभिवचन करने और विचारण किए जाने का दावा करने पर अभियुक्तगण का विचारण किया गया था। विचारण के दौरान अभियुक्त सिद्धेश्वर केसरी की मृत्यु हो गयी और दिनांक 17.4.2000 के आदेश के तहत उसका विचारण रोक दिया गया।

3. विचारण के क्रम में अभियोजन ने सूचक, आई॰ ओ॰ और डॉक्टर सहित आठ गवाहों का परीक्षण किया। अभियोजन ने अभिलेख पर कतिपय दस्तावेजों को लाया था जिन्हें प्रदर्श चिन्हित किया गया था। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अभियुक्तगण का बयान दर्ज किया गया था जिसमें उन्होंने अभियोगों और अभियोजन द्वारा अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य में अपने विरुद्ध सामने आने वाली परिस्थितियों से इनकार किया है।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने अभियुक्तगण को दोषमुक्त करते हुए सत्र न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय का विरोध किया है। विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और विशेषत: अ॰ सा॰ 4, जो घटना का चश्मदीद गवाह था, द्वारा दिए गए मौखिक साक्ष्य का अधिमूल्यन करने में गलती की। निवेदन किया गया है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश सही परिप्रेक्ष्य में अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का अधिमूल्यन करने में विफल रहे और दोषमुक्ति का निर्णय और आदेश पारित किया। आगे निवेदन किया गया है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश यह अधिमूल्यन करने में विफल रहे कि लगभग सभी गवाहों ने अभियोजन के मामले का समर्थन किया है जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य और चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा भी संपुष्ट किया गया था। अंत में निवेदन किया गया है कि सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित अभियुक्तगण को दोषमुक्त करता निर्णय और आदेश उलटा जा सकता है और इसे दोषसिद्धि के आदेश और दंडादेश में परिवर्तित किया जा सकता है।

5. इसके विरुद्ध, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 4 (मूल अभियुक्त) के विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश का समर्थन किया और निवेदन किया कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दोषमुक्ति के निर्णय और आदेश को पारित करने के निष्कर्ष पर पहुंचते हुए अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का सही अधिमूल्यन किया है।

6. हमने एस॰ सी॰ सं॰ 121 वर्ष 2000 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, देवघर द्वारा पारित निर्णय और आदेश का सावधानीपूर्वक परीक्षण किया है। विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा दर्ज निष्कर्ष के परिशीलन पर यह प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने समक्ष दिए गए साक्ष्य के प्रत्येक पहलू पर विचार किया है और अपने समक्ष दिए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आलोक में तथ्यों और परिस्थितियों का अधिमूल्यन किया है। हमारे मत में, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने इस निष्कर्ष पर आते हुए कोई गलती नहीं की है कि अभियोजन अभियुक्तगण के विरुद्ध युक्तियुक्त संदेह के परे आरोप सिद्ध करने में विफल रहा है और तद्द्वारा दोषमुक्ति दर्ज किया। निर्णय और एल॰ सी॰ आर॰ के परिशीलन से पता चलता है कि अभियोजन ने सूचक, आई॰ ओ॰ और डॉक्टर सहित 8 गवाहों का परीक्षण किया है यद्यपि फर्दबयान से प्रतीत होता है कि घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है किंतु अभियोजन ने अ॰ सा॰ 4 राजेंद्र प्रसाद साह का परीक्षण घटना के चश्मदीद गवाह के रूप में किया है। यह गवाह मृतक का भाई है जिसने घटना का वर्णन किया है। अपने प्रति परीक्षण में इस गवाह ने अभियुक्तगण के साथ पुरानी दुश्मनी की बात को स्वीकार किया है और कथन किया है कि घटना की तिथि पर उसकी माता द्वारा उसे सूचित किया गया था कि उनके बीच झगड़ा हुआ था जिसमें अभियुक्तगण ने धमकी दी थी। इस गवाह ने अपने प्रति परीक्षण में विनिर्दिष्टत: स्वीकार किया है कि जब वह घटनास्थल से अपने घर की ओर दौड़ा और वह अपने भाई बिजय प्रसाद साह से मिला था जो मामले का सूचक है और उसने सारी घटना अपने भाई को बतायी थी और तत्पश्चात्, उसका भाई घटनास्थल पर आया और यह गवाह पुलिस थाना गया था। इस गवाह का ध्यान पुलिस के समक्ष दिए गए उसके बयान की ओर आकृष्ट किया गया था जिसमें उसने कथन किया था कि उसने पुलिस के समक्ष भी वही बयान दिया था जो उसने न्यायालय के समक्ष चश्मदीद गवाह के रूप में घटना के बारे में दिया था।

7. अ॰ सा॰ 7 राजीव कुमार सिंह इस मामले का अन्वेषण अधिकारी है जिसने अ॰ सा॰ 4 के बयान का खंडन किया है और अपने प्रति परीक्षण में आई॰ ओ॰ ने कथन किया है कि इस गवाह ने घटना के चश्मदीद गवाह के रूप में कोई बयान नहीं दिया था बल्कि उसने कथन किया था कि वह अपने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ घटनास्थल पर आया था, मृत शरीर को देखा था और कथन किया था कि किसी ने उसके भाई की हत्या कर दी थी। आई॰ ओ॰ का यह साक्ष्य अ॰ सा॰ 4 राजेंद्र प्रसाद साह, जो घटना के एकमात्र चश्मदीद गवाह के रूप में सामने आया था, के साक्ष्य को पूरी तरह झुठला देता है। अत: प्रतीत होता है कि यद्यपि अभियोजन द्वारा अ॰ सा॰ 4 को चश्मदीद गवाह के रूप में प्रक्षेपित किया गया है, किंतु उसका साक्ष्य आई॰ ओ॰ जो इस मामले में अ॰ सा॰ 7 है, द्वारा दिए गए विरोधाभासी विवरण की दृष्टि में विश्वास उत्पन्न नहीं करता है और तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि वास्तविक घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। अ॰ सा॰ 5 बिजय प्रसाद साह सूचक है जिसने फर्दबयान का समर्थन किया है किंतु अ॰ सा॰ 5 के अनुसार उसे घटना के संबंध में अ॰ सा॰ 4 द्वारा सूचित किया गया था और उसने कथन किया कि जब वह घर वापस गया, वह अपने भाई राजेन्द्र साह से मिला जिसने उसे सूचित किया कि लक्ष्मी साह, बिक्रम साह, शिवचरण साह और सिद्धेश्वर केसरी ने मृतक की हत्या की थी और तत्पश्चात वह पुलिस थाना आया था और पुलिस को पुन: अपना बयान दिया था किंतु पुलिस ने उसका बयान दर्ज नहीं

किया था और तत्पश्चात उसने मानवाधिकार आयोग को इसके बारे में लिखा था। अत: यह प्रतीत होता है कि पुलिस के समक्ष अ॰ सा॰ 5 द्वारा दिया गया आरंभिक बयान अभियुक्तगण में से किसी का विनिर्दिष्ट नाम उपदर्शित नहीं करता था किंतु अ॰ सा॰ 4 के साथ मुलाकात के बाद अ॰ सा॰ 5 पुलिस थाना गया और अभियुक्तगण, जिनसे उनकी पुरानी दुश्मनी थी, को आलिप्त करने का प्रयास किया।

8. अ॰ सा॰ 6 डॉ॰ एन॰ सी॰ गांधी है जिन्होंने मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षण किया और निम्नलिखित उपहतियों को वर्णित किया:–

(i) 3" x 1/2" x LdkYi rd xgjk eLrd d nk, Hkkx ij ihN dh vkj dVk fonh.k t [eA

(ii) yykV d nk, fgLl ij [kjkp d lkFk nck gvk t [eA

(iii) nk;k iyd vkj iryh gekVkuk l fonh.kA

डॉक्टर के अनुसार, मृत्यु का कारण पूर्वोक्त उपहतियाँ थीं। डॉक्टर के मौखिक परिसाक्ष्य से और शव परीक्षण रिपोर्ट के परिशीलन पर यह प्रतीत होता है कि मृत्यु डॉक्टर द्वारा वर्णित पूर्वोक्त उपहतियों के कारण रक्तस्राव और आघात से हुई थी किंतु वास्तविक घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है और संपूर्ण मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है और अभियोजन परिस्थितियों की श्रृंखला स्थापित अथवा सिद्ध करने में अक्षम है जो युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध कर सकती है कि अभियुक्तगण मृत्यु के कारण के लिए जिम्मेदार है। जैसा यहाँ ऊपर चर्चा किया गया है, अभियोजन ने अ॰ सा॰ 4 को चश्मदीद गवाह के रूप में प्रक्षेपित करने का प्रयास किया किंतु आई॰ ओ॰ द्वारा दिए गए मौखिक साक्ष्य से और फर्दबयान को देखते हुए अ॰ सा॰ 5 द्वारा दिया गया मौखिक साक्ष्य विश्वास उत्पन्न नहीं करता है। वस्तुत:, अ॰ सा॰ 4, 5 और 7 के साक्ष्य में अनेक मुख्य तात्विक विरोधभास हैं।

9. विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपने निर्णय में समस्त अभियोजन गवाहों के मौखिक परिसाक्ष्यों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है और हम अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के अधिमूल्यन में कोई गलती अथवा कमी नहीं पाते हैं। विद्वान सत्र न्यायाधीश तात्विक साक्ष्य पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर आए हैं कि अभियोजन अपना मामला युक्तियुक्त संदेह के परे स्थापित करने में विफल रहा है और इसलिए, उन्होंने न्याय विधि शास्त्र के मुख्य सिद्धांतों के मुताबिक अभियुक्तगण को संदेह का लाभ सही प्रकार से दिया है। ऐसी स्थिति में, अभियुक्तगण को संदेह का लाभ दिए जाने की आवश्यकता है।

10. पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए हम इस पुनरीक्षण आवेदन में गुणागुण नहीं पाते हैं, अत: इसे खारिज करने का आदेश दिया जाता है।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

श्रीमती शारदा देवी

cuke

आयुक्त, दक्षिणी छोटानागपुर डिविजन, राँची एवं अन्य

C.W.J.C. No. 3528 of 1999(R). Decided on 5th August, 2011.

(क) छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908—धाराएँ 46 एवं 71A—भूमि का प्रत्यावर्तन–वर्ष 1926 में एक अनुसूचित जनजाति द्वारा एक अन्य अनुसूचित जनजाति के पक्ष में बंधक दिया गया

था–उस समय डी॰ सी॰ की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं थी–सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम को भूतलक्षी प्रभाव से प्रयोज्य नहीं बनाया जा सकता है–समय की अयुक्तियुक्त लंबी अवधि के बाद प्रत्यायोजन की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है–अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान का उल्लंघन नहीं हुआ है–आक्षेपित आदेश मान्य नहीं ठहराए जा सकते हैं।

(पैराएँ 10, 11, 13, 20 से 25)

(ख) छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908—धाराएँ 46 एवं 71A—प्रत्यावर्तन–आवेदकगण ने व्ययन की तिथि का उल्लेख नहीं किया था और नहीं बताया था कि वे किस प्रकार अभिलिखित अभिधारी से संबंधित थे–केवल इस तथ्य को अभिकथित करने के कारण कि वे निकटतम गोत्रज के उत्तराधिकारी थे, आवेदन अभिखंडित किए जाने का दायी है। (पैरा 25)

निर्णयज विधि.–(2000) 5 SCC 141—Followed; AIR 1981 Pat 172; 1985 PLJR 732; (2004) 8 SCC 340; (1991) 2 BLJR 1048; AIR 1978 SC 941—Referred; 1986 BLT (Rep) 173—Distinguished.

अधिवक्तागण.–M/s P.K. Prasad, Ayush Aditya, Debolina Sen Hirani, For the Petitioner; M/s Jai Prakash, Yogesh Modi, For the State.

पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति.–पक्षों को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका क्रमशः प्रत्यर्थी सं॰ 2 और 1 द्वारा पारित दिनांक 16.10.1990 के आदेश (रिट याचिका का परिशिष्ट-5) और दिनांक 14.6.1999 के पुनरीक्षण आदेश (रिट याचिका का परिशिष्ट-6) को चुनौती देते हुए दाखिल की गयी है। प्रत्यावर्तन के आवेदन के साथ आदेश छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम (इसके बाद सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 71A के अधीन दिया गया है।

3. याची की ओर से मुख्य प्रतिवाद यह है कि प्रत्यावर्तन आवेदन परिसीमा द्वारा वर्जित था और, इसलिए, विवाद पोषणीय नहीं था। इसके अतिरिक्त, विवाद न केवल सरल प्रत्यावर्तन के प्रश्न को बल्कि हक, बंधक, इसके मोचन आदि के जटिल प्रश्न को भी अंतर्ग्रस्त करता है और, इसलिए, संक्षिप्त कार्यवाही में इसे विनिश्चित नहीं किया जा सकता था जैसा वर्तमान मामले में सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के अधीन किया गया है।

4. मामले के तथ्य ये हैं कि दिनांक 9.9.1970 को प्रत्यर्थी सं॰ 4 से 6 के हित पूर्वाधिकारी स्व॰ मसीह दास मुंडा ने भूमि के प्रत्यावर्तन के लिए सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के अधीन आवेदन दिया। प्रश्नगत भूमि सालदेगा ग्राम की खाता सं॰ 90/2 की भूमि सं॰ 519 (1.59 एकड़) और 520 (29 डिसमिल) है।

5. विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि प्रत्यावर्तन आवेदन में अंतरण की तिथि उल्लिखित नहीं की गयी थी। अंतरण से संबंधित कोई विवरण नहीं था बल्कि मात्र इतना कि भूमि सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 46 के प्रावधान के विरुद्ध गलत तरीके से अंतरित की गयी थी।

6. पूर्वोक्त आवेदन के आधार पर एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 140/70-71 दर्ज किया गया था। याची ने इस प्रभाव की अनेक आपत्तियों को उठाते हुए कारण बताओ दाखिल किया कि खाता सं॰ 519 किसी सुलेमान मुंडा, पुत्र एटवा मुंडा और बंधना मुंडा, पुत्र फागो मुंडा के नाम में अधिकार अभिलेख के पुनरीक्षण सर्वे में दर्ज की गयी थी। दोनों अभिलिखित अभिधारियों की मृत्यु संतान के बिना हो गयी किंतु जीवनकाल के दौरान 300/- रुपयों की राशि के लिए किसी दिलावर ओराँव के पक्ष में दिनांक 5.4.1926 को बंधक विलेख निष्पादित किया गया था। उक्त बंधक वर्ष 1931 अर्थात् पाँच वर्षों के बाद मोचनीय था। प्रकाशित किया गया अधिकार अभिलेख का पुनरीक्षण सर्वेक्षण भी पूर्वोक्त बंधक को उल्लिखित करता है। बंधकदार काबिज बना रहा और याची का दावा यह है कि उसने प्रतिकूल कब्जा द्वारा हक अर्जित किया है चूँकि बंधक मोचित नहीं किया गया था।

7. बंधकदार दिलावर ओराँव अपने पीछे एक पुत्र पॉल कच्छप और बहू हल्यानी कच्छप को छोड़कर, की मृत्यु हो गयी। विधिक उत्तराधिकारियों ने वर्ष 1956 में याची के पक्ष में दर रैयती व्यवस्थापन प्रदान किया और, तत्पश्चात्, याची प्रश्नगत भूमि पर काबिज बना हुआ है।

8. आगे निवेदन किया गया है कि याची ने गृह और कुछ अन्य संरचनाओं का निर्माण किया और अनुसूचित क्षेत्र विनियम, 1969 के प्रभाव में आने के बहुत पहले एक पक्की दीवार भी खोदकर निकाली गयी थी। आगे प्रतिवादित किया गया है कि याची का नाम नामांतरण केस सं॰ 29/1961-62 के तहत नामांतरित कर दिया गया था।

9. पूर्वोक्त तथ्यों के आधार पर, याची की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार प्रतिवाद किया है कि अधिनियम के प्रावधानों में से किसी का, सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 46 की तो बात ही दूर, उल्लंघन नहीं हुआ है और प्रत्यर्थी सं॰ 4, 5 और 6 अभिलिखित अभिधारी के विधिक उत्तराधिकारी अथवा उत्तराधिकारी नहीं हैं और इसलिए उन्हें प्रत्यावर्तन का दावा करने का अधिकार नहीं है। अंतरिति ने प्रतिकूल कब्जा द्वारा हक अर्जित किया था और, इसलिए, प्रत्यावर्तन आवेदन आरंभ में ही अस्वीकार किए जाने का दायी है।

10. सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं किए जाने के प्रश्न पर प्रतिवाद किया गया है कि सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के अधीन तीन पूर्वापेक्षाएँ है:–

(i) Hkfe vuqfpr tutkfr d lnL; dh gkuh pkfg,(

(ii) ml vuqfpr tutkfr d Loke@vfHkfyf[kr j;r }kjk Hkfe vrfjr dh tkuh pkfg,(

(iii) vrj.k lh0 ,u0 Vh0 vfèkfu;e d mYy?ku e gkuk pkfg,A

स्वीकृत रूप से, वर्तमान मामले में, बंधक एक अनुसूचित जनजाति द्वारा एक अन्य अनुसूचित जनजाति के पक्ष में वर्ष 1926 में किया गया था। प्रासंगिक समय पर, अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के बीच आपसी अंतरण पर निर्बंधन नहीं था। अत: अधिनियम का उल्लंघन नहीं हुआ है और न ही अधिनियम की धारा 71A लागू होगी। अवर प्राधिकारीगण इस पहलू को विचार में लेने में विफल रहे हैं और गैरकानूनी रूप से प्रत्यावर्तन का आवेदन अनुज्ञात किया। स्वीकृत रूप से, अभिलिखित अभिधारी वर्ष 1926 से कब्जाहीन रहे जबकि प्रत्यावर्तन का आवेदन केवल वर्ष 1970 में दिया गया था और इस प्रकार, पूरी तरह परिसीमा से वर्जित है। स्वीकृत रूप से, तीस वर्षों से भी अधिक बीत जाने के बाद प्रत्यावर्तन का आवेदन दाखिल किया गया था।

11. अगला तर्क है कि वर्ष 1926 में उप आयुक्त की अनुमति के मुकाबले कोई निषेध नहीं था और इस प्रकार प्रासंगिक समय पर विधि की ऐसी मूल आवश्यकता नहीं थी। सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम वर्ष 1947 में प्रभाव में आया जबकि, अंतरण वर्ष 1926 में ही हो चुका था अर्थात अधिनियम की धारा 46 के प्रभावों में आने के पहले।

12. विद्वान अधिवक्ता ने बार–बार अपने निवेदन पर जोर दिया है कि दिलावर ओराँव ने प्रतिकूल कब्जा द्वारा हक अर्जित किया था। वैकल्पिक तर्क यह है कि यह उपधारित करते हुए कि उसने अपना अधिकार पुख्ता नहीं किया है किंतु वर्ष 1969 के विनियम 1 जो वर्ष 1986 में प्रभाव में आया, के कारण प्रत्यर्थीगण को कोई लाभ प्रदान नहीं किया जा सकता है।

13. याची की ओर से जोरदार निवेदन यह है कि अभिधान वर्ष 1956 में ही पुख्ता कर लिया गया था। अभिधान पुख्ता करने के लिए अपेक्षित अवधि 12 वर्ष है जैसा सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा

46 (4A) के अधीन प्रावधानित किया गया है और वर्ष 1968 में इसका अंत हो गया जबकि, वर्ष 1969 का विनियम 1 बाद में क्रियान्वित किया गया था और, इसलिए, 30 वर्षों की अवधि, जैसा पश्चातवर्ती विनियम द्वारा प्रावधानित किया गया है, याची के हक के रास्ते में नहीं आएगी। प्रत्यावर्तन का दावा करने के लिए परिसीमा की अवधि, जैसा सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 46 (4A) में प्रावधानित किया गया है, केवल 12 वर्ष है और उक्त अधिनियम की धारा 71A पहली बार वर्ष 1969 में पुर: स्थापित की गयी थी। वर्तमान मामले में, अंतरण वर्ष 1926 में हुआ था और धारा 46 (4A) के अधीन परिसीमा की अवधि का अवसान वर्ष 1938 में हो गया था।

दिया गया वैकल्पिक तर्क यह है कि यह उपधारित करते हुए कि अंतरण की तिथि वर्ष 1956 है, तब भी वर्ष 1968 में परिसीमा की अवधि का अवसान हो गया। इस प्रकार, जोर दिया गया है कि प्रत्यावर्तन आवेदन परिसीमा द्वारा वर्जित था चूँकि इसे आरंभिक अंतरण के 44 वर्ष बीतने के बाद दाखिल किया गया था।

याची का दावा प्रतिकूल कब्जा के आधार पर भी है जो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की भूमि पर लागू होता है। बंधकदार अर्थात् दिलावर ओराँव बंधक विलेख में सहमत अवधि बीतने के बाद भी काबिज बना रहा। स्पष्टत:, दिलावर ओराँव ने प्रतिकुल कब्जा की विधि द्वारा हक अर्जित कर लिया था। बिहार मनी लेंडर्स अधिनियम, 1974 के आधार पर अवर अपीलीय न्यायालय और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा दिया गया तर्क स्वयं प्राधिकारी द्वारा काढ़ कर निकाला गया आधार है। जोरदार आपत्ति की गयी है कि उक्त अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होंगे। बिहार मनी लेंडर्स अधिनियम वर्ष 1974 में प्रवर्तित किया गया था अर्थात् बंधक करने और बंधक की अवधि बीतने के काफी बाद और, इसलिए, बिहार मनी लेंडर्स अधिनियम, 1974 के प्रावधान प्रयोज्य नहीं है। वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ के॰ प्रसाद द्वारा **AIR 1981 Pat. 172 (सुशील कुमार सिंह बनाम ब्रज मोहन सिंह)** मामले में पटना उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया गया है।

14. याची की ओर से अधिवक्ता के तर्कों का खंडन करते हुए विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री जय प्रकाश ने सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के प्रावधानों को प्रस्तुत किया है। जोर यह है कि आरंभ में ही प्रावधानों को कोरा पठन स्पष्ट करता है कि विधान मंडल का आशय है कि ''.....यदि किसी समय पर यह उपायुक्त के ध्यान में आया.....'' तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि कब्जा के प्रत्यावर्तन की अवधि की तुलना में परिसीमा की अवधि अथवा निषेध आशयित नहीं है यदि भूमि गैर आदिवासी के पास गयी है।

15. विद्वान अधिवक्ता ने धारा 71A के द्वितीय और तृतीय परन्तुक पर भी जोर दिया है। किंतु यह अंतरिती द्वारा निर्मित अस्तित्वशील संरचना के संबंध में है। वर्तमान मामले में, चूँकि मुआवजा की कतिपय मात्रा अधिनिर्णीत की गयी है और इस पर विवाद नहीं होने के कारण कि भूमि पर संरचनाएँ विराजमान है, यह वर्तमान विवाद के लिए तात्विक नहीं है।

16. अगला तर्क है कि सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 46 रैयत द्वारा अधिकार के किसी अंतरण को निषिद्ध करती है, बंधक की अवधि पाँच वर्षों से अधिक नहीं होनी चाहिए। निवेदन किया गया है कि परन्तुक (a) स्थानीय सीमाओं के अनुसूचित जनजाति को उपायुक्त की अनुमति के बिना अंतरण वर्जित करता है, अत: अंतरित की गयी भूमि प्रत्यावर्तित किए जाने की दायी है।

17. प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने अनेक निर्णयों पर विश्वास किया है। पहला मामला **श्रीमती बीना रानी घोष बनाम आयुक्त, दक्षिण छोटानागपुर,** 1985 PLJR 732 है। यह पूर्णपीठ का निर्णय है

जिसने धारा 71A के प्रावधानों और उपायुक्त को दी गयी समय सीमा कि कब वह सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A और बिहार अनुसूचित क्षेत्र विनियम, 1969 का अवलंब लेकर अनुसूचित जनजाति को दी गयी सुरक्षा के उल्लंघन का परिशोधन कर सकता है, को विचार में लिया है। पूर्णपीठ का निष्कर्ष था कि सुरक्षा समस्त विधि विरुद्ध अंतरणों के विरुद्ध व्यापक रूप से दी गयी है। पूर्णपीठ का जोर अनुसूचित जनजाति को वंचित करने वाले कपटपूर्ण अंतरणों को रोकना था और वर्ष 1969 के विनियम 1 द्वारा पुर: स्थापित सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के प्रावधान प्रकटत: अभिव्यक्तिपूर्ण थे, अत: विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है की मुआवजा के भुगतान के बाद अवर न्यायालयों द्वारा शून्य किए गए वर्तमान अंतरण में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। **फागू महतो एवं अन्य बनाम आयुक्त, दक्षिणी छोटानागपुर डिविजन एवं अन्य, 1986 BLT (Rep.) 173,** मामले में अन्य निर्णय पर भी विश्वास किया गया है। यह निर्णय सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 242 से संबंधित है। धारा 240 के उल्लंघन में 'मुंडारी खूँट कट्टिदार'' अभिधृति अथवा इसके किसी अंश का विधिविरुद्ध से कब्जा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की बेदखली के लिए प्रावधान है। ऐसे विधि विरुद्ध कब्जेदार व्यक्ति को बेदखल करने का अधिकार उपायुक्त को है। मेरे मत में, वर्तमान विवाद में यह प्रश्न अंतर्ग्रस्त नहीं है और न ही उद्धरण प्रासंगिक है।

18. प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत अगला निर्णय **सीटू साहू एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, (2004)8 SCC 340,** है। उक्त निर्णय प्रत्यावर्तन का दावा करने के लिए समय सीमा से संबंधित है क्योंकि प्रत्यावर्तन की शक्ति के प्रयोग में परिसीमा की वर्जना नहीं है, किंतु इसी समय पर उदारता का प्रयोग लंबा समय बीतने के बाद नहीं किया जा सकता है विशेषत: यदि तृतीय पक्ष का हित प्रभाव में आ सकता था।

19. परस्पर विरोधी तर्कों के आधार पर, मैं इस प्रश्न कि क्या अंतरण सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के प्रावधानों के उल्लंघन में था और यह प्रश्न कि क्या याची ने प्रतिकूल कब्जा द्वारा अपने अधिकार को पूरा कर लिया था और विलंब के प्रश्न का परीक्षण करने के लिए अग्रसर होती है।

20. यह सत्य है कि भूमि के प्रत्यावर्तन के लिए अधिनियम के अधीन परिसीमा की विनिर्दिष्ट अवधि प्रावधानित नहीं की गयी है कि क्योंकि सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A प्रावधानित करती है कि कार्यवाही किसी भी समय पर आरंभ की जा सकती है जब यह उपायुक्त के ध्यान में आता है। यद्यपि परिसीमा की अवधि प्रावधानित नहीं की गयी है और न ही स्पष्ट और संपूर्ण समय सीमा है फिर भी सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A और धारा 46 अनुसूचित क्षेत्र विनियम 1969 के अधीन आदिवासी के पक्ष में भूमि के प्रत्यावर्तन के प्रश्न पर विचार करते हुए सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों में अभिनिर्धारित किया गया था कि अधिनियम को भूतलक्षी प्रभाव से प्रयोज्य नहीं बनाया जा सकता है और वह भी अत्यधिक विलंब के बाद। **पतरास ओराँव बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (1991)2 BLJR 1048,** में अभिनिर्धारित किया गया था कि प्राधिकारीगण के तर्क कि अनुसूचित क्षेत्र विनियम, 1969 प्रयोज्य था, अभिखंडित कर दिया गया था और भूतलक्षी प्रभाव से प्रावधान की प्रयोज्यता विधि में असंपोषणीय अभिनिर्धारित किया गया था।

इसी प्रकार से, सर्वोच्च न्यायालय ने **सीटू साहू और अन्य (ऊपर)** मामले में धारा 71A में प्रयुक्त शब्द ''किसी समय पर'' की व्याख्या की। सर्वोच्च न्यायालय की व्याख्या है कि यह उपायुक्त को अधिनियम की सामाजिक आर्थिक नीति का क्रियान्वयन करने अर्थात् अनजान, अशिक्षित और पिछड़े नागरिकों के अधिकारों के अधिक्रमण को रोकने के लिए पर्याप्त लचीलापन देने का विधायी आशय

चिन्हित करता है। किंतु सर्वोच्च न्यायालय इससे अवगत था कि चूँकि समयावधि नियत नहीं की गयी है, अत:, कतिपय मार्गदर्शक सिद्धांत आवश्यक हैं। अभिनिर्धारित किया गया था कि समय की अयुक्तियुक्त अवधि बीतने के बाद, जिसके दौरान तृतीय पक्ष का हित प्रभाव में आ सकता था, प्रत्यावर्तन की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। यह ऐसा मामला नहीं है कि अपीलार्थी ने कपटपूर्वक भूमि अर्जित किया था। जहाँ तक सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 46 के प्रतिषेध का संबंध है जिसके द्वारा उपायुक्त की मंजूरी के बिना अनुसूचित जनजाति के सदस्य द्वारा अंतरण वर्ष 1926 में अस्तित्व में नहीं था और इसलिए मेरा मत है कि **सीटू साहू (ऊपर)** के मामले में अधिकथित विधि को लागू करते हुए अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान का उल्लंघन नहीं हुआ है। प्रत्यर्थीगण द्वारा इस उद्धरण पर भी विश्वास किया गया है किंतु मेरा दृष्टिकोण है कि चूँकि सर्वोच्च न्यायालय का स्पष्ट मत था कि उपयुक्तियुक्त लंबी अवधि के बाद जिसके दौरान तृतीय पक्ष का हित सृजित हो सकता था, प्रत्यावर्तन की ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। अत:, वर्तमान मामले में याची स्वीकृत रूप से तृतीय पक्ष है और उसने स्पष्ट रूप से अपना अधिकार पुख्ता किया है। स्वत: मोचन के तर्क, जैसा आक्षेपित आदेशों में प्राधिकारीगण द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, का प्रश्न ही नहीं है। अपीलीय प्राधिकारी और पुनरीक्षण प्राधिकारी ने पश्चातवर्ती घटना अर्थात् याची के पक्ष में अंतरण और पुनरीक्षण आवेदन दाखिल किए जाने के काफी पहले हक का पुख्ता किया जाना, को विचार में नहीं लिया था; अत: आक्षेपित आदेश विधि में दूषित है। **जय मंगल ओराँव बनाम मीरा नायक (श्रीमती) एवं अन्य** के साथ **जय मंगल ओराँव बनाम रीता सिन्हा एवं अन्य, (2000)5 SCC 141** में सर्वोच्च न्यायालय ने समरुप दृष्टिकोण अपनाया था। यह स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया गया था कि ''यदि किसी समय पर.....'' से आरंभ होने वाले प्रावधान का अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता है कि धारा 71A के प्रावधानों के अधीन शक्ति का प्रयोग समय सीमा के संदर्भ के बिना और सामान्य विधि के अधीन अर्जित अधिकार को विचार में लिए बिना किया जा सकता है।

21. पुनरीक्षण आदेश के परिशीलन पर पता चलता है कि विवाद इस आधार पर याची के विरुद्ध विनिश्चित किया गया है कि पाँच वर्ष बीतने के बाद बंधक को मोचित कर लिया गया था और बिहार मनी लेंडर्स अधिनियम, 1974 के अधीन स्वत: मोचन स्वीकार किया गया था। प्रत्यर्थीगण के दावे को मान्य ठहराते हुए, पुनरीक्षण न्यायालय ने **AIR 1978 SC 941** में प्रकाशित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया।

22. जहाँ तक प्रतिकूल कब्जा के प्रश्न का संबंध है, पुनरीक्षण न्यायालय का निष्कर्ष है कि मामले के तथ्य विवादित नहीं हैं। निष्कर्ष यह है कि याची ने प्रतिकूल कब्जा द्वारा हक अर्जित किया है। चूँकि स्वीकृत रूप से कब्जा अत्यन्त लंबी अवधि के लिए है, जो प्रतिकूल कब्जा के जरिए अपने अधिकार को पुख्ता करने की अपेक्षित अवधि से कहीं अधिक है। अत: वस्तुत: पुनरीक्षण न्यायालय ने बंधक के स्वत: मोचन के आधार पर याची का दावा अस्वीकार कर दिया था और बिहार मनी लेंडर्स अधिनियम, 1974 पर विश्वास किया था। जहाँ तक प्रासंगिक समय पर स्वत: मोचन के प्रश्न का संबंध है, जैसा वर्तमान मामले में अपीलीय न्यायालय द्वारा और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, यह स्वीकार्य नहीं है क्योंकि उक्त अधिनियम उस तिथि पर भी, जब अवर न्यायालय द्वारा स्वत: मोचन अभिनिर्धारित किया गया है, अस्तित्व में नहीं था। प्राधिकारीगण यह अधिमूल्यन करने में विफल रहे कि बंधक वर्ष 1926 में किया गया था। परिस्थितियों में, स्वत: मोचन के प्रश्न पर दर्ज निष्कर्ष स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

23. अगला प्रश्न जिसे विनिश्चित किया जाना है, प्रत्यावर्तन का दावा करने के लिए परिसीमा की अवधि का है जैसा सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 46 के अधीन प्रावधानित किया गया है। यह अवधि

केवल 12 वर्ष थी, बाद में सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A में वर्ष 1969 के विनियम–1 की पुर:स्थापना द्वारा परिसीमा की अवधि 30 वर्षों तक बढ़ा दी गयी थी यदि कतिपय निर्माणों को खड़ा किया गया है। वर्तमान मामले में, अंतरण वर्ष 1926 में हुआ था। अत: वर्ष 1938 में धारा 46 (4A) के अधीन परिसीमा का अवसान हो गया। यह उपधारित करते हुए कि अंतरण की तिथि वर्ष 1956 स्वीकार की जाती है, तब भी वर्ष 1968 में परिसीमा की अवधि का अवसान हो गया। अत:, प्रत्यावर्तन आवेदन विधि द्वारा वर्जित है क्योंकि इसे 44 वर्ष बीतने के बाद दाखिल किया गया है। **जय मंगल ओराँव (ऊपर)** में अधिकथित विधि के सिद्धांत का अनुसरण करते हुए, मैं अभिनिर्धारित करती हूँ कि कल्पना के किसी विस्तार तक 44 वर्ष की अवधि ''युक्तियुक्त समय'' नहीं है।

24. मैं विलंब के स्पष्टीकरण के संबंध में प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता के प्रतिवाद से सहमत हूँ कि स्व॰ मसीह दास मुंडा और जोसेफ मुंडा के निकटतम गोत्रजों के उत्तराधिकारियों के बीच सिविल वाद मूल अभिलिखित अभिधारी के उत्तराधिकारियों और प्रत्यर्थीगण के उत्तराधिकारियों के बीच अभिधान वाद सं॰ 783 वर्ष 1960 के तहत चल रहा था और तत्पश्चात अपील सं॰ 152 वर्ष 1963 दिनांक 16 मई, 1966 को खारिज कर दी गयी थी किंतु यह परिणामविहीन है। वर्ष 1970 में दाखिल प्रत्यावर्तन आवेदन युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता है। तृतीय पक्ष अर्थात् याची का हित काफी पहले सृजित हो चुका था और, इसलिए, वाद जारी रहने के संबंध में स्पष्टीकरण अर्थहीन है यद्यपि अवर न्यायालय ने इस तथ्यों को ध्यान में नहीं लिया था जो मेरे दृष्टिकोण बिल्कुल अप्रासंगिक है।

25. ऊपर किए गए कथन की दृष्टि में, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों को विधि में मान्य ठहराया नहीं जा सकता है। प्रत्यर्थी सं॰ 4 से 13 ने व्ययन की तिथि और वे किस तरह से अभिलिखित अभिधारी के साथ संबंधित थे, को उल्लिखित किए बिना मसीह दास मुंडा के उत्तराधिकारियों के रूप में सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के अधीन आवेदन दाखिल किया। मामला एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 140 वर्ष 1970-71 के तौर पर दर्ज किया गया था। उक्त आवेदन के आधार पर जो उनके दावे के किसी आधार को निर्मित किए बिना है। इस तथ्य का अभिकथन मात्र कि वे निकटतम गोत्रजों के उत्तराधिकारी थे, जैसा दोनों प्राधिकारीगण द्वारा स्वीकार किया गया है, शून्य किए जाने का दायी है और इसलिए, एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efrx.k

राकेश नारायण सिंह (969 में)

कार्तिकेश्वर नारायण सिंह (868 में)

cuke

झारखंड राज्य (दोनों में)

Criminal Appeal (D.B.) Nos. 969 with 868 of 2003. Decided on 25th August, 2011.

एस॰ टी॰ सं॰ 103 वर्ष 2000 में श्री प्रकाश राय, सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 9.6.2003 के दोषसिद्धि के आदेश और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 304B–दहेज मृत्यु–आजीवन कारावास–मृतका ने आत्महत्या की–धन की मांग और व्यंग्यात्मक टिप्पणियों का अभिकथन–अभियोजन द्वारा एक महत्वपूर्ण गवाह का परीक्षण नहीं किया गया–किंतु शव परीक्षण से प्रकट हुआ कि मृत्यु गला

दबाने के कारण हुई थी–अपीलार्थीगण के विरूद्ध अस्पष्ट और सामान्य अभिकथनों के आधार पर उनको धारा 304B के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है–पुनर्विचारण की प्रार्थना अनुज्ञात नहीं की जा सकती है क्योंकि विचारण के दौरान मुख्य अभियुक्त की मृत्यु हो गयी, एक अपीलार्थी 11 वर्षों से भी अधिक तक जेल में रहा है और एक अन्य 43 वर्ष की आयु का है–संदेह का लाभ देते हुए अपीलार्थीगण को दोषमुक्त किया गया।

(पैराएँ 3, 11, 20, 21 एवं 22)

अधिवक्तागण.–M/s Kanhaiya Prasad Singh, Kaushal Kishor Mishra (in both), For the Appellants; Mr. S.N. Rajgharia, A.P.P. (in both), For the Respondents.

आदेश

इन दोनों संबंधित अपीलों को साथ सुना जा रहा है और एक ही निर्णय द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304B के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और आजीवन कारावास का दंडादेश दिया गया है।

3. संक्षेप में, दिनांक 10.11.1999 को हजारीबाग सदर पुलिस थाना के समक्ष दिए गए मनोज कुमार चौहान, सूचक (अ॰ सा॰ 5), के लिखित रिपोर्ट से प्रतीत होने वाला अभियोजन मामला यह था कि उसकी बहन योगिता बाला उर्फ बेबी का विवाह अपीलार्थी राकेश नारायण सिंह के साथ जून, 1998 में हजारीबाग शहर में हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार हुआ था। विवाह के अवसर पर क्षमतानुसार नगद और आभूषण दिए गए थे। विवाहोपरांत उसकी बहन अपने दांपत्य गृह में 2-3 माह तक आराम से रही किंतु तत्पश्चात वह टेलीफोन पर अपने माता-पिता को अपने पति राकेश कुमार सिंह (अपीलार्थी) और ससुर कार्तिकेश्वर नारायण सिंह (अपीलार्थी) की उपस्थिति में अपनी सास उर्मिला देवी (जिसकी मृत्यु विचारण के दौरान हो गयी) की व्यंग्यात्मक टिप्पणियों/कटोक्ति के संबंध में बताया करती थी कि विवाह के समय पर दहेज में कुछ भी नहीं दिया गया था, यद्यपि उसका पुत्र 5 लाख रु॰ दहेज पा सकता था जिसकी वह हकदार थी; और कि उसने 5 लाख रुपया पाने का पुर्वानुमान लगाते हुए उसे अपनी बहू के रूप में स्वीकार किया था। जब कभी भी उसकी सास द्वारा इस प्रकार की टिप्पणियाँ की जाती थी, अपीलार्थीगण मौन रहते थे बल्कि यह कहते हुए कि वह (सास) सही थी, उसका समर्थन किया करते थे जिसके परिणामस्वरुप उसकी सास का व्यवहार बद से बदतर होता गया जिसके चलते उसे अपने माता-पिता को उसे वापास खूँटी ले जाने के लिए सूचित करना पड़ा था क्योंकि उसे अपने जीवन के प्रति खतरे की आशंका थी। एक माह बाद उसका पति राकेश रक्षा बंधन के उत्सव पर खूँटी आया और उसे वापस हजारीबाग ले गया। चूँकि वह बेरोजगार था, अत: उसने अपने घर में दुकान खोला। तत्पश्चात्, सास और पति दहेज मांगने लगे और योगिता को अपने मायके से दुकान शुरू करने के लिए धन मांगकर लाने को कहने लगे जिसमें विफल होने पर उसे अपने पैतृक गृह जाने के लिए कहा गया था। दीपावली की रात्रि उसने अपनी चाची (अ॰ सा॰ 4 की पत्नी), जो राँची में रह रही थी, के साथ टेलीफोन पर बात किया और अपने हाल-चाल के बारे में उसे सूचित किया और कहा कि छठ उत्सव के दौरान वह खूँटी जाना चाहती थी। अपनी मृत्यु के एक दिन पहले योगिता ने अपनी माता के साथ टेलीफोन पर बात की थी और उसे छठ उत्सव मनाने के बहाने खूँटी वापस ले चलने के लिए कहा था क्योंकि उसे अपने जीवन के प्रति खतरे की आशंका थी। सूचक की माता ने उसके पति और सास-ससुर से बात करने का प्रयास किया किंतु उन्होंने बात करने से इनकार कर दिया। दिनांक 9.11.1999 की शाम में सूचक के चाचा (अ॰ सा॰ 4) ने टेलीफोन पर अभियोजन पक्ष को सूचित किया कि योगिता गंभीर रूप से बीमार थी और

इस पर वे हजारीबाग आए और उन्हें अ॰ सा॰ 4 से पता चला कि योगिता ने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली थी। देर रात 1.30 बजे हजारीबाग पहुँचने पर अभियोजन पक्ष घटना–स्थान पर गया जहाँ उन्होंने बिस्तर पर योगिता का मृत शरीर पड़ा पाया। सूचक ने आगे अभिकथित किया कि योगिता ने फाँसी लगाकर आत्महत्या नहीं की थी बल्कि अभियुक्तगण ने उसकी हत्या की है। आगे अभिकथन किया गया है कि अभियुक्तगण द्वारा अभियोजन पक्ष को टेलीफोन पर सूचित किया गया था कि योगिता अचानक बीमार हो गयी थी और उसे डॉक्टर के पास ले जाया गया था जहाँ उसे मृत घोषित किया गया था। तत्पश्चात, सूचक के चाचा (अ॰ सा॰ 4) ने हजारीबाग सदर पुलिस थाना को टेलीफोन पर मामला रिपोर्ट किया। अंत में यह अभिकथित किया गया है कि अभियुक्तगण द्वारा योगिता की हत्या की गयी थी जो इसे आत्महत्या का रंग देने का प्रयास कर रहे थे। तद्नुसार, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 304B के अधीन प्राथमिकी दर्ज की गयी थी।

4. अभियुक्त का बचाव यह था कि योगिता ने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली थी।

5. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री कन्हैया प्रसाद सिंह ने निवेदन किया कि अभियोजन भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अवयवों को सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है। उन्होंने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया।

6. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए॰ पी॰ पी॰, श्री एस॰ एन॰ राजगढ़िया ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन करते हुए निवेदन किया कि इस मामले को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन पुनर्विचारण के लिए अवर न्यायालय को भेजा जा सकता है।

7. पक्षों की ओर से किए गए निवेदनों के अधिमूल्यन के लिए अभियोजन की ओर से प्रस्तुत अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य के प्रासंगिक अंश पर विचार करना आवश्यक है।

8. अ॰ सा॰ 1 ब्रजेश्वर प्रसाद साहा (योगिता का फूफा) ने कथन किया कि अभियुक्तगण दहेज के लिए उसे यातना दिया करते थे जब उनसे मृत्यु के बारे में पूछा गया, उन्होंने कहा कि उसने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली।

9. अ॰ सा॰ 2 ज्योत्सना देवी योगिता की माता है। उसने प्राथमिकी का समर्थन किया है।

अपने प्रति–परीक्षण में उसने कथन किया कि उसका पति अभियुक्त उर्मिला देवी की फुआ का पुत्र था और विवाह के पहले पक्षों के बीच आना–जाना था। योगिता ने स्नातक प्रतिष्ठा तक शिक्षा प्राप्त किया था। अपीलार्थी–राकेश विवाह के समय कुछ नहीं कर रहा था। अपीलार्थी राकेश, जिसने विवाह के पहले हजारीबाग में नया मकान बनवाया था की अच्छी वित्तीय स्थिति को दृष्टि में रखते हुए योगिता का विवाह उसके साथ किया गया था। उसने दहेज की मांग और यातना के संबंध में अभियुक्तगण के विरुद्ध सामान्य अभिकथन किया।

10. योगिता के पिता अ॰ सा॰ 3 धनंजय नाथ साह ने प्राथमिकी का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि योगिता को उसकी सास द्वारा यातना दी जाती थी और अपीलार्थी उसका समर्थन करता था। उसने स्वीकार किया कि विवाह के समय अपीलार्थी बेरोजगार था और उसकी अच्छी वित्तीय स्थिति को दृष्टि में रखते हुए उसने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ संपन्न किया था। उसने यह भी स्वीकार किया था कि उसके विवाह के पूर्व उसने योगिता की सहमति नहीं ली थी।

11. अ॰ सा॰ 4 मृत्युंजय नाथ साह योगिता का चाचा है और राँची में पेशे से अधिवक्ता है। उसने कथन किया कि अपीलार्थी कार्तिकेश्वर नारायण सिंह और उसकी पत्नी द्वारा दी गयी यातना के बारे में उसकी पत्नी को बताया गया था। उसने कथन किया कि उसकी पत्नी को मृतका की बीमारी के बारे में सूचित किया गया था।

यह गौर करना महत्वपूर्ण है कि यह गवाह अधिवक्ता है और उसने स्वीकार किया कि उसने इस मामले की प्राथमिकी को लिखा था। उसने आगे स्वीकार किया कि राँची रवाना होने के पहले उसे योगिता की मृत्यु के बारे में पता चला था। उसने सूचित किया कि दहेज की मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण योगिता की हत्या की गयी थी। उसने कथन किया कि दीपावली की रात उसकी पत्नी और योगिता के बीच बात हुई थी और योगिता छठ उत्सव के अवसर पर अपने माएके आना चाहती थी। उसने विनिर्दिष्टत: कथन किया कि योगिता सदैव उसकी पत्नी के साथ बात करती थी। यहाँ यह गौर करना महत्वपूर्ण है कि योगिता सदैव इस गवाह की पत्नी के साथ बात किया करती थी और इसलिए वह एक महत्वपूर्ण गवाह थी किंतु यह ज्ञात नहीं है कि अभियोजन ने उसे पेश क्यों नहीं किया था।

12. अ॰ सा॰ 5 मनोज कुमार चौहान इस मामले का सूचक है। उसने प्राथमिकी का समर्थन किया।

13. अ॰ सा॰ 6 डॉ॰ अमिताभ गांगुली है जिन्होंने दिनांक 10.11.1999 को मृतका का शव परीक्षण किया। उन्होंने गर्दन के बायें हिस्से पर खरोंच पाया। उन्होंने मत दिया कि गला दबाने से मृत्यु कारित हुई थी।

14. अ॰ सा॰ 7 सुबोध कुमार पासवान को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया था। उसने अन्य बातों के साथ साथ कथन किया कि योगिता ने आत्महत्या की थी।

15. अ॰ सा॰ 8 नागेन्द्र कुमार साह को भी पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया था। उसने मात्र इतना कहा कि उसे अ॰ सा॰ 7 से आत्महत्या के बारे में पता चला।

16. अ॰ सा॰ 9 रमेश कुमार सिंह को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया था। उसने कथन किया कि अभियुक्तगण ने दहेज नहीं मांगा था।

17. अ॰ सा॰ 10 बिजय कुमार मिश्रा इस मामले का अन्वेषण अधिकारी है।

18. अ॰ सा॰ 11 डॉ॰ इंद्र मोहन प्रसाद गुप्ता है जिसने कहा कि पोलियो के कारण योगिता का बायाँ हाथ पोलियो से ग्रस्त था।

19. बचाव पक्ष ने चार गवाहों का परीक्षण किया जिन्होंने मुख्यत: कथन किया कि समय के किसी बिंदु पर कोई यातना नहीं दी गयी थी और योगिता ने स्वयं को फाँसी लगाकर आत्महत्या की थी। अपीलार्थी राकेश नारायण सिंह का ब॰ सा॰ 3 के रूप में परीक्षण किया गया था जिसने कथन किया कि वह इंटर स्तर तक शिक्षित है।

20. यद्यपि हम संतुष्ट हैं कि योगिता ने आत्महत्या नहीं की थी किंतु दहेज के लिए यातना के संबंध में अपीलार्थीगण के विरुद्ध अस्पष्ट और सामान्य साक्ष्य के आधार पर जैसा ऊपर गौर किया गया है, भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करना सुरक्षित नहीं होगा। सास उर्मिला देवी के विरुद्ध विनिर्दिष्ट अभिकथन किए गए थे किंतु विचारण के दौरान उसकी मृत्यु हो गयी थी।

21. भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन पुनर्विचारण के लिए राज्य अधिवक्ता की प्रार्थना स्वीकार्य नहीं है क्योंकि अभिकथित घटना दिनांक 9.11.1999 को हुई थी। (अपीलार्थी राकेश कुमार सिंह 11 वर्षों से अधिक तक कारा में रहा है। अपीलार्थी कार्तिकेश्वर नारायण सिंह की आयु लगभग 73 वर्ष है।) इतने समय बाद हम भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन पुनर्विचारण के लिए मामला वापस भेजना उचित नहीं समझते हैं।

22. परिणामस्वरुप, इन दोनों अपीलों को अनुज्ञात किया जाता है। दोनों अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त किया जाता है और एस॰ टी॰

सं॰ 103 वर्ष 2000 में विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा दिनांक 9.6.2003 को पारित आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी कार्तिकेश्वर नारायण सिंह को उसके जमानत बंधपत्रों के दायित्वों से उन्मोचित किया जाता है। अपीलार्थी राकेश नारायण सिंह को अभिरक्षा से तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है।

---

ekuuh; vkjs vkjs çlkn] U;k;efr

मुरली मोहन मिश्रा

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P.(S) No. 4102 of 2005. Decided on 17th October, 2011.

विद्यालय विधियाँ–वेतनमान–उस तिथि, जिससे याची के जूनियरों को इसे दिया गया था, स्नातक प्रशिक्षित वेतनमान देने से इनकार–स्नातक प्रशिक्षित वेतनमान प्रदान किए जाने के प्रयोजन से रिक्ति की तिथि तात्विक होगी और न कि प्राधिकारी जिसने नियुक्ति की थी–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 4 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajeeva Sharma, For the Petitioner; J.C. to S.C.I, For the State.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची को दिनांक 26.7.1970 को झिकरहाती मध्य विद्यालय की प्रबंधन कमिटि द्वारा सहायक शिक्षक के रूप में पहले नियुक्त किया गया था। बाद में, जब बिहार राज्य द्वारा निजी विद्यालयों को अधिग्रहित किया गया था, याची के विद्यालय का भी अधिग्रहण किया गया था। किंतु, नियमों के निबंधनानुसार, याची की सेवाओं को उस तिथि से मान्यता नहीं दी गयी थी जब याची को प्रबंधन कमिटि द्वारा नियुक्त किया गया था। अत:, याची ने पटना उच्च न्यायालय में सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 1891 वर्ष 1976 दाखिल किया जिसके द्वारा आदेश, जिसके अधीन याची की सेवाओं को मार्च, 1974 के प्रभाव से मान्यता दी गयी थी, को अभिखंडित कर दिया गया था और उसकी आरंभिक नियुक्ति की तिथि के प्रभाव से मान्यता प्राप्त शिक्षक के रूप में याची को माने जाने के लिए निर्देश जारी किया गया था। पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में जिला शिक्षा अधीक्षक ने मेमो सं॰ 77 में अंतर्विष्ट दिनांक 24.8.1977 के अपने आदेश के तहत दिनांक 26.7.1970 के प्रभाव से याची की सेवाओं को मान्यता प्रदान किया। समयक्रम में, याची दिनांक 2.8.1973 को स्नातक प्रशिक्षित बन गया और याची को स्नातक प्रशिक्षित वेतनमान दिया गया था किंतु इसे दिनांक 1.4.1981 के प्रभाव से दिया गया था जबकि याची के जूनियरों को अर्थात् बिजय कुमार घोष को दिनांक 10.6.1974 के प्रभाव से स्नातक प्रशिक्षित वेतनमान दिया गया था। उस स्थिति के अधीन, याची ने पटना उच्च न्यायालय में सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 778 वर्ष 1990 दाखिल किया जिसे यह निर्देश देते हुए निपटाया गया था कि जिला शिक्षा स्थापन कमिटि, साहिबगंज दिनांक 2.8.1973 अथवा विधि के अनुरुप किसी अन्य तिथि के प्रभाव से स्नातक प्रशिक्षित वेतनमान की प्रभावकारी तिथि को शिफ्ट करने के संबंध में याची के दावे पर विचार करेगी। उस आदेश के अनुसरण में, जिला शिक्षा स्थापन कमिटि, पाकुर ने दिनांक 28.4.2005 को मेमो सं॰ 483 में अंतर्विष्ट आदेश पारित किया जिसके द्वारा कमिटि ने दिनांक 2.8.1973 के प्रभाव से स्नातक प्रशिक्षित वेतनमान प्रदान करने से इस आधार पर इनकार कर

दिया कि याची का मामला याची के जूनियर के समरूप नहीं था। परिशिष्ट–1 में अंतर्विष्ट उस आदेश को दोषपूर्ण कहते हुए चुनौती दी गयी है।

3. एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है जिसमें परिशिष्ट–1 के समर्थन में निम्नलिखित दृष्टिकोण अपनाया गया है:–

> *^^fd fjV vkonu d ijkxkQ 32 e fn, x, c;ku d lcèk e ;g dFku vkj fuonu fd;k tkrk g fd fjV ;kph dk çkUufr çnku fd, tku dk ekeyk vU; 0;fDr;k d ekey d le#i ugh g tlk ;kph u mfYyf[kr fd;k gA fjV ;kph çcèku dfefV }kjk fu;Dr fd;k x;k Fkk vkj mlls lhfu;j vU; 0;fDr;k dk rRdkyhu MhO ,lO bO] lFkky ijxuk] nedk }kjk fu;Dr fd;k x;k Fkk] vr%] blls budkj fd;k tkrk gA***

4. असल में इसी आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया है जिसके द्वारा जिला शिक्षा स्थापन कमिटि ने दिनांक 2.8.1973 के प्रभाव से याची को स्नातक प्रशिक्षित वेतनमान देने से इनकार किया गया है।

5. यह कथन किया जाए कि जब प्रबंधन कमिटि द्वारा की गयी नियुक्ति की तिथि से याची की सेवाओं को मान्यता नहीं दी गयी थी, याची ने पटना उच्च न्यायालय में सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 1891 वर्ष 1976 दाखिल किया और पटना उच्च न्यायालय ने उस आदेश को अभिखंडित कर दिया जिसके द्वारा याची की सेवाओं को मार्च, 1974 के प्रभाव से मान्यता दी गयी थी। परिणामस्वरुप, प्रबंधन कमिटि द्वारा शिक्षक की नियुक्ति की तिथि के प्रभाव से याची को मान्यता प्राप्त शिक्षक के रूप में मानने का निर्देश राज्य प्राधिकारी को दिया गया था।

6. उस स्थिति के अधीन, दावा से इनकार करने के लिए राज्य प्राधिकारी द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण कि याची को प्रबंधन कमिटि द्वारा नियुक्त किया गया था जबकि याची के जूनियर जिसे दिनांक 10.6.1974 के प्रभाव से स्नातक प्रशिक्षित वेतनमान दिया गया था, को डी॰ एस॰ ई॰ द्वारा नियुक्त किया गया था, बिल्कुल अप्रासंगिक है क्योंकि स्नातक प्रशिक्षित वेतनमान प्रदान करने के प्रयोजन से रिक्ति की तिथि तात्विक होगी और न कि प्राधिकारी जिसने नियुक्ति की। इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि बिजय कुमार घोष, जिसे दिनांक 10.6.1974 के प्रभाव से स्नातक प्रशिक्षित वेतनमान दिया गया था, याची का जूनियर था।

7. मामले के उस दृष्टिकोण में, याची दिनांक 10.6.1974 के प्रभाव से स्नातक प्रशिक्षित वेतनमान का हकदार है।

8. तद्नुसार, परिशिष्ट–1 में अंतर्विष्ट जिला शिक्षा स्थापन कमिटि द्वारा पारित दिनांक 28.4.2005 का आदेश एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

9. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

10. तद्नुसार, इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर याची को पारिणामिक लाभ दिया जाए।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efrx.k

महाबीर मंडल एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (DB) No. 369 of 2001. Decided on 11th October, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 125 वर्ष 1994/37 वर्ष 2001 में विद्वान द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, गिरिडीह द्वारा पारित दिनांक 30.7.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 31.7.2001 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34—हत्या–सामान्य आशय–आजीवन कारावास–दोषसिद्धि एकमात्र चश्मदीद गवाह के साक्ष्य पर आधारित–स्वतंत्र गवाह पक्षद्रोही बन गये–एकमात्र चश्मदीद गवाह संयोगी साक्षी है–एकमात्र चश्मदीद गवाह के साक्ष्य पर ही दोषसिद्धि करना सुरक्षित नहीं है–अभियोजन मामला समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध नहीं किया गया–संदेह का लाभ देते हुए दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त किया गया। (पैराएँ 7 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. Mahesh Kumar Sinha, For the Appellants; Mr. Shekhar Sinha, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 125 वर्ष 1994/37 वर्ष 2001 में अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/34 के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध करते हुए और उनको आजीवन कारावास भुगतने और प्रत्येक को 5000/- रुपयों का जुर्माना, जिसका भुगतान मृतक के पुत्र को मुआवजा के रूप में किया जाना है और जिसमें विफल रहने पर अपीलार्थीगण को दो वर्षों का कठोर कारावास भुगतना था, का भुगतान करने का दंडादेश देते हुए विद्वान द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, गिरिडीह द्वारा पारित दिनांक 30.7.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 31.7.2001 के दंडादेश से उद्भूत होती है।

2. अपीलार्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री महेश कुमार सिन्हा द्वारा निवेदन किया गया है कि अपील के लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी सं॰ 1 महाबीर मंडल की मृत्यु दिनांक 16.7.2006 को हो गयी और इसे प्रभारी अधिकारी, सरिया पुलिस थाना, गिरिडीह द्वारा भेजे गए रिपोर्ट से संपुष्ट किया गया है और वह उसकी ओर से इस अपील पर बल नहीं दे रहे हैं।

3. तद्नुसार, अपीलार्थी सं॰ 1 महावीर मंडल की ओर से इस अपील पर बल नहीं दिए जाने के कारण खारिज किया जाता है।

4. श्री सिन्हा ने आगे निवेदन किया कि अभियोजन ने अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध नहीं किया है और किसी भी स्थिति में, अपीलार्थी अब तक लगभग 13½वर्षों की कुल अवधि के लिए जेल में बना रहा है और वर्ष 1993 से इस मामले में पीड़ित है।

5. दूसरी ओर, राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री शेखर सिन्हा ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

6. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि दिनांक 16.3.1993 को अपीलार्थीगण ने यह कहते हुए मृतक को गाली दी कि मृतक के घर के निकट खड़ा बाँस का पेड़ अपीलार्थी बाबूलाल यादव के खपरैल की छत को डिस्टर्ब कर रहा है। तत्पश्चात्, अपीलार्थीगण ने मृतक की पत्नी ननकी देवी को ईंट–पत्थर मारकर घायल कर दिया। जब उसे होश आया, वह पुलिस थाना गयी और तब अपने इलाज के लिए गयी। मृतक भी उसको देखने गया। कुछ समय बाद, अपीलार्थीगण किसी उत्ती मंडल के साथ मृतक के घर के निकट जमा हुए और उसकी प्रतीक्षा की। जब वह अपनी घायल पत्नी को देखकर लौट रहा था, अ॰ सा॰ 1 (मृतक की बहू) ने देखा कि अपीलार्थीगण ने मृतक पर प्रहार किया था जिस कारण घटनास्थल पर उसकी मृत्यु हो गयी। अपीलार्थी सं॰ 2 बाबूलाल यादव के संबंध में यह भी कहा गया था कि उसने मृतक का गला दबा दिया था। डॉक्टर, जिन्होंने मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षण किया था, ने मत दिया कि मस्तक गर्दन और छाती पर पायी गयी उपहतियाँ कड़े एवं भोथरे वस्तु द्वारा कारित की गयी थी जो प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी।

7. पक्षों को सुनने और अभिलेख पर लायी गयी सामग्रियों के परिशीलन के बाद, यह प्रतीत होता है कि दोषसिद्धि अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य पर आधारित है। अभियोजन के मुताबिक, वह एकमात्र चश्मदीद गवाह है। मृतक के संबंधी अ॰ सा॰ 3 ने कहा कि उसने वास्तविक घटना को नहीं देखा था और उसने केवल मृतक को घायल पड़े देखा था जब वह घटना स्थल पर पहुँची थी। उसने यह भी कहा कि अ॰ सा॰ 1 उसके बाद वहाँ पहुँची थी। अ॰ सा॰ 1 संयोगी साक्षी है। उसने कहा कि वह गुजवा देवी के साथ लौट रही थी जिसने भी घटना को देखा था किंतु इस मामले में गुजवा का परीक्षण नहीं किया गया है। अ॰ सा॰ 2, जो स्वतंत्र गवाह है, को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है। अतः, यह संदेहास्पद हो जाता है कि वह चश्मदीद गवाह थी। इन परिस्थितियों में, केवल अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि बनाए रखना सुरक्षित नहीं होगा।

8. इन परिस्थितियों में, हमारे मत में अभियोजन ने अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध नहीं किया है और अपीलार्थीगण संदेह के लाभ पाने के योग्य हैं।

9. परिणामस्वरुप, यह अपील अनुज्ञात की जाती है। अपीलार्थीगण के विरुद्ध विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण को आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। अपीलार्थी सं॰ 2 (बाबूलाल यादव) अभिरक्षा में है, उसे तुरंत निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, जमशेदपुर

cuke

प्रदीप सिंह एवं अन्य

L.P.A. No. 106 with I.A. No. 2721 of 2008. Decided on 12th October, 2011.

सेवा विधि–नियुक्ति–नियुक्ति के लिए केवल साक्षात्कार मापदंड था–रिट याची के 16 वर्षों के अनुभव को अनदेखा कर दिया गया और नियुक्ति उस व्यक्ति को दी गयी जिसके पास कोई अनुभव नहीं था–अनुभव का शिथिलीकरण संपूर्ण अनुभव के अधित्यजन की तुलना में भिन्न है–मुआवजा प्रदान करने वाले आदेश को मान्य ठहराया गया। (पैराएँ 2 से 4)

अधिवक्तागण.–Mr. Manish Mishra, For the Appellant; Mr. Ananda Sen, For the Respondent No. 1.

आदेश

आई॰ ए॰ सं॰ 2721 वर्ष 2008

परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन दाखिल आवेदन पर पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

अपील दाखिल करने में 36 दिनों के विलंब को माफ किया जाता है।

आई॰ ए॰ सं॰ 2721 वर्ष 2008 निपटायी जाती है।

एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 106 वर्ष 2008

मामले के गुणागुण पर पक्षों को सुना गया।

2. विद्वान एकल न्यायाधीश ने पाया कि पात्रता मापदंड के मुताबिक, 5 वर्षों के अनुभव की आवश्यकता थी और याची की तरह डिप्लोमा धारकों के लिए 10 वर्षों का अनुभव आवश्यक था। याची, जिसके पास 16 वर्षों का अनुभव था, साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था और उसे नियुक्ति देने से इनकार किया गया था क्योंकि उसे साक्षात्कार, में सफल नहीं पाया गया था। यहाँ यह उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा कि नियुक्ति के लिए केवल साक्षात्कार मापदंड था। प्रत्यर्थी सं॰ 5, जिसके पास कोई अनुभव नहीं था, का चयन किया गया था और अपीलार्थी द्वारा किया गया अभिवचन यह है कि अपीलार्थी को अनुभव शिथिल करने का अधिकार था। इस मामले में, इस बहाने पर उस व्यक्ति, जिसके पास कोई अनुभव नहीं था, को नियुक्ति दी गयी है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करने के बाद कि उसकी नियुक्ति मनमानी और असद्भावपूर्ण है, प्रत्यर्थी सं॰ 5 की नियुक्ति को अपास्त नहीं किया है किंतु मामले के तथ्यों को देखते हुए याची को 25,000/- रुपयों और बाल विहार सोनारी, जमशेदपुर जो एन॰ जी॰ ओ॰ प्रतीत होता है, को 25,000/- रुपयों का मुआवजा का भुगतान करने के लिए राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान को निर्देश देते हुए रिट याची को मुआवजा अधिनिर्णीत किया।

3. चूँकि यह ऐसा मामला है जहाँ रिट याची को प्रत्यर्थी-अपीलार्थी द्वारा अनावश्यक रूप से परेशान किया गया है और चयन प्रक्रिया, जिसे उन्होंने विकसित किया, स्पष्टत: मनमानी प्रतीत होती है, अत:, यदि मुआवजा के रूप में कोई नुकसानी अधिनिर्णीत की गयी है, हम उक्त आदेश में, जहाँ रिट याची के 16 वर्षों के अनुभव को अनदेखा किया गया था और ऐसे व्यक्ति को नियुक्ति दी गयी थी जिसके पास कोई अनुभव नहीं था। अपीलीय अधिकारिता में हस्तक्षेप करना नहीं चाहते हैं। अनुभव को शिथिल करना संपूर्ण अनुभव के अधित्यजन की तुलना में कुछ भिन्न है।

4. उक्त कारणों की दृष्टि में, हम इस एल॰ पी॰ ए॰ में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjh vkjh çlkn] U;k;efr

राम सज्जन शर्मा

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 5590 of 2011. Decided on 12th October, 2011.

सेवा विधि–स्थानांतरण–उपायुक्त द्वारा याची को डी॰ आर॰ डी॰ ए॰ से ग्रामीण विकास विभाग में संप्रत्यावर्तित किया गया–एक स्थान से दूसरे स्थान में स्नानांतरण न केवल एक घटना है बल्कि सेवा की शर्त भी है–यह लोकहित में और लोक प्रशासन में दक्षता के लिए आवश्यक है–किसी अधिसूचना की अनुपस्थिति में, यह नहीं कहा जा सकता है कि जिला समाहर्ता जो डी॰ आर॰ डी॰ ए॰ का अध्यक्ष भी है, को डी॰ आर॰ डी॰ ए॰ के प्रशासन के मामले में कार्यपालक और वित्तीय प्राधिकार नहीं है–याची की ओर से अदक्षता के कारण पारित आदेश दोषपूर्ण नहीं है–रिट आवेदन खारिज। (पैराएँ 9, 12 से 16)

निर्णयज विधि.–(2001) 8 SCC 574—Relied on; (2004)4 SCC 245; (2009)2 SCC 592; 2009 (3) JCR 237(Jhr)—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. R.S. Majumdar, For the Petitioner; Mr. Rajiv Ranjan, For the State.

आदेश

दिनांक 7.9.2011 के मेमो सं॰ 1200 में अंतर्विष्ट आदेश, जिसके द्वारा जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी (डी॰ आर॰ डी॰ ए॰) में प्रतिनियुक्त लेखाधिकारी याची को उसके मूल विभाग ग्रामीण विकास विभाग, झारखंड सरकार, में उपायुक्त, खूँटी द्वारा संप्रत्यावर्तित किया गया, चुनौती के अधीन है।

2. याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री आर॰ एस॰ मजूमदार ने निवेदन किया कि स्थानांतरण/संप्रत्यावर्तन का आदेश दो गणनाओं पर दोषपूर्ण है। उनमें से एक जिला ग्रामीण विकास एजेंसी में प्रतिनियुक्त व्यक्तियों के स्थानांतरण/संप्रत्यावर्तन का आदेश पारित करने के लिए उपायुक्त की प्राधिकार विहीनता है।

3. इस संबंध में कथन किया गया था कि ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने जिला ग्रामीण विकास विभाग प्रशासन को मार्गदर्शक सिद्धांतों को जारी किया है जिसे झारखंड राज्य द्वारा अपनाया गया है। उक्त गाइडलाइन के खंड 5.2 को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया गया था कि जिला परिषद का अध्यक्ष जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी के शासी निकाय का अध्यक्ष होगा। इसके अतिरिक्त, कार्यपालक और वित्तीय कार्यों का निर्वहन सी॰ ई॰ ओ॰ जिला परिषद्/जिला समाहर्त्ता द्वारा किया जाएगा जिसे मुख्य कार्यपालक अधिकारी अथवा कार्यपालक निदेशक के रूप में पदनामित किया जाएगा और विकास उपायुक्त को जिला परिषद्, खूँटी के सी॰ ई॰ ओ॰ के रूप में पदनामित किया गया है जो परिशिष्ट–10 से स्पष्ट होगा और इस स्थिति के अधीन उपायुक्त, खूँटी को आक्षेपित आदेश पारित करने का प्राधिकार नहीं है। दूसरा आधार जिस पर आक्षेपित आदेश का विरोध किया जा रहा है, यह है कि कतिपय अभिकथनों, जो दंडात्मक प्रकृति के हैं, पर स्थानांतरण/संप्रत्यावर्तन को प्रभाव दिया गया है और इस प्रकार स्थानांतरण का आदेश **सोमेश तिवारी बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2009)2 SCC 592** मामले में दिए गए निर्णय की दृष्टि में बिल्कुल दोषपूर्ण है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दंड के बदले पारित स्थानांतरण का आदेश पूर्णत: गैर–कानूनी होने के कारण अपास्त किए जाने का दायी है।

4. इसके विरुद्ध, विद्वान अपर महाधिवक्ता, श्री राजीव रंजन ने निवेदन किया कि यद्यपि आदेश मुख्यालय में नहीं निवास करने, जिला ग्रामीण विकास एजेंसी के प्रशासन पर प्रतिकूल प्रभाव कारित करते हुए अन्य के काम में अनावश्यक हस्तक्षेप करने के अभिकथनों को अंतर्विष्ट करता है, किंतु प्रभाव में याची को अक्षमता के कारण स्थानांतरित किया गया है और इसलिए, स्थानांतरण/संप्रत्यावर्तन के आदेश को दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता है।

5. अपने निवेदन के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता ने **भारत संघ एवं अन्य बनाम जनार्दन देबनाथ एवं एक अन्य, (2004)4 SCC 245** के मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया है।

6. आगे निवेदन किया गया है कि जिला ग्रामीण विकास एजेंसी के लिए लेखाधिकारी का केवल दो पद मंजूर किया गया है और इसके विरुद्ध दो व्यक्तियों को पहले ही, यद्यपि संविदात्मक आधार पर पदस्थापित किया गया है और इसलिए लेखाधिकारी के पद पर याची का बने रहना मंजूर किए गए स्ट्रेंथ के आधिक्य में होगा और याची के स्थानांतरण/संप्रत्यावर्तन को प्रभाव देने का यह भी एक कारण था।

7. आगे इंगित किया गया है की याची का मूल विभाग बिहार राज्य लघु उद्योग विकास निगम, बिहार, पटना है। उस विभाग से उसे ग्रामीण विकास विभाग, झारखंड सरकार में प्रतिनियुक्त किया गया था। बाद में, उसे जिला ग्रामीण विकास एजेंसी, खूँटी में प्रतिनियुक्त किया गया था किंतु अब ग्रामीण विकास

विभाग ने दिनांक 20.9.2011 के अपने आदेश के तहत अपने मूल विभाग में पदग्रहण करने के लिए याची को भारमुक्त कर दिया है। ऐसा होने के कारण, याची को मूल विभाग में संप्रत्यावर्तित कर दिए जाने के कारण जिला ग्रामीण विकास एजेंसी में पद धारण करने का अधिकार नहीं है और इस घटना के कारण आक्षेपित आदेश में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

8. विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया कि अदक्षता के कारण, बिहार सेवा संहिता के नियम 56A के प्रावधान की दृष्टि में किसी का स्थानांतरण किया जा सकता है जिस प्रतिपादना को इस न्यायालय द्वारा **भारत संघ एवं अन्य बनाम जनार्दन देबनाथ एवं एक अन्य (ऊपर)** के मामले में अधिकथित निर्णयाधार का अनुसरण करने के बाद **अर्जुन प्रसाद सिंह बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, 2009 (3) JCR 237 (Jhr)** में अधिकथित किया गया है।

9. यह सुनिश्चित किया गया है कि किसी सरकारी सेवक अथवा लोक उपक्रम के किसी कर्मचारी को किसी विशेष स्थान पर अथवा अपने पसंद के स्थान पर सदा के लिए पदस्थापित होने का विधिक अधिकार नहीं है क्योंकि स्थानांतरणीय पदों के वर्ग अथवा श्रेणी में नियुक्त किसी विशेष कर्मचारी का एक स्थान से दूसरे स्थान को स्थानांतरण न केवल एक घटना है, बल्कि सेवा की शर्त भी है जो लोकहित में और लोक प्रशासन में दक्षता के लिए आवश्यक है। जब तक स्थानांतरण का आदेश असद्भावपूर्ण कार्य के परिणाम के रूप में दर्शाया नहीं जाता है अथवा ऐसा कोई स्थानांतरण प्रतिषिद्ध करने वाले किसी सांविधिक प्रावधान के उल्लंघन में किया गया कथित नहीं किया जाता है, न्यायालय अथवा अधिकरण रुटीन के तौर पर ऐसे आदेशों में हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं मानो वे संबंधित सेवा की प्रशासनिक अत्यावश्यकता के हित में पारित ऐसे आदेशों के विरुद्ध नियोक्ता/प्रबंधन के निर्णयों के लिए स्वयं अपना निर्णय प्रतिस्थापित करने वाले अपीलीय प्राधिकारीगण थे।

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त प्रतिपादना **नेशनल हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर कॉरपोरेशन लिमिटेड बनाम श्री भगवान (2001)8 SCC 574** के मामले में प्रतिपादित की गयी है।

11. वर्तमान मामले में, याची के अनुसार, उपायुक्त, खूँटी जिला ग्रामीण विकास एजेंसी का सी॰ ई॰ ओ॰ नहीं होने के कारण जिला ग्रामीण विकास एजेंसी में काम पर लगाए गए व्यक्ति के स्थानांतरण को प्रभाव देने के लिए सक्षम नहीं है। यह निवेदन जिला ग्रामीण विकास एजेंसी के प्रशासन के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा जारी गाइडलाइन के खंड 5.2 पर आधारित है। उक्त खंड का पठन निम्नलिखित है:–

> *"5.2. MhO vkj0 MhO ,0 lkIkbVh jftLV'ku vfèkfu;e d vèkhu jftLVM lkIkbVh vFkok fty ifj"kn e iFkd igpku oky lfHkUu dk"B gkxkA fty ifj"kn dk vè;{k MhO vkj0 MhO ,0 d 'kkIh fudk; dk vè;{k gkxkA fdr dk;ikyd vFkok foÙkh; dk; lhO bO vkO fty ifj"kn@fty lekgrk d ikI gkx ftUg e[; dk;ikyd vfèkdkjh vFkok dk;ikyd fun'kd d :i e inukfer fd;k tk,xkA ;g lfuf'pr djuk mldh ftEenkjh gkxh fd MhO vkj0 MhO ,0 dk ç'kkIu ,o çkxke xkbMykbu d vuIkj Ipkfyr fd;k tk;A tc dHkh fty ifj"kn vfLrRoghu gkrk g] MhO vkj0 MhO ,0 lekgrk@ftykfèkdkjh@fty d mik;Dr] tIk Hkh ekeyk gk] d vèkhu dk; djxkA***

12. इसके परिशीलन से स्पष्टत: स्पष्ट है कि कार्यपालक अथवा वित्तीय कार्य का निर्वहन सी॰ ई॰ ओ॰, जिला परिषद्/जिला समाहर्ता द्वारा किया जाएगा जिन्हें मुख्य कार्यपालक अधिकारी के रूप में

पदनामित किया जाएगा। याची के अनुसार, डी॰ डी॰ सी॰ को सी॰ ई॰ ओ॰, जिला परिषद् के रूप में अधिसूचित किया गया है जो निवेदन कतिपय व्यक्तियों के स्थानांतरण से संबंधित अधिसूचना पर आधारित है जिसमें आदेशों में से एक में डी॰ डी॰ सी॰ को सी॰ ई॰ ओ॰ जिला परिषद्, खूँटी के रूप में दर्शाया गया है किंतु यह उपदर्शित नहीं करता है कि सी॰ ई॰ ओ॰, जिला परिषद् को जिला ग्रामीण विकास एजेंसी के मुख्य कार्यपालक अधिकारी अथवा कार्यपालक निदेशक के रूप में पदनामित किया गया है। इसके अतिरिक्त, किसी अधिसूचना को अभिलेख पर यह दर्शाने के लिए नहीं लाया गया है कि सी॰ ई॰ ओ॰ को जिला ग्रामीण विकास एजेंसी के मुख्य कार्यपालक अधिकारी अथवा कार्यपालक निदेशक के रूप में पदनामित किया गया है। अत: ऐसी किसी अधिसूचना की अनुपस्थिति में यह नहीं कहा जा सकता है कि जिला समाहर्ता, जो जिला ग्रामीण विकास एजेंसी के अध्यक्ष भी है, को जिला ग्रामीण विकास एजेंसी के प्रशासन के मामले में कार्यपालक और वित्तीय प्राधिकार नहीं है।

13. दूसरे बिंदु पर आते हुए, यह कहा जाए कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सोमेश तिवारी बनाम भारत संघ एवं अन्य (ऊपर)** मामले में संप्रेक्षित किया है कि जब स्थानांतरण का आदेश दंड के बदले पारित किया जाता है, यह अपास्त किए जाने का दायी होता है।

14. किंतु, **भारत संघ एवं अन्य बनाम जनार्दन देबनाथ एवं एक अन्य (ऊपर)** मामले में यह संप्रेक्षित किया गया है कि स्थानांतरणों जब तक वे ऐसे किसी प्रतिकूल प्रभाव को अंतर्ग्रस्त नहीं करते हों अथवा इनका परिणाम संबंधित व्यक्तियों के लिए दंडात्मक नहीं हो, तबतक इन्हें उसी प्रकार के संवीक्षण, दृष्टिकोण और निर्धारण के अध्यधीन करने की आवश्यकता नहीं है जैसी आवश्यकता बर्खास्तगी, उन्मोचन, प्रतिवर्तन अथवा सेवा समाप्ति के मामलों में होती है और लोक सेवा में अनुशासन, मर्यादा एवं शालीनता प्रवर्तित करने के लिए संबंधित विभाग को अत्यधिक उदार होनी चाहिए जो लोक सेवा की गुणवता को बनाए रखने और प्रशासन के सुगम क्रियाकलाप को सुनिश्चित करने के लिए अनपेक्षित प्रशासनिक अत्यावश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक है।

15. आगे अभिनिर्धारित किया गया है कि स्थानांतरण को प्रभाव देने के प्रयोजन से यह पता लगाने के लिए कि क्या किसी कर्मचारी द्वारा दुर्व्यवहार अथवा अशोभनीय आचरण किया गया है, जाँच करने का प्रश्न अनावश्यक है और आवश्यकता केवल परिवाद किए गए घटना के बारे में समकालीन रिपोर्टों पर संबंधित प्राधिकारी की प्रथम दृष्टया संतुष्टि है अत: यदि विस्तृत जाँच करने की आवश्यकता, जैसा प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है, पर जोर दिया जाता है, मर्यादा प्रवर्तित करने के लिए अथवा सदाचार सुनिश्चित करने के लिए लोकहित अथवा प्रशासन की अत्यावश्यकता में कर्मचारी को स्थानांतरित करने का प्रयोजन विफल हो जाएगा।

16. मामले के उस दृष्टिकोण में, यदि प्राधिकारी ने याची की ओर से अदक्षता के कारण स्थानांतरण का आदेश पारित किया है, उक्त आदेश दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता है। अन्य कारणों से भी, आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है क्योंकि याची को पहले ही मूल विभाग में संप्रत्यावर्तित कर दिया गया है।

17. किंतु, आदेश से अलग होने के पहले यह कहा जाए कि आक्षेपित आदेश में जो भी अभिकथन किए गए हैं, वे एकपक्षीय होने के कारण याची के प्रतिकूल नहीं हो सकते हैं।

18. मामले के उस दृष्टिकोण में, याची की ओर से की गयी आशंका कि याची को एल॰ पी॰ सी॰ जारी नहीं किया जा सकता है, आधारहीन प्रतीत होता है।

19. अत:, मैं इस रिट आवेदन में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ। अत:, यह रिट आवेदन खारिज किया जाता है।

ekuuh; ç'kkr dekj] U;k;efr

अवधेश कुमार सिंह उर्फ सिंहजी एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 223 of 2011. Decided on 13th October, 2011.

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता, 1860—धाराएँ 147, 148, 149, 448, 341, 342, 323, 379, 427, 435 एवं 452—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—संपत्ति को नुकसान एवं अनेक वस्तुओं की चोरी–संज्ञान–याचीगण ने अभिकथित रूप से सूचक और अन्य व्यक्तियों पर प्रहार किया और भवन को भंजित किया–प्राथमिकी में किए गए अभिकथनों को आई॰ ओ॰ के रिपोर्ट द्वारा समर्थित किया गया–याचीगण का अपराध करने का आशय था–झूठा आलिप्त करने का कोई कारण नहीं है–मात्र इसलिए कि सिविल कार्यवाही लंबित है, दांडिक कार्यवाही को अभिखंडित नहीं किया जा सकता है–आवेदन खारिज। (पैराएँ 6 से 9)

निर्णयज विधि.–(2002)1 SCC 555—Relied on; 1992 Supp. (1) SCC 335; (2000)1 SCC 322—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s R.S. Mazumdar, S.N. Prasad, Birendra Burman, For the Petitioners; Mr. P.K. Sahay, For the State; M/s Mahesh Tewari, A.K. Tewari, For the Opp. Party No.2.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.–यह आवेदन ओरमांझी पी॰ एस॰ केस सं॰ 109 वर्ष 2008, जी॰ आर॰ केस सं॰ 3746 वर्ष 2008 के तत्सम, में मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, राँची द्वारा पारित आदेश के अभिखंडन के लिए है जिसके द्वारा उन्होंने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 147, 148, 149, 448, 341, 342, 323, 379, 427, 435 और 452 के अधीन अपराधों के लिए संज्ञान लिया और याचीगण के विरुद्ध समनों को जारी किया।

2. यह अभिकथित किया गया है कि किसी श्रीमती उषा देवी ने ग्राम चकला में खाता सं॰ 30, भूखंड सं॰ 18 से संबंधित 1.19 एकड़ भूमि को दिनांक 7.7.2005 के विक्रय विलेख सं॰ 10415 के तहत खरीदा और इसका शांतिपूर्ण कब्जा लिया। आगे अभिकथित किया गया है कि पूर्वोक्त उषा देवी ने इलाहाबाद बैंक, हरमू शाखा, राँची से कर्ज लिया और आमंत्रण रेस्टूरेंट नामक होटल का निर्माण किया। तब अभिकथित किया गया है कि दिनांक 26.9.2008 को प्रातः लगभग 8 बजे अभियुक्तगण तलवार, भाला, बंदूक, पिस्तौल आदि अनेक हथियारों से लैस होकर आमंत्रण रेस्टूरेंट के परिसर में आए और बुलडोजर का प्रयोग करके रेस्टूरेंट के भवन को भंजित कर दिया। आगे अभिकथित किया गया है कि घटना के क्रम में अभियुक्तगण ने रेस्टूरेंट के बर्तनों, कुर्सियों, मेजों, जेनरेटर, इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं और रेफ्रिजरेटर का नुकसान किया। आगे अभिकथित किया गया है कि अभियुक्त नंद गोपाल साहू ने अभय दूबे के 18,000/- रुपए मूल्य का सोने का चेन छीन लिया। यह भी अभिकथित किया गया है कि समस्त अभियुक्तगण ने रजिस्ट्रेशन सं॰ जे॰ एच॰ 01 पी॰ 8875 वाले मोटरसाइकिल को जला दिया जो मनोज कुमार तिवारी के नाम पर था।

3. पूर्वोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, पुलिस ने दिनांक 26.9.2008 को ओरमांझी पी॰ एस॰ केस सं॰ 109 वर्ष 2008 दर्ज किया और अन्वेषण आरंभ किया। अन्वेषण के बाद, दिनांक 24.11.2008 को सह–अभियुक्त गोविन्द लाल गुप्ता, उग्रसेन साहू, उमा शंकर साहू, अमित कुमार साहू, गोविन्द प्रसाद,

लक्ष्मण साहू, मुकेश पांडे, नंदी दूबे, अशीष साहू, रमेश साहू और रमेश साहू के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया और इसके आधार पर, पूर्वोक्त अभियुक्तगण के विरुद्ध संज्ञान लिया गया था। तब यह प्रतीत होता है कि दिनांक 30.11.2010 के आरोप-पत्र सं॰ 179 वर्ष 2010 के तहत याचीगण के विरुद्ध पूरक आरोप-पत्र दाखिल किया गया था और उक्त पूरक आरोप-पत्र के आधार पर विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने दिनांक 22.12.2010 के आदेश के तहत याचीगण के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 147, 148, 149, 448, 341, 342, 323, 379, 427, 435 और 452 के अधीन अपराधों का संज्ञान लिया। इस आवेदन में दिनांक 22.12.2010 के पूर्वोक्त आदेश को चुनौती दी गयी है।

4. याचीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री आर॰ एस॰ मजूमदार द्वारा निवेदन किया गया है कि स्वीकृत रूप से ग्राम चकला के खाता सं॰ 30 भूखंड सं॰ 18 से संबंधित भूमि के संबंध में पक्षों के बीच अभिधान वाद लंबित है। यह निवेदन भी किया गया है कि सूचक और श्रीमती उषा देवी के विरुद्ध दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 144 और दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 107 के अधीन प्रश्नगत भूमि के संबंध में कार्यवाही आरंभ की गयी थी और उनके विरुद्ध निषेध आज्ञा पारित की गयी थी। यह निवेदन किया गया है कि सूचक और श्रीमती उषा देवी ने उक्त निषेध आज्ञा का उल्लंघन किया और याचीगण द्वारा इसे सब-डिविजनल दंडाधिकारी, सदर, राँची के ध्यान में लाया गया था। निवेदन किया गया है कि सब-डिविजनल दंडाधिकारी ने ओरमांझी पुलिस को जाँच करने का निर्देश दिया और जाँच करने के बाद ओरमांझी पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धारा 188 के अधीन श्रीमती उषा देवी और अजय कुमार दूबे के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ करने के लिए दिनांक 8.5.2008 को रिपोर्ट प्रस्तुत किया। निवेदन किया गया है कि प्रभारी-अधिकारी, ओरमांझी पुलिस थाना द्वारा प्रस्तुत पूर्वोक्त रिपोर्ट के विरुद्ध वर्तमान मामला दाखिल किया गया है। निवेदन किया गया है कि वर्तमान प्राथमिकी याचीगण से प्रतिशोध लेने के द्वेषपूर्ण और अंतरस्थ हेतु के साथ दाखिल की गयी थी क्योंकि उन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता की धाराओं 107, 144 और 145 के अधीन कार्यवाही आरंभ करने के लिए वाद और आवेदन भी दाखिल किया था।

5. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता, श्री महेश तिवारी निवेदन करते हैं कि यह सत्य है कि प्रश्नगत भूमि के संबंध में अभिधान वाद सं॰ 315 वर्ष 2007 का सिविल वाद उप न्यायाधीश-I, राँची के न्यायालय में लंबित है। उन्होंने निवेदन किया कि याची नंद गोपाल साहू की प्रेरणा पर दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं 144 और 145 के अधीन अनेक कार्यवाहियाँ आरंभ की गयी थी किंतु, अंततः दिनांक 18.2.2008, 2.6.2008 और 6.5.2009 के आदेशों के तहत रोक दी गयी थी। आगे निवेदन किया गया है कि श्रीमती उषा देवी और सूचक को भूमि पर जाने से अवरुद्ध करने के लिए अस्थायी व्यादेश प्रदान करने के लिए सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXXIX, नियम 1 और 2 के अधीन याची सं॰ 2 नंद गोपाल साहू ने आवेदन दाखिल किया था, किंतु याची सं॰ 2 का उक्त आवेदन दिनांक 8.5.2008 को उप-न्यायाधीश-I, राँची द्वारा इस निष्कर्ष पर आते हुए खारिज कर दिया गया था कि श्रीमती उषा देवी भूमि पर काबिज थी। निवेदन किया गया है कि जब याचीगण न्यायालयों से कोई अनुतोष प्राप्त करने में विफल रहे, उन्होंने दिनांक 26.9.2008 को अर्थात् घटना की तिथि पर स्वयं अपने हाथों में कानून लिया, उन्होंने विधि विरुद्ध जमाव निर्मित किया और आमंत्रण रेस्टूरेंट के परिसर में आए और रेस्टूरेंट में बैठे सूचक और उसके आदमियों पर प्रहार करने के बाद रेस्टूरेंट की अनेक वस्तुओं और फर्नीचरों को नष्ट कर दिया। निवेदन किया गया है कि याचीगण और अन्य अभियुक्तगण ने बुलडोजर का प्रयोग करके रेस्टूरेंट के भवन को भंजित कर दिया। नंद गोपाल साहू (याची सं॰ 2) ने अभय दूबे का सोने का चेन छीन लिया और जे॰ एच॰ 01 पी॰ 8875 रजिस्ट्रेशन संख्या वाली उसकी मोटरसाइकिल जला दी। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि वस्तुतः याचीगण और उनके सहयोगियों ने श्रीमती उषा देवी और सूचक के विरुद्ध प्रतिशोध लेने की दृष्टि से पूर्वोक्त अपराध किया क्योंकि विभिन्न न्यायालयों द्वारा पारित अनेक आदेश उनके पक्ष में गए थे। यह निवेदन किया गया है कि याचीगण की प्रेरणा पर सिविल वाद के लंबित रहने को

वर्तमान अपराध करने के लाइसेंस के रूप में नहीं माना जा सकता है। अतः, वाद का लंबित रहना संज्ञान के आदेश को अभिखंडित करने के लिए आधार नहीं है। आगे निवेदन किया गया है कि आरोप-पत्र दाखिल करते हुए अन्वेषण अधिकारी ने निरपवाद रूप से कथन किया था कि अन्वेषण के दौरान उसने घटनास्थल का निरीक्षण किया था और गवाहों के बयानों को दर्ज किया था और इस निष्कर्ष पर आया कि याचीगण के विरुद्ध किए गए अभिकथन सत्य हैं। इस प्रकार, अन्वेषण के दौरान संग्रहित सामग्रियाँ प्रथम दृष्टया दर्शाती हैं कि याचीगण और उनके आदमियों ने वर्तमान अपराध किया था।

6. निवेदन सुनने पर, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। प्राथमिकी के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि याचीगण और अन्यों ने दिनांक 26.9.2008 को प्रातः लगभग 8 बजे आमंत्रण रेस्टूरेंट के परिसर में तलवार, भाला, बन्दूक इत्यादि से लैस होकर गए थे और सूचक एवं अन्य व्यक्तियों पर प्रहार किया था। यह भी अभिकथित किया गया है कि अभियुक्तगण ने अभय दूबे को जलाकर मारने का प्रयास किया था। यह भी अभिकथित किया गया है कि अभियुक्तगण ने रजिस्ट्रेशन सं॰ जे॰ एच॰ 01 पी॰ 8875 वाले मोटर साइकिल को जला दिया जो मनोज कुमार तिवारी के नाम पर थी। याची सं॰ 2 के विरुद्ध विनिर्दिष्ट अभिकथन है कि उसने अभय दूबे की 18,000/- रुपये मूल्य वाली सोने की चेन को छीना था। अभिकथित किया गया है कि अभियुक्तगण ने रेस्टूरेंट को लूट लिया और इसके मेजों, कुर्सियों, रेफ्रिजेरेटर, जेनरेटर, इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं और अन्य सामानों को तोड़ दिया। यह भी अभिकथित किया गया है कि याची सं॰ 2 द्वारा आदेश दिए जाने पर अभियुक्तगण ने बुलडोजर का प्रयोग करके रेस्टूरेंट के भवन को भंजित कर दिया। परिशिष्ट-11 (आरोप-पत्र) के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि अन्वेषण अधिकारी ने घटनास्थल का दौरा किया था और गवाहों के बयानों को दर्ज किया था और तब इस निष्कर्ष पर आया था कि प्राथमिकी में किए गए अभिकथन सत्य हैं। तद्नुसार, उसने याचीगण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया। इस प्रकार, प्राथमिकी में किए गए अभिकथनों के परिशीलन से और आई॰ ओ॰ के वस्तुपरक निष्कर्ष, जैसा आरोप-पत्र (परिशिष्ट-11) में कथित किया गया है, से भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 147, 148, 149, 448, 341, 342, 323, 379, 427, 435 और 452 के अधीन प्रथम दृष्टया अपराध बनते हैं।

7. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद कि याचीगण के विरुद्ध प्रतिशोध लेने के अंतरस्थ हेतु के साथ द्वेषपूर्वक प्राथमिकी दर्ज की गयी थी, क्योंकि याची सं॰ 2 ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं 144 और 145 के अधीन कार्यवाही आरंभ करने के लिए वाद और आवेदन दाखिल किया था, विश्वास उत्पन्न नहीं करता है। यह सत्य है कि प्रश्नगत भूमि पर उसका हक घोषित करने के लिए याची सं॰ 2 ने अभिधान वाद दाखिल किया था जो अभिधान वाद सं॰ 315 वर्ष 2007 था, किंतु परिशिष्ट-H के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि याची सं॰ 2 द्वारा दाखिल व्यादेश के लिए आवेदन विद्वान उप-न्यायाधीश-I, राँची द्वारा दिनांक 8.5.2008 के आदेश के तहत इस निष्कर्ष पर आते हुए खारिज कर दिया गया था कि वाद संपत्ति श्रीमती उषा देवी के कब्जा में थी। तब परिशिष्ट-E के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि याची सं॰ 2 के कहने पर दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 के अधीन आरंभ की गयी कार्यवाही दिनांक 18.2.2008 के आदेश के तहत रोक दी गयी थी। केस सं॰ M358/2008 में दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 144 के अधीन शुरू की गई एक अन्य कार्यवाही दिनांक 2.6.2008 के आदेश के माध्यम से रोक दी गयी थी। आगे प्रतीत होता है कि उषा देवी ने उसके नाम को नामांतरित करने से इनकार करते हुए अंचलाधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध नामांतरण पुनरीक्षण दाखिल किया था जिसे प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट-G में अंतर्विष्ट आदेश द्वारा अनुज्ञात किया गया था। इस प्रकार, मैं पाता हूँ कि सिविल न्यायालय और कार्यपालिका न्यायालयों दोनों द्वारा अनेक कार्यवाहियों के परिणाम उषा देवी के पक्ष में गए थे और वह भी प्राथमिकी दर्ज किए जाने के पहले। इस प्रकार, उसके अथवा सूचक के पास अभियुक्तगण के विरुद्ध प्रतिशोध लेने और वर्तमान मामले में उनको झूठा आलिप्त करने का कोई कारण नहीं होगा। दूसरी ओर, प्रथम दृष्टया प्रतीत होता है कि याचीगण और अन्य सह-अभियुक्तगण क्रोधित और निराश हो गए थे, क्योंकि न्यायालयों के समस्त आदेश उनके विरुद्ध गए थे। इस प्रकार, प्रथम दृष्टया, याचीगण और अन्य सह-अभियुक्तगण

के पास वर्तमान अपराध करने का कारण था। उक्त परिस्थिति के अधीन, अपने प्रतिवादों के समर्थन में याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए मामलों–**हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम भजन लाल एवं अन्य, 1992 Supp. (1) Supreme Court Cases 335** और **परमिंदर कौर बनाम उ० प्र० राज्य एवं एक अन्य, 2000 (1) SCC 322** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर प्रयोज्य नहीं है।

8. श्री मजूमदार का द्वितीय प्रतिवाद कि चूँकि प्रश्नगत भूमि के संबंध में सिविल वाद लंबित है, अतः दांडिक कार्यवाही चलाई नहीं जा सकती है, आधारहीन है। **कमला देवी अग्रवाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, 2002 (1) Supreme Court Cases 555,** में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि मात्र इसलिए कि एक ही पक्षों के बीच सिविल कार्यवाही लंबित है, दांडिक कार्यवाही अभिखंडित नहीं की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, प्राथमिकी में याचीगण के विरुद्ध किए गए अभिकथनों से केवल दांडिक दायित्व निर्मित हुए हैं जिनका विचारण दांडिक न्यायालय द्वारा किया जा सकता है। यह सुनिश्चित है कि सिविल और दांडिक कार्यवाही का विस्तार और प्रकृति भिन्न और सुभिन्न है। यह कहना अनावश्यक है कि घटना दिनांक 26.9.2008 को अर्थात् अभिधान वाद सं० 315 वर्ष 2007 दाखिल किए जाने के काफी बाद हुई थी। इस प्रकार, सिविल न्यायालय में लंबित मामला दांडिक न्यायालय का विषयवस्तु नहीं है। उस आधार पर भी, श्री मजूमदार का तर्क भ्रामक प्रतीत होता है, और इसलिए इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

9. जैसा ऊपर गौर किया गया है, प्राथमिकी और आरोप-पत्र के परिशीलन से प्रथम दृष्टया आक्षेपित आदेश में संगणित अपराध निर्मित हुए हैं। अतः, मैं आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, यह आवेदन गुणागुण रहित होने के कारण खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; Mhe ,u iVy] U;k;efr

ललिता कुंडुलना

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 5591 of 2008. Decided on 22nd September, 2011.

झारखंड पेंशन नियमावली, 2000—नियम 58—इस आधार पर कि याची के पति को गैरकानूनी रूप से नियुक्त किया गया था, मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभों से इनकार–याची के पति को वर्ष 1983 में सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था, वह सरकार के अधीन सेवा में था, वह अधिष्ठायी और स्थायी आधार पर नियोजित किया गया था और सरकार द्वारा उसके वेतन का भुगतान किया जाता था–याची पारिवारिक पेंशन की हकदार है–रिट याचिका 5000/- रुपयों के व्यय के साथ अनुज्ञात की गयी। (पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.–Mr. M.M. Pan, For the Petitioner; J.C. to G.P.-IV, For the Respondent-State; Mr. S. Shrivastava, For the Respondent No.5.

आदेश

वर्तमान याचिका मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभों को पाने के लिए सहायक शिक्षक की विधवा द्वारा दाखिल की गयी है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि याची के पति को दिनांक 6 दिसंबर, 1983 के प्रभाव से आर॰ सी॰ प्राथमिक विद्यालय, कुरकुरा, जिला सिमडेगा में सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था और, तत्पश्चात, याची ईमानदारीपूर्वक, परिश्रम से और प्रत्यर्थीगण के संतोषानुसार काम कर रहा था। याची के पति को कारण बताओ नोटिस कभी नहीं दिया गया था और वह सरकार से वेतन पा रहा था। नियोजन के क्रम में दिनांक 26 सितंबर, 2005 को याची की पति की मृत्यु हो गयी और, इसलिए, उसकी विधवा होने के नाते याची मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभों को पाने की हकदार है। याची को मृत्यु-सह-सेवानिवृति लाभ देने से इनकार केवल इस आधार पर किया गया है कि उसके पति को गैर-कानूनी रूप से और प्रत्यर्थीगण द्वारा स्थापित प्रक्रिया का पालन किए बगैर नियुक्त किया गया था। अत: याची के पति की मृत्यु के बाद यह आधार विधि में मान्य नहीं है और याची अपने पति की मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभों को पाने की हकदार है।

3. प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि याची के पति को विधि के अनुरूप नियुक्त नहीं किया गया था और उसके पास आवश्यक शिक्षक प्रशिक्षण प्रमाणपत्र नहीं था और, इसलिए, उसको सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त, उसकी सेवाएँ प्रत्यर्थीगण द्वारा वर्ष 1999 में अनुमोदित नहीं की गयी थी और, इसलिए, याची अपने पति की मृत्यु के कारण मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभों को पाने की हकदार नहीं है।

4. प्रत्यर्थी सं॰ 5 के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि झारखंड पेंशन नियमावली, 2000 के नियम 58 के मुताबिक जब एक बार अधिष्ठायी और स्थायी आधार पर सरकार के अधीन नियुक्ति की जाती है और यदि सरकार द्वारा उसके वेतन का भुगतान किया जाता है, तब पेंशन और ऐसे अन्य सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान नहीं करने का कोई कारण नहीं है और याचिका के मेमो के परिशिष्ट-3 के मुताबिक प्रत्यर्थीगण द्वारा याची के पति की सेवाओं को अनुमोदित किया गया है और प्रति शपथपत्र में इससे इनकार नहीं किया गया है कि याची के पति की सेवा को कभी भी अनुमोदित नहीं किया गया था। न ही यह कथन किया गया है कि परिशिष्ट-3 मनगढ़ंत दस्तावेज है।

5. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मैं मुख्यत: निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से याचिका के मेमो के परिशिष्ट-2 पर दिनांक 3 दिसंबर, 2007 को प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा पारित आदेश को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ:-

(i) याची के पति को दिनांक 6 दिसंबर, 1983 को आर॰ सी॰ प्राथमिक विद्यालय, कुरकुरा, जिला सिमडेगा में सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था और तत्पश्चात याची के पति ने ईमानदारीपूर्वक, परिश्रम से और प्रत्यर्थीगण के संतोषानुसार काम किया और याची के पति को किसी अवचार के लिए अथवा अभिकथित अनियमित नियुक्ति के लिए कोई कारण बताओ नोटिस कभी नहीं दिया गया था।

(ii) याचिका के मेमो के परिशिष्ट-3 से आगे प्रतीत होता है कि जिला शिक्षा अधीक्षक, गुमला (अब सिमडेगा) ने आर॰ सी॰ प्राथमिक विद्यालय, कुरकुरा, जिला सिमडेगा में वर्तमान याची के पति की नियुक्ति को अनुमोदित किया है। इस प्रकार, याची के पति की सेवायें सरकार द्वारा अनुमोदित की गयी थी और 535-765 रुपयों का वेतनमान भी दिया गया है जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-3 पर है।

(iii) यह भी प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 17 दिसंबर, 1995 के प्रभाव से याची के पति को मैट्रिक प्रशिक्षित वेतनमान भी प्रदान किया था, तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि याची के पति आवश्यक

शिक्षक प्रशिक्षण प्रमाण पत्र परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है और, तत्पश्चात, याची के पति को मैट्रिक प्रशिक्षित वेतनमान दिया गया था। यह याची के इस दृष्टिकोण को दृढ़ बनाता है कि याची के पति की सेवायें याचिका के मेमो के परिशिष्ट–4 पर मौजूद आदेश के तहत आगे अनुमोदित की गयी थी।

(iv) तत्पश्चात्, याची के पति को सरकार द्वारा वेतन दिया जाता था और अपने नियोजन के दौरान याची के पति की मृत्यु दिनांक 26 सितंबर, 2005 को हो गयी। अत: याची मृत्यु–सह–सेवानिवृत्ति लाभों को अपने पति की मृत्यु के कारण पाने की हकदार है, जो पूर्वोक्त विद्यालय में सहायक शिक्षक के रूप में सेवारत था।

(v) प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि याची के पति की नियुक्ति विधि के प्रावधानों से असंबद्ध थी। यह प्रतिवाद इस चरण पर अर्थात् याची के पति की मृत्यु के बाद इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है। अभिकथित अनियमितता अथवा अवैधता के आधार पर याची के पति की नियुक्ति कभी भी समाप्त और/अथवा रद्द नहीं की गयी थी। प्रत्यर्थीगण द्वारा ऐसा कोई आदेश अभिलेख पर नहीं लाया गया है। इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी–राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि याची के पति की सेवाओं को वर्ष 1999 में अनुमोदित नहीं किया गया था। यह प्रतिवाद भी इस न्यायालय द्वारा दिनांक 24 फरवरी, 1984 के परिशिष्ट–3 को देखते हुए और दिनांक 7 फरवरी, 1997 के परिशिष्ट–4 को देखते हुए स्वीकार नहीं किया गया है। इन दो परिशिष्टों द्वारा याची के पति की सेवाओं को संपुष्ट और अनुमोदित किया गया था और आगे शिक्षक प्रशिक्षण प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बाद आवश्यक वेतनमान दिया गया था और उसे मैट्रिक प्रशिक्षित वेतनमान भी दिया गया था जिसे आगे अनुमोदित किया गया है और परिशिष्ट–4/1 को देखते हुए वेतनमान के नियतिकरण की विस्तृत संगणना जिला शिक्षा अधीक्षक, गुमला (अब सिमडेगा) द्वारा दिया गया था। अत:, दिनांक 3 दिसंबर, 2007 का आक्षेपित आदेश पारित करते हुए प्रत्यर्थीगण द्वारा परिशिष्ट–2 में दिए गए कारण पूर्णत: गलत तर्क हैं और परिशिष्टों–3, 4, 4/1 के विपरीत है।

(vi) झारखंड पेंशन नियमावली, 2000 के नियम 58 को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि याची मृत्यु–सह–सेवानिवृत्ति लाभों का हकदार है। झारखंड पेंशन नियमावली, 2000 के नियम 58 का पठन निम्नलिखित है:–

> *"58. ljdkjh lod dh lok i'ku d fy, rc rd vfgr ugh gkrh g tc rd fuEufyf[kr rhu 'krk d lkFk ;g lxr ugh g%&*
>
> ***igyk-&*** *lok ljdkj d vèkhu gkuh gkxhA*
>
> ***nljk-&*** *fu;ktu vfèk"Bk;h vkj LFkk;h gkuk gkxkA*
>
> ***rhljk-&*** *ljdkj }kjk lok dk Hkxrku fd;k tkuk gkxkA***

इस प्रकार, पूर्वोक्त नियम 58 की दृष्टि में, याची का पति सरकार के अधीन सेवा में था, वह अधिष्ठायी और स्थायी आधार पर नियोजित था और सरकार द्वारा याची के पति को वेतन का भुगतान किया जाता था। इस प्रकार, वर्तमान मामले के तथ्यों में इन समस्त शर्तों को स्थापित किया गया है और इसलिए याची पेंशन, जो अब पारिवारिक पेंशन के रूप में ज्ञात है, की हकदार है। इस नियम सह–पठित प्रत्यर्थी राज्य द्वारा जारी परिशिष्ट–7 परिपत्र को देखते हुए प्रतीत होता है कि सरकारी सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक विद्यालय के शिक्षकों को भी इसका लाभ दिया गया है।

(vii) **रंजू देवी बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,** 1999 (3) PLJR 504, में पैराग्राफ 5 और 6 पर माननीय पटना उच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:

^^5. ;g U;k;ky; jkT; d fo}ku vfèkoDrk d mDr fuonu dk vfèkeY;u dju e foQy gA çR;Fkhx.k dk ekeyk ;g ugh g fd ;kph d ifr dh fu;fDr vfHkdfFkr vfu;ferrk vFkok@vkj voèkrk d dkj.k dHkh lekIr vkj@vFkok jí dj nh x;h FkhA çR;Fkhx.k }kjk , lk dkb vkn'k vfHky[k ij ugh yk;k x;k gA ;g lR; gk ldrk g fd ;kph dk ifr fnukd 7.10.1996 d ckn vuifLFkr jgkA fdr tc rd mldh lok lekIr ugh dh x;h Fkh] og ljdkjh lok e cuk jgkA

*6. ;g fookfnr ugh g fd ikfjokfjd i'ku d Hkxrku l lcfèkr l'kkfèkr çkoèkkuk d erkfcd for foHkkx d fnukd 3.9.1964 d eek l0 iu&103/64-9505 e fofgr U;ure ,d o"k lok dh vko';drk jkT; ljdkj }kjk lekIr dj nh x;h Fkh vkj fofuf'pr fd;k x;k Fkk fd ljdkjh depkjh] ft ldk ijh{k.k mld vkjfHkd fu;fDr d le; ij MkDVj }kjk fd;k x;k Fkk] dh eR; dh fLFkfr e 0;fDr ikfjokfjd i'ku dk gdnkj gkxkA ifjf'k"V&1 e vrfo"V vkn'k l çrhr gkrk g fd ;kph dk inxg.k lgk;d flfoy ltu l fpfdRlk çek.k i= dh çLrfr d ckn Lohdkj fd;k tkuk FkkA çR;Fkhx.k dk ekeyk ;g ugh g fd viu inxg.k d igy MkDVj }kjk ;kph d ifr dk ijh{k.k ugh fd;k x;k FkkA ;kph dh vkj l fuonu fd;k x;k g fd ;kph }kjk fpfdRlk çek.k i= çLrr fd;k x;k Fkk tk foHkkx e j[k x, ;kph d ifr dh Qkby e igy gh vfHky[k ij gA***

(tkj fn;k x;k)

पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में भी, याची अपने पति की मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभों को पाने की हकदार है और प्रत्यर्थीगण द्वारा किया गया अभिवचन कि जब उसके पति को नियुक्त किया गया था, उसकी नियुक्ति में अनियमितता थी, को याची के पति के मृत्यु के बाद करने की अनुमति नहीं है।

6. पूर्वोक्त तथ्यों, कारणों और न्यायिक उद्घोषणाओं के समेकित प्रभाव के कारण मैं याचिका के मेमो के परिशिष्ट-2 पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा पारित दिनांक 3 दिसंबर, 2007 के आदेश को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ। मैं प्रत्यर्थीगण को एतद् द्वारा समस्त मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभों, जो याची को कानूनन भुगतान योग्य है, को प्रदान करने का निर्देश देता हूँ। इसे इस न्यायालय के आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा पूरा कर लिया जाना होगा। मैं तत्पश्चात चार माह की अवधि के भीतर याची को धनीय लाभ का वास्तविक भुगतान करने के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 1 और 2 को निर्देश देता हूँ। इस न्यायालय के आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से एक सप्ताह की अवधि के भीतर संबंधित प्रत्यर्थी प्राधिकारी द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 5 को आवश्यक पेंशन कागजात और ऐसे अन्य कागजात भेजे जाएँगे और प्रत्यर्थी सं॰ 5 इस पर तुरन्त निर्णय करेगा।

7. यह रिट याचिका 5000/- (पाँच हजार रुपये) रुपयों के व्यय के साथ अनुज्ञात की जाती है जिसका भुगतान प्रत्यर्थी झारखंड राज्य द्वारा याची को इस न्यायालय के आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से दो सप्ताह की अवधि के भीतर किया जाएगा।

8. रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

ekuuh; çkkr dekj] U;k;efr

गंगा ठाकुर एवं अन्य

cuke

लक्ष्मी ठाकुर एवं अन्य

AFAD No. 32 of 1989. Decided on 13th October, 2011.

टी॰ एस॰ सं॰ 20 वर्ष 1976 में श्री रामानंद शर्मा, मुंसिफ, डाल्टेनगंज द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 24.11.1984 और दिनांक 13.12.1984 के निर्णय और डिक्री से उद्भूत टी॰ ए॰ सं॰ 14 वर्ष 1985 में श्री जे॰ के॰ प्रसाद, षष्टम अपर जिला न्यायाधीश, पलामू द्वारा पारित दिनांक 12.12.1988 के निर्णय और डिक्री (डिक्री दिनांक 22.12.1988 को हस्ताक्षरित) के विरुद्ध।

हिंदू विधि–बँटवारा–अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा वाद डिक्री किया गया–अपीलीय न्यायालय ने एक निश्चित निष्कर्ष दिया था कि कोई संयुक्त परिवार न्यूक्लियस नहीं था जिससे संयुक्त परिवार कोई संपत्ति खरीद सकता था–अपना दावा सिद्ध करने के लिए प्रतिवादीगण द्वारा दिया गया साक्ष्य कि बाल काटने का सैलून वादी और प्रतिवादीगण द्वारा संयुक्त रूप से खोला गया था, अस्पष्ट और संक्षिप्त है और विश्वास उत्पन्न नहीं करता है–यह वादी का पृथक व्यवसाय है–प्रश्नगत संपत्ति खरीदने के लिए सैलून से आय पर्याप्त थी–अपील खारिज।

(पैराएँ 8 से 15)

अधिवक्तागण.–Mr. V.K. Prasad, For the Appellants; Mr. Manjul Prasad, For the Respondents.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.–यह अपील बँटवारा अपील सं॰ 14 वर्ष 1985 में षष्टम अपर जिला न्यायाधीश, पलामू द्वारा पारित दिनांक 12 दिसंबर, 1988 के निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा उन्होंने हक वाद सं॰ 20 वर्ष 1976 में मुंसिफ डाल्टेनगंज द्वारा पारित दिनांक 24.11.1984 के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया और वादी द्वारा दाखिल बँटवारा वाद को डिक्री किया।

2. संक्षेप में, वादी का मामला यह है कि वादपत्र की अनुसूची A में वर्णित वाद संपत्ति वादी और उसके भाई धनुष ठाकुर (प्रतिवादी सं॰ 1 से 3 का पिता और स्व॰ राघो ठाकुर जिसके उत्तराधिकारी प्रतिवादी सं॰ 4 से 10 हैं) की संयुक्त संपत्ति है। यह कथन भी किया गया है कि वादी पूर्वोक्त वाद संपत्ति में आधे हिस्से का हकदार है। वादी का आगे मामला यह है कि अपने पिता की मृत्यु के बाद, वह डाल्टेनगंज चला गया और बाल काटने का सैलून खोला। तब कथन किया गया है कि बाल काटने के सैलून की आमदनी से उसने डाल्टेनगंज में घर खरीदा और ग्राम नवाटांड में खाता सं॰ 1 और 2 से संबंधित भूमि भी खरीदा और इसके ऊपर घर बनवाया। कथन किया गया है कि डाल्टेनगंज का घर और पूर्वोक्त भूमि और गाँव नवाटांड में घर वादी की स्वअर्जित संपत्ति है। कथन किया गया है कि वादी और प्रतिवादीगण संयुक्त रूप से वाद संपत्ति के फलोपभोग का आनंद ले रहे थे। किंतु दोनों पक्षों के बीच कुछ विवाद उद्भूत हुआ जिसके लिए दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं 144 और 145 के अधीन कार्यवाही शुरू की गयी थी। कथन किया गया है कि सुलह के आधार पर उक्त कार्यवाही निपटायी गयी थी। आगे कथन किया गया है कि जब वादी ने अनुसूची A संपत्ति के बँटवारा के लिए सुलह के निबंधनों के मुताबिक जोर दिया, प्रतिवादीगण ने इनकार कर दिया और इसलिए वर्तमान वाद दाखिल किया गया है।

3. प्रतिवादीगण ने लिखित कथन दाखिल करके वाद का प्रतिवाद किया। लिखित कथन में उन्होंने स्वीकार किया कि वाद पत्र की अनुसूची A में उल्लिखित संपत्ति संयुक्त परिवार की संपत्ति है। किंतु वे

कथन करते हैं कि डाल्टेनगंज का घर और ग्राम नवाटांड के खाता सं० 1 और 2 से संबंधित भूमि भी संयुक्त परिवार की संपत्ति है क्योंकि यह संयुक्त परिवार निधि से खरीदी गयी है। प्रतिवादीगण का आगे मामला यह है कि वादी ने वर्ष 1947 में प्रतिवादीगण की मदद से बाल काटने का सैलून खोला था। आगे कथन किया गया है कि वर्ष 1939 में वादी की सास ने दान विलेख निष्पादित करके वादी और उसके भाई धनुष ठाकुर की पत्नियों के पक्ष में डाल्टेनगंज स्थित अपना घर अंतरित करना चाहती है क्योंकि दोनों उसकी पुत्रियाँ हैं। तब अभिकथित किया गया है कि वादी ने कपट करके दान विलेख निष्पादित करवाने के बजाय अपने पुत्र के पक्ष में यह दर्शाते हुए विक्रय विलेख निष्पादित करवाया कि उसने 800/- रुपयों की प्रतिफल राशि का भुगतान किया था। कथन किया गया है कि वर्ष 1939 में पूर्वोक्त घर खरीदने के लिए वादी की आमदनी नहीं थी। प्रतिवादीगण ने दावा किया कि उक्त घर भी संयुक्त परिवार की संपत्ति है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि आंशिक बँटवारा के आधार पर वर्तमान वाद खारिज किए जाने का दायी है, क्योंकि वादी ने वादपत्र की अनुसूची A में पूर्वोक्त संपत्तियों को सम्मिलित नहीं किया था।

4. पक्षों के अभिवचन के आधार पर विद्वान विचारण न्यायालय ने कुल मिलाकर छह विवाद्यकों को विरचित किया। तत्पश्चात्, दोनों पक्षों ने अपने मामले के समर्थन में साक्ष्य दिया। तब यह प्रतीत होता है कि विद्वान मुंसिफ (विचारण न्यायालय) ने प्रतिवादीगण के पक्ष में समस्त विवाद्यकों को विनिश्चित किया और प्रतिवाद पर वाद खारिज कर दिया। तत्पश्चात्, अपील दाखिल की गयी थी और उक्त अपील में, विद्वान अपीलीय न्यायालय ने दोनों पक्षों द्वारा दिए गए साक्ष्य पर विचार करने के बाद विद्वान मुंसिफ (विचारण न्यायालय) द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया और वाद डिक्री किया और अभिनिर्धारित किया कि वादी संपूर्ण वाद संपत्ति के आधे हिस्से का हकदार है। अपीलीय न्यायालय के उक्त निर्णय के विरुद्ध इस अपील को दाखिल किया गया है।

5. यह प्रतीत होता है कि वर्तमान अपील विधि के निम्नलिखित सारवान प्रश्न पर ग्रहण की गयी है:–

*^^D;k voj U;k;ky; dk vihy vuKkr djus d igys bl fu"d"k dk nt djuk pkfg, Fkk fd ;fn lyu dk O;olk; l;Dr ifjokfjd O;olk; Fkk vkj ;fn ,lk Fkk] D;k i;klr vkenuh Fkh ftl l oknh vkj mld nk vo;Ld i=k d uke ij lifÙk vftr dh x;h Fkh***

6. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री वी० के० प्रसाद द्वारा निवेदन किया गया है कि अपीलीय न्यायालय ने कोई निष्कर्ष नहीं दिया है कि सैलून कब खोला गया था। आगे निवेदन किया गया है कि विद्वान अपीलीय न्यायालय ने ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं दिया था कि प्रश्नगत सैलून संयुक्त परिवार का व्यवसाय नहीं था, अत:, उक्त व्यवसाय की आमदनी से खरीदी गयी कोई संपत्ति संयुक्त परिवार की संपत्ति है। अत: प्रतिवादीगण/अपीलार्थीगण उक्त संपत्ति में हिस्से के हकदार हैं। आगे निवेदन किया गया है कि वादी/प्रत्यर्थीगण का वर्ष 1939 में कोई आमदनी नहीं था, अत: यह उपधारित किया जाएगा कि उक्त संपत्ति संयुक्त परिवार की निधि से खरीदी गयी थी। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि आक्षेपित निर्णय संपोषित नहीं किया जा सकता है।

7. दूसरी ओर, श्री मंजुल प्रसाद निवेदन करते हैं कि विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने निश्चित निष्कर्ष दिया है कि पैतृक संपत्ति से कोई आमदनी नहीं हुई है, अत: कोई संयुक्त परिवार न्यूक्लियस नहीं है जिससे संयुक्त परिवार कोई संपत्ति खरीद सकता था। श्री प्रसाद आगे निवेदन करते हैं कि विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के बाद निष्कर्ष दिया था कि प्रश्नगत सैलून वादी और प्रतिवादीगण द्वारा संयुक्त रूप से नहीं खोला गया था। विद्वान अपीलीय न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादीगण उक्त सैलून में काम नहीं करते थे। वह निवेदन करते हैं कि विद्वान अपीलीय न्यायालय ने प्रतिवादीगण अर्थात् प्रतिवादी सं० 1 (ब० सा० सं० 19) के एकमात्र साक्ष्य को

अस्वीकार कर दिया था और अभिनिर्धारित किया था कि यह स्पष्ट और संक्षिप्त है। यह निवेदन किया गया है कि विद्वान अपीलीय न्यायालय द्वारा दिया गया पूर्वोक्त निष्कर्ष तथ्य का निष्कर्ष है जिसे द्वितीय अपील में चुनौती नहीं दिया जा सकता है। निवेदन किया गया है कि यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर साक्ष्य उपलब्ध है कि वादी ने वर्ष 1939 के पहले सैलून खोला था और उक्त सैलून की आमदनी से डालटनगंज में घर खरीदा था।

8. विद्वान अपीलीय न्यायालय ने अपने निर्णय को पैराग्राफ 29 पर निम्नलिखित निष्कर्ष दिया:–

*^^LohÑr :i ls ,dek= ird lifÙk ,l0 ih0 l0 143 ij fLFkr vkoklh; xg vkj ,l0 ih0 l0 144 e 0.32 ,dM eki okyh ckMh Fkh tks nkuks xke uokVkM fLFkr [kkrk l0 9 ls lcfèkr gA fdr dkbZ Hkh lk{; ugh g fd bu ird lifÙk;k s dkbZ l;Dr ifjokj vkenuh gbA ;g n'kku d fy, dkbZ Hkh lk{; ugh g fd bl ird lifÙk ls dkbZ vkenuh mikftr dh x;h FkhA nlj 'kCnk e] vfHkfuèkkfjr fd;k tkrk g fd dkbZ U;fDy;l fcYdy ugh Fkk ftlls ird lifÙk dh vk; ls dh x;h cpr ls l;Dr ifjokj dkbZ lifÙk [kjhn ldrk FkkA**

इस प्रकार, अपीलीय न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के बाद निश्चित निष्कर्ष दिया है कि ऐसा कोई संयुक्त परिवार न्यूक्लियस नहीं है जिससे संयुक्त परिवार कोई संपत्ति खरीद सकता था। तब विद्वान अपीलीय न्यायालय ने पैराग्राफ 30 पर कथन किया कि चूँकि उक्त संपत्तियाँ, जिनका विवरण लिखित कथन के अनुसूची A में दिया गया है, वादी के नाम पर है, अत: यह सिद्ध करने का भार प्रतिवादीगण पर है कि उन्होंने भी उक्त संपत्ति के अर्जन में योगदान दिया था। विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने ब॰ सा॰ 19 के साक्ष्य पर विचार किया और अभिनिर्धारित किया कि अपना दावा कि बाल काटने का सैलून वादी और प्रतिवादीगण द्वारा संयुक्त रूप से खोला गया था, सिद्ध करने के लिए प्रतिवादीगण द्वारा दिया गया साक्ष्य अस्पष्ट और संक्षिप्त है और विश्वास उत्पन्न नहीं करता है।

9. इस प्रकार, विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय के निर्णय के पैराग्राफ 29 और 30 के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि विद्वान अपीलीय न्यायालय ने विनिश्चित किया कि प्रश्नगत सैलून संयुक्त परिवार का व्यवसाय नहीं है।

10. मैंने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का भी परिशीलन किया है। अ॰ सा॰ 5 रामदेव ठाकुर ने कथन किया कि वह वादी और धनुष ठाकुर (प्रतिवादीगण का पिता) का साढ़ू (साली का पति) है। अत:, वह दोनों पक्षों का निकट संबंधी है। उसका प्रति परीक्षण करते हुए प्रतिवादीगण ने उसे यह दर्शाने के लिए सुझाव नहीं दिया कि उनके विरुद्ध अभिसाक्ष्य देने के लिए उसके पास निजी शिकायत थी। इस गवाह ने कथन किया कि नगवंत ठाकुर (वादी) ने डाल्टेनगंज में घर खरीदने के पहले सैलून व्यवसाय शुरू किया। दोनों पक्षों का स्वीकृत मामला है कि डाल्टेनगंज का घर वर्ष 1939 में अर्जित किया गया था। इस प्रकार, अ॰ सा॰ 5 के साक्ष्य के मुताबिक प्रश्नगत सैलून वर्ष 1939 के पहले खोला गया था। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया कि आरंभ में झोपड़ी में सैलून खोला गया था। वादी का मामला अ॰ सा॰ 5 के साक्ष्य से पूर्ण समर्थन पाता है कि सैलून डाल्टेनगंज का घर खरीदने से पहले अर्थात वर्ष 1939 के पहले खोला गया था। अ॰ सा॰ 5 आगे कथन करता है कि वादी ने अपनी सास से डाल्टेनगंज का घर खरीदा था। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया कि धनुष ठाकुर ने पूर्वोक्त घर खरीदने के लिए एक पैसे का योगदान नहीं दिया था। प्रति-परीक्षण के दौरान पैराग्राफ 5 पर इस गवाह ने कथन किया कि डाल्टेनगंज का घर खरीदने के लिए उसकी उपस्थिति में नगवंत ठाकुर और उसकी सास के बीच बात हुई। इस गवाह, जो वादी का साढ़ू है,

ने कहीं पर भी यह कथन नहीं किया कि उसकी सास वादी और उसके भाई धनुष ठाकुर के पक्ष में दान विलेख निष्पादित करके उक्त घर को अंतरित करना चाहती थी। उक्त परिस्थितियों के अधीन मैं पाता हूँ कि वादी के अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 11 और अ॰ सा॰ 5 ने वादी के मामले का समर्थन किया।

11. दूसरी ओर, प्रतिवादी की ओर से केवल ब॰ सा॰ 19 अर्थात् प्रतिवादी सं॰ 1 ने उनके मामले के समर्थन में अभिसाक्ष्य दिया था। यह दर्शाने के लिए स्वतंत्र गवाह प्रस्तुत नहीं किया गया था डाल्टेनगंज स्थित प्रश्नगत सैलून वर्ष 1947 में खोला गया था। ब॰ सा॰ 19 ने कथन किया कि यह तथ्य नहीं है कि वादी वर्ष 1947 के पहले पृथक रूप से सैलून चला रहा था। वह तब कथन करता है कि सैलून संयुक्त था और इसे वादी और प्रतिवादीगण द्वारा संयुक्त रूप से चलाया जा रहा था। उसने कथन नहीं किया कि उक्त सैलून कब खोला गया था। उसने यह कथन भी नहीं किया कि प्रतिवादीगण ने उक्त सैलून खोलने में योगदान दिया था। पूर्वोक्त परिस्थितियों के अधीन, मैं पाता हूँ कि विद्वान अपीलीय न्यायालय ने सही प्रकार से निष्कर्षित किया कि दोनों पक्षों के संयुक्त प्रयास से सैलून खोले जाने के संबंध में प्रतिवादी का साक्ष्य अस्पष्ट, संक्षिप्त है और विश्वास उत्पन्न नहीं करता है।

12. जैसा ऊपर कहा गया है, यह दर्शाने के लिए कि वादी और प्रतिवादीगण के संयुक्त प्रयास से वर्ष 1947 में डाल्टेनगंज का सैलून खोला गया था, प्रतिवादीगण द्वारा कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है। उक्त परिस्थितियों के अधीन, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि प्रतिवादीगण (अपीलार्थीगण) यह सिद्ध करने में विफल रहे कि सैलून व्यवसाय संयुक्त परिवार का व्यवसाय है। तद्नुसार अभिनिर्धारित किया जाता है कि यह वादी का पृथक व्यवसाय है।

13. अपने अभिसाक्ष्य के पैराग्राफ सं॰ 5 पर ब॰ सा॰ 19 ने विनिर्दिष्टत: कथन किया है कि नवाटांड की भूमि सैलून व्यवसाय की आमदनी से खरीदी गयी थी। इस प्रकार, प्रतिवादीगण द्वारा स्वीकार किया गया है कि प्रश्नगत संपत्ति खरीदने के लिए उक्त सैलून से पर्याप्त आमदनी थी।

14. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, मैं निष्कर्षित करता हूँ कि डाल्टेनगंज में सैलून का व्यवसाय वर्ष 1939 के पहले स्वयं वादी द्वारा आरंभ किया गया था और उक्त सैलून से हुई आय प्रश्नगत संपत्ति खरीदने के लिए पर्याप्त है। तद्नुसार, विधि के सारवान प्रश्न का उत्तर दिया जाता है।

15. परिणामस्वरुप, मैं इस अपील में गुणागुण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

डॉ॰ देब कुमार मुखर्जी एवं एक अन्य

cuke

कुलपति, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय एवं अन्य

W.P. (S) No. 1739 of 2011. Decided on 14th September, 2011.

झारखंड पेंशन नियमावली, 2000—नियम 43b—अधिक भुगतान की गई राशि की पेंशन से वसूली–गलती के कारण अधिक भुगतान किया गया था–याचीगण ने कोई अभ्यावेदन नहीं दिया था अथवा कपट नहीं किया था–वर्तमान मामले में नियम 43b के अधीन वसूली का प्रश्न प्रयोज्य नहीं है–याचीगण को उस राशि के भुगतान के लिए दायी नहीं बनाया जा सकता है जो उन्होंने गलती से आधिक्य में प्राप्त किया था–याचीगण से की गयी वसूली की प्रतिपूर्ति की जानी है। (पैराएँ 3, 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–M/s J. Dubey & B.B. Sinha, For the Petitioners; Mr. Allam & Mrs. Nehla Sharamin, For the Respondents.

आदेश

पक्षों को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका दो याचीगण द्वारा दाखिल की गयी है जो अब सेवानिवृत्त हो गए हैं और उनको किए गए कतिपय अधिक भुगतान को उनके पेंशन से काटा जा रहा है। याची सं॰ 1 दिनांक 1 जनवरी, 2001 को सेवानिवृत्त हुआ और याची सं॰ 2 दिनांक 29 फरवरी, 1994 को सेवानिवृत्त हुआ। उनका पेंशन उनके द्वारा बिहार सरकार से उठाए गए अंतिम वेतन के आधार पर तय किया गया है। यह कथन किया गया है कि प्रत्यर्थीगण ने अनेक वर्ष बीतने के बाद पाया कि याचीगण को कतिपय आधिक्य राशि का भुगतान किया गया है और इसलिए उनके पेंशन से इसे वसूला जा रहा है। याची सं॰ 1 से प्रत्यर्थीगण द्वारा वसूल की जाने वाली इप्सित राशि 99,292/- रुपया और याची सं॰ 2 से 87,055/- रुपया थी। याची सं॰ 1 से संपूर्ण राशि पहले ही वसूल कर ली गयी है जबकि याची सं॰ 2 के पेंशन से 87,055/- रुपए की राशि 1500/- रुपया प्रतिमाह की दर पर वसूल की जा रही है। प्रत्यर्थीगण ने याचीगण को कोई पूर्व सूचना दिए बिना वसूली शुरू किया था और उक्त कटौती/वसूली को डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 1135 वर्ष 2009 में चुनौती दी गयी थी जिसे दिनांक 30 जून, 2009 को निपटाया गया था। याचीगण को प्रत्यर्थीगण के पास जाने की स्वतंत्रता दी गयी थी और प्रत्यर्थीगण को याचीगण को सुनवाई का अवसर देने का निर्देश दिया गया था। किंतु, प्रत्यर्थीगण द्वारा याचीगण को सुनवाई का अवसर दिए जाने के बाद भी वसूली का आदेश बनाए रखा गया था। प्रत्यर्थीगण का प्रतिवाद है कि झारखंड पेंशन नियमावली का नियम 43b याचीगण के मामले पर लागू नहीं है, चूँकि अधिक भुगतान सेवावधि के दौरान नहीं किया गया था जबकि पेंशन लाभों में सेवानिवृति अवधि के दौरान इसे दिया गया था। यह गलती से किया गया था और, इसलिए, प्रत्यर्थीगण ने जोरदार तर्क किया है कि वे किसी भी लाभ के हकदार नहीं हैं।

3. दोनों अधिवक्ता को सुनने के बाद, स्वीकृत स्थिति यह है कि याचीगण ने कोई दुर्व्यपदेशन नहीं किया था अथवा प्रत्यर्थीगण के साथ कपट किया था बल्कि गलती के कारण अधिक भुगतान किया गया था। अत: स्पष्टत: झारखंड पेंशन नियमावली के नियम 43b के अधीन वसूली का प्रश्न वर्तमान मामले के तथ्यों पर प्रयोज्य नहीं होगा।

4. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने **कुलपति, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय एवं अन्य बनाम बंशीधर शर्मा** के मामले में इस न्यायालय की खंड पीठ के निर्णय पर विश्वास किया है। एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 546 वर्ष 2009 में विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय को मान्य ठहराते हुए खंडपीठ द्वारा पारित अंतिम आदेश वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूरी तरह से प्रयोज्य है। यद्यपि एल॰ पी॰ ए॰ खारिज कर दिया गया था, **साहिब राम बनाम हरियाणा राज्य, 1995 Suppl. (1) SCC पृष्ठ 18,** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया गया था। इसके अतिरिक्त **झारखंड राज्य एवं अन्य बनाम पद्मलोचन कालिंदी एवं एक अन्य,** 2007 (4) JLJR 451, में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय पर भी विश्वास किया गया है और पूर्णपीठ का निर्णय रिट याचिका के परिशिष्ट–2 के रूप में संलग्न किया गया है। याचीगण के इस प्रतिवाद कि सेवानिवृत्ति के बाद पेंशन लाभ से वसूली नहीं की जा सकती है, को सिद्ध करने के लिए अनेक निर्णयों को मेरे समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

5. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के परस्पर विरोधी निवेदनों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है। स्पष्टत: दुर्व्यपदेशन अथवा कपट का अभिकथन नहीं है जिसके द्वारा सरकार को नुकसान कारित किया

गया था। मेरा दृष्टिकोण है कि याचीगण को उस राशि, जो उन्होंने गलती से अधिक प्राप्त किया था, के भुगतान के लिए दायी नहीं बनाया जा सकता है। याचीगण भी उन्हीं अनुतोषों और मापदंडों के हकदार है जो ऐसे कर्मचारीगण पर प्रयोज्य हैं जिन्हें सेवावधि के दौरान अधिक भुगतान किया गया है और अधिवर्षिता के बाद वसूली की गयी है।

6. इन अनुचिंतनों और ऊपर किए गए उद्धरणों की दृष्टि में, मेरा भी यही दृष्टिकोण है कि याची सं॰ 1 से की गयी वसूली की प्रतिपूर्ति किए जाने की दायी है और याची सं॰ 2 के पेंशन से आगे वसूली नहीं की जाएगी। रिट याचिका के परिशिष्ट-1 और 1/1 से वसूली संपुष्ट की गयी है जो याचीगण के अभ्यावेदनों के आधार पर कुलपति, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, काँके, राँची द्वारा पारित दिनांक 17 मार्च, 2010 का आदेश है। यहाँ ऊपर दिए गए कारणों से उक्त आदेशों को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

7. इन संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

---

ekuuh; ç'kkr dekj] U;k;efr

पुरुषोत्तम दास गज्जर

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Rev. No. 139 of 2001 with I.A. No. 1888 of 2011. Decided on 14th October, 2011.

दांडिक विविध सं॰ 288 वर्ष 1999 में सब-डिविजनल दंडाधिकारी, देवघर द्वारा पारित दिनांक 21.3.2001 के आदेश के विरुद्ध।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 145—प्रतिस्थापन—परिसीमा—पुनरीक्षण में प्रतिस्थापन याचिका दाखिल करने के लिए प्रावधान नहीं है—किंतु, धारा 145 की कार्यवाही से उद्भूत होने वाले पुनरीक्षण आवेदनों में दाखिल प्रतिस्थापन याचिका को सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मुताबिक ग्रहण किया जा रहा है—पुनरीक्षण मामले में ऐसा प्रतिस्थापन आवेदन युक्तियुक्त समय के भीतर दाखिल करना आवश्यक होता है—वर्तमान में प्रतिस्थापन याचिका इसके लिए किसी स्पष्टीकरण के बिना 6 वर्षों के विलंब से दाखिल की गयी—प्रतिस्थापन याचिका खारिज।

(पैराएँ 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.—Mr. Anil Kumar Jha, For the Petitioner; Mr. Kailash Prasad Deo, For the Opposite Parties.

न्यायालय द्वारा.—अंतर्वर्ती आवेदन सं॰ 1888 वर्ष 2011 गुणवंती देवी, लता पी॰ गज्जर और मनोज कुमार पी॰ गज्जर जो स्वयं को इस मामले के मूल याची पुरुषोत्तम दास गज्जर का विधिक उत्तराधिकारी होने का दावा करते हैं, के नामों के प्रतिस्थापन के लिए दाखिल किया गया है। कथन किया गया है कि मूल याची अर्थात् पुरुषोत्तम दास गज्जर की मृत्यु दिनांक 2.1.2005 को हो गयी और प्रतिस्थापना के लिए आवेदन दिनांक 11.10.2011 को दाखिल किया गया है। उक्त आवेदन में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि प्रतिस्थापन याचिका दाखिल करने में विलंब क्यों हुआ है।

2. किंतु, याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 की कार्यवाही में लता पी॰ गज्जर और मनोज कुमार पी॰ गज्जर भी याचीगण थे, अत:, यह पुनरीक्षण उनके कहने पर आगे बढ़ सकता है। आगे निवेदन किया गया है कि दं॰ प्र॰ सं॰ में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो प्रतिस्थापन याचिका दाखिल करने के लिए परिसीमा की अवधि विहित करता हो। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि याची द्वारा दाखिल प्रतिस्थापन याचिका अनुज्ञात की जाय।

3. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकारों के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कैलाश प्रसाद देव निवेदन करते हैं कि लता पी॰ गज्जर और मनोज कुमार पी॰ गज्जर अवर न्यायालय में याचीगण थे किंतु अंतिम आदेश पारित किए जाने के बाद उन्होंने आक्षेपित आदेश को चुनौती नहीं दी थी और परिसीमा अवधि के भीतर पुनरीक्षण दाखिल नहीं किया था। उक्त परिस्थिति के अधीन, यदि उन्हें मृतक याची (पुरुषोत्तम दास गज्जर) के स्थान पर प्रतिस्थापित करने की अनुमति दी जाएगी, तब यह परिसीमा अधिनियम के अधीन विहित परिसीमा की अवधि के परे पुनरीक्षण आवेदन दाखिल करने की अनुमति उनको देने के तुल्य होगा। निवेदन किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मुताबिक प्रतिस्थापन याचिका दाखिल की जा सकती है किन्तु इसे छह वर्षों के विलंब के बाद, और वह भी किसी स्पष्टीकरण के बिना, ग्रहण नहीं किया सकता है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि अंतर्वर्ती आवेदन खारिज किए जाने का दायी है।

4. निवेदनों को सुनने पर मैंने अभिलेख का परिशीलन किया है। स्वीकृत रूप से, यह पुनरीक्षण आवेदन मृतक पुरुषोत्तम दास गज्जर द्वारा दाखिल किया गया था जो अवर न्यायालय में याचीगण में से एक है। अन्य दो याचीगण अर्थात् लता पी॰ गज्जर और मनोज कुमार पी॰ गज्जर, जो भी अवर न्यायालय में याची थे, ने पुनरीक्षण दाखिल नहीं किया था। इस प्रकार, विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश अंतिम बन गया, जहाँ तक उनका संबंध है। उक्त परिस्थितियों के अधीन, यदि याची के विद्वान अधिवक्ता का प्रथम प्रतिवाद अनुज्ञात किया जाता है, तब यह परिसीमा अधिनियम के अधीन विहित परिसीमा की अवधि के अवसान के बाद भी लता पी॰ गज्जर और मनोज कुमार पी॰ गज्जर को पुनरीक्षण दाखिल करने का अवसर देने के तुल्य होगा जो विधि के अधीन प्रतिषिद्ध है। अत: उक्त निवेदन को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

5. जहाँ तक याची के विद्वान अधिवक्ता के द्वितीय प्रतिवाद का संबंध है, यह सत्य है कि दं॰ प्र॰ सं॰ के अधीन प्रतिस्थापन दाखिल करने के लिए परिसीमा की कोई अवधि विहित नहीं की गयी है किंतु यह भी स्पष्ट है कि दं॰ प्र॰ सं॰ के अधीन पुनरीक्षण में प्रतिस्थापन याचिका दाखिल करने के लिए कोई प्रावधान नहीं है। किंतु दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 की कार्यवाही से उद्भूत होने वाले पुनरीक्षण आवेदनों में दाखिल प्रतिस्थापन याचिका सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मुताबिक ग्रहण की जा रही है, किंतु मेरे मत में, पुनरीक्षण मामले में ऐसी प्रतिस्थापन याचिका को युक्तियुक्त समय के भीतर दाखिल करने की आवश्यकता होती है। वर्तमान मामले में, मृतक पुरुषोत्तम दास गज्जर की मृत्यु के छह वर्ष बाद प्रतिस्थापन याचिका दाखिल की गयी है और प्रतिस्थापन याचिका में उक्त विलंब का स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

6. उक्त परिस्थिति के अधीन, मैं प्रतिस्थापन याचिका जिसे काफी विलंब के बाद दाखिल किया गया है को अनुज्ञात करने का इच्छुक नहीं हूँ। तद्नुसार, प्रतिस्थापन याचिका अर्थात् आई॰ ए॰ सं॰ 1888 वर्ष 2011 खारिज किया जाता है। परिणामस्वरुप, पुनरीक्षण आवेदन भी खारिज किया जाता है क्योंकि एकमात्र याची की मृत्यु के कारण यह उपशमनित हो गया है।